बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी-एच० डी०

: की :

उपाधि के लिये प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

सन् १९८१

卐
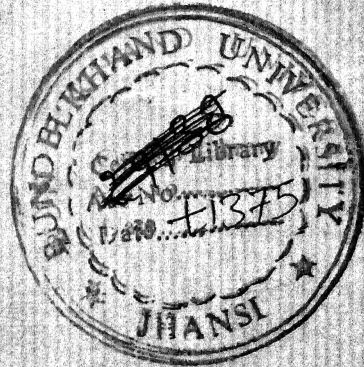
निर्देशक—
डॉ० द्वारकाप्रसाद मीतल
एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्.
रीडर एवं अध्यक्ष हिन्दी-विभाग
बुन्देलखण्ड कॉलिज, झांसी

शङ्करशरण तिवारी
एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत)
प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग
नेहरू महाविद्यालय, ललितपुर

कवि हृदयेश का व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व

卐

सन् १९८२

卐

देशक—

डॉ० द्वारकाप्रसाद मीतल
एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्.
रीडर एवं अध्यक्ष हिन्दी-विभाग
बुन्देलखण्ड कॉलिज, झांसी

शङ्करशरण तिवारी
एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत)
प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग
नेहरू महाविद्यालय, ललितपुर

C E R T I F I C A T E

This is to certify :-

1. that the thesis embodies the work of the candidate himself.

2. that the candidate worked under me for the period required under Ordinance 7 and

3. that he has put in the required attendance in my department during that period.

(Dr. D.P Mittal)
Head, Hindi Department,
Bundelkhand College, Jhansi

Dated: Nov.28, 1982

Seal [stamp: रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, बुन्देलखण्ड कालिज, झाँसी]

द्वितीय — अध्याय

तृतीय — अध्याय

पंचम — अध्याय

षष्ठ — अध्याय

सप्तम — अध्याय

द्वितीय भाग

आभार

विषय के चयन से लेकर शोध प्रबन्ध की आनंदात्मिका परिसमाप्ति शोधकर्ता के व्यक्तिमात्र की उपलब्धि नहीं है अपितु इस कार्य की पूर्णता में विभिन्न उपादानों का अपेक्षित योगदान हुआ करता है, अतः ऐसे जिन संस्थानों, विद्वानों, आलोचकों एवं कवियों से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से शोध कार्य में मुझे साहाय्य उपलब्ध हो सका है, उन सब के प्रति मैं औपचारिकतावश ही नहीं, हृदय की सम्पूर्ण रागात्मिका वृत्ति के साथ कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना धर्म समझता हूँ— विशेषतया बुन्देलखण्ड के कविवर साहित्य-वारिधि रामचरण ह्यारण ' मित्र ' के प्रति मैं चिर आभारी हूँ जिनके अहेतुक प्रसाद से मुझे आलोच्य कविकृत रचना की पाण्डुलिपि उपलब्ध हो सकी।

गुरुजनों से जो प्रेरणा प्राप्त होती है वह प्रभावक होने के साथ ही साथ इतनी विधायिनी भी होती है कि मात्र शिश्नोदरपुष्टि-तुष्टिकारिणी जीवनधारा का प्रवाह ही परिवर्तित या प्रत्यावर्तित हो जाता है। मेरे महाविद्यालयीन अध्ययनोत्तर जीवन में एतादृशी शक्तिमत्ता का बीजारोपण करने वाले गुरुप्रवर डा० व्दारका प्रसाद मीत्तल, रीडर एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष, बुन्देलखण्ड कालिज, झांसी, जिन्हें इस शोध-प्रबन्ध को आद्यन्त निर्देशित करने का श्रेय प्राप्त है एवं जिनकी निर्हेतुकी कृपावारिवृष्टि से यह शोध प्रबन्ध आकार धारण कर सका है, के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन मेरा अपरिहार्य धर्म है यद्यपि मेरा यह प्रयास उनके पांडित्य, वैदग्ध्य तथा उनकी नीर-क्षीरविवेकिनी प्रज्ञा को औपचारिकता की संकीर्णता में आबद्ध करने जैसा वामन-प्रयास ही है; परन्तु वाणी के व्दारा ऐसी धृष्टता यतः मेरा मात्रैक अवलम्ब है अतः मैं इससे विरहित होकर निराश्रित होने जैसी आपत्ति को आमंत्रित करने वाला नहीं। उन्होंने स्नेहयुक्त तथा वात्सल्यसम्पृक्त मार्ग-निर्देशन देकर मेरा जो उपकार किया है उस ऋण का मेरे व्दारा कभी परिशोध हो सकेगा इसमें मुझे सन्देह है।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ० प्रेम स्वरूप गुप्त का भी मैं आभारी हूं जिनके व्दारा समय-समय पर दिये गए प्रेरणाप्रद निर्देश मेरे प्रबन्ध की सामयिक समाप्ति में कम सक्रिय नहीं रहे हैं। इसके अतिरिक्त मेरे महाविद्यालय के प्राचार्य श्री रतन लाल कठोनिया तथा राजनीति शास्त्र विभाग के अध्यक्ष एवं सर्वोदय

दर्शन के पारदर्शक विद्वान् डॉ० कपिल देव त्रिपाठी का आभारी होने में मुझे गौरव का अनुभव होता है जिनके प्रत्यक्ष-परोक्ष-रूपेण कृत सहयोग से मुझे अध्ययन के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न प्रकार का सहयोग उपलब्ध हुआ है जिसका मूर्त एवं गोचर रूप प्रबन्ध के रूप में प्रस्तुत है। शोध प्रबन्ध की पूर्णता के सन्दर्भ में मैं अपने वरिष्ठ अध्येता श्री मोहन लाल गुप्त ` चातक ` का सादर स्मरण करना न भूलूंगा जिनकी तत्परता तथा लगनशीलता ने मुझ जैसे प्रमादी को गन्तव्य की ओर बरबस आकृष्ट करने का महत्कार्य सम्पादित किया। जिला पुस्तकालय, झाँसी का योगदान भी यहाँ उल्लेखनीय है।

इस शरीर से सम्बन्ध रखने वाले सुपुत्र भास्कर नाथ तिवारी ने इस शोध प्रबन्ध की जो साज-सज्जा अपनी कलात्मिका वृत्ति के अनुकूल की है उसके लिए तादृश विज्ञापन अपने मुख अपनी प्रशंसा होगा। ` आत्मा वै जायते पुत्रः ` के अनुसार वे मेरे अन्तरतम के प्रतिरूप है, भिन्न नहीं।

आलोच्य कृति ` विश्वम्भरन ` के यशस्वी कर्ता पं० हीरा लाल व्यास ` हृदयेश ` जिनके विषय में हमारे द्वारा यह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया है, के प्रति भी हार्दिक आस्था व्यक्त करते हुए मैं सम्पूर्ण पुष्टि-तुष्टि का अनुभव करता हूँ जो हिन्दी-साहित्य के धुरीण साहित्यकारों अथवा साहित्येतिहासकारों द्वारा जाने-अनजाने दृष्टि से ओझल अथवा अनादृत कर दिए गए परन्तु जिनके हृदय के किसी कोने में प्रच्छन्न लोकेषणा अथवा कृति के प्रचार-प्रसार की भावना अकुंठित बनी रही। वस्तुतः उक्त काव्य की गुणात्मकता के प्रति अनवरत प्रवर्द्धमती आस्था ने भी मुझे कार्य की पूर्णता में कम अवलम्ब नहीं प्रदान किया।

किसी भी कार्य के निष्पादन में श्रम अनिवार्य तत्व है पर यह श्रम सफलता में तब परिणति ग्रहण करता है जब सहृदय पाठक इसे अपने हृदय की भावसम्पत्ति के रूप में वरण करते हैं, अतः मैं अपनी सम्पूर्ण ज्ञात-अविज्ञात त्रुटियों तथा न्यूनताओं के प्रति क्षमा-प्रार्थी होकर अपने श्रम को तभी सफल समझूंगा जब हमारा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध हिन्दी-साहित्य के अध्येताओं, रसपिपासुओं, शोधकर्ताओं, समीक्षकों और आलोचकों का यत्किंचित् मनःप्रसादन तथा हृत्परितोषण कर सकेगा।

— शंकर शरण तिवारी

प्राक्कथन

भारतवर्ष का हृदय-प्रदेश बुन्देलखण्ड प्राग्वैदिक काल से ही शौर्य, साहित्य, संगीत, कला तथा संस्कृति की दृष्टि से अव्याहत गतिमत्ता को धारण करता हुआ अद्यापि अपनी उत्कृष्टता को प्रमाणित करते रहने से परिश्रान्त नहीं हुआ है। यह भूमि पावन अवतारों की क्रीड़ा तथा लीला-स्थली होने के साथ-साथ प्राकृत-अप्राकृत कवियों की विभूति से समलंकृत रही है। इस पावन प्रदेश के सुरम्य भूभाग चित्रकूट पर कभी मर्यादापुरुषोत्तम राम ने रमण किया तो कभी लीलापुरुषोत्तम श्यामसुन्दर ने आततायी शिशुपाल का अनायास वध कर शौर्य का अपेक्षित प्रतिमान स्थापित किया, कभी यहां अष्टादश पुराणकर्ता वेदव्यास ने अपनी तपस्या, तेजस्विता एवं प्रतिभा से वेदों के उपबृंहणरूप पुराणों का प्रणयन किया तो कभी महर्षि वाल्मीकि ने आदि काव्य रामायण के अवतरण के द्वारा काव्य की स्तब्ध धारा को चिरप्रवाहित करने जैसी क्रान्तिदर्शिता का सुपरिचय दिया और कभी तुलसी, केशव, बिहारी, पद्माकर मोहन मिश्र आदि सुकवियों ने मां भारती का आंचल काव्यरूप मणियों के द्वारा भर दिया। बुन्देलखण्ड के प्रदेश झांसी की इसी ओजस्विनी तथा मानवरागरंजित भूमि पर काव्यकला, कल्पनासौष्ठव, चमत्कारिक रमणीयता, भावों की सुकुमारता, प्रेम और सौन्दर्य की मार्मिक अभिव्यंजकता, नारी के रमणी रूप के आह्लादकारी किरणों से मंडित हिन्दी के रीतिकाल की अठारहवीं शताब्दी में कवि हृदयेश का अवतरण हुआ जिनका काव्यग्रन्थ ' चित्रचन्द्रिका ' अपनी तादृशी गुणगणसमष्टि से सहृदयों को मनः प्रीतिसंयुक्त करने में सक्षम है।

उपर्युक्त काव्यग्रन्थ हिन्दी साहित्य का वह काव्य है जो अपनी गुणात्मकता के कारण रीतिकालीन काव्यपरम्परा में एक नवीन कड़ी जोड़कर अपने अस्तित्व की घोषणा करता है। अद्यावधि अविज्ञात इस कृतित्व के समुद्घाटन से यह सिद्ध हो जाता है कि रीतिकाल में अथवा पूर्वरीतिकाल में ओरछा राज्य में ही साहित्य-साधना नहीं होती रही है अपितु इसका पार्श्ववर्ती प्रदेश या राज्य झांसी भी एतादृशी गतिविधियों से विरहित नहीं था। उक्त कालावधि में सतत् जागरूक कवि हृदयेश झांसी राज्य के आश्रयदाताओं - विशेषतः महाराजा गंगाधरराव के दरबार के राजकवि हो चुके हैं जिन्होंने अपने कृतित्व से हिन्दी रीतिकालीन काव्य जगत् को समृद्ध किया है।

कवि के उपर्युक्त ग्रन्थ ` विस्ववसकरन ` तथा अन्य स्फुट रचनाओं से गार्हस्थ्य जीवन के रमणीय चित्रों की झांकी उपलब्ध होती है इसके साथ ही मार्मिक स्थलों की बहुलता तथा विविधता, भक्ति-भावों की हार्दिकता, रमणी-हावों की सुकुमारता, मनोहरता एवं विच्छिति तथा तत्कालीन सामाजिक चित्रण की जो यथार्थता अभिव्यक्त हुई है वह कृति की विभिन्न सम्पत्तियों को उजागर करने में सहज समर्थ है। फिर भी हिन्दी-साहित्य का यह दुर्भाग्य ही रहा है कि अभी तक यह कवि सुधी विद्वानों के स्तर से उपेक्षित होता रहा है। सम्प्रति इस शोध प्रबन्ध की प्रस्तुति से हमें यह आशा ही नहीं विश्वास है कि यह जीवन के रमणीय तथा यथार्थ दोनों ही पक्षों को अनावृत करने में समर्थ होगा तथा अनेक कड़ियों से विरचित श्रृंखला की तरह काव्य-भाषा का एक सुरभित प्रसून सिद्ध होकर अपेक्षित आदर प्राप्त करेगा।

शीर्षस्थ साहित्येतिहासकारों, आलोचकों तथा समीक्षकों द्वारा सम्भवतः तिरस्कृत, अनादृत पर झांसी राज्य तथा जनसामान्य का सम्मानित कवि, जो भारत के मध्यदेश - झांसी के अंतिम मराठा शासक - महाराजा गंगाधरराव तथा महारानी लक्ष्मीबाई के शासनकाल में जीवन की कठोरता को सम्पूर्ण राग के साथ जी चुका हो तथा जिसकी इहलीला अंग्रेजों द्वारा कृत कत्ले-आम में क्रूरता तथा नृशंसतापूर्वक समाप्त की जा चुकी हो, निस्सन्देह, कवि के रूप में व्यापक राष्ट्रस्तरीय सम्मान पाने का अधिकारी थी। ऐसे कवि के अज्ञात जीवनवृत्त का प्रस्तुतीकरण तथा उसके काव्यग्रन्थ का सांगोपांग अध्ययन करना एक उल्लेखनीय साहित्यिक योगदान है। कवि-कृति की महत्ता अथवा उपादेयता इतने से ही समाप्त नहीं हो जाती। कटु तथा भोगे हुए यथार्थ की आधारशिला पर आधारित संक्षिप्त किन्तु पूर्ण समाज चित्रण, प्रकृति का षड्-ऋतुवर्णन तथा कवि के अन्तरतम से निःसृत भक्तिभावना की अभिव्यक्ति जिसमें कवि का आत्मनिक्षेप तथा कार्पण्य अभिव्यंजित हुआ है, आदि कवि की अन्य विशिष्टताएं हैं।

अज्ञात कवि की अप्रकाशित तथा अविज्ञात साहित्यिक सामग्री का पाठ-संपादन अपने में स्वतः एक उपलब्धि है। अभी तक कवि हृदयेश के प्रमुख काव्यग्रन्थ ` विस्ववसकरन ` का न तो प्रकाशन हुआ है और न उनकी इतस्ततः विकीर्ण साहित्यिक सामग्री का शोध करके उसे एकत्र प्रस्तुत किया गया है। शोधार्थी द्वारा इस अभाव के पूर्त्यर्थ इस शोध प्रबन्ध में ऐसी अप्रकाशित तथा यत्र-तत्र विकीर्ण सामग्री को एकत्र कर उसे प्रकाश में लाने

का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध सात अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में कवि के जीवन के विषय में प्राप्त सामग्री के साथ-साथ पूर्वकालीन तथा समकालीन राजनीतिक, सामाजिक धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं कवि की वैयक्तिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराया गया है। यथासम्भव कवि के प्रामाणिक जीवन-वृत्त को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है; परन्तु प्रबन्धकर्ता को यह स्वीकार करने में किंचित् भी संकोच नहीं कि सारे प्रयत्नों के पश्चात् भी हृदयेश के जन्म-सम्वत् एवं अवसान-सम्वत् का निर्धारण अनुमान के साहाय्य पर ही किया गया है। इसी अध्याय में कवि की रचना के विषय की विवेचना की गई है और उसकी कृति के रचनाकाल के निर्धारण के साथ-साथ उपलब्ध स्फुट साहित्य का विवरण भी प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय में कवि हृदयेश के प्रमुख प्रतिपाद्य- नायक-नायिका भेद विषय की पूर्व प्रवर्तित संस्कृत के प्रमुख कवियों एवं आचार्यों की परम्परा को उपस्थित किया गया है तदनन्तर इस परम्परा की उपजीव्य कामशास्त्रीय नायक-नायिकाभेद परम्परा पर भी दृष्टि-निक्षेप किया गया है जिससे यह प्रमाणित हो सका है कि काव्यशास्त्र ने काम-शास्त्र के इस ऋण को किस सीमा तक ग्रहण किया है और हिन्दी के प्रमुख कवि-आचार्यों ने इस विषय के प्रतिमानों को कहां तक किस परिवर्तन-परिवर्द्धन के साथ ग्रहण किया है। प्रसंगवश इसी अध्याय के अन्त में आलोच्य कवि के नायक-नायिकाभेद प्रकरण को समासतः प्रस्तुत किया गया है।

उपर्युक्त के अन्त में संक्षिप्ततया दर्शित नायक-नायिकाभेद विषय को तृतीय अध्याय के अन्तर्गत विशदरूप से विवेचित किया गया है जिससे कवि हृदयेश के नायिकाभेद की विशिष्टता प्रमाणित हो सकी है। इसी क्रम में कवि का आदान भी उद्घाटित है और तदनन्तर इस प्रकरण की समीक्षा-परीक्षा भी की गई है। इस क्रिया से यह सिद्ध हुआ है कि यह नायिकाभेद प्रकरण किस सीमा तक समीचीन है और किस सीमा तक इसका अनौचित्य है।

शोध प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में कवि के कृतित्व के भाव पक्ष की विविधता तथा कलापक्ष की रमणीयता और चमत्कारिता का समुद्घाटन है जिससे उसकी रस-सिद्धता, भावुकता तथा कलात्मक संचेतना उजागर हुई है। विभिन्न रसों की अवस्थिति तथा उनके विभावों, अनुभावों तथा व्यभिचारी भावों द्वारा परिपाक के साथ जीवन के रमणीय पक्ष को प्रस्तुत करने वाले कतिपय भावनात्मक स्थलों के सौन्दर्य को प्रकाशित किया गया है। कला पक्ष के अन्तर्गत कृतित्व में प्रयुक्त भाषा, शब्दभण्डार, शैली-वैविध्य, उक्ति-वैचित्र्य, शब्द-शक्ति, रीति, गुण-दोष, अलंकार तथा छन्द-योजना संबंधी कौशल की भी समीक्षा की गई है।

पंचम अध्याय का कथ्य है - कवि का प्रकृति-प्रेम अथवा उसका प्रकृति-चित्रण। इसमें प्रकृति-वर्णन की संक्षिप्त प्रस्तुति के साथ-साथ कवि के काव्य में गृहीत प्रकृति की आलंबन-उद्दीपनादि विषयता तथा तदनन्तर कवि द्वारा चित्रित विभिन्न ऋतुओं के वर्णन की समीक्षा-परीक्षा की गई है। कवि की इस प्रकृतिपरक संवेदना से उसकी रागात्मिका वृत्ति का सुपरिचय तो प्राप्त ही होता है यह भी सिद्ध हो सका है कि कहाँ तक रचनाकार परम्परानुगामी है और किस सीमा तक वह प्रकृति के सन्दर्भ में स्वानुभूति को स्वतंत्र अभिव्यक्ति देने में सक्षम है।

प्रबन्ध का षष्ठ अध्याय कवि के दर्शन, उसकी भक्ति तथा समाजचित्रण से सम्बद्ध है। कवि षड्दर्शन के दुस्तर क्षेत्र में क्यों नहीं प्रविष्ट हो सका, इसकी प्रतिपादना के साथ कवि की विभिन्न देवी-देवताओं के प्रति निवेदित भक्ति के स्वरूप की प्रस्तुति की गई है। समाज के विभिन्न स्तरों - शासन, क्षेत्र, लोक,अर्थ तथा राजनीति- के गुण-दोषों की विवेचना के साथ-साथ तत्कालीन गुण-ग्राहकता, आमोद-प्रमोद, विलास, सजावट, परिधान, प्रसाधन तथा अलंकारों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसी अध्याय में कवि-कृत फागवर्णन अथवा होलिकोत्सव का मनोरंजक तथा हृदयाकर्षक उपस्थापन है।

कवि का आदान, प्रदान तथा उसके प्रदेय से संबंधित सप्तम अध्याय में यह उद्घाटित किया गया है कि कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियों - आचार्यों का किस सीमा तक आभार स्वीकार किया है तथा कहाँ तक वह आगामी काव्य को प्रभावित कर सका

है। एतदर्थ तुलसी, केशव, बिहारी, मतिराम, देव, दास, बेनी प्रवीन, रसखान प्रभृति प्रतिष्ठित कवियों को ही ग्रहण किया गया है। कवि के सम्पूर्ण काव्य का प्रदेय भी इस अध्याय का विषय है।

अन्त में प्रबन्ध के दूसरे भाग में हृदयेश के काव्य-ग्रन्थ ` विश्ववसकरन ` का पाठ प्रस्तुत किया गया है। परिशिष्ट में कवि की वह सामग्री संकलित है जो स्फुट रूप में यत्र-तत्र प्रकाशित हुई है अथवा कवियों-साहित्यिकों के पास से उपलब्ध हुई है।

प्र थ म भा ग

प्रथम अध्याय

कवि हृदयेश का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

१- व्यक्तित्व -

अ-१- आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक ग्रन्थों में विवरण - झाँसी के मराठा शासकों-विशेष रूप से महाराजा गंगाधर राव के आश्रित कवि हृदयेश का सूक्ष्म परिचय तथा उनके काव्य के उदाहरण कुछ ही आलोचनात्मक ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। इनमें एक ग्रन्थ ` बुन्देल-वैभव ` है जिसमें बुन्देलखण्ड के प्रायः सभी कवियों के कृतित्व का समासतः प्रस्तुतीकरण है। इस ग्रन्थ के कर्ता स्व० आचार्य गौरी शंकर द्विवेदी ने लिखा है -

` पं० हृदेश जी ब्राह्मण । व्यास । झाँसी । बुन्देलखण्ड । का जन्मकाल वि० १८७७ सम्वत् और कविता-काल सं०१९०४ वि० है। आपका पूरा नाम हीरालाल व्यास था। आपने ` विश्वकसकरन ` नामक ग्रन्थ की रचना की थी। ..... आपकी कविता ओजपूर्ण और अलंकारों से विभूषित है।[1] `

` लक्ष्मीबाई रासो ` के सम्पादक डा० भगवानदास माहौर ` हृदयेश` को समर्थ रससिद्ध कवि स्वीकार करते हुए लिखते हैं -

` गत सौ वर्षों में होने वाले झाँसी के कवियों में पं० हीरा लाल व्यास ` हृदयेश` एक समर्थ रससिद्ध कवि थे। इनका जन्म सम्वत् १८५१ में हुआ बताया जाता है। आप रानी के समकालीन थे और इनका एक ग्रन्थ ` विश्वकसकरन ` मिलता है जिसका विषय नख-शिख-वर्णन, नायिका-भेद आदि शृंगार रस है। ..... हृदयेशकृत `विश्वकसकरन ` ग्रन्थ सम्वत् १९०४ या १९०५ में समाप्त हुआ था अर्थात् १८५७ का युद्ध छिड़ने के नौ-दस वर्ष पहले ही। कुछ लोगों का कहना है कि झाँसी के युद्ध और विजन ।कत्ले-आम। के बहुत दिनों बाद तक भी वे जीवित रहे।[2] `

झाँसी के कविवर राम चरण ह्यारण `मित्र ` ने अपने ग्रन्थ ` उदय और विकास ` में कवि हृदयेश के व्यक्तित्व तथा कृतित्व का सारूप में प्रस्तुतीकरण करते हुए

१- बुन्देल-वैभव - षष्ठ भाग- गौरीशंकर द्विवेदी - पृ० ५८५

२- लक्ष्मीबाई रासो- सं० भगवान दास माहौर - पृ० १०-११

यह लिखा है कि वे राज्य द्वारा सम्मान प्राप्त करने वाले भक्त तथा प्रसिद्ध कवि थे और वीरता भी उनकी अन्त:सम्पत्ति थी।[१]

उपर्युक्त आलोचनात्मक ग्रन्थों के अतिरिक्त झांसी गजेटियर-१९६५ में भी कवि का सूक्ष्म परिचय निम्न प्रकार प्रस्तुत किया गया है -

`हीरा लाल व्यास ।१८२१-१८७०। झांसी में उत्पन्न हुए थे और उन्होंने `विश्वव्यसकरन` लिखा।`[२]

`हृदेश और उनकी काव्य-साधना` नामक शोध-निबंध में डा० सुधा गुप्ता ने कवि के जन्म, कर्म, मैत्री, कुटुम्ब, परिवार, आर्थिक स्थिति तथा अवसान आदि पर अपेक्षाकृत विशद विवेचन करते हुए उसके काव्य-सौन्दर्य तथा कलात्मक कौशल को सोदाहरण समुद्घाटित किया है।[३] इसी क्रम में कवि के अन्य ग्रन्थ `राम जी का नखशिख` का उल्लेख करते हुए इसके रचनाकाल, कवि की विभिन्न देवी-देवताओं के प्रति भक्ति भावना, कवि का आकार-प्रकार, परिधान, आश्रयत्व, शिष्यत्व, संगीतप्रियता, आश्रयदाता-प्रशस्ति, समकालीन सामाजिक दुरवस्था पर भी प्रकाश डाला गया है।[४]

२- <u>साहित्यिक ग्रन्थों में विवरण</u> - डा० वृन्दावनलाल वर्मा के सुप्रसिद्ध उपन्यास `झांसी की रानी - लक्ष्मीबाई` में कवि हृदयेश का संक्षिप्त अथवा सांकेतिक परिचय तथा उनके काव्य-विषय निर्देश एवं उदाहरण उपलब्ध होते हैं।[५] डा० वर्मा ने कवि की उदार-वादिता तथा राष्ट्रवादिता की वृत्तियों का कथन करते हुए उन्हें महाराजा गंगाधरराव का अत्यन्त प्रिय कवि बताया है।[६] कवि की कविता की तत्कालीन प्रसिद्धि एवं व्यापकता का प्रमाण भी डा० वर्मा ने प्रस्तुत किया है। इस साहित्यिक ग्रन्थ के अतिरिक्त अन्य किसी भी साहित्यिक कृतित्व में कवि हृदयेश के जीवन-वृत्त नहीं उपलब्ध होता।

क- <u>जन्म-तिथि</u> - रीति-कवियों ने प्राय: अपने ग्रन्थों में अपना परिचय अथवा जीवन-वृत्त काव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है; पर कवि हृदयेश इस परम्परा के अनुधावक नहीं है

१-उदय और विकास- रामचरण ह्यारण `मित्र` - पृ०२८०

२-झांसी गजेटियर -१९६५- पृ० २८३

३-बेतवा-वाणी- वर्ष २ अंक २ - डा० सुधा गुप्ता - पृ० ९२ से १०७ तक

४- वही   ५- झांसी की रानी लक्ष्मीबाई-वृन्दावनलाल वर्मा-पृ०४२,५०१ से ५०३

६- वही- डा० वृन्दावन लाल वर्मा - पृ० १२४

है। अपने व्यक्तित्व के प्रकाशन में किंचित् भी रुचि न रखने वाले इस कवि की जन्म-तिथि के सन्दर्भ में कोई भी साक्ष्य नहीं उपलब्ध होता। जन्म सम्वत् के सन्दर्भ में स्व० आचार्य गौरीशंकर द्विवेदी ने प्रकाश-निक्षेप किया है और इन्हें वि० सम्वत् १८७७ में उत्पन्न हुआ बताया है।[१] झाँसी गजेटियर के अनुसार ये सन् १८२१ अथवा सम्वत् १८७८ में जन्मे बताये गये हैं।[2] कविवर राम चरण ह्यारण ` मित्र ` ने कवि का जन्म सम्वत् १८५१ निर्दिष्ट किया है।[3] डा० सुधा गुप्ता ने अपने निबन्ध में इनका जन्म संवत् १८३३-३५ के मध्य बताया है।[४] कवि के अन्त: साक्ष्य के अभाव में उक्त सभी मत अनुमान के आधार पर ही प्रस्तुत किए गए हैं। फिर भी इन अभिमतों को तर्क की कसौटी पर कसने के अनन्तर सम्भावित सत्य के समीप पहुँचा जा सकता है। डा० सुधा गुप्ता के निबन्ध में यह भी उल्लिखित है कि ब्यासिन बऊ (कवि की पुत्रवधू) की सेठ भगवानदास गुप्त (शोध-निबंधकर्त्री के पिता) से हुई वार्ता के अनुसार कवि की मृत्यु `कटा` (कत्ले-आम) में सन् १८५८ में हुई थी और मृत्यु के समय कवि की अवस्था ८२-८४ वर्ष के लगभग थी इस प्रकार कवि का जन्म सम्वत् १८३३-३५केमध्य होना सत्य के निकट प्रतीत होता है। प्रत्यक्ष, विश्वसनीय साक्ष्य अथवा पुष्ट अनुमान प्रमाणाभाव में डा० गुप्ता का मत ही आंशिक सत्य के रूप में स्वीकार करना समीचीन होगा।

२- <u>जन्म-स्थान</u> - इस विशिष्ट बिन्दु पर भी कवि मौन है। आज तक झाँसी के रसिक सहृदयों की वाणी पर कवि का झाँसी नगर से सम्बन्ध स्थापित किया जाता रहा है। झाँसी गजेटियर स्पष्टतया कवि का जन्म झाँसी में होना सिद्ध करता है।[५] झाँसी निवासिनी डा० सुधागुप्ता जिनके पिता सेठ भगवान दास से ब्यासिन बऊ की वार्ता हुई थी, भी कवि को झाँसी का निवासी सिद्ध करती है।[६] यत: इस विषय में मतान्तर अथवा विप्रतिपत्तियां नहीं है, अत: कवि का जन्मस्थान झाँसी मानना ही उचित प्रतीत होता है।

१-बुन्देल-वैभव - गौरीशंकर द्विवेदी - षष्ठ भाग - पृ० ५८५
२- झाँसी गजेटियर -१९६५- पृ० २८३
३- उदय और विकास- राम चरण ह्यारण ` मित्र ` - पृ० २८०
४- बेतवा-वाणी - वर्ष २ अंक २ - डा० सुधा गुप्ता - पृ० १२
५- झाँसी गजेटियर -१९६५- पृ०२८३
६- बेतवा-वाणी- अंक २ वर्ष २ - डा० सुधा गुप्ता - पृ० १२

३-<u>निवास</u>- कवि का निवास-स्थान झाँसी के उस स्थल पर बताया गया है जहाँ वर्तमान में मानिक चौक मोहल्ला अवस्थित है।[1] सम्प्रति कवि के निवास के ध्वंसावशेष भी नहीं उपलब्ध होते हैं जिससे निवास का चित्र प्रस्तुत करना असम्भव है।

४- <u>जाति</u>- स्वकीय साक्ष्यानुसार कवि ब्राह्मण वर्ण में उत्पन्न हुआ था। बुन्देलखण्ड में `व्यास` उपाधि ब्राह्मणों के नाम के अनन्तर लगाने की सामान्य प्रथा है। यहाँ अधिकांश जुझौतिया ब्राह्मण निवास करते हैं, अतः कवि को जुझौतिया ब्राह्मण मानना समीचीन होगा वैसे कवि अथवा अन्य पुष्ट प्रमाण इस विशिष्ट सन्दर्भ में उपलब्ध नहीं होते।

५-<u>वंश-परिचय</u>- कवि के अन्तःसाक्ष्य अथवा प्रामाणिक बहिःसाक्ष्य के अभाव में उसके वंशकुल, वंश-परम्परा एवं पूर्वजों का इतिहास प्रस्तुत करना असम्भव है। बहुत पहले स्व० आचार्य गौरीशंकर द्विवेदी ने कवि के वंशधरों का झाँसी में निवास होना या उनका यहाँ रहना इंगित किया था पर वर्तमान में इस विशिष्ट विषय में कुछ भी पता शोधार्थी को नहीं लग सका। यहाँ तक कि कवि के माता-पिता का नाम आदि भी अभी तक ज्ञात नहीं हो पाया।

६- <u>गुरुत्व</u>- भले ही कवि आत्म-परिचय अथवा आत्म-विज्ञापन में मौन धारण कर गया हो पर अपने गुरु-युगल के प्रति वह ऐसा अन्याय नहीं कर सका। कवि के द्वारा प्रस्तुत उसके दो गुरुओं का विवरण निम्न प्रकार है —

।१। गुरु राम राव - ये झाँसी राज्य के राजगुरु थे और इस नाते भी सम्भवतः कवि के आराध्य थे। इन्हें ध्यानी, ब्रह्मज्ञानी, तपस्वी, प्रतापी, भवतारक तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश सदृश मानकर अभ्यर्थित किया गया है -

आठों जाम ही में ध्यान धरें ब्रह्मज्ञान
तप के निधान कुल वान नाम छाज है।
गुरु ब्रह्म गुरु विष्णु गुरु रुद्र गुरु सक्ति
गुरु के प्रताप कर होत सब काज है।
सेवत इदेस जैसे गुरुपद राम राव
भवसिंधु तारन रनैया राज राज है।

१- बेतवा-वाणी- वर्ष 2 अंक 2 - डा० सुधागुप्ता - पृ० ९२

भूतल पै प्रगट प्रसिद्ध नवनाथ भए

बाही ऊपसर भंगनाथ महाराज है ।।[1]

।2। गुरूसाधु सिंह — ऐसा अनुमान है कि ये संत नगर के अत्यन्त पहुंचे हुए महात्मा थे । इनके ऐश्वर्यमय जीवनयापन से कवि अत्यधिक प्रभावित तथा आश्चर्यचकित था —

कुन्दन कलित कर पन्नन जटित पाटी

गोहे मुक्तमाल जाल देखत हरख है ।

भान की मरीच परें झलक झलान होत

भान होत मान प्रभा पुंज को दरस है ।

भनत हृदेस देवराज कौं विमान किधौं

गुरू साधुसिंह जू के वरन परस है ।

देव को चरित्र मनमोहन कौ छत्र किधौं

अद्भुत विचित्र दिव्य पींजरा सरस है ।।[2]

उपर्युक्त साक्ष्यों से ध्वनित होता है कि हृदयेश गुरू राम राव के प्रति विशेष श्रद्धावान् थे । ये गुरू सम्भवत: महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे जब कि दूसरे गुरू पर क्षत्रियत्व की सम्भावना की जा सकती है । ये दोनों ही गुरू किस सम्प्रदाय में दीक्षित थे, यह नहीं स्पष्ट होता । पुन: ये गुरू दीक्षा-गुरू हैं अथवा विद्या-गुरू, यह भी अनिर्णीत रह जाता है । फिर भी `गुरू राम राव` का विशेषण यह प्रतीति कराता है कि प्रथम कवि - गुरू राम राव - कवि के दीक्षा गुरू थे ।

७- कौटुम्बिक व्यवस्था — कवि हृदयेश के कुटुम्ब में चार प्राणी थे- वे, उनकी धर्मपत्नी, दत्तक पुत्र मथुरा प्रसाद व उसकी पुत्रवधू जिसे परवर्तीकाल में `व्यासिन बऊ` के नाम से अभिधानित किया जाता था । कवि यजमानी अथवा पौरोहित्य द्वारा अपनी जीविका का उपार्जन करता था; परन्तु अन्त:साक्ष्य से यह भी स्पष्ट है कि इस स्वभावज कर्म से भी उसके परिवार की उदर-पूर्ति नहीं हो पाती थी, इसीलिए कवि को

१- बेतवा-वाणी - वर्ष २ अंक २ - डा० सुधा गुप्ता - पृ० १०५

२- वही- पृ० १०६

अपने आश्रयदाताओं की कृपा-कोर की अपेक्षा करनी पड़ती थी; परन्तु यह पौरोहित्य उनकी जीविका का गौण साधन ही प्रतीत होता है क्योंकि जनश्रुति के अनुसार हृदयेश और उनके मित्र कवि पजनेश की काव्य-चर्चा हुआ करती थी।[1] ये पूजा-पाठ, भजन-पूजन इत्यादि भी किया करते थे।[2] इनके अतिरिक्त अन्य कोई व्यवसाय कवि के द्वारा अंगीकृत नहीं किया गया था। सम्भवतः आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण अन्य व्यवसाय वे कर भी नहीं सकते थे। फिर भी राज्य तथा झाँसी नगर की जनता द्वारा उन्हें सम्मान दिए जाने के बहिः साक्ष्य उपलब्ध होते हैं। अन्तः साक्ष्य से यह भी सिद्ध होता है कि मात्र राज्य की सहायता से ही उनकी जीविका नहीं अर्जित होती थी उन्हें एतदर्थ अपने यजमानों का भी मुखापेक्षी बनना पड़ा था, जिससे कवि क्षुब्ध था। पुनः कवि के क्षोभ का यह भी कारण हो सकता है कि पौरोहित्य अति मंद कर्म है[3] जिससे ब्रह्म-तेज और ब्रह्मत्व नष्ट हो जाता है। इस कर्म में यजमानों के सब व्यवहारों की चिन्ता रहती है, प्रतिग्रह लेना और उनके पाप कर्मों का भागी होना पड़ता है। सामान्य यज-मानों की अपेक्षा राजा का पौरोहित्य अपेक्षाकृत कम दूषणयुक्त होता है क्योंकि राजा प्रजाजन की अपेक्षा कम पापकर्मा होता है।[4] परन्तु राजाश्रयग्रहण स्मृतिकारों द्वारा उत्तम नहीं माना गया है -

यस्तु राजाश्रयेनैव जीवेद् द्वादशवार्षिकम्।
स शूद्रत्वं व्रजेद्विप्रो वेदानामपि पारगः।।

—— वृद्धगौतमस्मृति - अध्याय १

पौरोहित्य के सन्दर्भ में शास्त्रकारों की धारणा निम्न प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है -

राजा राष्ट्रकृतं पापं राज्ञः पापं पुरोहितः।
भर्ता च स्त्रीकृतं पापं शिष्यपापं गुरुस्तथा।।[5]

आर्थिक संकटग्रस्तता के कारण कवि का सम्पूर्ण जीवन सुख से नहीं व्यतीत हो पाया। वृद्धावस्था में तो उसे विशेष दारिद्र्य का सामना करना पड़ा था।[6]

१-बेतवा-वाणी- वर्ष 2 अंक 2- डा० सुधा गुप्ता - पृ० १२
२- वही- पृ० १२   ३- रामचरितमानस- उत्तर० दो०९८। ६
४- रामचरितमानस- बाल० दो० २८ का ८   ५-मानसपीयूष-उत्तर०सं०अंजनीनंदनशरण-पृ० २७२
६- बेतवा-वाणी- वर्ष 2 अंक 2 -डा० सुधागुप्ता - पृ० १४

।८। शिक्षा-संस्कार- कवि के पिता का प्रामाणिक परिचय तथा विस्तृत विवरण अप्राप्त होने से कवि की शैशवकालीन शिक्षा-दीक्षा के सन्दर्भ में प्रकाश निक्षेप करना असम्भव है। कवि ने अपने जिन दो गुरुजन का यशोगान किया है, उससे भी यह नहीं प्रकट होता कि उनके द्वारा कवि को शिक्षा प्राप्त हुई। पुनः उन दिनों आजकल की तरह न तो विद्यालय ही थे और राज्य के समीप या राज्य की ओर से शिक्षा-दीक्षा की कोई व्यवस्था भी नहीं थी - छापेखाने भी उन दिनों नहीं थे। ऐसी स्थिति में कवि की प्रारंभिक शिक्षा की व्यवस्था उसके निवास पर ही सम्पन्न हुई होगा क्योंकि अपेक्षित शिक्षा के बिना कवि का कृतित्व प्रकाशित ही नहीं हो सकता था। व्युत्पत्ति जो काव्य कारणता में अनिवार्य घटक है, बिना अध्ययन के सिद्ध नहीं हो सकता। प्रौढ़ अध्ययन के लिए कवि के समक्ष महाराजा गंगाधरराव का समृद्ध राजकीय पुस्तकालय पर्याप्त ही था जिसमें प्रायः सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं के ग्रन्थ अथवा उनके अनुवाद उपलब्ध थे। अपने इसी शिक्षा-क्रम में कवि ने विद्यापति, सूर, तुलसी, केशव, बिहारी, देव, मतिराम, रसलीन, तोष आदि कवियों के काव्यों का पारायण किया था और उनका आभार स्वीकार किया था। अपेक्षित शिक्षा-संस्कारों का ही प्रभाव था कि कवि व्यष्टि तथा समष्टि-सभी स्तरों पर समान रूप से समादृत था।

।९। संतति - अन्तःसाक्ष्य तथा बाह्य साक्ष्य दोनों से ही यह सिद्ध है कि कवि के एक दत्तक पुत्र मथुरा प्रसाद था। कहीं भी यह प्रमाण नहीं मिलता कि इनकी पत्नी के कोई संतति हुई थी अथवा जन्मग्रहण करने के अनन्तर दिवंगत हो गई थी जिसके परिणामस्वरूप कवि को गोद लेना पड़ा। इस दत्तक पुत्र की पत्नी को परवर्ती काल में `व्यासिन बऊ` के नाम से संबोधित किया जाता था। यह विचित्र संयोग था कि कवि तथा कवि के प्रधान आश्रयदाता महाराजा गंगाधरराव - दोनों को ही दत्तक-विधान अंगीकृत करने का योग प्राप्त हुआ था।

।१०। भ्रमण- पूजापाठी पंडित होने, आर्थिक कठिनाइयों तथा अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के कारण सम्भवतः कवि झाँसी राज्य से बाहर भ्रमण नहीं कर सका। पुनः कवि को बाहर जाने की आवश्यकता इसलिए नहीं पड़ी क्योंकि उन्हें पर्याप्त सम्मान झाँसी राज्य में ही प्राप्त था। प्रासंगिक कारणों से हो सकता है कि कवि ने इतर राज्यों अथवा स्थानों की यात्रा की हो परन्तु विशिष्ट कारणों के अभाव में ऐसे भ्रमणों को महत्व

नहीं दिया जा सकता । इतस्ततः भ्रमण में वर्तमान से असंतुष्टि कवि अथवा महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति का मूल आधार बनती है परन्तु कवि हृदयेश ने वर्तमान सामाजिक जटिलताओं में भी अपने स्व को समायोजित कर लिया था, अतः प्रयोजनविशिष्ट भ्रमण की आवश्यकता उन्हें अनुभव ही नहीं हुई होगी ।

।१। <u>आचार-व्यवहार</u> - कवि ऋजुवृत्ति का अनुकरण-अनुसरण करने वाले जीव थे । यतः वे पूजा-पाठ, जप आदि सात्त्विक कर्म करते या कराते रहते थे, अतः ऐसी सम्भावना की जाती है कि वे सदाचार के अनुकर्ता रहे होंगे । छल-छद्म पर उन्हें किंचित् भी विश्वास नहीं था, यही कारण था कि वे अपने लौकिक या भौतिक प्रयोजन की सिद्धि के लिए अपने आश्रयदाता से स्वयमेव याचना कर लिया करते थे, मध्यस्थ अथवा राज्याधीन कर्मचारियों की चापलूसी करना उन्हें स्वीकार नहीं था । जन्मना तथा कर्मणा ब्राह्मण होने की महत्त्वबुद्धि के कारण ही सम्भवतः वे अन्य वर्णों के स्वभावज आचार को स्वीकार करने के पक्षधर नहीं थे । लोकापवाद से भीरु हृदयवाले ये कवि महोदय शृंगारिक प्रवृत्ति के होते हुए भी अपने मित्र-कवि पजनेश की तरह धर्म-विरुद्ध काम का आश्रय ग्रहण करने की सामर्थ्य नहीं अर्जित कर सके । उन्हें कुष्ट रोग हो गया था पर यह किसी सामाजिक पाप का परिणाम नहीं था अपितु ऐसी सम्भावना की जाती है कि यह छन्द-दोष का परिणमन था । दान-ग्रहण भी उनके आचार का अंग था; पर इस क्रिया में अवरोध उपस्थित करने वाले व्यक्ति के प्रति आक्रोश अपने सात्त्विक स्वरूप को अभिव्यक्ति देने से कवि विरत नहीं होता था । कवि का यह सात्त्विक क्रोध अपनी चरम सीमा का स्पर्शकरके ही शमित होता था । अन्याय असहिष्णुता कवि के आचार की सुगंधि थी ।[1] 'शठे शाठ्यम् समाचरेत्' उनको एतदर्थ प्रेरणा दिया करता था । सामान्यतया वे सत्त्वगुण के आश्रित आचरण किया करते थे और प्रतिकूल परिस्थिति में समायोजन में विश्वास करते थे संघर्ष में नहीं । वे प्रगतिशील थे पर परम्पराविरोधी नहीं; सत्याभिनिवेशी थे पर अन्याय-असहिष्णु नहीं; सरल थे पर दुष्ट के प्रति उदार नहीं । वे न तो अतिशय गंभीर थे और न अतिभावुकता उनकी अन्तःसम्पत्ति बन सकी थी । रीतियुगीन परिस्थितियों

१- वेतवा-वाणी - वर्ष २ अंक २ - डा० सुधा गुप्ता - पृ० १००

के अनुसार उनका मन वाणी के साथ हल्का था, पर यह हल्कापन विशेष परिस्थिति में ही उभरता था । यही कारण था कि कवि ने ग्रन्थारम्भ, मध्य तथा अन्त में अपने आश्रयदाताओं की प्रशस्ति नहीं की यद्यपि स्फुट रूप में विशिष्ट सन्दर्भों में अवश्य उनकी प्रशस्ति कवि द्वारा की गई थी ।

।१२। <u>शास्त्रीय एवं व्यावहारिक ज्ञान</u> - नायक-नायिका-भेद विषय बिना शास्त्रीय ज्ञान के सम्पन्न ही नहीं हो सकता है । कवि ने अपने ग्रन्थ की रचना से पूर्व रस-प्रकरण पर लिखे गये संस्कृत तथा हिन्दी के रीति-ग्रन्थों का अवगाहन किया था । संस्कृत के साहित्यशास्त्रीय ग्रन्थों में `रस मंजरी`, `साहित्य-दर्पण` `सरस्वती-कण्ठाभरण` आदि ग्रन्थों का भी सम्यक् पारायण सम्भवतः कवि ने किया होगा । कवि ने स्वयं भी लिखा है कि उसने नायक-नायिका-भेद प्रकरण रचना के लिए विभिन्न रीतिग्रन्थों का अवलोकन किया ।[1] पुनः जिस कवि का आश्रयदाता साहित्यिक तथा शास्त्रीय रुचि से सम्पन्न हो, उसका दरबारी कवि आश्रयदाता की सुरुचि का समादर न कर अल्पश्रुतत्व का परिचय दे, ऐसा अनुमान करना असंगत है । महाराजा गंगाधरराव ने जिस विशाल साहित्यिक भण्डार की कलेवर वृद्धि की थी, उसका उपयोग कवि ने न किया हो ऐसा नहीं कहा जा सकता । कवि द्वारा प्रस्तुत नायक-नायिकाओं के लक्षण-उदाहरण, हाव, सात्त्विक भाव, अनुभाव आदि विधानों में शास्त्रीय ज्ञान की किस सीमा तक अपेक्षा है, यह प्रश्न स्वतः समाधानित है ।

कवि व्यवहार-ज्ञान से विरहित था, यह अवधारणा उचित नहीं । समय के वातावरण को देखकर तदनुसार व्यवहार कवि का धर्म था । सुलभकोपी आश्रयदाता को सतत् अनुकूल बनाये रखकर उससे इष्ट वस्तुप्राप्ति उनकी व्यवहार-कुशलता के ही कारण सम्भव हुई थी । व्यापक जनमत का समादर तथा अल्पमत का अस्वीकार कवि का व्यवहार बन गया था । कवि के सद्व्यवहार का ही सम्भवतः यह सुपरिणाम था कि महाराजा गंगाधरराव ने अपनी अवसान-वेला में कवि का स्मरण किया था । व्यवहार-ज्ञान के कारण कवि के आश्रयदाता की ओर से उन्हें पालकी की सवारी, ४१-०० रु० नाना-साई तथा दशहरे के दरबार में सिरोपा (पाग-पिछौरा) सम्मानार्थ भेंट किया जाता था ।[2]

१- विरवबसकरन - पद सं० ६

२- उदय और विकास- रामचरण ह्यारण `मित्र` - पृ० २८०

१३- प्रकृति और स्वभाव- रीतियुगीन अन्य मुक्तक शृंगारिक कवियों की भाँति कवि की प्रकृति प्रधानतया शृंगारिक थी; परन्तु इस शृंगारिकता में छिछलापन नहीं और न ऐसी रसिकता जो विलासमयी पंकिल वीथियों में विहरण कराकर कालुष्य युक्त कर दे। उनकी शृंगारिकता में संयम था, नियंत्रण था और ऐसी गम्भीरता थी जो नारी के रमणीयत्व के अन्तरतम में विद्यमान त्रिकालाबाधित सौन्दर्य का साक्षात्कार करती थी। मांसल सौन्दर्य का उपासक भला शीतला के दागों का वर्णन क्यों कर करने लगता।[1] जहाँ तक जीवन के प्रति राग का प्रश्न है कवि के हृदय में न तो व्यंग्य की तरलता है न सकरुण गम्भीरता और न लाक्षणिकता अपितु आवेगमयी भावुकता है —

काम सुंदरी सी मुक्त माल फुंदरी सी छबि
धारी तरुनी सी हाँसी सुधा बरसी सी है।
हीरन की काँति सी उजासी दरसी सी मोसी
नैनन धँसी सी पैठ हीतल बसी सी है।
भनत इदेस रची सुंदर धरा सी बाल
मुकत भरी सी विधि ग्रंथित असीसी है।
दीपत ससी सी अंक भरत परी सी दोसी
सी सी करै लागै कलाकंद अरफी सी है।।[2]

उनकी कविता में हास्य नहीं मिलता – कारण स्पष्ट है कवि का व्यक्ति समाज से सम्भवतः हास्य संगृहीत नहीं कर पाया। युगीन विपर्यासों में जिन्होंने हँसी के पुष्प बरसाये वे कवि की दृष्टि में युगीन अपेक्षाओं-संवेदनाओं की पूर्ति न कर सकने के कारण प्राणविहीन ही रहे होंगे। ऐसे सकरुण कवि के रागात्मक अन्तःकरण को विनय की आर्द्रता रससिक्त किये रहती थी। सांसारिक अपेक्षाओं की पूर्ति न होने के कारण कवि 'चार आदमियों की लाग' हेतु नतमस्तक हुआ था पर जागतिक विषमताओं ने कवि के व्यक्तित्व को पराभूत, हताश नहीं किया- उसकी भावात्मकता तथा रागात्मकता उसे अनवरत जीवन्त बनाये रही। इस मूलभूत सत्प्रवृत्ति के कारण कवि न तो पलायनवादी बन सका और न परात्पर तत्व को अपने व्यक्तित्व से पृथक् करविशुद्ध भौतिकवाद या अनास्था का वरण कर सका।

१–विश्वबसकरन – पद सं० ११५६

कवि के प्रमुख ग्रन्थ `विस्ववसकरन ` की विषयवस्तु तथा तात्पर्यनिर्णायक उपक्रमोपसंहारादि लिंगों से उसकी रसिकता की सिद्धि होती है । कविकृत विपरीत रति, सुरत, उरोज-वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने जीवन के रस का संपूर्ण रुचि, आसक्ति तथा तन्मयता के साथ पान किया होगा; परन्तु ऐसा एकांगी तथा अपरिपक्व निष्कर्ष उचित नहीं । कवि न तो जीवन में कभी अनैतिक हुआ और न उसने धर्म-विरुद्ध काम का अन्धाधुन्ध सेवन किया । कवि की तूलिका द्वारा नव-नव रमणीभावों को शब्दचित्रों में उत्कीर्ण किया गया पर उसका सुनियंत्रित मन यत्र-तत्र दृष्ट `सुन्दर ` के प्रति विह्वल या समर्पित नहीं हुआ । विजातीय सत्रानी से प्रणय सम्बन्ध स्थापित करने वाले कवि पजनेश की स्वच्छन्दता को अनुराग में अनैतिक नहीं बना अपितु अपने चरित्र की पूर्ण रक्षा करते हुए `ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्` को चरितार्थ करता है । स्वपत्नी से पुत्रोत्पत्ति न होने अथवा सन्तति के दिवंगत होने की दशा में वह दत्तक विधान को स्वीकार करता है; पर पुनर्विवाह हेतु तत्पर नहीं होता । कवि का आदर्श या लक्ष्य अस्थूल प्रेम-वर्णन था जो और आगे बढ़कर परात्पर तत्त्व के प्रति आत्म-निवेदन तथा कार्पण्य में परिणत हो गया था ।

व्यक्तित्व की गम्भीरता तथा भावुकता के परिणमन में कवि विशिष्ट परिस्थितियों के उपस्थित होने पर व्यवहार-कौशल का उपयोग नहीं करता था । अपनी सांसारिक यात्रा के लिए मध्यम पात्र के सम्मुख चापलूसी करना अथवा चाटुकारिता कवि की विभूति नहीं थी थी । वह याचक या मात्र राज्य की सर्वोच्च शक्ति के समक्ष, आर्त साधक या केवल अदृष्ट पर अनुभवैकगम्य अनन्तविग्रहधारी सर्वेश्वर का । इतना होते हुए भी कवि अपना कार्य साधने के लिए अपात्र को भी तात्कालिक सम्मान देने में अपने महत्त्व की हानि नहीं समझता था —

आदर को न देखो मान पान को गुमान तजो
अवसर नीच ताके गोड़ में परो जो है ।
भूख अभागिन को दीन होय चाव गुनी
सेवत न नीच ऊंच मतलब आवत है ।
[illegible] पार त्रियामो की सलाह यही
कीजे उपाय जामें पर न पाय फांका है ।
[illegible]
[illegible] ।।

— बेनवा-वाणी - 2/2 - पृ० ११०-१११

कवि के अन्तर में अभिमान विद्यमान था, ऐसे प्रमाण नहीं मिलते उलटे उसकी निरभिमानिता की सिद्धि होती है। राज्य के मध्यवर्गीय कर्मचारी के भ्रष्ट आचरण के कारण उन्हें अवश्य आक्रोश व्यक्त करना पड़ा था, सम्भवतः अपने गौरव की रक्षा तथा आत्मतुष्टि के लिए। जिस कवि का लौकिक जीवन जटिलता, कठिनता तथा संघर्षमयी स्थिति से गुजर रहा हो, उसके भग्न हृदय की प्रतिक्रिया को अहंकार की संज्ञा देना असंगत है। कवि के काव्य में कहीं भी अहंकार की प्रतिध्वनियां नहीं सुनाई पड़ती अपितु सर्वत्र प्रेम आर्द्रता, प्रसंगप्राप्त भक्ति की द्रवणशीलता तथा समाज की यथार्थता व्यक्त है। वह `निज कवित्त केहि लाग न नीका` जैसी उक्तियों का भावानुवाद करता दृष्टिगत नहीं होता।

धर्मभावना की दृष्टि से कवि का व्यक्तित्व संकीर्णता में आबद्ध नहीं था। वह राधाकृष्ण के प्रति ही आस्थावान् नहीं अपितु राम, शिव, दुर्गा, गणेश, हनूमान आदि देवी-देवताओं के प्रति समान भाव से प्रणत था। परिस्थिति के अनुरोध से अवश्य हम उसे भिन्न-भिन्न देवताओं का आश्रय ग्रहण करते देखते हैं। कभी वह आर्तभावापन्न होकर राम का आवाहन करता है तो कभी विपत्ति-विदारण में कृतकार्य न देखकर अन्य देवता की शरण ग्रहण करता है। यह पृथक् विषय है कि तुलसी तथा सूर की तुलना में वह भक्त नहीं कहा जा सकता।

कविवर `मित्र` के अनुसार हृदयेश कलम के अतिरिक्त तलवार के भी धनी थे और वे झांसी में हुए स्वाधीनता संग्राम में लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हुए थे।[१] डा० वृन्दावनलाल वर्मा ने भी झांसी के कवि, गायकों आदि का युद्ध में मरना या मारा जाना दर्शाया है।[2] हो सकता है `मित्र` जी के अभिमत का आधार वृन्दावनलाल वर्मा का कथन ही हो, परन्तु कवि की परिस्थितियां तथा प्रामाणिक बहिःसाक्ष्य जो अन्तःसाक्ष्य सदृश महत्त्व रखता है, हृदयेश को वीर नहीं सिद्ध करता। ७५ वर्षाधिक वय के वृद्ध का युद्ध करना असम्भव ही है। पुनः व्यासिन बऊ, जो कवि की पुत्रवधू थीं, के साक्ष्य के अनुसार कवि `कटा` अर्थात् कस्बे आम में नहीं रहा[3] अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हुआ – इस तथ्य के

१– उदय और विकास – रामचरण ह्यारण `मित्र` – पृ० २८०
२– झांसी की रानी–लक्ष्मीबाई – डा० वृन्दावनलाल वर्मा – पृ०४१३
३– बेतवा-वाणी – वर्ष 2 अंक 2 – डा० सुन्धा गुप्ता – पृ० १५

आधार पर कविवर `मित्र ` का मन्तव्य तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता ।

कवि के हृदय में महत्वाकांक्षा अथवा काव्यरचनाजन्य यश: आकांक्षा नहीं थी । वह कवि था कविता उसका अविभाज्य धर्म थी पर क्रमबद्ध रूप में ग्रन्थ का प्रणयन करना तथा तद्‌द्वारा कीर्ति सम्पादन करना उसका संकल्प नहीं था । कवि ने प्रथमत: संभवत: इसी निमित्त स्वनिर्मित पदों को परचों पर लिखा था पर क्रमश: जब उसकी प्रतिभा ने सैकड़ों पद निर्मित कर दिए तो उसे ग्रन्थाकाराकारित करने का विचार विनिर्मित करना पड़ा । पहले कवि ने इस ग्रन्थ का नाम `विस्ववसीकर` दिया था तदनन्तर इसे परिवर्तित कर `विस्ववसकरन ` ही निश्चित किया ।[1] कवि की आकांक्षा यह अवश्य थी कि ग्रन्थ जगत् में प्रसिद्धि प्राप्त करे[2] – उसका यश-वर्द्धन हो, नाम-प्रचार हो, ऐसा प्रयोजन कहीं द्योतित नहीं होता ।

।१४। <u>साहित्यिक सम्बन्ध</u> – हृदयेश का साहित्यिक सम्बन्ध तत्कालीन या समकालीन कवि पजनेश से था जिनके तीन ग्रन्थों – ।१। मधुप्रिया ।२। नखशिख और ।३। पजनेश प्रकाश – में प्रथम दो अप्राप्त है और तृतीय अवश्य प्रकाशित हुआ था ।[3] सहकाव्यरचना, पारस्परिकता, व्यावहारिकता, मैत्री की दृष्टि से दोनों ही कवियों में सौहार्द्र था पर सामाजिक विचारों की दृष्टि से मत-वैभिन्य भी दृष्टिगत होता है । प्रथम कवि यदि रूढ़िवादी था – जातिपांतिगत भेदभाव के निर्मोक को उतार धारण करने का पक्षधर था तो अन्य सामाजिक बन्धनों को अस्वीकार करस्वच्छन्द प्रेम में विश्वास करता था ।[4] परन्तु अस्पृश्य का स्वीकरण उसकी इस प्रगतिशीलता में सम्मिलित नहीं था । संभवत: इसी वैचारिक वैभिन्य के कारण हृदयेश का काव्य बहुसंख्यक रूढ़िवादियों तथा आभिजात्य वर्ग –सभी के द्वारा समान रूप से आदृत था और प्रगतिशीलता के तत्व के सन्निवेश के कारण पजनेश केवल महोई वैश्यों के चारण बने हुए थे ।[5] इन भेदों के होते हुए भी दोनों कवि एकत्र होकर कविता किया करते थे और कभी-कभी जोड़ के पद भी निर्मित करते थे जिनमें अद्‌भुत साम्य दृष्टिगत होता है ।[6]

१– बेतवा-वाणी – वर्ष २ अंक २ – डा० सुधा गुप्ता – पृ० ९५
२– विस्ववसकरन – पद सं० १
३– बुन्देल-वैभव– षष्ठभाग– गौरी शंकर द्विवेदी – पृ० ४७५
४– झांसी की रानी –लक्ष्मीबाई – डा० वृन्दावनलाल वर्मा – पृ० ४०१
५– बेतवा-वाणी– वर्ष २ अंक २ – डा० सुधा गुप्ता – पृ० ९२
६– द्रष्टव्य इसी शोध प्रबन्ध का सप्तम अध्याय– पजनेश और हृदयेश की काव्यतुलना पृ० ३८४

।१५। स्वर्गवास – झाँसी के कविवर रामचरण ह्यारण `मित्र ` के अनुसार सन् १८५७ के स्वाधीनता संग्राम में झाँसी की रक्षा के लिए अपनी रानी की गौरव-गाथा के निमित्त जिन सपूतों ने समर-भूमि में लड़ते-लड़ते बलिदान किया उनमें कविवर हृदयेश जी भी थे – कलम और तलवार दोनों के धनी ।[1] बुन्देली भाषा के गौरव ग्रन्थ` लक्ष्मीबाई-रासो `के यशस्वी कवि मदनेश जी ने एक हृदयेश कुमार का झाँसी में हुए नत्थेखाँ के युद्ध में मारे जाने का उल्लेख किया है ।[2] डा० भगवानदास माहौर ने सम्भवतः झाँसी के ही कुछ लोगों के बाह्य साक्ष्य के अनुसार कवि हृदयेश का झाँसी के युद्ध और विजन ।कत्ले-आम । के बहुत दिनों बाद तक जीवित रहना बताया है ।[3] डा० सुधा गुप्ता ने अपने शोध निबन्ध ` हृदेस और उनकी काव्यसाधना ` में अपने पिता सेठ भगवानदास से `व्यासिन बऊ` की एतद्विषयक हुई वार्ता का उल्लेख करते हुए लिखा है कि यथार्थतः कवि का स्वर्गवास ` कटा ` ।कत्ले-आम । में सन् १९५८ में हुआ था ।[4] यतः यह मत कवि की पुत्र-वधू से हुई वार्ता पर आधारित है अतः इसी सत्यता में सन्देह करना ठीक नहीं । झाँसी में अंग्रेजों द्वारा किया गया` कत्ले-आम ` ऐसी हृदय-विदारक घटना है जिसके स्मरण रहने में सन्देह नहीं किया जा सकता । ` मित्र` जी के मत के अनौचित्य पर पूर्व प्रकाश निक्षेप किया जा चुका है । नत्थे खाँ के युद्ध में मारे गये हृदयेश कुमार कवि हृदयेश से भिन्न हैं क्योंकि इस युद्ध के पश्चात् कवि का जीवित रहना सिद्ध होता है । तृतीय मत प्रामाणिक नहीं क्योंकि यह कही-सुनी बात पर आधारित है ।

कवियों का देहान्तर भौतिक दृष्टि से भले ही हो जाय, उनका यशःकाय सदा अक्षुण्ण तथा जीवन्त रहता है । संस्कृत नीतिशास्त्र के पारदर्शी कविराज भर्तृहरि की सूक्त्यनुसार कवि रूप मनीषी अजर-अमर होते हैं[5] उनकी कृति अथवा वाणी भावी जगत् को नव-नव प्रेरणायें प्रदान करती हुई उन्हें चिरजीवी बनाये रहती है,[6] ऐसे मनीषियों का जन्म-मरण औपाधिक है पारमार्थिक नहीं । प्राकृतजन जरामरणजन्य दुःख निरन्तर प्राप्त करता रहता है ।

१–उदय और विकास – कविवर मित्र – पृ० २८०
२– लक्ष्मीबाई रासो– सं० डा० भगवानदास माहौर – पृ० १० भूमिका
३– वही– ४–बेतवा-वाणी– अंक २ वर्ष २ –डा०सुधागुप्ता–पृ०१५
५– भर्तृहरि नीतिशतकम् – श्लोक २४
६– काव्यप्रकाश – आचार्य मम्मट – प्रथम उल्लास – मंगलाचरण नियतिकृत....जयति ।

स- पृष्ठभूमि तथा परिस्थितियाँ

जिस काल विशेष में कवि हीरा लाल व्यास `हृदयेश` ने अपनी काव्य-साधना की उसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने `रीतिकाल` का अभिधान दिया है। यद्यपि इस काल के अन्तर्गत सम्वत् १७०० से १९०० तक- पूरी दो शताब्दियाँ सन्निविष्ट हो जाती है तथापि इस समय-विभाजक रेखा को विद्वानों ने मोटे तौर पर ही स्वीकार किया है;[१] क्योंकि रीति-काव्यों का निर्माण इस काल के अनन्तर भी - बीसवीं शताब्दी तक- होता रहा है।[२] कवि हृदयेश ने अपने रीतिकालीन नायक-नायिकाभेद पर आधारित प्रमुख काव्यग्रन्थ `विश्वबसकरन` का प्रणयन सं०१९०४ में किया अथवा इसे समाप्त किया, अत: उक्त आधार पर इसका परिगणन भी रीतिकाल के अन्तर्गत ही करना समीचीन होगा। हृदयेश की कविता का काल उन्नीसवीं सदी (सम्वत् १८५७ से सम्वत् १९५७ तक) के अन्तर्गत आता है जिसके प्रारंभिक ५० वर्ष रीतिकाल तथा परवर्ती ५० वर्ष आधुनिक काल में आते है,[३] अत: रीतिकालीन प्रवृत्तियों के आधार पर हृदयेश के कृतित्व का आकलन रीतिकालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में ही करना युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

साहित्य अथवा काव्य सर्वपरम्परागत जीवनमूल्यों तथा वातावरण से प्रभावित होकर आकार ग्रहण करता है। रीतिकालीन साहित्य इसका अपवाद नहीं है। वह भारतीय जीवन तथा परम्पराओं से ही अनुप्रेरित होकर अपना स्वरूप निर्धारित कर सका है, इसलिए रीतिकाल के प्रेरक तत्वों पर एक दृष्टि-निक्षेप करना आवश्यक है जिससे कि उसके मूलाधार का एक ढाँचा हमारे सम्मुख स्पष्ट हो सके।[४] वस्तुत: रीतिकालीन साहित्य की एक सतत् प्रवहमान धारा रही है वह अचानक उद्भूत घटना का परिणाम नहीं कहा जा सकता। यदि हिन्दी काव्य की प्राचीन परम्परा का अवगाहन करें तो विषय-शैली प्रवृत्तियों, छन्दों आदि की दृष्टि से हिन्दी प्राकृत और अपभ्रंश काव्यों में इस परम्परा का प्रारंभिक रूप उपलब्ध हो जाता है; परन्तु रीतिकालीन काव्य पर प्राकृत, अपभ्रंश की

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं० डा० नगेन्द्र - पृ० २९५
२- रीतिकालीन काव्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि - डा० शिवलाल जोशी-पृ०२५०,३२६
३- महाकवि ग्वाल :व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डा० भगवानसहाय पचौरी - पृ० ११
४- रीतिकालीन शृंगार-भावना के स्रोत - डा० सुधीन्द्र कुमार - पृ० २०

अपेक्षा संस्कृत का कहीं अधिक प्रभाव है ।[1] यहां यह विचारणीय विषय है कि संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश की काव्य-परम्परा के अनन्तर भक्तिकाल में जिस परम्परा के दर्शन हमें नहीं उपलब्ध होते वह अचानक रीतिकाल में कैसे दृष्टिगत हुई ? शाहजहां के दरबार के प्रसिद्ध काव्यशास्त्री पंडितराज जगन्नाथ के ` रस-गंगाधर ` के पश्चात् जिस काव्य-शास्त्रीय परम्परा का प्रवाह अवरुद्ध हो गया, वह अचानक हिन्दी काव्यशास्त्रीय धारा के रूप में किस कारण पुनः प्रकाश में आया - इन कारणों को जानने के लिए हमें तत्कालीन विभिन्न ऐतिहासिक, धार्मिक परिस्थितियों पर दृष्टि-निक्षेप करना होगा ।

सा मा न्य पृ ष्ठ भू मि

सम्राट् हर्षवर्द्धन के पश्चात् (८वीं सदी) भारतवर्ष का इतिहास दुर्भाग्यपूर्ण करवट लेता है जिसके परिणामस्वरूप राजपूत राजाओं का पारस्परिक वैमनस्य तथा विभिन्न धार्मिक मत-मतान्तरों का उदय हुआ जो विदेशी आक्रमणकारियों के लिए अनुकूलता का वाहक सिद्ध हुआ । इन विदेशी मुसलमानों का विजेता शासकों के रूप में आवागमन १०वीं शताब्दी के पश्चात् ही होता रहा । प्रथमतः ये अरबदेशीय मुसलमान भारत के पूर्वोत्तर भाग की ओर फैलने लगे तथा इन्होंने अपनी राजनीति तथा सामाजिक नैपुण्य के कारण अपने लिए स्थान बना लिया ।[2] इस अवधि के अनन्तर लगभग ५०० वर्षों तक भारतवर्ष के ऊपर कोई विदेशी आक्रमण नहीं हुआ केवल बगदाद के खलीफा सिन्ध के रेगिस्तान में शासन करने लगे थे ।[3] यह ५०० वर्षों का समय (७वीं शताब्दी से ११वीं सदी तक) चैन का समय था । भारतवासियों में उच्च भावना के निवेश ने उन्हें दम्भी तथा अशिष्ट बना दिया । हिन्दुओं में छुआछूत भावना, जाति-बहिष्कार आदि के कारण उनका तेजी से विघटन हो रहा था ।[4] देशवासियों का राजनीतिक ढांचा जीर्णशीर्ण हो गया था ।[5] रूढ़िग्रस्तता, भौतिक समृद्धि, राजन्य वर्ग की परिच्छिन्नता, संकीर्णता तथा भ्रष्टाचारिता के कारण राष्ट्रीय भावना विलुप्त हो चुकी थी; अतः विदेशियों के विरुद्ध मोर्चा लेने की

१- हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास - पृ० ४४ पर श्री रामसिंह तोमर के लेख में डा० भगीरथ मिश्र का उल्लेख

२- इनफ्लुएन्स आफ इस्लाम आन इंडियन कल्चर - डा० ताराचंद -भूमिका-पृ०नौ-दस

३- वही- पृ० १२४-२५

४- शृंगाररस का शास्त्रीय विवेचन - डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी - पृ० ८५

५- वही- पृ० ८४

बात कही ही नहीं जा सकती थी। परिस्थिति का लाभ उठाकर सुबुक्तगीन तथा महमूद गजनवी के आक्रमण भारत पर हुए तथा १३वीं शताब्दी के अन्त उन्हें मुसलमान शासक के रूप में स्वीकार किया जाने लगा। ये विदेशी भारतवर्ष में १८वीं सदी के अन्त तक शासन करते रहे। इस प्रकार मुसलमानों का शासनकाल लगभग एक हजार वर्ष का ठहरता है।[१] वे प्रथम ५०० वर्षों में अर्थात् ८वीं सदी से १३वीं सदी तक शान्तिपूर्वक दक्षिण में तथा युद्ध करके सिंध तथा उत्तर पश्चिमी भागों में बस गए। १४वीं सदी से १८वीं सदी तक वे भारत के शासक बन कर बने रहे और लगभग सम्पूर्ण भारत ने उनके प्रभुत्व को स्वीकार कर लिया।

उक्त सुदीर्घ काल के अन्तर्गत सन् १५५६ में अकबर का उद्भव भारत के सम्राट् के रूप में हुआ। उसने न केवल अफगान शासन का अन्त किया अपितु भारतवर्ष में मुगल-शासन की स्थापना की। अनेक युद्धों के पश्चात् अकबर ने मालवा, गोंडवाना, गुजरात, रणथम्भौर, चित्तौड़, बंगाल, काबुल, काश्मीर, सिन्ध, बलूचिस्तान, उड़ीसा और अहमदनगर जीत लिए और उन्हें अपने राज्य में मिला लिया। बीस वर्ष में मेवाड़ को छोड़कर समस्त भारत में अकबर ने अपनी प्रभुता स्थापित कर ली। तब उसने नवीन नीति का अनुसरण किया। अकबर ने राजपूतों के साथ मित्रता की उदार नीति अपना कर, उनके साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर, हिन्दुओं पर लगाए गए जजिया और तीर्थ-कर का उन्मूलन करके अपनी धार्मिक सहिष्णुता की नीति का परिचय दिया, हिन्दुओं को राज्य में उच्च पदों पर नियुक्त करने की नीति से अपने शासन का विदेशीपन कम किया और राष्ट्रीय राज्य का निर्माण किया। हिन्दुओं को अपने पक्ष में करने की उदार नीति से उसने राष्ट्रीय राजतंत्र का मार्ग सुलभ कर दिया। अपने सामाजिक सुधारों भूमिकर और मनसबदारी प्रथाओं तथा अपने दक्ष व स्वस्थ शासन से वह मुगल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक माना जाता है। उसका उदय कला, साहित्य, चिकित्सा-ज्ञान, ज्योतिष गणित आदि के लिए भी अनुकूल सिद्ध हुआ। धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, जीवन-चरित्र, इतिहास आदि विषयों पर उसके समय में अनेक ग्रन्थ लिखे गए। ललित कलाओं में भवन-

---

१- भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का इतिहास- बी०एन०लूनिया - पृ० ३०३-४

निर्माण-कला, संगीतकला, चित्रकला आदि ने भी पर्याप्त प्रगति की। उसके समय में संस्कृत, तुर्की तथा अरबी भाषाओं के ग्रन्थों के अनुवाद हुए। वेद, रामायण एवं महाभारत का भी फारसी में अनुवाद किया गया। उसके राजमहल में स्थित राजकीय पुस्तकालय में संस्कृत, फारसी, यूनानी, काश्मीरी तथा अरबी भाषा में लिखीसहस्रों पुस्तकें थीं।[1] अब्दुल रहीम खानखाना, बीरबल ब्रह्म, तानसेन, अबुलफजल, टोडरमल, पृथ्वीसिंह राठौर, नरहरि, गंग आदि साहित्यिक, कवि तथा कलाकार उसके दरबार की विभूतियां थीं।[2] इसी युग में कृपाराम शृंगारिक मुक्तकों की रचना कर रहे थे तो नंददास तथा सूरदास धर्माश्रय में शास्त्रीय तत्वों — नायिका-भेद, अलंकारादि तथा राधा-कृष्ण की शृंगार प्रवृत्तियों के चित्रण की परम्परा का प्रवर्तन कर रहे थे। इसी परंपरा का शास्त्रीय सांगोपांग रूप केशव की 'कविप्रिया' तथा 'रसिक प्रिया' में उपलब्ध होता है।[3]

अकबर के उपरान्त जहांगीर (१६०५-१६२७ ई०) ने अकबर की चतुर नीतियों का यथार्थ प्रभाव प्रकट किया; केवल 'दीन इलाही' का अनुकरण उसने नहीं किया। जहांगीर का शासन साम्राज्य मे शांति व समृद्धि का काल था; परन्तु नूरजहां तथा उसके परिवार के प्रभाव के कारण राजसभा तथा साम्राज्य में ईरानी सांस्कृतिक तत्व प्रविष्ट होने लग गए थे।[4]

जहांगीर के शासनकाल के अनन्तर शाहजहां (१६२७-१६५८ई) तथा तदनन्तर औरंगजेब (१६५८-१७०७ ई०) का काल आता है। इसी परवर्ती काल मे रीतिकाव्य का पल्लवन हुआ तथा यह उत्कर्ष को प्राप्त हुआ।

१- राजनीतिक परिस्थितियां :—

सम्वत् १७०० से १९०० तक भारत का इतिहास चरम उत्कर्ष को प्राप्त मुगल साम्राज्य की अवनति के आरम्भ और फिर क्रमशः उसके पूर्ण विनाश का इतिहास है। सम्वत् १७०० मे भारत के सिंहासन पर सम्राट् शाहजहां आसीन था। जहांगीर ने जो

१-भारत का इतिहास- आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - पृ० ५१६-१७

२- (अ) शृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन - डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी - पृ०८६
(ब) हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास- डा० गणपतिचन्द्रगुप्त-पृ०४७३

३- - वही - पृ० ४७३-७४

४- भारतीय सभ्यता और संस्कृति का इतिहास- बी०एन०लुनिया- पृ० ३०४

साम्राज्य छोड़ा था, शाहजहाँ ने उसकी और भी श्री-वृद्धि तथा विकास कर लिया था। दक्षिण में अहमद नगर, गोलकुण्डा और बीजापुर-राज्यों ने मुगलों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था और उत्तर-पश्चिम में सं० १६९५ में कन्धार का किला मुगलों के हाथ आ गया था। अब्दुल हमीद ~~लाहौरी~~ लाहौरी के अनुसार उसका साम्राज्य सिंध के लाहिरी बंदरगाह से लेकर आसाम के सिलहट तक और अफगान प्रदेश के बिस्त के किले से लेकर दक्षिण में औसा तक फैला हुआ था। उसमें २२ सूबे थे, जिनकी आमदनी ८८० करोड़ दाम अथवा २२ करोड़ रूपया थी। देश में अखण्ड शान्ति थी - खजाना मालामाल था। परन्तु यहीं से मुगल शासन का अपकर्ष भी प्रारम्भ होता है। अप्रतिहत मुगल-वाहिनी पश्चिमोत्तर प्रदेशों में लगातार तीन बार पराजित हुई, मध्य एशिया के आक्रमण बुरी तरह विफल हुए। इन विफलताओं से धन-जन की ही हानि नहीं अपितु मुगल-साम्राज्य की प्रतिष्ठा को भी भारी धक्का पहुंचा; दक्षिण में भी उपद्रव होने लगे। जहाँगीर की मस्ती और शाहजहाँ के अपव्यय - दोनों का परिणाम अहितकर हुआ। जिस प्रकार साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल के चरम वैभव के बाद सं० १७०० के आसपास की कविता ह्रासग्रस्त होने लगी थी, ठीक उसीप्रकार राजनीतिक इतिहास में मुगल साम्राज्य भी अपने पूर्ण यौवन को प्राप्त करने के उपरान्त ह्रासोन्मुख हो चला था।[१]

सम्वत् १७१५ में शाहजहाँ की गम्भीर बीमारी के परिणामस्वरूप देश में एक अफवाह उड़ गई कि सम्राट् की मृत्यु हो गई। मुगलों में उत्तराधिकार के निश्चित नियमों के न होने के कारण बादशाह के जीवनकाल में ही उसके पुत्रों में सिंहासन के लिए युद्ध आरम्भ हो गया। यह युद्ध रीतिकाल के आरम्भ की सबसे प्रधान और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटना है। इसका राजनीतिक और नैतिक प्रभाव सारे देश पर पड़ा। सम्राट् का सबसे बड़ा पुत्र दारा अपने सांस्कृतिक व्यक्तित्व के कारण न केवल सम्राट् का ही वरन् प्रजा का भी स्नेहभाजन था परन्तु वह कूटनीति से अनभिज्ञ था। औरंगजेब नाम के दूसरे राजकुमार के व्यक्तित्व में कठोरता और दृढ़ता के गुणों के साथ यद्यपि हार्दिक शक्तियाँ सीमित थीं; पर बौद्धिक शक्तियाँ पर्याप्त विकसित थीं। मानव-चरित्र में उसकी गति अपरिमित थी। उसकी दृष्टि अन्त:प्रवेशिनी और निर्णय-शक्ति

१-रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० २

स्थिर और संयत थी। उसके व्यक्तित्व में कूटनीति का भी अपेक्षित अवस्थान था। दारा के विपरीत उसमें धार्मिक कट्टरता तथा धार्मिक असहिष्णुता थी। दारा और औरंगजेब का सिंहासन हेतु संघर्ष मानो संस्कृति और राजनीति का संघर्ष था। औरंगजेब के द्वारा काफिर कहे जाने वाले दारा के पक्ष में हिन्दू तथा उदारवादी दृष्टिकोण वाले मुसलमान थे तो औरंगजेब की तलवार के साये में कट्टर सुन्नी इस्लाम की विजय-श्री को सर्वतोभावेन आलिंगित करने के लिए आकुल थे। दो सहोदर भ्राताओं का यह युद्ध कई स्थलों पर हुआ। दैवयोग से राजकुमार दारा की पराजय हुई और उसका वध कर दिया गया। सहोदरों- दारा, शुजा और मुराद, भतीजों - सुलेमान तथा सिपहर -के शोणित की नदी को हर्ष के साथ तैरता हुआ औरंगजेब राज्य-सिंहासन पर आरूढ़ हुआ।[1] ऐसा लगा जैसे नैतिक और धार्मिक विश्वासों का उसने वध के साथ गला घोंट दिया गया हो।

औरंगजेब का राज्यकाल संवत् १७१५ से सम्वत् १७६४ के व्यापक कलेवर में स्फीत है। इस राज्यकाल में वह अशान्ति एवं संघर्ष में ही रत रहा। प्रारंभिक काल में उसने जमींदारों, राजाओं तथा हिन्दुओं के धार्मिक उपद्रवों एवं विरोधों को दमित करने में व्यतीत किया। इनमें उल्लेखनीय उपद्रव आगरा, अवध तथा इलाहाबाद के थे। आगरा प्रान्त में गोकुल के नेतृत्व में जाटों ने, अवध में बैस राजपूतों ने और इलाहाबाद में हरदी तथा अन्य जागीरदारों ने शासन की अन्यायपूर्ण नीति के विरुद्ध विद्रोह किया। औरंगजेब ने मात्र इनका शमन ही नहीं किया अपितु प्रतिशोध के वशीभूत होकर मथुरा में अवस्थित केशवदास मंदिर तथा काशी के विश्वनाथ मंदिर को ध्वस्त करा दिया। इस ध्वंस के साथ उसकी धार्मिक असहिष्णुता तथा कट्टरता का पुष्ट प्रमाण भारतीय जनता को प्राप्त हो गया। विद्रोह की यह आग बुन्देलखण्ड तक फैली परिणामस्वरूप ओरछा के चम्पतराय भी विद्रोही हो गए परन्तु अन्ततोगत्वा उन्हें आत्मसमर्पण कर देना पड़ा। उनकी मृत्यु के उपरान्त उनके पुत्र महाराज छत्रसाल बुन्देला आजीवन मुगलों का विरोध करते रहे।[2] काठियावाड़ में नावानगर के राजसिंह ने भी विद्रोह किया परन्तु उन्हें भी अन्त में आत्मसमर्पण कर देना पड़ा। बीकानेर-नरेश करनसिंह ने खुल्लम-खुल्ला औरंगजेब का विरोध

१- ब्रज का इतिहास - प्रभुदयाल मीतल - पृ०२१२-१३

२- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० ३

किया पर अन्त में उन्होंने भी क्षमा-याचना की ।[1] मथुरा तथा आगरा-क्षेत्र में जाटों तथा पंजाब के सिखों का विद्रोह भी पर्याप्त समय तक चलता रहा । इन विद्रोहों के अतिरिक्त औरंगजेब के शासन के २५ वर्षों में उत्तरी भारत में अन्य कोई विद्रोह नहीं हुआ और आन्तरिक शान्ति रही ।[2] राजपूताना में मारवाड़ के उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर अशान्ति फैली हुई थी । अब तक राजपूताना के प्रमुख राज्य मुगलों की निष्कपट रूप से सेवा करते रहे । जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह और जयपुर के राजा मिर्जा जयशाह ने साम्राज्य की ओर से युद्ध करते हुए ही अपने प्राण गंवाए थे । जोधपुर के राजा की मृत्यु के पश्चात् औरंगजेब ने जयपुर पर अधिकार कर लिया जिसके कारण मारवाड़ तथा मेवाड़ मुगलों के विरुद्ध हो गये । उधर राजपूतों ने शाहजादा अकबर को भी अपनी ओर तोड़-कर औरंगजेब को विषम परिस्थिति में डाल दिया । अन्त में यद्यपि पराजय राजपूतों की हुई तथापि दुर्गादास अन्त तक मुगलों का सामना करते रहे । आत्मरक्षा के निमित्त हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदाय भी अंगड़ाई ले रहे थे । नारनौल तथा मेवाड़ प्रान्तों में सतनामी मत के लोगों ने जिस अखण्ड धार्मिक विश्वास का परिचय दिया उससे औरंगजेब तक आतंकित हो गया । पंजाब में सिखों का असन्तोष बढ़ रहा था । गुरु तेग बहादुर की हत्या तथा उनके पुत्र गुरुगोविन्दसिंह के बच्चों पर किए गए पाशविक अत्याचार ने उनको तिलमिला दिया था और सिख-धर्म के अन्तर्गत एक साम्यवादी सैनिक जाति का निर्माण और विकास हो रहा था यद्यपि इसमें भी स्वतंत्र शक्ति नहीं आई थी ।[3] गुरु गोविन्दसिंह मुसलमान अफसरों तथा हिन्दू-नरेशों से मुगल शासन के विरुद्ध आजीवन लड़ते रहे । गुरु गोविन्दसिंह की मृत्यु के समय तक सिखों का एक ऐसा विद्रोही सम्प्रदाय बन चुका था जिसने मुगलों के अत्याचारों का अन्त करने का व्रत लिया था । सिखों का यह विद्रोह मुगलों की धर्मान्धता का परिणाम था ।

औरंगजेब की धार्मिक असहिष्णुता के परिणामस्वरूप यद्यपि दक्षिण के शिया-राज्यों की शक्ति क्षीण हो गई थी तथापि इनकी दुर्व्यवस्था को ठीक करने में वह समर्थ न था । इसके परिणामस्वरूप मराठों ने शिवाजी की अध्यक्षता में व्यवस्थित राज्य

१- भारत का इतिहास - डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - पृ० ६३३
2- वही- पृ० ६३३
3- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० 3-४

स्थापित कर लिया । गुरु राम दास के प्रभाव से दक्षिण के हिन्दुओं में राष्ट्रीय भावना के लक्षण दृष्टिगत हो रहे थे । शिवाजी ने मुगल सेना की अपराजेयता के समक्ष एक प्रश्न उपस्थित कर दिया था; परन्तु मराठों की इस जागृति का प्रभाव उत्तर भारत में न पड़ सका क्योंकि मराठों के प्रदेश से उत्तर भारत का हिन्दी-भाषी जन-समुदाय पर्याप्त दूर था । यही कारण था कि यहां का हिन्दूवर्ग पूर्णतया चेतना-शून्य था[1] । जब सम्राट् औरंगजेब का ध्यान दक्षिण की ओर आकृष्ट हुआ तब उत्तरापथ में अशान्ति और अव्यवस्था और अधिक बढ़ गई । औरंगजेब की अहंता तथा व्यक्ति-वादिता का दु:खद परिणाम मात्र उत्तरापथ तक सीमित न होकर सम्पूर्ण भारत में व्याप्त हो गया । और सम्पूर्ण मुगल शासन में भारत न तो एक राष्ट्र के रूप में संघटित हो पाया और न ही स्थायी राज्य के रूप में प्रतिष्ठित हो सका । मुगल सम्राटों की सामन्तीय शासन-प्रणाली में न तो आर्थिक स्वाधीनता थी और न वैधानिक नियमों का कोई महत्त्व ही था । औरंगजेब के समय में राज्य का खर्च और भी बढ़ गया था । इस क्षति की पूर्ति वह हमेशा अपने जागीरदारों और सामन्तों से बड़े-बड़े उपहार लेकर करता था । यद्यपि औरंगजेब कठोर शासक था तथापि अपने समय में बड़ी-बड़ी भेंटों को स्वीकार कर विभिन्न पदों पर अभिषिक्त किया करता था । सतत् ऐसी भेंटों की व्यवस्था करते-करते सामन्त वर्ग भी निर्जीव हो गया था । उन्हें अपना निर्वाह भी कठिन प्रतीत होने लगा । परिणामस्वरूप उनके सैनिक बल का भी ह्रास होने लगा और वे छोटे-छोटे जमींदारों के उत्पातों का भी दमन नहीं कर पाते थे । सम्वत् १७६४ में औरंगजेब की मृत्यु के साथ विशाल मुगल साम्राज्य की शक्तियां छिन्न-भिन्न हो गई । औरंगजेब के कठोर, दृढ़ तथा अहंवादी व्यक्तित्व ने अपने पुत्रों को इस प्रकार निर्जीव कर दिया था कि उनमें से कोई भी उत्तराधिकार के गौरव का वहन न कर सका और साम्राज्य का ह्रास प्रारम्भ हो गया ।[2]

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् का भारतीय इतिहास घोर राजनीतिक पतन और अव्यवस्था का इतिहास है । इस अशान्ति और अव्यवस्था का आत्यन्तिक समापन १९१४ के गदर में हुआ ।[3] मुगल राज्य के उत्तराधिकारी सम्यक शिक्षा तथा संस्कारों के

१-रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० ३

२- वही- पृ०३-५

३- वही- पृ० ५

अभाव में विलासी, निर्जीव तथा व्यक्तित्वहीन हो गये थे। अन्त:पुर में क्षुद्र-द्वेष और प्रणयलीला चल रही थी। केन्द्रीय शासन की दुर्बलता के परिणामस्वरूप विभिन्न प्रान्तों के अधिपति स्वतंत्र होने लग गये थे। मुगल दरबार अब अमीरों और राजकीय अधिकारियों की दलबन्दी के रूप में परिवर्तित हो चुका था। सैयद भाइयों तथा तूरानी सरदारों के दृष्टान्त, आगरा और राजपूताना में जाटों और राजपूतों के विद्रोह, दिल्ली के उत्तर में सिखों के प्रभुत्व-वर्द्धन से बहादुरशाह तथा फर्रुखसियर दोनों ही त्रस्त हो चुके थे।[1] दक्षिण में मराठा, पंजाब में सिख, भरतपुर में जाट राज्य स्थापित हुए। इसी समय नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण कर मुगल राज्य की रही-सही व्यवस्था को भी समाप्त कर दिया। इन आक्रमणों से मराठा शक्ति का भी विघटन पानीपत की तीसरी लड़ाई में हो गया। भोंसले, सिंधिया, गायकवाड़ और होलकर सरदारों ने अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिए। दक्षिण में हैदराबाद और मैसूर के पृथक् राज्य बन गये। अवध के नवाब ने भी स्वयं को दिल्ली से पृथक् कर लिया। बंगाल और आसाम पहले से ही पृथक् हो गये थे। इसी मध्य देश के दुर्भाग्यस्वरूप दक्षिण में मद्रास और पूर्व में हुगली में अंग्रेजों की रेजीडेंसियां शक्तिशाली हो गयीं। अंग्रेजों ने बंगाल में मीरकासिम और मीरजाफर को कठपुतलियों की तरह नचाकर बंगाल पर लगभग अधिकार कर लिया। बक्सर की लड़ाई भी अंग्रेजी शक्ति ने लड़ी जिसमें शाहआलम भी पराभूत हो गया। अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान के शासकों को एक-दूसरे से लड़ाने का प्रयास कर यहां के सभी राजाओं को परास्त कर दिया और सन् १८५७ तक सारे भारतवर्ष पर अधिकार कर लिया।[2]

२- सामाजिक परिस्थितियां :-

रीतिकालीन भारतीय जनता के सामाजिक जीवन का विवरण विदेशी यात्रियों-बर्नियर, ट्रेबर्नियर, मनूची आदि के अतिरिक्त किसी भी भारतीय इतिहासकार ने नहीं दिया है।[3] उनके अनुसार रीतिकालीन समाज को मुख्य रूप से दो वर्गों में विभक्त किया

१- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० ५-६
२- हिन्दीसाहित्य का रीतिकाल- पुनर्मूल्यांकन - यज्ञदत्त शर्मा - पृ०
३- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० ९

जा सकता है - ।१। शासक वर्ग ।२। शासित वर्ग । शासक वर्ग भी दो प्रकार का था- प्रथम बादशाह तथा द्वितीय उस पर आश्रित राजा, अमीर, मनसबदार आदि । यह समाज सामन्तीय पद्धति पर आधारित था, जिसमें सम्राट् शीर्ष पर था, जिसके बाद उच्च वर्ग के अन्तर्गत राजा, अधिकारी और सामन्त थे जिन्हें समाज में विशेष अधिकार और सम्मान प्राप्त थे ।[1] सम्पूर्ण देश मे मनसबदार और सामन्तों का जाल फैला हुआ था जो अपने-अपने स्थान मे राजा थे । लगभग समस्त राजकीय पद इन सामन्तों में वितरित थे । प्रत्येक योग्य और परिश्रमी व्यक्ति राजकीय पद पाने की चेष्टा करता था ।शाही नौकरी के अतिरिक्त और नौकरियाँ निम्न स्तर की समझी जाती थीं ।.... शाही दरबार सुख, समृद्धि एवं शिष्टता और सभ्यता का केन्द्र था, परन्तु उसके बाहर देश के अन्य स्थानों मे जीवन दुर्दशाग्रस्त, असंतोषजनक, अतिदयनीय एवं घोरविपत्तिजनक था ।[2] उस समय जनसाधारण की दशा, भारत में अत्यन्त शोचनीय थी,[3] अत: उनके बीच जो प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे वे सामन्त, राजा, बादशाह के दरबार में जाने का प्रयत्न करते थे । यही दशा साहित्यकार की थी जिसकी कद्र आपत्ति और गरीबीग्रस्त जन-साधारण के बीच नहीं हो सकती थी, अत: वे `गंवई गांव का गंवारू वायुमण्डल छोड़-कर नगर की ओर जाते थे जहां उन्हें कद्रदां मिलते थे । ये कवि अपने आश्रयदाताओं की रुचि के अनुसार ऐहिकतापरक काव्यरचना कर उन्हें पुष्ट-तुष्ट करते थे ।इन कवियों तथा कलाकारों की स्थिति विलक्षण थी क्योंकि जन्मना इनका संबंध प्राय: निम्न और मध्य वर्ग से होता था परन्तु ये उच्च वर्ग के आश्रय में रहते थे । इस प्रकार यद्यपि इनके व्यक्तित्व का निर्माण दोनों वर्गो के विभिन्न संस्कारों से हुआ था तथापि उनमें प्रधानता उच्च वर्ग के संस्कारों और उसकी आशा-आकांक्षाओं की रहती थी, क्योंकि बाद में निर्धन समुदाय से इनका कोई संबंध नहीं रह जाता था । निम्न वर्ग न तो इतना सम्पन्न था कि इनकी कृतियों को पुरस्कृत कर सके और न इतना शिक्षित ही कि उनका रस ले सके ।[4] उक्त अमीर-उमरावों के भी बड़े-बड़े हरम होते थे जिनमें सखियों की संख्या में

१- भारतीय सभ्यता और संस्कृति का विकास - बी०एन०लूनिया - पृ०४३८
२- मध्ययुग का संक्षिप्त इतिहास - ईश्वरी प्रसाद - पृ० ४९६
३- डा० वेट्स डिस्क्रिप्शन आफ इण्डिया एण्ड फ्रेगमेण्ट आफ इंडियन हिस्ट्री -ट्रान्सलेशन पृ० ८२
४- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० १०

स्त्रियाँ निवास करती थीं। औरंगजेब अवश्य इसका अपवाद था। इनके पश्चात् साधारण कर्मचारियों का वर्ग था जो राज्य के छोटे-छोटे विभागों में काम करते थे। इस वर्ग को मध्यम वर्ग कहना समीचीन होगा। व्यापारी, साहूकार, दूकानदार भी इसी कोटि में आते हैं। अपनी आर्थिक सम्पन्नता से वे लोग मध्यवर्ग की स्थिति में थे पर शिक्षा-संस्कृति की दृष्टि से हीन थे। धन के कारण प्रतिष्ठित यह वर्ग अपना धन छिपाकर रखता था[1]। इस वर्ग को हानि भी अत्यधिक उठानी पड़ती थी क्योंकि इन्हें सम्राट् और उसके अधिकारियों को बाजार की अपेक्षा सस्ते मूल्य पर वस्तुएं देनी पड़ती थीं[2]। शासित वर्ग में निम्नवर्ग परिगणित था जिसमें शिल्पी, नौकरी पेशा करने वाले व्यक्ति और मजदूरों के अतिरिक्त भारत का वृहद् कृषक-समुदाय भी था, जो सोना पैदा करके मिट्टी पर गुजर कर रहा था[3]। इनका जीवन कठोर तथा असंतोषपूर्ण था। श्रमजीवियों का कार्य स्वेच्छा पर आधारित नहीं था। वेतन कम था, खाद्य सामग्री की न्यूनता थी और गृहों में दरिद्रता का अकाण्ड-ताण्डव होता रहता था। वेतन की इस कमी की पूर्ति वे दस्तूरी मांग कर करते थे[4]। वर्ण-व्यवस्था-लोप होने के कारण सभी वर्णों के लोग सुविधानुसार प्रायः सभी काम करते थे, परन्तु श्रमिकों का जीवन दैन्य तथा शोषण से आक्रान्त था। इस वर्ग को सारे दिन काम करने पर दिन में एक बार ही भोजन मिल पाता था। यही नहीं, मुगल बादशाहों के असंख्य युद्धों, बहुमूल्य इमारतों, उनके और उनके अमीरों के विलास-वैभव सभी का भार अन्त में जाकर किसानों पर ही पड़ता था। सम्राट्, सूबेदार, फौजदार, जमींदार सभी का शिकार बेचारा किसान था। इसी से किसान की विपत्ति का अन्त नहीं होता था, शाही सेना के सिपाही, बनजारों की टोलियां, राजपूताने के डाकू उनकी हरी-भरी फसल को तहस-नहस कर देते थे, घर-बार लूट लेते थे। दीन प्रजा सर्वथा त्रस्त होकर त्राहि-त्राहि कर उठी थी। मजदूर और कारीगरों को यों ही बेगार के लिए पकड़ लिया जाता था। उनकी मजदूरी प्रायः कोड़े से चुकाई जाती थी[5]। साधारणतः ये लोग ईमानदार और वचन के पक्के होते थे

१-रीतिकाव्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि- डा० शिवलाल जोशी - पृ० १२७
२- वही- पृ० १२८
३- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० ९
४-रीतिकाव्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि - डा० शिवलाल जोशी - पृ० १२८
५- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० १३-१४

तथा उनमें सन्तोष की भावना भी अधिक थी। इसी कारण उन्होंने प्रचलित राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक प्रतिबन्धों और अत्याचारों के विरुद्ध कभी संघर्ष नहीं किया।[1]

समाज में जातीय तथा अन्तर्जातीय विद्वेष भी कम सक्रिय नहीं था। राजनीतिक पराजय ने हिन्दुओं के जातीय संगठन को सर्वथा छिन्न-भिन्न कर दिया था। किसी दृढ़ आधार के अभाव में हिन्दुओं में जाति-भेद की भावना प्रबल हो उठी थी। वेद-मंत्रों के उच्चारण अथवा यज्ञोपवीत धारण करने के अधिकारों को लेकर उनमें आपस में भयंकर संघर्ष चल रहे थे। शूद्र सर्वथा अस्पृश्य समझे जाते थे उधर मुसलमान समस्त हिन्दू-जाति को ही हीन समझते थे। सत्ता में होने के कारण मुसलमानों की सामाजिक स्थिति श्रेष्ठतर थी। शाहजहाँ के समय से ही हिन्दुओं के मंदिर तुड़वाए जाने लगे, विद्यालय और पुस्तकालय नष्ट कर दिए गए, उत्सवों औरमेलों पर प्रतिबन्ध लगाया गया। राज्य के पदाधिकार उनके लिए वर्जित हो गये। औरंगजेब के काल तक हिन्दू मुस्लिम-भेदक-चेतना बनी थी जो इसके अनन्तर - मुगलशासन के शनैः-शनैः क्षीण होने से समाप्त होने लग गई थी। परवर्ती काल में उनके पारस्परिक संस्कारों में अभेद-सा हो गया, परन्तु यह स्थायी नहीं था। स्वयं मुसलमानों में शिया-सुन्नी का, तूरानी और ईरानी का भेदभाव था।[2]

इस प्रकार सारा समाज उत्पादक तथा उपभोक्ता वर्ग में विभाजित था। उत्पादक वर्ग में कृषक समुदाय और श्रमजीवी थी। ये लोग शासन और युद्ध के मामलों से सर्वथा पृथक् रहकर अपने खेती, व्यापार के कामों में लगे रहते थे। सरकार को कर देते थे और उसके बदले आन्तरिक तथा बाह्य उपद्रवों से त्राण पाते थे। भोक्ता वर्ग सम्राट् के परिवार और दरबारों से लेकर उनके नौकर-चाकर और दासों तक फैला हुआ था। यह वर्ग राज्य की शक्ति था अतएव उत्पादक वर्ग पर इसका पूर्ण प्रभुत्व था। सामाजिक स्थिति भी स्वभावतः इनकी श्रेष्ठतर थी। इन दोनोंवर्गों के बीच बहुत बड़ा अन्तर था शासक और शासित - शोषक और शोषित का।[3]

१- रीतिकाव्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि- डा० शिवलाल जोशी - पृ० १२८

२- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० १४

३- वही- पृ० १

शासक वर्ग के वैभव तथा ऐश्वर्यसम्पन्नता का हृदयावर्जक तथा विशद वर्णन उपर्युक्त विदेशी यात्रियों ने किया है। उनके अनुसार सम्राट् की व्यक्तिगत जीवन-चर्या पर अपार धनराशि व्यय की जाती थी। सम्पूर्ण मुगल परिवार में रत्नों और मणियों का मुक्त प्रयोग होता था। सम्राट् के लिए प्रति वर्ष एक हजार बहुमूल्य वस्त्र तैयार होते थे जो वर्ष के अन्त तक दरबार में आने वाले अमीर-उमरावों को भेंट कर दिए जाते थे।[1] शाहजहाँ वैभव और विलास की मूर्ति था। मुगल अन्तःपुर का वैभव इन्द्रभवन को मात करता था। बर्नियर ने लिखा है - मैंने मुगल हरम में प्रायः प्रत्येक प्रकार के जवाहरात देखे हैं, जिनमें बहुत से तो असाधारण हैं। हरम में निवास करने वाली बेगमें बेशकीमती मोतियों से निर्मित मालाओं को कन्धे पर ओढ़नी की तरह पहनती हैं। इनके साथ दोनों ओर मोतियों की कितनी ही मालाएं होती हैं। सिर में वे मोतियों का गुच्छा-सा पहनती हैं जो माथे तक पहुँचता है और जिसके साथ एक बहुमूल्य आभूषण जवाहरात का बना हुआ सूरज और चाँद की आकृति का होता है। ...... इन बादशाहों तथा बेगमों की पोशाकें दिन में न जाने कितनी बार बदली जाया करती थीं। इनके अन्तःपुर तथा दरबारों को देखकर ऐसा लगता था मानों इन्द्रसभा लग रही हो। इन सभाओं में बैठने-उठने वाले कवियों की आँखों में प्रत्येक क्षण मणि-दीप और संगमर्मर के फर्श भूमा करते थे। इनमें बहुत से स्वयं भी भव्य भवनों में रहते तथा विलास के उपकरणों में आकण्ठ मग्न रहते थे।[2]

बर्नियर के अनुसार बादशाह की सेवा, शाहजादियों के मनोरंजन और शिक्षा के लिए राजमहलों में भिन्न-भिन्न वर्णों और जातियों की 2000 स्त्रियां रहती थीं। इनमें से बुड्ढी स्त्रियों से जासूसी का काम लिया जाता था। ये कुट्टनियाँ स्थान-स्थान से सुन्दरी स्त्रियों को धोखे, फरेब या लालच से महल में ले आती थीं। रीति-काल की दूतियों में इनकी प्रतिच्छाया देखी जा सकती है। सम्राट् के महलों में सुन्दरी

1- रीतिकाव्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि - डा० शिवलाल जोशी - पृ० १२९

2- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० ११-१२

3- बिहारी और उनका साहित्य - डा० हरवंशलाल शर्मा - पृ० १०

व अन्य

के साथ सुरा का भी उन्मुक्त व्यापार होता था । हिन्दू और मुसलमान दोनों ही समान रूप से धार्मिक निषेधों का अतिक्रमण करते हुए मदिरा का निर्बाध सेवन करते थे । अमीरों और राजाओं के महलों में शृंगारिकता का नग्न नृत्य होता था । मुगल-सैनिकों के शिविरों में वेश्याओं की उपस्थिति रहती थी । 'यथा राजा तथा प्रजा' के प्रतिपालन में छोटे-छोटे अधिकारी तथा रईस भोग-विलास में ही लिप्त रहते थे । औरंगजेब ने यद्यपि इस अतिचार को समाप्त करने का प्रयास किया - उसने सुरा तथा मादक वस्तुओं को निषिद्ध कर दिया, वेश्याओं को शादी करने के लिए मजबूर किया, परन्तु इस शुद्धिवादी सम्राट के आदर्श वायवी होकर रह गए । विलास के अन्य साधनों में स्वादिष्ट भोजन तथा पकवानों को गिनाया जा सकता है । अन्तःपुर भी अगणित ललित क्रीड़ाओं का आगार था । वहाँ शतरंज, चौसर, गंजीफा, शिकार तथा पतंग-बाजी मनोरंजन के साधन थे । तरह-तरह के पशु-पक्षी, कबूतर, लाल, तोता-मैना आदि के स्वर रनिवास को मुखरित किया करते थे । देश की दुरवस्था ज्यों-ज्यों गंभीर रूप धारण करती गई त्यों-त्यों ये विलास के साधन भी अस्वस्थ ही नहीं होते गए अपितु इनके कारण जनमानस और अधिक विकृत होता गया ।[1]

यद्यपि इस युग में पर्दे की प्रथा अत्यन्त कठोर थी तथापि समाज में स्त्रियों की दशा गिरती जा रही थी । हिन्दू-स्त्रियों में सती तथा बाल-विवाह प्रथाएं प्रचलित थीं । मुस्लिम समाज में नारी की महत्ता विलास-पूर्ति तक ही थी जिसका प्रभाव हिन्दुओं पर भी पड़ा । उसके मातृत्व, पत्नीत्व के रूप विस्मृत कर दिए गए विशुद्ध प्रेयसी अथवा नायिका का रूप ही उद्घाटित किया गया - वह मात्र भोग्या अथवा विलास की सामग्री बनकर रह गई । मुसलमान स्त्रियां अपने बहुपत्नीव्रती पतियों की मनमानी सहती थीं । कोई भी स्वतंत्र-जन्मा मुसलमान एक ही साथ चार पत्नियां रख सकता था फिर भी उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जाता था क्योंकि यह माना जाता था कि किसी परिवार की प्रतिष्ठा उस परिवार की स्त्रियों के शुद्ध आचरण पर निर्भर है ।[2] उच्च घरानों की मुस्लिम स्त्रियों को कुरान तथा अन्य धर्मग्रन्थ पढ़ाए जाते थे और

१- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० १२-१३

२- मध्यकालीन भारतीय संस्कृति - डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - पृ० २९

इस युग में बहुत सी शिक्षा-प्राप्त मुस्लिम महिलायें थीं । मुस्लिम-युग की सम्मानित विशिष्ट महिलाएं है - जहां आरा, रोशन आरा, औरंगजेब की पुत्री - जेबुन्निसा, अहमदनगर की चांद बीबी, सम्राज्ञी नूरजहां, शिवाजी की माता जीजा बाई और महाराष्ट्र के राजा राजाराम की रानी ताराबाई आदि ।

3- धार्मिक परिस्थितियां :-

रीतिकालीन युग-दृष्टि ऐहिकतापरक थी । इस कालके साहित्य पर वैष्णव-धर्मभावना का प्रभाव धर्म-बुद्धि से गर्भित न था अपितु उसके विकृत रूप का प्रभाव राधा-कृष्ण की नायिका तथा नायक रूप की परिकल्पना में सर्वत्र विद्यमान है । इसीलिए डा० नगेन्द्र इस स्थिति को दयनीय कहा है । उन्होंने आगे डा० ताराचंद का मत उद्धृत करते हुए लिखा है - इस समय हिन्दू और मुस्लिम धर्म के अनुयायियों में तीन प्रकार के लोग थे - पहला वर्ग विद्वानों, पंडितों और मौलवियों का था जो विधिवत् शास्त्रीय धर्म का अध्ययन और अनुसरण करते थे । ये लोग अपने धर्मग्रन्थों की आज्ञाओं का अक्षरशः पालन करते थे ।[2] अपना धर्म इनके लिए एक सनातन सत्य था और शास्त्रों की वाणी ईश्वर की वाणी थी जिसमें किसी प्रकार का परिवर्तन सम्भव नहीं था । हिन्दी-प्रान्तों में शास्त्रीय धर्मों में इस समय मुख्यतः वैष्णव धर्म की शाखाओं - उपशाखाओं का प्रचार था और उनमें भी सबसे अधिक प्रचलित थी - कृष्णभक्ति शाखा, क्योंकि वही युग की प्रवृत्ति के लिए अनुकूल थी । कृष्ण-सम्प्रदाय में भी इस समय तक कई उप-संप्रदाय आविर्भूत हो चुके थे और विभिन्न स्थानों पर उनकी गद्दियां विद्यमान थीं । वल्लभ-सम्प्रदाय में भी इस समय तक कई उप सम्प्रदाय आविर्भूत हुए और विट्ठलनाथ जी की मृत्यु के उपरान्त उनके पुत्रों ने गोकुल, कामवन, कांकरौली, श्रीनाथद्वार, सूरत, बम्बई, काशी में विभिन्न गद्दियां स्थापित कर ली थीं । इन लोगों में यद्यपि अनेक विद्वान् हुए पर गोकुलनाथ जी के उपरान्त इस सम्प्रदाय में किसी ने भी मौलिक एवं महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया । ये विद्वान् भी देश की तत्कालीन रुचि से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके । वैभव-परायणता का ही यह दुःखद परिणाम था कि अब गोस्वामी भी राजाओं और

1-रीतिकाव्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि- डा० शिवलाल जोशी - पृ० 29-30

2- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० 16

सामन्तों को गुरु-दीक्षा देने के लिए लालायित रहने लगे। न तो इन गोस्वामियों से जनता का सम्पर्क था और न ही ये जनता में धर्म-प्रचार करते थे। ऐश्वर्य तथा राजसी ठाट-बाट के सान्निध्य में रहने के कारण इनकी साधना तथा तत्व-चिन्तन में भी शैथिल्य आ गया। भक्ति का तात्विक या आन्तरिक विकास तो रुक गया उसके स्थान पर भक्ति के बाह्य-विलास समृद्ध होते गए। स्थूल बाह्याडम्बर-सम्पृक्त सेवा-अर्चना की सूक्ष्मातिसूक्ष्म विधियों का आविष्कार हुआ। भक्ति के सूत्रधार जब ऐश्वर्य-विलास की पंकिल वीथियों मे विचरण करने लगे तब उनके भगवान् ऐश्वर्यपरायणता से कैसे अछूते रहते.[१] उनके विलास के लिए पर्याप्त सामग्री उपस्थित की गई। माध्व, निम्बार्क, चैतन्य तथा राधावल्लभ सम्प्रदायों की गद्दियां इस वैभव-विलास से मंडित थीं। राधा के वैशिष्ट्य के कारण इन सम्प्रदायों मे श्रृंगार का रूप अपेक्षाकृत स्पष्टतथा सुव्यक्त था। वृन्दावन तथा बंगाल मे प्रवर्तित तथा प्रचलित चैतन्य सम्प्रदाय में कीर्तन की लोकप्रियता ही नहीं थी, अपितु घनिष्ठ जनसम्पर्क अर्जित कर रहा था। [१] यद्यपि इस सम्प्रदाय मे जीवन था परन्तु भक्तिभावना के साथ इसने परकीयाभाव को प्रश्रय दिया। रूपगोस्वामी ने भक्तिरसवाद की योजना कर सम्पूर्ण नायिकाभेद का कृष्णभक्ति में अन्तरण कर दिया था जिसका व्यापक प्रभाव रीतिकाव्य परपड़ा। इस प्रकार समस्त सम्प्रदायों में अन्तरतम तत्व क्षीण तथा बाह्य ऐश्वर्य-विलास प्रवर्द्धित हो रहा था। अन्य शब्दों में - धार्मिक चेतना का अन्तरंग विकास प्राय: अवरुद्ध-सा हो गया और जिन देवों की सदैव पूजा होती थी, उनकी पूजा-परम्परा को ऐन्द्रिय स्वार्थों के फेर में पड़कर कलुषित कर दिया गया था। विष्णु के कृष्ण रूप और लक्ष्मी के राधारूप को अपने हृदय के पंक से पंकिल करने के लिए इन सम्प्रदायों ने पृष्ठभूमि निर्मित की। चाहे मठ हों, चाहे मंदिर - सर्वत्र देवदासियों की नूपुर-रुनझुन गूंजती रहती थी; परन्तु समस्त भारत मे ऐसा नहीं था - महाराष्ट्र में तुकाराम के अभंगों और रामदास के 'दास-बोध' द्वारा क्रमश: दक्षिण की जनता को रससिक्त तथा जीवन्त बनाया जा रहा था। सिख-धर्म कम जीवन्त नहीं था; पर यह चेतना हिन्दी-क्षेत्र में नहीं पहुंच सकी। धर्म, जो जनजीवन को आमूलत: प्रभावित करने वाला तत्व है, इस युग में रूढ़िवाद अथवा आडम्बर से ग्रसित हो गया था। डा० नगेन्द्र

१- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० १६-१७

का अभिमत है – सम्पन्न हिन्दुओं में धर्म के प्रति आस्था तो निःशेष हो चुकी थी, केवल धर्मभीरुता शेष थी[१]।

इस युग के सम्राट् भी भौतिकता, स्थूलता अथवा ऐहिकता के रंग में रंग चुके थे। उच्च वर्ग तथा सम्पन्न मध्यम वर्ग ने यदि उनका अनुगमन किया तो आश्चर्य का विषय नहीं। मुसलमानों के लिए ऐहिकता का वरण अत्यन्त सहज था; परन्तु ऐहिकता तथा परलोकवादिता अर्थात् धार्मिकता का जो भार जन्म-जन्मान्तर से उन्हें जाने-अनजाने वहन करना पड़ रहा था, वह उन्हें द्विविधा की स्थिति में डाले हुए था। यही कारण था कि वे हठात् धर्म का त्याग करने में अपेक्षित शक्ति नहीं अर्जित कर पा रहे थे; परन्तु धार्मिक पृष्ठाधार की सर्वविध अनुकूलता की अनुपलब्धि ने उनके लिए धर्म का स्वरूप रूढ़ कर दिया था। धर्म के शरीर से नीतिरूप आत्मा तथा विवेकरूप प्राणों का स्पन्दन समाप्त हो गया था। बाह्य विलास और प्रसाधन की वृद्धि ने विलासी जीवन का समर्थन किया। धर्म का अन्तरतम तथा अस्थूल रूप, जो विशुद्ध दर्शन पर आधारित था, कहीं दूर ठिठक कर उर्ध्व उच्छ्वास लेने लगा।

मुगल शासकों का धर्म यद्यपि शीर्ष पर अवस्थित था – उसके मुल्ला-मौलवी कुरान-धर्म की आराधना में कट्टर थे, तथापि मुगल शासकों, मनसबदारों तथा शासन के अधिकारियों के नैतिक तदनन्तर राजनीतिक अधोगति का प्रभाव इस्लाम पर पड़े बिना न रह सका। परिणामस्वरूप उसमें भी रूढ़िवाद विकसित हो रहा था जो हिन्दू-धर्म की भाँति जीवन से विरहित था। इस आभिजात्य वर्ग की धार्मिक दुरवस्था के अतिरिक्त अन्य विशाल वर्ग अशिक्षित जनसमुदाय का था, जो अन्ध-विश्वासी तथा बाह्याडम्बर-परायण था। इस वर्ग का व्रत, तीर्थ सन्तसंग, पीर, जादू, टोने आदि के प्रति आत्यन्तिक विश्वास था। पीरों की तकियों पर इस वर्ग के ऐहिक जीवनपरायण नर-नारी अपनी विविध ईषणाओं की पूर्ति के लिए जाते थे और उनके द्वारा दत्त मंत्र तथा तावीजों के प्रति आस्था व्यक्त करते थे। मनुष्य-पूजा में भी विकृत रूप में आस्था विद्यमान थी। गुरु तथा पीरों – दोनों को– हिन्दू-मुसलमानों के द्वारा ईश्वर कास्पृहणीय

१– रीतिकाव्य की भूमिका – डा० नगेन्द्र – पृ० १७

पद दिया जाने लगा था[१]।

हिन्दुओं में अधिकांश संख्या राम-कृष्ण-उपासकों की थी; परन्तु राम-कृष्ण की जीवन-गाथा का रामलीला तथा उत्सवों और कथा-कीर्तन में रूपान्तरण हो रहा था। रामचरितमानस की कथा, सूरदास तथा मीरा के पदों का गायन धर्मप्राण हृदयों का अवलम्ब था। मुसलमानों के उर्स-आयोजनों में सूफियाना गजलें तथा कव्वाली-गायन उनकी धर्मभावना का प्रबल माध्यम था। जनता की एतादृशी धर्मभावना यद्यपि मनोविनोद का साधन थी तथापि इसमें आर्त हृदयों का अवलम्ब छिपा था जो उनमें परलोक की आशा का स्फुरण कर उन्हें स्पन्दित करता रहता था। इस धर्मसाधना में अन्धविश्वास था, मनुष्य-पूजा थी, बाह्याडम्बर था; पर यही भक्ति तो उन्हें जीवित बनाने का मात्रैक सम्बल थी क्योंकि जनता के दैनिक संघर्षों का शिथिलीकरण इसी माध्यम से हो सकता था। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यह साधन मात्र परम्परा का अनुगमन नहीं था, संघर्ष श्रान्त-क्लान्त मानव को मनोवैज्ञानिक उपचारों द्वारा शमित करने की अनिवार्य आवश्यकता थी।

उपर्युक्त दोनों वर्गों से पृथक् संत-परम्परा के प्रतिनिधि - कबीर, नानक, दादू आदि के अनुकर्ता उदारवादी सन्त ईश्वर के अद्वैत को प्रमाणित करने में संलग्न थे जो दोनों -हिन्दू तथा मुस्लिम-संस्कृतियों के अद्वैतवाद तथा एकेश्वरवाद की सैद्धान्तिक धारणाओं के अनुरूप था। इन उपासकों के दर्शन की मूलभित्ति थी - ब्रह्म, जीव तथा जगत् की एकता; साधना के तत्व थे - जीवमात्र से सहज प्रेम, चतुर्वर्ण-अभेद, जगत् की दुःखात्मकता, संसार-त्याग तथा परमार्थाभिमुखता, जीवन में त्याग-तपस्या की अनिवार्यता, तत्व-चिंतन, आभ्यन्तरिक भक्ति, मुक्ति के लिए व्रत, तीर्थ रोजा-नमाज की आवश्यकता-विहीनता तथा जातपांत, अवतारवाद, मूर्तिपूजा आदि की निःसारता। मानवजीवन की चरम सार्थकता - इनके अनुसार - निर्गुण ब्रह्म में लीन होना - थी जो गुरु-साहाय्य पर अवलंबित थी। इन संतों के व्यक्तित्व का निर्माण हिन्दुओं के योग तथा सूफियों के प्रेम से निर्मित हुआ था।[2]

१- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० १८

2- वही- पृ० १९

रीतिकाल में कुछ नवीन संतों के द्वारा नवीन सम्प्रदाय भी प्रवर्तित हुए, इनमें से कुछ अधोलिखित हैं[1] :-

१- जगजीवन सम्प्रदाय

२-यारी सम्प्रदाय

३-दरिया सम्प्रदाय

४-पलटू सम्प्रदाय

५-शिवनारायण सम्प्रदाय

ये सम्प्रदाय भी निवृत्तिपरायण तथा सुधारवादी थे, अतः रीतियुगीन जनमानस तथा रीतिकालीन साहित्य को इन्होंने अधिक प्रभावित नहीं किया। इन सम्प्रदायों के मठाधीश भी युग-धर्म के अनुसार विलासिता में डूबे हुए थे। इन सम्प्रदायों में भी पूर्व-वस्तुसमष्टि का ही पिष्टपेषण हो रहा था।

जहां सगुण सम्प्रदाय आंतरिक और एकान्त साधना या मंदिर आदि की व्यवस्था में लगे रहे, वहां एक सीमा तक निर्गुण सम्प्रदाय समाजोन्मुख भी बने रहे। धर्म या जाति के नाम पर जो कुछ जागृति इस युग में दिखलाई पड़ती है उसका श्रेय बहुत कुछ इन सम्प्रदायों के तत्कालीन जागरण को ही जाता है।[2] अन्य सम्प्रदायों में उल्लेखनीय हैं -सतनामी, लालदासी, नारायणी आदि। धरणीदास तथा प्राणनाथ के अनुयायियों के पंथ का प्रचार-कार्य १८वीं शताब्दी तक चलता रहा। इनमें उल्लेखनीय संत हैं - जगजीवन, बुल्ला साहब, चरनदास तथा उनकी शिष्याएं -सहजो बाई तथा दया बाई। दूलनदास, भीखा, पलटूदास आदि साधक तो उन्नीसवीं सदी तक अपने पवित्र जीवन और मधुर बानियों से जनता का पथ प्रशस्त करते रहे। ये पंथ अभेद की आधार-शिला पर अवस्थित होने के कारण सुसंगठित ही नहीं थे, अपितु विरोधियों को कड़ा उत्तर देने की शक्ति भी रखते थे। औरंगजेब के समय सतनामियों की सामर्थ्य इतिहास की प्रसिद्ध घटना है। समाज के निम्नवर्ग में उद्भूत ये सन्त विवाहित, आडंबररहित तथा मिथ्याचार विरहित थे। ये उपेक्षित जनता के ही अवलम्ब नहीं थे, अपितु शनैः-शनैः सम्पन्न व्यक्ति भी इनसे दीक्षा-लाभ कर धनादि द्वारा उन्हें आदृत करने लग

१-रीतिकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - डा० वेंकटरमण राव - पृ०१६५

2- वही- पृ० १६६

गये थे जिससे ये सन्त भी विलास-वैभव की संकीर्ण वीथियों में विचरण करने लगे थे।[1]

उदारवादी हिन्दू संतों के उपर्युक्त पंथों के समानान्तर मुसलमानों के कई सम्प्रदाय भी प्रवर्तित थे, जिनमें सर्वाधिक प्रभावशाली शेख मुईनुद्दीन चिश्ती का चिश्तिया सम्प्रदाय था। अन्य लोकप्रिय सम्प्रदायों में निजामिया, नक्शबंदिया, कादिरिया, शत्तारिया इत्यादि गिनाए जा सकते हैं। हिन्दुओं के उक्त पंथों तथा इन सम्प्रदायों में कई बातों में अद्भुत साम्य दृष्टिगत होता है - दोनों का विश्वास था कि ईश्वर एक है पर उसके अनेक नाम हैं। दोनों समझते थे कि बिना किसी धार्मिक शिक्षक की शरण लिए मुक्ति प्राप्त करना कठिन है। आत्मा को पहचानने के लिए वे एक ही तरीकों का व्यवहार करते थे। दोनों ध्यान और समाधि के साधन, ज्ञानमार्ग के अनुभव और अवस्थाएं एक समान जानते थे, दोनों कपट, दिखावटी कर्मकाण्ड और पूजा-पाठ को, आदमी-आदमी के भेदों को- वह जन, धन या स्थिति चाहे किसी पर निर्भर हो - बुरा कहते थे। शान्ति और तपस्या में जीवन का एकमात्र आदर्श उन्हें आकृष्ट किए था। दोनों के हृदयों में इस संसार के त्याग की परमाकांक्षा थी और दोनों का उद्देश्य ईश्वर का प्रेम था। यह पवित्र धर्म मनुष्यों की आत्मा और चरित्र को ऊंचा उठाता था। इसके प्रभाव से समाज में सब वर्णों और जातियों के लोगों की स्वतंत्रता और बराबरी की समान इच्छा जागृत हुई। मनुष्य का स्त्रियों के प्रति भाव बदलने लगा। बहुत से सुधार के कार्य उठाए गए और हिन्दू-मुसलमानों में निकट का सम्पर्क स्थापित हुआ। इन सिद्धान्तों के मूल में पिष्टपेषण ही प्रतीत होता है। कबीर आदि प्रतिभावान् सन्तों की मान्यताओं की प्रतिच्छाया इनके सिद्धान्तों में प्रत्यक्ष है। डा०नगेन्द्र के अनुसार - कबीर की क्रान्तिदर्शी प्रतिभा, नानक और दादू की द्रवणशीलता और सुंदरदास की विद्वत्ता इनमें दुर्लभ थी। ये लोग तो वाणियों के प्रचारक-मात्र थे, स्रष्टा नहीं। प्रगति और सुधार का वह दुर्दम उत्साह, आहत आत्मा की वह पुकार जिसने पन्द्रहवीं शताब्दी में सामाजिक और धार्मिक क्रान्ति उपस्थित कर दी थी, इस पतन-काल में संभव नहीं थी।[2]

1- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० १९-20

2- वही- 20-21

४- सांस्कृतिक परिस्थितियां :-

किसी युग के सांस्कृतिक अध्ययन के अन्तर्गत सामान्यतया कृत विभिन्न कलात्मक, धार्मिक, साहित्यिक तथा सामाजिक प्रयत्नों का आकलन होता है;[1] परन्तु इससे पूर्व धार्मिक तथा सामाजिक पक्षों का विवेचन कर दिए जाने तथा इससे आगे साहित्यिक पक्ष का प्रस्तुतीकरण किए जाने के कारण यहां केवल रीतियुगीन कलात्मक प्रयत्नों पर एक दृष्टिपात् अपेक्षित है जिसके अन्तर्गत स्थापत्य कला, चित्र-कला तथा संगीतकला के सन्दर्भ में हुए प्रयत्न यहां प्रस्तुत हैं।

स्थापत्य-कला की दृष्टि से शाहजहां का काल चरम वैभव का प्रतीक था। उसके द्वारा निर्मित अनेक भवन, राज-प्रासाद, दुर्ग, उद्यान और मस्जिदें आगरा, दिल्ली, लाहौर, काबुल, काश्मीर, कन्धार, अजमेर, अहमदाबाद तथा अन्य स्थानों पर अवस्थित है।[2] शाहजहां-काल की इमारतें अकबरकालीन इमारतों की अपेक्षा भव्यता और मौलिकता में निम्न कोटि की हैं; परन्तु सरसता, रमणीयता, सम्पन्नता तथा कलापूर्ण अलंकृत शैली में उच्च कोटि की हैं;[3] फलस्वरूप शाहजहांकालीन इमारतें अत्यधिक संख्या में रत्न-जटित आभूषणों के समान है।[4] अकबरकालीन इमारतों का सौन्दर्य यदि विराट् है तो शाहजहां की इमारतों का सौन्दर्य सूक्ष्म और कोमल है; अकबरकालीन स्थापत्य में महाकाव्य की गरिमा और दिगन्त का विस्तार है तो शाहजहां का स्थापत्य अलंकृत गीतिकाव्य की रसात्मकता और सूक्ष्म चमत्कार की प्रतिमूर्ति है। सोने के रंग का मुक्त प्रयोग, नक्काशी की सूक्ष्मता तथा रत्नों और मणियों का कलापूर्ण जड़ाव, शाहजहानी इमारतों में विलक्षण है। हिन्दूप्रभाव जो अकबर-काल में प्रबल था, शाहजहां की इमारतों में लुप्त-सा हो गया था। शाहजहां के समय की प्रमुख इमारते हैं - दिल्ली के लाल किले में दीवाने-आम तथा दीवाने-खास, मोती मस्जिद और ताजमहल। संगमरमर से निर्मित दीवाने-खास में शाहजहां मयूर-सिंहासन पर बैठकर मुगल राजकुमारों, सामन्तों तथा विदेशी राजदूतों से व्यक्तिगत रूप से मिलता था। आगरे की मोती मस्जिद शाहजहां की वास्तुकला की पराकाष्ठा है। जामा मस्जिद, जो सर्वसाधारण की नमाज के लिए प्रयुक्त होती

१-रीतिकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि- डा० वेंकटरमण राव -पृ० २३

२- भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास - बी०एन०लूनिया - पृ० ३२८

३- वही

४- वही- पृ० ३२८

है मोती मस्जिद की अपेक्षा अधिक भव्य तथा गौरवमयी प्रतीत होती है। ताजमहल शाहजहाँ के समय की सबसे महत्त्वपूर्ण रचना है जिसका निर्माण तीन करोड़ रुपयों में 22 वर्षों में सम्पन्न हुआ था। अपनी सुन्दरता, दिव्यता, अलंकरण, रचनाकृति में यह विश्व की अद्भुत इमारतों में से एक माना जाता है।[1] शाहजहाँयुगीन स्थापत्य में नक्काशी-कला व चित्रण-कला की विशिष्टता है। यदि ताज में नक्काशी कला का आधिक्य है तो दीवान-ए-खास में चित्रण कला का। शाहजहाँ की अन्य प्रसिद्ध कला-कृति मयूर-सिंहासन है जिसे 'तख्ते-ताऊस' भी कहते हैं।[2] अजमेर में बनवाई गई जामा मस्जिद शाहजहाँ की सुरुचि का भव्य प्रतिफलन है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि शाहजहाँ के काल में मुगल-कला अपने उत्कर्ष की सीमा पर पहुँच चुकी थी।

शाहजहाँ के उपरान्त वास्तु-कला का पतन हो गया, क्योंकि अपनी कट्टर तथा अन्धधार्मिकता के कारण औरंगजेब ने शिल्पकला को प्रोत्साहित नहीं किया। उसकी कतिपय इमारतों में उसके व्यक्तिगत प्रयोग के लिए दिल्ली में बनवाई गई संगमरमर की एक छोटी-सी मस्जिद,[3] आगरा के किले में नगीना मस्जिद,[4] काशी के विश्वनाथ मंदिर के ध्वंसावशेषों पर निर्मित मस्जिद तथा लाहौर में बादशाही मस्जिद -उल्लेखनीय है। कला की दृष्टि से इन इमारतों का स्थान निम्नकोटि का है।

हिन्दू-नरेश भी कला को पर्याप्त प्रश्रय देते थे। उन्होंने भी राजप्रासाद, दुर्ग, मंदिर आदि निर्मित कराए थे। उस युग में हिन्दुओं की भवन-निर्माणकला में विशेष उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। हिन्दू-नरेशों और अमीरों ने अपनी राजधानियों में जो बड़े-बड़े राजप्रासाद बनवाए वे दीवान-ए-खास, दीवान-ए-आम, शीशमहल और शाही महलों की बारादरी की अनुकृति थे और फलस्वरूप उनकी शिल्पकला और प्राचीन हिन्दू-भवनों और मुगल-महलों -दोनों की कला से भिन्न थी। इसमें राजपूत और ईरानी प्रभाव का

1-भारतीय सभ्यता और संस्कृति का विकास - बी0एन0लूनिया - पृ0 329

2- वही- पृ0 330

3- वही- पृ0 330

4- ब्रज का इतिहास - प्रभु दयाल मीतल - पृ0 223

समन्वय था । इस युग की हिन्दू-भवन-निर्माणकला के श्रेष्ठ नमूने वीरसिंह बुन्देला का विशाल महल, बीकानेर का दुर्ग और राजप्रासाद, उदयपुर के भवन और झील महल, जोधपुर के दुर्ग और राजप्रासाद, अजमेर के महल और झील-महल हैं । मुसलमानों का अनुकरण कर हिन्दू-नरेश भी अपनी छतरियां और समाधियां बनवाने लगे थे । सूरजमल, छत्रसाल व उनकी रानी की छतरियां इसके उदाहरण हैं ।[1]

प्रारम्भिक मुगलों की धार्मिक सहिष्णुता के कारण हिन्दू-राजाओं, सामन्तों और व्यापारियों ने प्राचीन मंदिरों का जीर्णोद्धार किया तथा नवीन मंदिरों का निर्माण कराया । इन मंदिरों में सबसे प्रसिद्ध वीरसिंह का मंदिर था जिसे शाहजहां ने नष्ट कर दिया था । उत्तरभारत के बहुसंख्यक बड़े-बड़े मंदिर जो आज भी विद्यमान है, इसीयुग में बने थे ।[2]

दक्षिण में इस युग के बीजापुर तथा गोलकुण्डा के सुलतानों के सुन्दर उद्यान, रमणीय राजप्रासाद, सुन्दरतम मसजिदें तथा मकबरे सुलतानों की शिष्ट अभिरुचि तथा मुस्लिम शैलियों के सुन्दर समन्वय की भावना का प्रदर्शन करते हैं । गोल गुम्बद, इब्राहीम रोजा, ताज सुलताना का मकबरा, आदिलशाह द्वितीय का मकबरा, गगनमहल, आसार महल, सतमंजिल व मिथारी महल ने बीजापुर को दिल्ली व आगरा के समान ही वैभव प्रदान किया था । इसी प्रकार कुली कुतुबशाह का मकबरा, पांच मस्जिदें और राजमहलों ने गोलकुण्डा को वह अपूर्व सौन्दर्य प्रदान किया था जो किसी भी रूप में बीजापुर के सौन्दर्य से कम न था ।[3]

भारतीय चित्रकला के पुनर्जागरण का श्रेय मुगलों को है । मुगल-युग की चित्रकला भारतीय तथा ईरानी तत्वों का समन्वय है । अकबर के राजकाल में भारतीय-चीनी-ईरानी कला की विशिष्टताएं भारत की तत्कालीन चित्रकला-शैलियों की रचनाओं में सम्मिश्रित होकर घुलमिल गई थीं । ये शैलियां गुजरात, राजस्थान, विजयनगर, बीजापुर अहमदनगर आदि में प्रचलित थीं । मुगलकालीन चित्रकला अकबर के समय में फली-फूली

१-भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास - बी०एन०लूनिया - पृ० ३३१

2- वही

3- वही-

शाहजहाँ के वैभवकाल में उसका उच्चतम उत्कर्ष हुआ और जहाँगीर के समय में भी वह अपनी चरम पराकाष्ठा को प्राप्त कर चुकी थी ।[1] जहाँगीर के चित्र-कर्तृत्व तथा तद्युगीन चित्रकला की परिपक्वता और पूर्णता के कारण उसका युग मुगल-चित्रकला का स्वर्णयुग कहा जाता है ।[2] पर्सी ब्राउन का मत है कि जहाँगीर के साथ ही मुगलकला की अन्तरात्मा का भी अन्त हो गया ।[3] शाहजहाँकालीन चित्रकला शाही वैभव, धनसम्पन्न सामन्तों, उनकी सभाओं, अमूल्य वस्त्राभूषण आदि के चित्रण तक ही सीमित थी । इस चित्रकारी में अलंकरण की प्रचुरता है । शाहजहाँ के दरबारी चित्रों में श्रेष्ठ रंगों और स्वर्ण के प्रयोग की अपनी विशिष्टता है । इस काल के चित्र अपरिमित हैं पर उनमें गुणात्मक हीनता है । चित्रों में भाव-व्यंजना की क्षीणता तथा मुख-मुद्रा की आंतरिक अभिव्यक्ति में सजीवता का अभाव है । चित्रों के व्यवसाय-बाहुल्य तथा व्यक्ति-चित्रों के प्रतिलिपिकरण के कारण चित्रकला में ह्रास हो गया । राय कृष्णदास ने अपने ग्रंथ 'भारत की चित्रकला' में मुगलकालीन चित्रकला का विवेचन करते हुए कहा है कि इस युग की चित्रकला में अत्यधिक सूक्ष्मता, रंगों की दिव्यता, अंग-प्रत्यंगों का प्रदर्शन तथा हाव-भावपूर्ण मुद्राओं की स्पष्टता होने पर भी शाही दरबार के शिष्टाचार की जटिलता तथा शाही प्रभुत्व की इतनी अधिकता है कि इन चित्रों में एक प्रकार की प्राणशून्यता-सी दृष्टिगोचर होती है ।[4] शाहजहाँ-काल के प्रमुख चित्रकार मीर हाशिम, अनुपमित्र तथा चित्रमणि थे ।[5]

औरंगजेब की धर्मान्धता ने चित्रकला पर आघात किया । उसके राज्यकाल में अन्य कलाओं के साथ चित्रकला का भी ह्रास हुआ क्योंकि वह कला को राजाश्रय देना धर्म के पवित्र नियमों के विरुद्ध मानता था ।[6] ऐसा कहा जाता है कि बीजापुर के आसार

१- भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास - बी०एन०लुनिया - पृ० ३३२

२- भारत का इतिहास - डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव - पृ० ६२६

३- भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास - बी०एन०लुनिया - पृ० ३३४

४- वही- पृ० ३३५ ५- वही- पृ० ३३५

६- रीतिकाव्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि - डा० शिवलाल जोशी - पृ० १८९

महल के चित्रों को उसने कुरूप कर नष्ट कर दिया था एवं सिकन्दरा मे अकबर के मकबरे की आकृतियों पर सफेदी पुतवा दी थी[1]। इतना होने पर भी चित्रकार पूर्णतया विलीन नहीं हुए थे। औरंगजेब के युद्धों और दुर्गों के घेरों के चित्र आज भी विद्यमान हैं जो यह प्रमाणित करते हैं कि उसने पूर्ण रूप से कला को निरुत्साहित नहीं किया था[2]। कहा जाता है कि समय मिलने पर वह अपने विद्रोही पुत्र मुहम्मद सुलतान के चित्रों का निरीक्षण करता था[3]। औरंगजेब की मृत्यु के साथ मुगल-चित्रकला का अवशिष्ट वैभव भी विनष्ट हो गया[4]।

यद्यपि मुगलकालीन चित्रों के उपर्युक्त विविध विषय रहे हैं तथापि न उनमें आध्यात्मिक संवरण की गहनता है और न गार्हस्थ्य का सारल्य। यद्यपि मुगल-कला में भारतीय वातावरण प्रतिबिंबित है पर उसमें भारतीय जीवन की भावनाएं अनभिव्यक्त हैं। इस चित्रकला में न तो जनता का जीवन चित्रित है और न उसका हृदय ही। इससे तत्कालीन समाज की दशा का सम्यक् बोध नहीं होता है। व्यक्ति-चित्रों मे आकृति के अंकन, व्यक्तित्व के स्पष्टीकरण और मुख तथा मस्तिष्क बनाने में चित्रकारों ने सूक्ष्मता तथा पटुता प्रदर्शित की है, परन्तु इस शैली में भाव तथा जीवन का अभाव है। यही प्रवृत्ति हमें तत्कालीन काव्य तथा साहित्य में भी परिलक्षित होती है। तत्कालीन कला की कृत्रिमता, जड़ता तथा प्राणशून्यता ने सौन्दर्य के महत्त्व को गिरा दिया[5]।

हिन्दुओं की प्राचीन चित्र-कला की शैली मुगल शासन के अन्तर्गत विकसित नवीन शैली में विलीन नहीं हुई अपितु ईरानी और मुगल शैलियों के सम्पर्क के फलस्वरूप इसका पुनर्जागरण हुआ। यह शैली भारत के राजपूताना तथा पंजाब में जन्म-ग्रहण कर राजस्थान तथा मध्यभारत के हिन्दू-नरेशों की राजसभाओं में राजपूत चित्रकला के रूप मे सम्मान प्राप्त कर रही थी। इसमे हिन्दू-चित्रण-परम्परा का प्रारंभिक रूप देखा जा सकता है। इसे अजन्ता-शैली से उत्पन्न मानागया है। राजस्थान में जयपुर इसका प्रधान केन्द्र रहा है, इस कारण इसे राजस्थानी कहा गया है। इस शैली के रूप बीकानेर, जोधपुर, उदयपुर आदि स्थानों से प्रभावित देखे जा सकते हैं। कांगड़ा तथा बसोहली

१-रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० २६

2- रीतिकाव्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि - डा० शिवलाल जोशी - पृ० १८९

3- वही- पृ० १९० 4- वही- पृ० वही

5- वही- पृ० १९०-९१

शैलियाँ इसी की एक शाखा-मात्र मानी जा सकती हैं।[1] विषय-वस्तु की दृष्टि से यह शैली प्रजातंत्रीय तथा धार्मिक थी जिसमें सामान्य भारतीय जीवन और लोक-संस्कृति ने अभिव्यक्ति प्राप्त की। इसके अतिरिक्त भारतीय धार्मिकता का भी समावेश इन चित्रों में मिलता है। साथ ही इनमें धार्मिक उत्सवों, व्रत आदि के चित्र हैं।[2] कृष्ण तथा शिव संबंधी चित्रों की भी इस शैली में कमी नहीं है। संगीत शास्त्र से प्रभावित होकर रागमालाओं के भी चित्र रचे गए हैं। सामान्य जीवन की घटनाओं तथा धार्मिक चित्रों में पुराणों एवं महाभारत आदि का प्राबल्य राजस्थानी शैली में है।[3]

मुगल-शैली सर्वथा भौतिक और राजसी थी। इसके विपरीत राजस्थानी शैली का आधार आध्यात्मिक था और उसका जनजीवन से घनिष्ठ सम्पर्क था। जनता ने इस शैली की सृष्टि अपने सुख-दुःख, आनंद-विनोद की अभिव्यक्ति हेतु की थी। परन्तु बाद में मुगल-शैली से आदान-प्रदान होने पर इसमें राजसी तत्वों का समावेश हो गया और जयपुर की चित्रकला में जयपुर की दरबारी संस्कृति की ही भाँति पर्याप्त फारसीपन आ गया।

राजपूत शैली के अन्य विषय कृष्ण-लीला, नायिकाभेद और बारहमासा रहे हैं। कृष्ण-चरित्र विशेषतः रास-लीला का जनता में उस समय काफी प्रचार था, परन्तु जनता की इस मनोवृत्ति में धार्मिकता नहीं थी। राधा-कृष्ण लौकिक प्रेमी-प्रेमिका अथवा नायक-नायिका के प्रतीक मात्र थे। बुन्देलखण्ड में पहले केशव ने छन्दों को चित्रबद्ध किया, फिर बाद को दतिया राज्य में राजस्थानी शैली की शाखा - बुन्देलखण्डी शैली में देव के 'अष्टयाम' बिहारी की सतसई और मतिराम के 'रसराज' की चित्र-व्यंजना हुई। इनका मुख्य रस शृंगार ही है। शैली में आलंकारिकता की प्रधानता है और आँखों के चित्रांकन में अतिशयोक्ति का सर्वत्र प्रयोग हुआ है। इन चित्रों में भावाभिव्यक्ति शिथिल है, पात्रों की मुख-मुद्राएं भावशून्य हैं, परन्तु स्त्री-चित्रों में आँखें खोली हैं।[4]

१- ~~रीतिकाव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - डा० ... - पृ०~~ संस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिंह दिनकर - पृ० ३२३

२- इंडियन पेंटिंग - पर्सी ब्राउन - पृ० १००

३- रीतिकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - डा० वेंकटरमण राव - पृ० ४१५

४- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० सं० २७

राजस्थानी शैली की ही समवर्ती एक अन्य शैली भी इस युग में विद्यमान थी – वह थी कांगड़ा शैली। पंजाब की हिमालय-घाटियों, टेहरी गढ़वाल और जम्मू की उपत्यकाओं में इस कला की शाखाएं फैली। यह शैली मूलतः भावात्मक शैली है। इसमें यथार्थता को भाव के आश्रित रखा गया है, अतएव इसमें उन्मुक्तता और हार्दिकता पूर्वोक्त दोनों शैलियों की अपेक्षा कहीं अधिक है। इसका झुकाव रहस्यात्मकता की ओर है। इन चित्रों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इनमें प्रायः सभी रसों और भावों की अभिव्यंजना मिलती है। राय कृष्णदास 'भारत की चित्रकला' में लिखते हैं – देवताओं का ध्यान, रामायण, महाभारत, भागवत, दुर्गासप्तशती इत्यादि सभी पौराणिक साहित्य, ऐतिहासिक गाथा, लोक-कथा, केशव, बिहारी, मतिराम, सेनापति आदि हिन्दी के प्रमुख एवं अन्य साधारण कवियों की रचनाओं से लेकर जीवन की दैनिक चर्या और शबीह तक ऐसा एक भी विषय नहीं जिसे उन्होंने छोड़ा हो।[१]

कांगड़ा शैली का केन्द्रीय भाव प्रेम ही था। चाहे चित्र का आधार कोई कथानक हो या ऋतु-चित्र हो या राग-रागिनियां हों, सभी में नारी और पुरुष का प्रेम व्याप्त है। इस प्रेम और शृंगार के वातावरण में नारी का अंग-सौन्दर्य सर्वप्रमुख है। रात्रि के रमणीय वातावरण में अथवा मेघाच्छन्न आकाश की छाया में प्रेमी-प्रेमिका के अभिसार अथवा थके हुए पथिकों की विनोद-वार्ता तथा जंगल के दृश्य अद्भुत हैं। इनमें छाया-प्रकाश का जैसा सुन्दर प्रयोग हुआ है वैसा मुगल-चित्रों में दुर्लभ है। आलोचकों ने इस शैली के विकास को भारतीय चित्रकला का परमोत्कर्ष मानते हुए इसकी मौलिक अभिव्यंजना और सूक्ष्म कारीगरी की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।[2]

उपर्युक्त विवरण से रीतियुगीन चित्रकला की दो प्रमुख धाराओं का परिचय प्राप्त होता है – एक थी राजसी, जो जनजीवन से स्वाभाविक पोषण न पाकर केवल राजाश्रय पर अवलंबित थी। देश की राजनीतिक परिस्थिति के कारण यह शैली ह्रासोन्मुख थी। इससे इतर शैली जनप्रिय थी जो तत्कालीन जनसमूह की ही भांति अब भी अपनी चेतना बनाये हुए थी। इसमें जीवन की ताजगी थी। इन द्विविध शैलियों के अनुरूप रीति-

---

१– रीतिकाव्य की भूमिका – डा० नगेन्द्र – पृ० २७

२– वही– पृ० २८

युगीन काव्य की रीतिबद्ध और रीतिमुक्त शृंगारिक प्रवृत्तियां चल रहीं थीं ।[1]

अन्य कलाओं के समान ही मुगल सम्राटों ने संगीत-कला को भी प्रश्रय प्रदान किया था । बाबर, हुमायूं, सूरवंश के बादशाहों में इस्लामशाह तथा आदिलशाह, अकबर के नाम इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं । अकबर नक्कारा बहुत अच्छा बजा लेता था । किंवदन्ती है कि उसने कतिपय रागों की सृष्टि की थी । उसके संगीत-प्रेम ने उसकी राजसभा में हिन्दू, ईरानी, तूरानी तथा काश्मीरी संगीतज्ञों को आकर्षित कर लिया था । अकबर के दरबार के गायकों में ग्वालियरका प्रसिद्ध गायक तानसेन था जिसके संबंध में अबुलफजल ने लिखा है - भारत में उसके समान गायक एक सहस्र वर्षों में नहीं हुआ है ।` अकबर के शाही दरबार में नियुक्त मालवा के बाजबहादुर के विषय में कहा जाता है कि हिन्दी के गीतों में तथा संगीतशास्त्रों में अपने युग का सबसे निपुण व्यक्ति था ।[2] इसी युग में संस्कृत के संगीतशास्त्र के ग्रन्थों का फारसी मे अनुवाद हुआ तथा तराना, ठुमरी, गजल तथा कव्वाली आदि नवीन रागों का समारम्भ हुआ । जहांगीर तथा शाहजहां भी संगीतप्रेमी थे । शाहजहां स्वयं कतिपय मधुर तथा सुखद गीतों का रचयिता था तथा वाद्य और गेय-दोनों प्रकार के संगीत को सुनता तथा समझता था । उसके प्रमुख हिन्दू संगीतज्ञों में जगन्नाथ और बीकानेर के जनार्दन भट्ट विशेष उल्लेखनीय हैं । यही नहीं, उसके समय मे तानसेन के वंशज लाल खां ने भी तानसेन की संगीतविषयक सूक्ष्मताओं की सृष्टि करते हुए अलंकरण मे वृद्धि की । डा० नगेन्द्र ने लिखा है - रीतियुग में संगीत कला की स्थितिकिसी प्रकार भी संतोषजनक नहीं कही जा सकती । कला के अन्य रूपों की भांति यहां भी मौलिकता का सर्वथा अभाव मिलता है ।[3]

शाहजहां की मृत्यु के बाद संगीत-कला का भी अपकर्ष हो गया । औरंगजेब का युग संगीत के चरम अपकर्ष के लिए प्रसिद्ध है । उसके युग में संगीत का जनाजा ही निकल गया । संगीतशास्त्र से पूर्ण अभिज्ञ होते हुए भी वह गाने-बजाने का प्रतिरोध करता था । नृत्य तथा संगीत को वह अधार्मिक कृत्य समझता था । इसी कारण से उसने दरबार से

१-रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० २८

२- वही भारतीय सभ्यता और संस्कृति-का विकास-बी०एन०लूनिया - पृ० ३३८

३- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० २८

संगीत का बहिष्कार कर दिया परिणामस्वरूप उसके दरबार के संगीताचार्य प्रान्तीय नरेशों तथा नवाबों के पास चले गए।[1] उसके अनुसार एक इस्लामी राज्य में गवैयों की आवश्यकता नहीं थी। कुछ विद्वानों के अनुसार औरंगजेब जितना कलाविरोधी और अरसिक प्रसिद्ध है उतना वह नहीं था। आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय के अनुसार औरंगजेब संगीत का द्रोही नहीं, रागरंग, भ्रष्ट और अश्लील गानों का शत्रु था।[2] आचार्य बृहस्पति का कथन है कि पीर, फकीर या संत के रूप में अपने-आपको प्रसिद्ध करने का औरंगजेब का प्रयत्न राजनीतिक था और उसी भोंक में उसने अपने दरबार में संगीत का विरोध या निषेध किया था; परन्तु उसके अंतःपुर की बात और थी वहां रागरंग और संगीत की धूम रहती थी।[3] भले ही औरंगजेब ने संगीत का निषेध किया हो; किन्तु उसके दरबार से संगीत का पूर्ण बहिष्कार नहीं हुआ था। उसके काश्मीरी सूबेदार द्वारा रचित `राग दर्पण` से सिद्ध है कि औरंगजेब के दरबार में खुशहाल खां, रसखसेन, सुर्खसेन और करवाई आदि संगीतज्ञ थे। स्वयं औरंगजेब द्वारा रचित ध्रुपद मिलते है जिससे उसका संगीत-प्रेम प्रकट होता है।[4] यह भी सम्भव है कि ये स्वयं औरंगजेब के न होकर अन्य के द्वारा रचित हों; परन्तु इनके प्रचार से औरंगजेब की संगीतविषयक अभिरुचि का संकेत अवश्य मिलता है। इस युग के उल्लेखनीय संगीतकार हैं- भागदत्त, जो राजा अनूपसिंह के आश्रय मे रहते थे।[5] औरंगजेब के बाद मुहम्मद शाह रंगीले ने भी संगीत को प्रश्रय देकर पुनरुज्जीवित किया। दिल्ली का श्रीहत दरबार गायक तथा वीणा-वादक अदारंग तथा सदारंग के ख्यालों से गूंज उठा। स्वयं मुहम्मद शाह के रचे हुए ख्याल के अनेक गीत उपलब्ध है, जिनमें `मुहम्मदशा` अथवा `सदा रंगीले मुहम्मदशा` नाम की छाप मिलती है।[6] इसी समय शोरी मियां ने टप्पा-गायन प्रचलित किया जिसमें गले से दानेदार तान निकालने की अद्भुत विशेषता है। मुहम्मदशाह के समय में हिन्दू और फारसी शैलियों के सम्मिश्रण से और भी कतिपय मधुर संगीत शैलियों और ध्वनियों की

१- भारतीय सभ्यता और संस्कृति का विकास - बी०एन०लूनिया - पृ० ३३१
२- (क) ब्रज का इतिहास - प्रभुदयाल मीतल - पृ० 222
(ख) मुगल बादशाहों की हिन्दी- आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय - पृ० ४६
३- धर्मयुग -२५ अक्टूबर १९५९ ई० - औरंगजेब का संगीत-प्रेम
४- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० २८
५- संगीतराग कल्पद्रुम - प्रथम भाग - कृष्णानंद व्यास - ब्रज का इतिहास - पृ. 222 पर उद्धृत -
६- ब्रज का इतिहास - प्रभुदयाल मीतल - पृ० २२५

सृष्टि हुई जिनमें अधिकांशतः श्रृंगारिक हैं। श्रीनिवास जिन्होंने ` रागतत्त्वविबोध ` नामक ग्रन्थ लिखा उत्तर भारत में मध्ययुगीन संगीत के सबसे अंतिम ग्रन्थकार हैं।[1] मुगल-काल के संगीतशास्त्र के अन्य उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं – मेषकर्ण की रागमाला, सोमनाथकृत रागविनोद, दामोदर मिश्र कासंगीत-दर्पण। ई० १५७४–१७०१ के मध्य रचित भावभट्ट के ` अनूप संगीत विलास ` और अनूप संगीत रत्नाकर ` रागकल्पद्रुम का भी अपना महत्त्व है।[2]

उपर्युक्त संस्कृत-संगीतग्रन्थों के समानान्तर हिन्दी में भी संगीत की शास्त्रबद्ध रचनाएं हुईं। हिन्दी में इस पद्धति के सर्वप्रथम संगीतकार तानसेन थे। इनके पश्चात् देव कवि का ` राग-रत्नाकर ` हरिवल्लभ का ` संगीतदर्पण ` सैयद अब्दुल वली का `राग माला `आदि हिन्दी-संगीत में उल्लेखनीय हैं।[3] दक्षिण में मराठा राजा तुलजेन्द्र भोसले। १८१०–४४। ने ` संगीतसारामृतम् ` और ` रागलक्षणम् ` दो पुस्तकें लिखीं। तदनन्तर विष्णुशर्मा ने ` अभिनवराग मंजरी ` ग्रन्थ लिखा। उत्तर भारत में एक रईस मुहम्मद रजा ने ` नगमाते आसफी ` नामक संगीत पुस्तक की रचना की। जयपुर के राजा प्रतापसिंह ने ` वृहत् संगीत समारोह कर देश के प्रसिद्ध आचार्यों के संगीतविषयक मतों का संग्रह कर ` संगीत सार ` ग्रन्थ सम्पादित कराया। इससे भी अधिक महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ हैं – कृष्णानंद व्यास कृत ` राग-कल्पद्रुम` जो सं० १९०० के लगभग चार खण्डों में प्रकाशित किया गया। यह तत्कालीन गेय पदों का ` विश्वकोश ` समझा जा सकता है। विलास के पंक से पंकिल अवध के अंतिम नवाब वाजिदअली शाह भी अच्छे संगीतकार थे। संगीत की खसीली ठुमरी उन्हीं का आविष्कार है जिसे भारतीय संगीत प्रणाली का क्षैण रूप माना गया है।[4]

इस प्रकार अन्य कलाओं की भांति संगीत के क्षेत्र में भी विराट् और गम्भीर तत्त्व का अभाव तथा एक प्रकार की स्त्रैण श्रृंगारिकता का प्रभाव परिलक्षित होता है। रीतियुग में संगीत की प्रवृत्ति भी मौलिक उद्भावना की ओर न होकर अलंकर और खसीले-पन की ओर थी।[1]

१–रीतिकाव्य की भूमिका – डा० नगेन्द्र पृ० २९   २– वही– पृ० वही

३– वही–   ४–वही– पृ० वही

१– रीतिकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि – डा० वेंकटरमण राव – पृ० ४३४

४- साहित्यिक परिस्थितियाँ :-

रीतिकालीन सामाजिक परिस्थितियों के प्रस्तुतीकरण से यह स्पष्टतया सिद्ध हो जाता है कि शासक वर्ग की विलास-प्रियता, वैभवलिप्सा, कृत्रिमता, प्रदर्शनकारी प्रवृत्ति का प्रभाव सामान्य जनजीवन पर प्रभूत रूप से पड़ा। आभिजात्य या सामन्तीय संस्कृति के अनुसरण के कारण जनजीवन में भी ये प्रवृत्तियाँ प्रविष्ट हो गईं और समाज पतनोन्मुख हो चला। समाज के सर्वविध ह्रास के कारण भोगपरायणता को जो प्रश्रय मिला उससे नारी का असम्मान किया जाने लगा वह भोग-विलास की सामग्री समझी जाने लगी। नारी का अन्त: सौन्दर्य तिरस्कृत और बाह्य मांसल तत्त्व उपयुक्त होने लगा। पुन: समाज में अन्ध-विश्वास, पराकाष्ठा को पहुंच गया। इसके परिणामस्वरूप सात्त्विक जीवन, सच्चरित्रता, आत्मगौरव, स्वतंत्र-चिन्तन, राष्ट्रीय सम्मान अधोगति को प्राप्त हुए। समाज के आचार में कुरीतियाँ तो उत्पन्न हुई हीं स्वार्थप्रियता जीवन का लक्ष्य बन गई।[1] ऐसे समय में राज्याश्रय में काव्यरचना करने वाले कवियों के साहित्य में जो प्रवृत्तियाँ उभर कर आईं उन्हें निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जाता है :-

प्रवृत्तियाँ

१-रीत्यनुगामित्व - संस्कृत-रीतिसम्प्रदाय के आचार्य वामन के अनुसार `रीति` शब्द से अभिप्राय काव्यरचना की उस विशिष्ट शैली से है जिसमें शब्द तथा अर्थ के बीस गुणों तथा वैदर्भी, पांचाली, गौड़ी काव्यरीतियों का समावेश हो और इस आधार पर वामनादि द्वारा रीति उसी प्रकार काव्य की आत्मा मानी गई जिस प्रकार रस और ध्वनि। ऐसी दशा में रीतिशास्त्र के अन्तर्गत केवल उन्हीं ग्रन्थों की चर्चा होनी चाहिए थी जिनमें रीति को काव्य की आत्मा मानकर काव्य के स्वरूप का विश्लेषण किया गया है; परन्तु हिन्दीसाहित्य के रीतिसाहित्य के अन्तर्गत उन सभी ग्रन्थों का समावेश किया है जिनमें अलंकार, रस, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि के स्वरूप, भेद, अवयव आदि के पृथक्-पृथक् लक्षण-उदाहरण अथवा एकत्र लक्षण-उदाहरण दिए गए हों।[2] इस प्रकार हिन्दी में `रीति`

१- हिन्दी-साहित्य का रीतिकाल-पुनर्मूल्यांकन - यज्ञदत्त शर्मा - पृ० ११

२- हिन्दी-रीतिसाहित्य - डा० भगीरथ मिश्र - पृ० ३२-३३

अभिधान व्यापक अर्थ में ग्रहण किया गया है- अर्थात् काव्य के सम्पूर्ण अंगों पर विभिन्न संस्कृत काव्यशास्त्रियों द्वारा रचित वाङ्मय का हिन्दी में लक्षण-उदाहरणों के रूप में उपनिबन्धन। रीतिकाल में काव्यरचना की दृष्टि से चार प्रकार के ग्रन्थकर्ता हुए हैं - प्रथम वे जिन्होंने केवल काव्यांगों पर ही शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किए, द्वितीय वे जो आचार्य तथा कवि - दोनों ही रूपों में ग्रन्थ-रचना करते रहे, तृतीय वे जिन्होंने प्रचलित काव्यशास्त्र की पद्धति का आधार लेकर काव्यरचना की पर काव्यशास्त्र का कोई ग्रन्थ नहीं रचा, चौथे वे जिन्होंने रीतिकाल की शृंगारिक वृत्ति को तो ग्रहण किया किन्तु काव्य-रीति अथवा काव्यशास्त्र का प्रतिपालन नहीं किया। पहली श्रेणी के आचार्यों में चिंतामणि, जसवन्तसिंह, मतिराम, सुरतिमिश्र, भिखारीदास, प्रतापसाहि और पद्माकर माने जा सकते हैं। द्वितीय श्रेणी में केशव, देव, भूषण, सुखदेव मिश्र, बेनी प्रवीन, ग्वाल, हृदयेश आदि गिने जा सकते हैं। तृतीय श्रेणी में बिहारी, वृन्द, लाल, सूदन तथा बैताल को रखा जा सकता है। चौथी श्रेणी में घनानंद, बोधा, ठाकुर, द्विजदेव, आलम तथा शेख परिगणित होते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि रीतिकालीन मूल प्रवृत्ति एक बंधी हुई परम्परा पर काव्यरचना करने की रही है।[1]

<u>२-रीति-निरूपण अथवा आचार्यत्व</u> :— रीति-निरूपण की दृष्टि से कवियों के कई वर्ग दृष्टिगत होते हैं - ।१। इस श्रेणी में आने वाले कवियों। आचार्यों ने काव्यप्रकाश की निरूपण-शैली को ग्रहण कर काव्य के सभी अंगों पर थोड़ा-बहुत प्रकाश डाला है, ।२। शृंगार तिलक, रसमंजरी आदि शृंगाररसमयी नायिका-भेद वाली शैली को अपना कर इस श्रेणी के कवियों ने केवल शृंगार के विभिन्न अंगों, विशेषकर नायिका-भेद का ही निरूपण किया है, ।३। तृतीय शैली 'चन्द्रालोक' कर्ता की संक्षिप्त अलंकार-निरूपण-शैली है जिसमें अलंकारों के भी संक्षिप्त लक्षण और उदाहरण दिए गए हैं।[2] यद्यपि तीनों शैलियों के अनुकर्ता ये कवि रीतिशास्त्र के गम्भीर अध्येता थे तथापि उनके द्वारा प्रस्तुत लक्षण कहीं-कहीं अस्पष्ट और भ्रामक है। अलंकारों का पार्थक्य-प्रदर्शन भी स्वच्छ नहीं है। यह दोष संस्कृत काव्याचार्यों में भी देखा जा सकता है। इन आचार्यों में अपेक्षित काव्यमर्मज्ञता तो थी, परन्तु उसे व्यक्त करने का उपयुक्त गद्य का माध्यम उन्हें

१-रीतिकाव्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि - डा० शिवलाल जोशी - पृ० ३०६

२- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० १४२-४३

प्राप्त नहीं था जिससे अस्पष्टता तथा दुरूहता रह गई । ये कवि आचार्य की कोटि में रखे जा सकते हैं। द्वितीय श्रेणी में वे ग्रन्थ रखे जा सकते हैं, जिनका मुख्य वर्ण्य-विषय श्रृंगार है । इस पद्धति का आधार रुद्रभट्ट का ` श्रृंगार तिलक ` और विशेषकर भानुदत्त की ` रसमंजरी ` तथा ` रसतरंगिणी ` में मिलता है । केशव की ` रसिकप्रिया ` मतिराम के ` रसराज ` आदि ग्रन्थों में श्रृंगार की रसराज के रूप में स्थापना की गई है । कुछ कवियों ने अन्य रसों का समाहार श्रृंगार में कुशलता से किया है जब कि मतिराम तथा हृदयेश ने अन्य रसों की सर्वथा उपेक्षा कर अपने रसराज ` तथा ` विश्वक्सकरन ` में केवल श्रृंगार का ही वर्णन किया है । हृदयेश ने मतिराम का अनुकरण तो किया है; पर अपने ग्रन्थ में इन्होंने अवान्तर प्रवृत्तियों तथा विषयों का भी प्रतिपादन किया है । प्राधान्येन इन ग्रन्थों में श्रृंगार के संयोग-वियोग - दोनों पक्षों का सम्यक् निरूपण मिलता है । ऐसे कवियों के काव्य में रीति और श्रृंगारिकता दोनों ही मूल प्रवृत्तियों का समन्वय उपलब्ध होता है । इनकी प्रतिभा के कारण इनका रीति-निरूपण स्वच्छ तथा प्रौढ़ रहा है । शक्ति, व्युत्पत्ति तथा अभ्यास - इन तीनों का उचित संयोग इन कवियों के व्यक्तित्व में था । संस्कृत के ग्रन्थों का अनुवाद इन्होंने प्रायः लक्षणों तक में नहीं किया, उदाहरणों की बात तो दूर रही । लक्षण की अपेक्षा इनका ध्यान लक्ष्य पर अधिक था । इसी कारण ये रस-सिद्ध कवि रीति काल के सच्चे प्रतिनिधि माने जाते हैं । तीसरी शैली `चन्द्रालोक ` और ` कुवलयानन्द ` के अनुकरण पर अलंकार-निरूपण की संक्षिप्त शैली है । इस शैली के कवियों का लक्ष्य स्वीकृत रूप से अलंकार-निरूपण ही है, काव्यरचना नहीं । इसीलिए उदाहरणों को अनावश्यक महत्त्व इनमें नहीं दिया गया । इन कवियों के कृतित्व की मौलिकता के सन्दर्भ में डा० नगेन्द्र का अभिमत है - हिन्दी के इन समीक्षक कवियों ने हमारे रीति-विवेचन में कोई मौलिक योग नहीं दिया । इसका कारण स्पष्ट है । संस्कृत का रीतिशास्त्र अठारहवीं शताब्दी तक इतना व्यापक और पूर्ण हो चुका था कि उसका कम से कम विस्तार अब सम्भव नहीं था ।[१] तत्कालीन संस्कृत के सभी आचार्य पिष्टपेषण करते हुए कविशिक्षा के सरल ग्रन्थ ही तैयार कर पाए थे । संस्कृत की इस पतनोन्मुख परिपाटी को अपने अनुकूल पाकर उसका अनुसरण करना ही रीतिकवियों को

१- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० १६२

सुगम प्रतीत हुआ । लक्षण-उदाहरणों की व्यवस्था तथा काव्य के सर्वांग-निरूपण की दृष्टि से इन आचार्य-कवियों का अपना योगदान स्वीकार करना पड़ता है जिसके परिणाम-स्वरूप संस्कृत की यह गम्भीर विवेचन-परम्परा हिन्दी में अवतरित हुई । मात्र शृंगाररस तथा अलंकार-क्षेत्र को समृद्ध करने वाले कवियों का भी प्रदेय उल्लेखनीय है । इन सभी की चिन्तन-पद्धति स्वच्छ, सरल और विवेकयुक्त है यद्यपि इसमें मौलिकता का अभाव है।[1]

3-शृंगारिकता :— रीतिकाव्य की शृंगारिकता की प्रवृत्ति को डा० नगेन्द्र ने 'रीतिकाव्य के स्नायुओं में बहने वाली रक्तधारा' कहा है । क्योंकि इस वृहद् युग की कविता का नवदशांश से भी अधिक शृंगारिक प्रधान है ।[2] शृंगार की इस अतिशयता के दो कारण हैं - प्रथम तत्कालीन परिस्थिति, द्वितीय परम्परागत साहित्यिक प्रभाव । रीति-काव्य की सामाजिक परिस्थितियों के प्रकरण में इस युग की ऐहिकता, प्रदर्शन तथा कलात्मक वृत्ति के ऊपर प्रकाश डाला जा चुका है जिससे स्पष्ट है कि हिन्दू तथा मुस्लिम - दोनों ही संस्कृतियां अतिचारितावादिनी हो चुकी थीं — मुसलमानों का जीवन यदि ऐहिक शक्ति और सुख के अतिचार से जर्जर हो गया था तो हिन्दू पराभव से जीर्ण थे । डा० नगेन्द्र ने इस काल को 'भारतीय इतिहास का घोर पतन का युग' कहा है । रीति-युग में मात्र राजनीतिक पराभव ही जनसामान्य को नहीं सहन करना पड़ रहा था अपितु आध्यात्मिक, आर्थिक एवं नैतिक मूल्यों का भी सर्वथा ह्रास हो गया था । जीवन की आन्तरिक तथा बाह्य अभिव्यक्तियों के लिए इस युग में न तो संभावना थी और न अवकाश और न उसकी प्रत्यक्ष उपयोगिता । परिणामतः, जीवन घर की संकीर्ण सीमा में आबद्ध होकर रह गया । इस सीमित पर्यावरण में ही जीवन की सर्वविध अभिव्यक्ति का अवकाश था भले ही उसमें विकास की नगण्य संभावनाएं हों । रीतिकवि का सम्पूर्ण जीवन नारी के चारों ओर परिभ्रमित होने लगा । उसकी दृष्टि में स्त्री कल्पना-लोक की वह राज-कुमारी-मात्र थी जो रेशम, मखमल तथा गोटे-किनारी से ढंकी, हीरे-जवाहरात से सजी और निस्तेज वासनाओं से घिरी राजमहल में जीवन बिताती है।[3] आध्यात्मिक और

1- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० 163

2- वही- पृ० 157

3- भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास - डा० ताराचंद - पृ० 207

सामाजिक मूल्यों के आत्यंतिक ह्रास के कारण नारी में ही समग्र आध्यात्मिक, नैतिक तथा आर्थिक मूल्यों का अन्तर्भाव समझा जाने लगा। रीतियुग में राधा-कृष्ण-भक्ति की लक्षण परम्परा ने स्वच्छन्द आहार-विहार को भी पूर्ण समर्थन दिया। फारसी संस्कृति तथा साहित्य की श्रृंगारिकता अब भारतीय संस्कृति तथा साहित्य में समाविष्ट हो चुकी थी। श्रृंगार-तत्त्व की उपासना अब नागरत्व की अनिवार्य आवश्यकता-सी बन गई। पुनः संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश की मुक्तक श्रृंगारिक गीति-परम्परा ने उक्त प्रवृत्ति को पूर्णतया पुष्पित तथा पल्लवित होने में योग दिया। परम्पराओं के अनुगमन की अनिवार्यता, सामाजिक प्रभावों की आवश्यकता तथा सामासिक संस्कृति की विधेयता ने यदि श्रृंगार-प्रवृत्ति रूप अग्नि के उद्दीपन में घृत का कार्य किया तो क्या आश्चर्य। इस श्रृंगार-वर्णन में न तो सामाजिक वर्जनाओं का घटाटोप है, न स्वकीय काम-भावनाओं का अप्राकृतिक गोपन और न दमित इच्छाओं का कुण्ठाओं के रूप में अभिव्यक्तीकरण। यहाँ तो स्वच्छन्द श्रृंगार-भावनाओं का उच्छलन है, प्रवाह है जहाँ किसी अवरोध की अवस्थिति नहीं; यहाँ शारीरिक तथा ऐन्द्रिय सुख की अबाध साधना है जिसमें नित्यता-अनित्यता का विचार अस्पृष्ट है। इसमें न तो सात्त्विक काम की सम्भावना है न उस पर आध्यात्मिक भावना का आरोपण है। धर्मविरुद्ध काम की आन्तरिकता इस श्रृंगारोपासना में नहीं है। यहाँ कामिनी रूप में भोग्या नारी के प्रतिक्षण परिवर्तित होने वाली रमणीयता आकर्षण का केन्द्र बनी, उसके स्वाभाविक विलासों तथा भाव-हावों ने ऐन्द्रिय सुखात्मिका अभिव्यक्तियाँ दीं; परन्तु उसका विशुद्ध, निर्दुष्ट तथा आन्तरिक गुणों से मंडित पर अलंकारविरहित व्यक्तित्व ग्राम्यता का निदर्शक बन कर रह गया। श्रृंगार नागरिक अपेक्षा की वस्तु हो गया। इस श्रृंगार में प्रेम की एकनिष्ठता अथवा एकोन्मुखता कहाँ? यहाँ तो रसिकता ही प्रधान है। प्रेमपरायणता के विपरीत अनेकोन्मुखी रसिकता कवि की अवलंब बन गई। संस्कृत काव्यशास्त्री पंडितराज जगन्नाथ, जो संस्कृत साहित्यशास्त्र को अंतिम अर्घ्य देने का यश प्राप्त कर चुके हैं, यदि सामान्य परिवार में उत्पन्न यवनकन्या 'लवंगी' के प्रति रससिक्त हैं[1] तो हिन्दी रीति के प्रथमाचार्य केशव रायप्रवीन से सर्वथा सम्पृक्त हैं।

१- न याचे गजालिं न वा वाजिराजिं न वित्तेषु चित्तं मदीयं कदाचित्।
इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्तकुम्भा लवंगी कुरंगी दृगंगी करोतु।।
— विश्वेश्वर द्वारा सम्पादित काव्यप्रकाश - भूमिका में उद्धृत -पृ० १३

रीतिकाल के प्राय: समस्त प्रतिनिधि कवियों में रसिकता का यही तारल्य देखा जा सकता है। परन्तु इस तरलता ने भारतीय गार्हस्थ्य रूप को प्रतिहत नहीं होने दिया। यहां जीवन की स्वच्छन्दता तो है पर गार्हस्थ्य का त्याग नहीं; रसिकता है पर बहुआलंबन-रूपैषणाजन्य लोलुपता नहीं; दरबारी विलासप्रियता तो है परन्तु उच्छृंखलता नहीं; नागरत्व तो है पर दरबारी-संस्कृतिअनुरूप वेश्यागामिता अथवा यत्रतत्रसर्वत्रदृष्टसौन्दर्योद्भूत चंचलता नहीं। इन्हीं भावनाओं के कारण इन सभी कवियों की नायिकाएं स्वगुणधर्मानुरूप आचरण करती हैं। यहां स्वकीया की शुद्धता तथा धर्मपरायणता का गुणगान किया गया पर परकीयाप्रेम को प्रोत्साहित नहीं किया गया; गणिका का प्रेम यहां `शृंगाराभास` के रूप में तिरस्कृत है। स्वकीया के सभी रूपों में कुल तथा शील का जो अवलंब, वह भारतीय गृहस्थ-धर्म का सार-सर्वस्व है। अभिसारिका की प्रणय-जन्य साहसिकता में भी परिजनों से भीरुता है; परकीया की उपपतिपरायणता में भी कुल-कानि का सर्वथा अतिक्रमण नहीं - पुन: यहां भी दूती, सखी आदि का सलज्ज आचरण है। डा० नगेन्द्र ने उचित ही कहा है - न यहां किसी अर्जुन को मत्स्य-भेद कर अपने शौर्य का परिचय देना पड़ता है, न किसी पृथ्वीराज को युद्ध में विजय प्राप्त करनी पड़ती है और न किसी मजनूं को सहारा की खाक छाननी पड़ती है, रोमानी प्रेम की असाधारणता - जो एक ओर बलिदान और साहसिकता पर आश्रित होती है, दूसरी ओर अलौकिक आदर्शवादिता पर - रीतिकाल के शृंगार में अप्राप्य है। उपभोग प्रधान होने से उसमें बलिदान की गंभीरता और साहसिकता की शक्ति नहीं है और न उसके धरातल को उदात्त करने वाली आदर्शवादिता है।[१]

४- <u>नारी का रमणीरूपचित्रण</u> :- ऐहिकतापरायण रीतियुग में नारी मात्र उपभोग्या थी, यह प्रतिपादित किया जा चुका है। उसकी उपादेयता मात्र इतनी थी कि वह चेतन व्यक्ति के व्यक्तित्व को निष्क्रिय आकर्षण से संतुष्ट कर दे। यद्यपि शृंगार के विभिन्न स्तरों पर - मान, विपरीत-रति आदि - नायक की कातरता, परवशता तथा नायिका की सक्रियता देखी जा सकती है; पर ऐसी क्रियाओं - प्रतिक्रियाओं, विदग्धताओं, हाव-भावों के मूल में नारी का नारीत्व सविशेष न होकर निर्विशेष हो गया - नारी के व्यक्ति-विशेष के प्रति यहां आकर्षण नहीं। नायिका-भेद-प्रकरण की विविधता में नारी की उपभोग्य-विविधता देखी जा सकती है। भवभूति ने जिस दाम्पत्य

१- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० १७०-७१

प्रेम की अनवरत वर्द्धमानता का निरूपण किया,[1] उसका यहाँ एकान्त अभाव है। नारी की सामाजिक स्थिति के संबंध में डा० नगेन्द्र का मन्तव्य है – गृहस्थ जीवन के अन्तर्गत भी सुख-दुःखों की सम्भोक्तृ, सहचरी, माता, बहन, पुत्री, मित्र, सचिव आदि उसके अन्य महत्त्वपूर्ण रूप हो सकते थे – परन्तु उनकी स्वीकृति भी इनमें नहीं है। उसकी सात्त्विकता स्वकीया की कुल-कानि से, उसका आत्माभिमान खण्डिता की मानदशा से और उसकी बौद्धिक शक्तियाँ विदग्धा की चातुरी से आगे नहीं जा सकती थीं।[2]

५-रुग्ण जीवन-दर्शन :— सामन्त-युग सम्भवतः काम और युद्ध प्रधान होता है। यह परिस्थितियों पर निर्भर है कि प्रमुखता काम की अधिक हो या युद्ध की। रीतिकालीन समाज कामप्रधान था। काम की प्रधानता केवल उच्च वर्ग तक ही सीमित नहीं थी, निम्न वर्गों के जीवन की भी संचालिका शक्ति काम में ही सन्निहित थी।[3] इस प्रकार काम पर आधारित जीवन-दर्शन के कारण स्वस्थता का सर्वथा ह्रास हो गया था। जिस संघर्षप्रधान समाज में विभिन्न शक्तियों के मध्य संतुलन होने पर शुद्ध एवं स्वस्थ जीवन-दर्शन का निर्माण होता है, उसका यहाँ सर्वथा अभाव था। रीतियुगीन जीवन एक संकीर्ण बद्ध तथा रुग्ण जीवन था जिसमें सामन्तवाद सिसकियाँ ले रहा था। पुरुषार्थ-चतुष्टय में से धर्म तथा मोक्ष का पूर्ण विघटन हो चुका था। मात्र काम और अर्थ की उपासना हो रही थी। केशव ने काम-प्राधान्य का उल्लेख करते हुए इसे 'बटमार' तथा 'पिशाच' कहा है।[4] देव ने भुक्ति तथा मुक्ति दोनों को ही काम" में अन्तर्भुक्त कर दिया।[5] काम-विरहित मोक्ष उनके लिए निरर्थक था।[6] बिहारी तो अनुभवयुक्त की रति को मुक्ति से अभिन्न मानते थे। उनकी दृष्टि में मुक्ति पद कहीं है भी तो वह त्याज्य है।[7] रीति-कवियों के भौतिक जीवन में गत्यात्मकता नहीं थी। संकीर्णता में आबद्ध उनकी अहंता में वह शक्तिमत्ता नहीं थी जो उच्चाकांक्षाओं को पुष्ट-तुष्ट कर सके। उनमें व्यक्तित्व की

१– उत्तररामचरितम् – भवभूति – १।३९

२– रीतिकाव्य की भूमिका – डा० नगेन्द्र – पृ० १७२

३– रीतिकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि – डा० वेंकट रमण राव – पृ० २२६

४– रामचंद्रिका – केशव – २४।

५– रसविलास – देव – १।२

६– वही– १।३

७– बिहारी ~~[illegible]~~ – भाष्य– सं. डॉ. देवराज सिंह भाटी · पद सं. ६६

वह विशदता नहीं थी जो सामाजिक सायुज्य स्थापित कर निष्प्रभ युग-जीवन को प्राणवान् बना सके। इस प्रकार रीतिकाव्य का दर्शन न तो पूर्ण भौतिकवादी है और न आध्यात्मिक। यह नारी भोगरूप भौतिकता तथा ऐन्द्रियता पर आधारित है। कवियों की दृष्टि सुन्दरियों की जातीय विशेषताओं की ओर न जाकर उनके जगमग यौवन, उठौहैं कुच, रसीलेपन आदि उन्मादक अवयवों और गुणों पर विशेष रूप से केन्द्रित हुई है। यह उनकी नागरिक रुचि और सामन्तीय जीवनदर्शन की द्योतक है।[1] परिणामतः जीवन की विषमताओं से त्राण पाने का क्या उपाय है? अन्तःकरणस्थ राग-द्वेषों का उन्नयन, परिष्करण करने हेतु किन मनोभावों की अभिव्यक्ति की आवश्यकता है? आदि जीवन के मूलभूत गम्भीर प्रश्नों का उत्तर इन कवियों के पास नहीं। उनकी इतिकर्तव्यता के विषय में डा० नगेन्द्र का अभिमत है – उनकी आजीविका का साधन एक ही था – राज्याश्रय, उनका कर्तव्यकर्म एक ही था – काव्यरचना, उनका लक्ष्य केवल एक ही था – रसप्राप्ति।[2]

६–<u>राजप्रशस्ति अथवा वीरकाव्यरचना</u> :– जहाँ तक रीतिकाव्य में विद्यमान इतर प्रवृत्तियों का प्रश्न है उनमें राजप्रशस्ति अथवा वीरकाव्य की प्रवृत्ति मूलतः अलंकार और छन्दोविवेचन के ग्रन्थों में ही देखने को मिलती है – रसविवेचन के ग्रन्थों में यह ग्रन्थ-विशेष की भूमिका के रूप में अथवा वीर और रौद्र रसों के निरूपण के प्रसंग में ही देखी जा सकती है। इसका मुख्य विषय आश्रयदाताओं की दानवीरता अथवा युद्धवीरता ही रही है; किन्तु इसकी अभिव्यक्ति उनके दान अथवा पराक्रम के परिचायक व्यापारों के स्थान पर सामान्य रूप से दान की सामग्री की विपुलता तथा आश्रयदाताओं के आतंक एवं निर्बल और कायर शत्रुओं पर उनके प्रभाव के विविध वर्णनों द्वारा होने के कारण कोई रसात्मक प्रभाव नहीं डाल पाती, जो वीर रस की रचनाएं छोड़कर जाती है। इनके अतिरिक्त आश्रयदाताओं में लोकमान्य गुणों का आरोप तथा उनके अत्यधिक वैभव का बखान भी अपने आप में झूठी प्रशस्ति का ही प्रभाव छोड़ता है – किसी प्रकार का श्रद्धाभाव उत्पन्न करने में वह असमर्थ रहता है। अतएव कहा जा सकता है कि इनकी वीरकाव्य की प्रवृत्ति में अलंकारनिबद्ध राजविषयक रति का ही प्राधान्य है – उत्साह का प्रायः अभाव ही रहा है।[3]

१– हिन्दी रीतिकालीन कवियों की प्रेम-व्यंजना – डा० बच्चनसिंह – पृ० १६
२– रीतिकाव्य की भूमिका – डा० नगेन्द्र – पृ० १७४
३– हिन्दी साहित्य का इतिहास – डा० नगेन्द्र – पृ० ३२१

७-ह्रासोन्मुखी भक्ति-भावना :— भक्ति की प्रवृत्ति रीतिग्रन्थों के मंगलाचरणों ग्रन्थ की परिसमाप्ति पर आशीर्वचनों, भक्ति और शान्त रसों, निर्वेदादि संचारियों तथा अलंकार-विवेचन संबंधी ग्रन्थों में दिए गए उदाहरणों में मिलती है। रीति कविगण सामान्य रूप से विष्णु के राम और कृष्ण - इन दो अवतारी रूपों में विशेष आस्था रखते हुए भी गणेश, शिव,शक्ति, हनुमान में भी वैसी ही श्रद्धा रखते थे। इस युग में भक्त कवि अनेक हुए सो तो हुए ही, विशुद्ध शृंगारी-काव्य लिखने वाले कवियों के भी भक्ति-संबंधी छन्द महत्त्व के हैं।[१] परन्तु ये भक्ति संबंधी पद भक्ति के शुद्ध स्वरूप का प्रकाशन नहीं करते क्योंकि जिस युग में `दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा` कहकर प्राकृत मरणधर्मा सम्राटों का यशोगान किया जा रहा हो, वहाँ धर्म अथवा भक्ति के चिरन्तन रूप की अभिव्यक्ति कैसे हो सकती थी। रीतियुग का धर्म कथन मात्र के लिए धर्म था। अन्य शब्दों में धर्म की रसात्मक अनुभूति भक्ति में आन्तरिकता न होकर रूढ़िबद्धता हो गई थी। रीतिकवियों की तथाकथित भक्ति या विनय-भावना में अपेक्षित भूमिकाओं का एकान्त अभाव है - साधनात्मक पक्ष की आत्यन्तिक दुर्बलता है। डा० नगेन्द्र का मन्तव्य है - जीवन की अतिशय रसिकता से जब ये लोग घबरा उठते होंगे तो राधा-कृष्ण का यही अनुराग उनके धर्म-भीरु मन को आश्वासन देता होगा। इस प्रकार रीतिकालीन भक्ति एक ओर सामाजिक कवच और दूसरी ओर मानसिक शरणभूमि के रूप में इनकी रक्षा करती थी। ..... रीतिकाल का कोई भी कवि भक्तिभावना से हीन नहीं है - हो ही नहीं सकता था; क्योंकि भक्ति उसके लिए एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी। भौतिक रस की उपासना करते हुए भी, उनके विलास-जर्जर मन में इतना नैतिक बल नहीं था कि भक्तिरस में अनास्था प्रकट करते, या उसका सैद्धान्तिक निषेध करते। इसीलिए रीतिकाल के सामाजिक जीवन और काव्य में भक्ति का आभास अनिवार्यतः वर्तमान है और नायक-नायिका के लिए बार-बार `हरि` और `राधिका` शब्दों का प्रयोग किया गया है।[२]

उपर्युक्त स्थापना-गत आंशिक भ्रान्ति की ओर अंगुल्या-निर्देश करते हुए डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी ने लिखा है - उक्त अभिमत में रागी तथा विरागी को एक साथ रख दिया गया है। विशुद्ध भक्ति भावना और रागानुगा भक्ति-भावना को पृथक्-पृथक्

१- हिन्दी रीति-साहित्य - डा० भगीरथ मिश्र - पृ० १४४

२- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० १७५

नहीं समझा गया है। यथार्थतः कृष्ण और राधिका को परब्रह्म तथा शक्ति अथवा मायारूप में ग्रहण करने वाला तथा नायक-नायिका के रूप में ग्रहण करने वाला - ये दो कवियों के पृथक् वर्ग थे। औसत धर्मभावना उतनी पवित्र नहीं रह गई थी, जितनी होनी चाहिए; परन्तु वास्तविक धर्मभावना सर्वथा लुप्त हो गई थी, ऐसा नहीं कहा जा सकता। रीतिकालीन श्रृंगारी कवियों ने नायिका-भेद आदि के वर्णनों में राधा-कृष्ण के नामों का प्रयोग भले ही मनोवैज्ञानिक आवश्यकतानुसार किया हो, परन्तु भक्तिभावना की शरण उन्होंने वासनात्मक जीवन से निराश होकर ही ली थी। जिन दिनों उनका जीवन विलास मय रहा था, उन दिनों भक्तिभावना की चर्चा कौन करता? भक्ति वह अमोघ शस्त्र है जिसकी संकट और दुःख के निवारण के लिए खोज करनी पड़ती है। यही कारण है कि भक्ति की विधेयात्मक चर्चा होती है, निषेधात्मक नहीं। जब संसार के लोभ, लालच विषयभोग, धन, वैभव आदि सब पदार्थ केवल अशान्ति और निराशा के हेतु सिद्ध हुए तभी उन्होंने भक्ति-भावना को अपनाया था। पुनः इन कवियों के जीवनवृत्तों से स्पष्ट है कि भक्ति संबंधी रचनाएं प्रारम्भ कर देने के बाद किसी कवि ने भी फिर वासनात्मक काव्य का सृजन नहीं किया था[१]।

इस प्रबन्ध का कर्ता डा० चतुर्वेदी के मत से पूर्णतया सहमत है। वस्तुतः देश-कालादिवशात् अतिशयभोगपरायण तथा भौतिकवादी व्यक्ति भी भक्ति या धर्म का आश्रय ग्रहण करते देखे जाते हैं; फिर कवि जैसा संवेदनशील प्राणी इस शाश्वत् पर विरलतया लब्ध आन्तरिक वृत्ति का आश्रय न ले ऐसा नहीं स्वीकार किया जा सकता। ज्ञान[2], धर्म[3] अथवा भक्ति[४] की त्रिपुटी में से प्रत्येक की सिद्धि के लिए श्रद्धा अनिवार्य घटक है और यतः मानवजीवन श्रद्धा से कदापि रहित नहीं हो सकता[५], अतः इसका उन्मुखीभवन

१- श्रृंगाररस का शास्त्रीय विवेचन - डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी - पृ० ९८

२- श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम् ० अध्याय ४।३९- गीता

३- श्रद्धा बिना धर्म नहि होई- रामचरितमानस - उत्तर० ९०।४

४- श्रद्धया भजतः पुंसः शिलापि फलदायिनी - स्कन्दपुराण - ब्रह्मोत्तरखण्ड अ० १७।३-४

५- श्रद्धामयोऽयं पुरुषः यो यच्छ्रद्धः स एव सः - गीता अ० १७।३

प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति में से किसी की ओर अवश्य होगा । अन्य शब्दों में –सामान्यतः श्रृंगा कभी इहलोक की ओर अग्रसर होगा तो कभी भक्ति अथवा ज्ञान रूप परमार्थ की ओर। कवि जैसा संवेदनशील प्राणी जो कभी अतिशय रसिकता का आस्वाद ले चुका होगा वह परिणतवय मे भक्ति का अवलम्ब न लेकर पूर्णतया निराश्रित नहीं होना चाहेगा भले ही वह भक्तिकाल के भक्तों की सी गम्भीरता या तन्मयता से युक्त न हो । सामान्यतः वय: परिणाम में रागात्मिकता वृत्ति का उदात्तीकरण, परिष्करण तथा परिमार्जन ही होता है, पतनोन्मुखी प्रत्यावर्तन नहीं । इस अवस्था में कवि अपने बाह्य व्यक्तित्व का संकोच कर आत्मविस्तार करना चाहता है और तद्द्वारा पुष्टि-तुष्टि का अनुभव करता है ।

८– नीति-वर्णन :— भक्ति यदि इन कवियों के आकुल मन के लिए शरण-भूमि थी, तो नीति – संघर्षमय दरबारी जीवन के घात-प्रतिघातों से उत्पन्न मानसिक द्वन्द्व के विरेचन के परिणामस्वरूप शान्ति का आधार थी । इसीलिए आत्मोपदेश और अन्योक्तिपरक छन्दों मे इनके वैयक्तिक अनुभवों की छाप देखने को मिलती है । अलंकारों, निर्वेदादि संचारियों के विवेचन के प्रसंगों मे उद्धृत ये नीतिपरक रचनाएं यद्यपि परिमाण मे बहुत अधिक नहीं है, तथापि ऐसी प्रवृत्ति की परिचायक तो है ही, जिससे वैयक्तिक अनुभवों से उत्पन्न विवेक को विशेष स्थान प्राप्त हुआ है । इस प्रकार यह राजप्रशस्ति की प्रवृत्ति श्रृंगारी प्रवृत्ति के समान उस युग के दरबारी जीवन में प्रवृत्ति की परिचायक है जब कि भक्ति और नीति की प्रवृत्तियां उससे निवृत्ति की । चूंकि प्रवृत्ति और निवृत्ति जीवन के परस्पर पूरक पक्ष है अतएव इन प्रवृत्तियों को एक-दूसरी की पूरक कहा जा सकता है ।[1]

९–अलंकृत काव्यशैली :— रीतियुगीन कवियों द्दारा अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने के लिए उक्ति-चमत्कार एवं शब्दों की बाजीगरी भी खूब प्रदर्शित की गई है । दूसरे शब्दों में, वह अलंकार-प्रधान काव्य है । कवि अपने काव्य को सजाने और संवारने में पूर्ण सचेष्ट है और अधिकांश में कवि का अलंकार-प्रयोग सहज नहीं ।[2]

१– हिन्दी-साहित्य का इतिहास – डा० नगेन्द्र – पृ० ३२१–२२

२– हिन्दी रीति-साहित्य – डा० भगीरथ मिश्र – पृ० १२४

रीतिकाव्य पर पड़े प्रभाव

१- सामाजिक प्रभाव:— सामाजिक परिस्थितियों के विवेचन तथा उनपर गंभीरतापूर्वक विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि शोषण और पतन की प्रक्रिया में तथा वैभव और विलासिता के उत्कर्ष की परम्परा के उस युग में सम्पूर्ण समाज की बौद्धिक धारणाएं जीवन के लिए सुख के उपकरण जुटाने की भावना पर केन्द्रित थीं। अतिशय बौद्धिकता के कारण उनकी इच्छाओं, आकांक्षाओं, ऐन्द्रिय तत्वों तथा मनोवृत्तियों का बाहुल्य होता जा रहा था। यही कारण है कि सामासिक सांस्कृतिक परम्परा के उस युग में साहित्य में जहां समन्वय तथा ऐक्य की प्रवृत्तियों को आभासित किया वहां ऐन्द्रिय बौद्धिक विचारों की ओर भी वह अधिकाधिक प्रवृत्त होता चला गया। परिणामत: हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही के साहित्य में ऐन्द्रिय-बौद्धिक तत्व समाविष्ट हो गये।[1] फारसी के शायरों तथा हिन्दी-कवियों के सम्मिलित स्वरों में वासना, विलासिता तथा ऐन्द्रिय विचारों का प्रकाशन होने लगा।[2]

सम्राटों और राजाओं के अन्त:पुर में यदि शतरंज, चौसर और गंजीफा द्वारा मनोरंजन होता था तो बाहर पतंगबाजी तथा शिकार का प्रचार था। रनिवासों को मुखरित करने में कबूतर, लाल, तोता, मैना आदि पक्षियों का योगदान था - इनका प्रतिबिंब रीतिकविता में देखा जा सकता है।

जहां मुगल दरबार में भारतीय-ईरानी काव्यपरम्परा को प्रश्रय मिला वहां राजस्थान के नरेशों तथा सामन्तों की छत्रछाया में हिन्दी कविता का दरबारी रूप पनपा जो अधिकाधिक विस्तार प्राप्त करता गया। ओरछा, कोटा, बूंदी, जयपुर, जोधपुर और यहां तक कि महाराष्ट्र के राजदरबारों में भी वही प्रदर्शनप्रधान और श्रृंगार परक जीवनदर्शन की अभिव्यक्ति में काव्यधारा चलती रही।[3] ऐसे राजाओं के आश्रित कवि काव्यरचना के द्वारा स्वकीय योग-क्षेम का निर्वाह करने के साथ-साथ राज-प्रशस्तियों का गान कर रहे थे।

१- रीतिकालीन काव्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि - डा० शिवलाल जोशी - पृ०१३३
२- हिन्दी-रीति-साहित्य - डा० भगीरथ मिश्र - पृ० १९०
३- हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास - सं० डा० नगेन्द्र - पृ०५

रीतिकाल में श्रृंगार नागरिक जीवन का एक प्रधान अंग बन गया था। नारी को इस श्रृंगारिकता का केन्द्र बनाया गया।[1] श्रृंगार के वर्णन को बहुतेरे कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुंचा दिया था। इसका कारण जनता की रुचि नहीं, आश्रयदाताओं की रुचि थी जिनके लिए वीरता और कर्मण्यता का जीवन बहुत कम रह गया था।[2]

उन दिनों धर्मभावना में भी भोग और विलास को स्थान मिल गया था, क्योंकि सेवा या अर्चना की सूक्ष्मातिसूक्ष्म विधियों का आविष्कार हो जाने से मठों और गद्दियों में भोग-विलास के समस्त उपकरण एकत्र कर दिए गए थे। इनमें केशर की क्यारियां कटती थीं तथा इनकी विलास-सामग्रियों से अवध के नवाब को भी ईर्ष्या हो सकती थी। कृष्ण की परकीया भाव से पूजा करने की उपासना-पद्धति ने तथा सखी सम्प्रदाय ने परकीया-वर्णन, नायिका-निरूपण आदि काव्यांगों को प्रोत्साहित किया और धर्म की छाप लगी होने के कारण जनता ने इन्हें निःसंकोच शिरोधार्य किया, फलतः श्रृंगार-भावना का हिन्दी के ऊपर चेतन और अचेतन दोनों ही रूपों में प्रभाव पड़ा और तत्कालीन कविता खण्डिता, अन्यसुरतिदुःखिता, परकीया आदि के वर्णनों से भर गई।[3] काम-वासना के ज्वार-भाटे में समाज इस तरह आत्म-विस्मृत हो गया कि वह श्रृंगार के विविध विरोधी प्रकारों में भेद करना कठिन समझने लगा था।

२- संस्कृत काव्यशास्त्र का प्रभाव :— अलंकारशास्त्र या काव्यशास्त्र का सुश्लिष्ट शास्त्रीय निरूपण मुख्यतः भरतमुनि से प्रारम्भ होता है जिनका काल प्रायः विक्रम से दो शताब्दी पूर्व से लेकर दो शताब्दी बाद तक के बीच में विद्वानों द्वारा नियत किया गया है। इस प्रकार विक्रम से दो शताब्दी पूर्व से लेकर १८वीं शताब्दी तक के पंडितराज जगन्नाथ तक अलंकार शास्त्र के साहित्य का निर्माण होता रहा है। इस सुदीर्घ 2000 वर्ष के काल को विद्वानों ने चार भागों में विभाजित किया है —

१- प्रारंभिक काल । अज्ञात काल से भामहतक।

२- रचनात्मक काल । भामह से लेकर आनंदवर्द्धन तक —६०० वि० से ८०० वि०।

३- निर्णयात्मक काल । आनंदवर्द्धन से लेकर मम्मट तक — ८०० ,, से १००० वि०।

४- व्याख्या काल । मम्मट से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक — १००० वि० से १७५० वि०।

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल — पृ० २११

२- श्रृंगाररस का शास्त्रीय विवेचन — डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी — पृ० ९३

काव्यात्मा-निर्धारण के विषय को लेकर उपर्युक्त कालों में विभिन्न संस्कृत के आचार्यों ने विशेष अध्यवसाय किया है। इस प्रश्न पर पर्याप्त विचार-विनिमय, समीक्षा-परीक्षा के अनन्तर पाँच सम्प्रदायों -रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति तथा ध्वनि सम्प्रदायों का आविर्भाव हुआ। इसी सन्दर्भ में औचित्य नामक एक षष्ठ सम्प्रदाय की उद्भावना हुई जिसको विशेष महत्त्व नहीं दिया गया। इनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है --

१- रस सम्प्रदाय - इन सम्प्रदायों में सबसे मुख्य तथा प्राचीन सम्प्रदाय रससंप्रदाय है, जिसके संस्थापक भरतमुनि है। रस के विषय में सबसे पहला विवेचन भरतमुनि के ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' में उपलब्ध होता है। उनके मतानुसार रस का आस्वादन ही काव्य के अध्ययन और अनुशीलन का सर्वोपरि फल है, जिसकी निष्पत्ति विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से होती है।[1] रस मुख्यार्थ है - इतर प्रयोजन इसके समक्ष गौण है - न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते'। भरतमुनि के पश्चात् ९वीं शताब्दी तक, एक प्रकार से रस की उपेक्षा रही और काव्य के अन्य अंगों - अलंकारादि - को प्रधानता दी जाती रही। दसवीं शताब्दी में अभिनवगुप्त ने भरतमुनि का समर्थन किया तथा रस संबंधी अनेक गुत्थियों को सुलझाया। तदनन्तर बारहवीं शताब्दी में आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्य-दर्पण' में रस को काव्यात्मा घोषित कर रस-मत की पूर्ण प्रतिष्ठा कर दी। हिन्दी-रीतिकाल के कवि-आचार्य देव, पद्माकर, मतिराम, हृदयेश, ग्वाल आदि रसवाद से ही प्रभावित है।

२-अलंकार सम्प्रदाय - अलंकार सम्प्रदाय के आचार्यों ने अलंकारों को व्यापक अर्थ में ग्रहण किया। अलंकार केवल शब्द और अर्थ की शोभा करने वाले बाह्य उपकरण-मात्र नहीं रहे, प्रत्युत वे काव्य को रोचक बनाने वाले आन्तरिक धर्म भी हो गये। इस मत के प्रवर्तक आचार्य भामह हैं - अन्य प्रतिपादकों में दण्डी, उद्भट, जयदेव (चन्द्रालोककार) रुय्यक आदि हैं। इस सम्प्रदाय के अनुयायी रस की सत्ता मानते हुए भी उसे प्रधानता न देकर अलंकारों को काव्य का प्राणभूत- जीवनाधायक तत्त्व मानते हैं। हिन्दी के महाकवि केशव तथा जसवन्तसिंह इसी मत से प्रभावित हैं। केशव का उद्घोष है -

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिनु न बिराजहीं कविता बनिता मित्त।[2]

१- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि - ६।३१ की वृत्ति
२- कविप्रिया - केशव - ५।१

३-रीति सम्प्रदाय -रीति सम्प्रदाय के संस्थापक आचार्य वामन हैं, जिन्होंने काव्य में अलंकारों की प्रधानता के स्थान पर रीति की प्रधानता का प्रतिपादन किया। `रीतिरात्मा काव्यस्य`[1] उनका सिद्धान्त है। रीति क्या है, इसका विवेचन करते हुए उन्होंने `विशिष्टा पदरचना रीतिः`[2], इस कथन के द्वारा रीति को लक्षित किया है। आगे चलकर `विशेष` की व्याख्या करते हुए `विशेषो गुणात्मा`[3] अर्थात् रचना में माधुर्यादि गुणों का समावेश ही उसकी विशेषता है और यह विशेषता ही रीति है। वामन ने गुण तथा अलंकारों का भेद प्रदर्शित करते हुए काव्य में अलंकारों की अपेक्षा गुणों की प्रधानता प्रतिपादित की। हिन्दी के आचार्यों ने इसे कोई महत्त्व नहीं दिया।

४-वक्रोक्ति सम्प्रदाय - वक्रोक्ति सम्प्रदाय के संस्थापक वक्रोक्तिजीवितकार कुन्तक माने जाते हैं। कुन्तक ने काव्य में रीति की प्रधानता को समाप्त कर `वक्रोक्ति` की प्रधानता की स्थापना की। भामह तथा दण्डी दोनों ही आचार्यों ने वक्रोक्ति को कथन की विचित्र शैली के रूप में मान्यता देते हुए उसे साधारण इतिवृत्त शैली से भिन्न माना है। रुद्रट ने वक्रोक्ति को शब्दालंकार माना और वामन ने उसे अर्थालंकार के रूप में स्वीकार किया। आचार्य कुन्तक ने इन सभी का निषेध करते हुए वक्रोक्ति को काव्य का जीवित घोषित किया तथा `वक्रोक्ति सम्प्रदाय` की प्रतिष्ठा की। कुन्तक ने कवि-प्रतिभा पर निर्भर कथन की विचित्रता को वक्रोक्ति बताया। वक्रोक्ति की इस प्रकार व्यापक परिभाषा करके कुन्तक ने शब्दालंकार, अर्थालंकार, प्रबन्धकौशल आदि सभी को वक्रोक्ति में अन्तर्भुक्त कर लिया। यह मत प्रायः सभी परवर्ती आचार्यों द्वारा निराकृत किया गया, अतः इसे सम्प्रदाय मानना भी भ्रामक ही प्रतीत होता है।

५-ध्वनि सम्प्रदाय - कालक्रम से वक्रोक्तिसम्प्रदाय के पश्चात् ध्वनि सम्प्रदाय का प्रवर्तन आनंदवर्धनाचार्य द्वारा किया गया। इनके मत में काव्य की आत्मा ध्वनि है।

१- काव्यालंकार सूत्र - वामन - १।२।६
२- वही- १।२।७
३- वही- १।२।८

आनंदवर्द्धनाचार्य ने 'ध्वनि' का पूर्व से ही प्रतिष्ठित होना बताया -

'काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैः समाम्नातपूर्वः'[1]

ध्वनि को आनंदवर्द्धन ने निम्न प्रकार परिभाषित किया है -

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृत स्वार्थौ ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः[2] ।।

ध्वनि मुख्यतया तीन प्रकार की कथित है - वस्तु ध्वनि, अलंकार ध्वनि तथा रस-ध्वनि । इनमें रसध्वनि प्रधान मानी गई है । संस्कृत के आचार्य अभिनवगुप्त, आचार्य मम्मट, हेमचन्द्र, विश्वनाथ और पंडितराज जगन्नाथ इस मत के समर्थक है । हिन्दी के कवि - आचार्य कुलपति, प्रतापसाहि, दास ग्वाल आदि ने ध्वनि को काव्य के प्राणतत्व के रूप में स्वीकार किया है ।

संस्कृत काव्यशास्त्र का छठा सिद्धान्त औचित्य सिद्धान्त के नाम से कथित है । इसके प्रवर्तक आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य को काव्य का आधारभूत तत्त्व मानते हुए पूर्वोक्त सिद्धान्तों में प्रतिपादित रस, अलंकार, गुण, रीति आदि के उचित प्रयोग की बात कहकर प्रकारान्तर से इन सबके समन्वय का प्रयत्न किया है; परन्तु यह सम्प्रदाय किसी भी प्रकार से आगे स्वीकार न हो सका । सम्भवतः इसीलिए क्योंकि इसमें कोई उल्लेख्य मौलिकता नहीं थी ।[3]

हिन्दीरीतिकाव्य के पृष्ठभाग में उपर्युक्त संस्कृत काव्यशास्त्र का आधार था जिसके अन्तर्गत विभिन्न ध्वनि, अलंकार, रसादि सम्प्रदायों की प्रतिष्ठा और काव्य के सभी अंगों का सूक्ष्म विवेचन होने के उपरान्त स्थिर सिद्धान्तों की स्थापना हो चुकी थी। आचार्य मम्मट के समन्वयकारी निरूपण के अनन्तर मूल सिद्धान्तविषयक उद्भावनाएं प्रायः निःशेष हो गई थीं । ऐसी स्थिति में रीतिकवियों ने शौकीन मिजाज राजा, रईसों और रसिक नागरिकों को काव्यांगों का परिचय कराने के अतिरिक्त किसी-किसी ने पांडित्य-प्रदर्शन में अपनी इतिकर्तव्यता समझी । इन कवियों की दृष्टि में संस्कृत काव्यशास्त्र के सिद्धान्त-प्रतिष्ठापक ग्रन्थ नहीं थे; अपितु इनका उद्देश्य था - चन्द्रालोक,

---

१- ध्वन्यालोक - आनंदवर्द्धन - प्रथम उद्योत - १।१
२- वही- १।२
३- हिन्दीसाहित्य का इतिहास - सं० डा० नगेन्द्र - पृ० ३११

कुवलयानन्द, रस-तरंगिणी, रसमंजरी, काव्यप्रकाश तथा साहित्य-दर्पण के आधार पर पूर्व-प्रतिपादित सिद्धान्तों का सरल परिचय कराना। संक्षेप में - इन कवियों ने न तो मूल काव्यशास्त्रियों के मतों को प्रस्तुत कर खण्डन-मण्डन ही किया, रस-निष्पत्ति-प्रकरण को प्रायः इन कवियों ने स्पर्श तक नहीं किया, काव्य-लक्षण, शब्द-शक्ति, गुण-अलंकार-भेद-निरूपण अत्यन्त विरल तथा अस्पष्ट है। नवीन वाद का तो प्रश्न ही नहीं उठता।[1] आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र रीतिकवियों के कृतित्व पर एक दृष्टि-निक्षेप करते हुए लिखते हैं - संस्कृत काव्यशास्त्र की समस्त सामग्री का आकलन और उपयोग रीतिकालीन मेधा के लिए न सम्भव ही था और न आवश्यक ही। अपनी शक्ति के अनुसार ही उसने शास्त्रीय विषयों का चुनाव किया। अधिकांश परवर्ती सामन्तवादी आचार्यों को आधार बनाकर इसकाल के कवि और आचार्यों ने एक काम चलाऊ शास्त्रीय परिधि का निर्माण किया। हिन्दी में वक्रोक्ति और औचित्य मतों से अपना सम्बन्ध नहीं स्थापित किया। ध्वनि संबंधी विवेचन में ध्वन्यालोक तक अपनी दृष्टि नहीं दौड़ाई। रीति-गुण के विस्तार में वामन तक नहीं गए। ... जिन परवर्ती ग्रन्थों में शास्त्रीय प्रयास का सर्वाधिक प्रौढ़ समन्वय था या जिनमें सरलता-सुगमता थी उन्हें ही आधार बनाया।[2] रीति-कवियों के कृतित्व की सीमाओं पर डा० भगीरथ मिश्र का आकलन है - हिन्दी में रीति और वक्रोक्ति के सिद्धान्तों की चर्चा नहीं के बराबर है, प्रमुखतया रस, अलंकार और ध्वनि का विवेचन किया गया है। हिन्दी में गुण, रीति और वृत्ति के वर्णन संक्षेप में अवश्य हैं, पर वे सिद्धान्त नहीं बन पाए। अलंकारों और रसांगों के साथ ही प्रायः उनका उल्लेख है।[3]

३-प्राचीन मुक्तक-काव्यपरम्परा का प्रभाव - प्राकृत, संस्कृत तथा अपभ्रंश से होती हुई हिन्दी के भक्तिकाल में शनैः-शनैः विकसित होने वाली यह परम्परा आभिजात्य परिपाटी तथा उदात्त वस्तु-तत्त्वों को छोड़कर नित्य प्रति के सरल-ऐहिक जीवन के छोटे-छोटे गार्हस्थिक तथा यौन संबंधी चित्रों को उत्कीर्ण कर रही थी। इस परम्परा का प्रथम ग्रन्थ हाल कवि विरचित 'गाथा-सप्तशती' है, जिसका प्रणयन चिन्तामणि के

१- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० १४२

2- पद्माकर - आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - सम्पादकीय - पृ० ६१

3- हिन्दी रीतिसाहित्य - डा० भगीरथ मिश्र - पृ०२६

समय से लगभग १५०० वर्ष पूर्व हो चुका था । इस ग्रन्थ के उपरान्त अमरु का `अमरुक-शतक ` तथा गोवर्द्धनाचार्य की `आर्या-सप्तशती ` है । इन ग्रन्थों में कृत्रिम नागरिक जीवन का निदर्शन है । परन्तु डा० मिश्र के अनुसार हिन्दी के पूर्ववर्ती अपभ्रंश साहित्य में रीति-शास्त्र की परम्परा नहीं उपलब्ध होती । दो-एक ग्रन्थ छन्द, व्याकरण आदि पर अवश्य है तथा कुछ ऐसेभी ग्रन्थ है जिनमें गौण रूप से किसी ग्रन्थ के बीच में नायिका-भेद, शृंगार आदि का विवेचन है ।[१] इन ग्रन्थों के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य के ऐहिक मुक्तक काव्य के कतिपय अन्य ग्रन्थों - शृंगार-तिलक, घट-कर्पर, शृंगार-शतक, चौर-पंचाशिका आदि की रचना हुई जिनमें आभिजात्य तत्व की विशेषता है । शृंगार के इन मुक्तकों के समानान्तर ही भक्तिपरक मुक्तकों की परिपाटी में `दुर्गा-सप्तशती `, `चण्डी-शतक`, `वक्रोक्ति-पंचाशिका ` तथा `कृष्णलीलामृत ` आदि स्तोत्र ग्रन्थ रचे गए जिनकी आत्मा में भक्ति है पर शरीर पर शृंगार अधिष्ठित है । बारहवीं से चौदहवीं शताब्दी तक बंगाल और बिहार में जो काम के सूक्ष्म रहस्यों से युक्त राधाकृष्ण भक्ति के पद लिखे गए वे ही विद्यापति के पदों के उपजीव्य बने । हिन्दी रीतिकाव्य में प्रयुक्त `सुमिरन के बहाने- राधाकृष्ण ` के अभिधान के लिए उक्त स्तोत्र उत्तरदायी हैं । उक्त दोनों धाराओं से पृथक् कामशास्त्र परम्परा के आदि ग्रन्थ वात्स्यायन के ` कामसूत्र ` तथा इसी प्रकार के परवर्ती ग्रन्थों - रतिरहस्य, अनंगरंग, पंचसायक - में उक्त दोनों परंपराओं के सूत्र उपलब्ध हो जाते हैं । ऐहिक-शृंगार मुक्तकों, शिव और कृष्णभक्ति के स्तोत्रों और नायिका-भेद के ग्रन्थों पर इनकी स्पष्ट छाप है ।

४-<u>सूफी कविता तथा फारसी शैली का प्रभाव</u> - मध्य युग के सूफी कवियों ने शारीरिक सौन्दर्य तथा आशिक के माशूक के संबंध में जो रचनाएं की हैं, उनकी अभि-व्यक्ति के लिए फारसी लिपि का माध्यम अपनाया । इनकी प्रेम-गाथाओं की शृंगारिक उद्भावनाओं के कारण उर्दूकाव्य भी ऐन्द्रिय तथा स्थूल हो गया । उसकी इस प्रवृत्ति का प्रभाव हिन्दी रीतिकाव्य पर पर्याप्त रूप से पड़ा । विलासी बादशाहों के दरबार में आश्रय मिल जाने के कारण उसमें साकी, और शराब, जाम और प्याला

१- हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास - भगीरथ मिश्र - पृ० ४१

आदि का प्रवेश हुआ। प्रेमियों के दिल पर छुरियाँ चलना, कलेजे में खंजर घुसना, कत्ल करना, निराश प्रेमी की आहें और तड़पन, माशूक की गली से होकर जनाजा निकालना आदि विषय उर्दू कविता के अंग बन गए। इसके अतिरिक्त सुरा और सुराही, माशूक और उसके सितम, रकीबों की ज्यादतियाँ आदि की चर्चा उर्दू कविता की एक बहुत बड़ी विशेषता है। फारसी साहित्य की प्रेम संबंधी ऐकान्तिक मान्यताओं, ऐन्द्रिय तत्वों के कारण नारी के बहिरंग सौन्दर्य का ही चित्रण हुआ है। सैयद मुबारक अली बिलग्रामी 'मुबारक' ने सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में 'अलक-शतक' तथा 'तिल-शतक' की रचना फारसी के उक्त प्रभाव की परिचायिका है। आलम तथा शेख-परिणय के सन्दर्भ में फारसी पद्धति का वीभत्स प्रचार उपलब्ध होता है।[1] मृत्यु को मोहक तथा काम्य मानने की भावना हिन्दी काव्य में सूफी प्रभाव के कारण ही प्रविष्ट हुई। सूफियों का 'इश्क-मजाजी' हिन्दी के रीतिकाल को बहुत-कुछ दे गया। इस्लामी भावुकता के कारण यदि सूफी प्रेम को सूली कहते हैं तो कवि हृदयेश इसे 'फाँसी'[2] का अभिधान देते हैं और यत्र-तत्र कत्ल करने[3] का उल्लेख करते हैं। कहीं-कहीं तो फारसी-बहुल पदावली में हिन्दी कठिनता से दृष्टिगत होती है। हृदयेश के मित्र कवि पजनेश की एक ऐसी ही रचना है —

पजनेस तसद्दुक ता बिस्मिल जुल्फे फुरकत न कबूल कसे।
महबूब चुना बदमस्त सनम अजदस्त अलाबल जुल्फ बसे।
मजकूर न कापः शिगाफ रुए सम स्यामत चश्म से दूं बखे।
मिजगाँ सुरमा तहरीर दुताँ नुक्ते बिन बे बिन बे बिन से।।[4]

रीतिकाव्य का पुनर्मूल्यांकन

सामान्यतया रीतिकाव्य पर निम्न दोष लगाए जाते हैं—

१- अश्लीलता, २- समाज को प्रगति देने की अक्षमता, ३- आश्रयदाता की अतिशय प्रशंसा, ४- चमत्कारप्रियता, ५- रूढ़िवादिता।

१-रीतिकाव्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि - डा० शिवलाल जोशी - पृ० २८८-८९

२-विश्वक्षकरन - पद सं० १३ ३- वही - पद सं० १५

४-बुन्देल-वैभव - गौरीशंकर द्विवेदी - पृ० ५७६ - षष्ठ भाग

इन दोषों का परिहार भी रीतिसाहित्य के सुधी विद्वानों द्वारा किया गया है -

१- अश्लीलता की धारणा युगसापेक्ष्य है। एक ही प्रकार का वस्तु या व्यक्ति-रूप एक युग मे अश्लील कहा जा सकता है और दूसरे युग में नहीं। संस्कृत के कवि-कुलगुरु कालिदास, भर्तृहरि, अमरुक, सप्तशती और मुक्तककार अनेक कवियों की रचनाओं में नारी-शरीर के अंगों का तथा भावों का ऐसा वर्णन है जो उस समय अश्लील नहीं था, पर आज वह अश्लील माना जाता है। हिन्दी के भक्तियुग में ही सूरदास, नन्ददास, विद्यापति, जायसी, सेनापति आदि के वर्णन ऐसे हैं जो रीतिकालीन वर्णनों से अधिक अश्लील कहे जा सकते हैं। आधुनिक युग में भी अश्लील वर्णनों का अभाव नहीं है। प्रकृतिवादी तथा प्रगतिवादी काव्य में भी हेय तथा अश्लील वर्णन उपलब्ध होते हैं। रीतिकालीन सौन्दर्य-चित्रण के प्रसंग में विशेषतः नख-शिख-सौन्दर्य-चित्रण मे यदि कतिपय अंगों का ऐसा वर्णन मिलता है जो आज अश्लीलता की सीमा में आता है तो उसके आधार पर समस्त रीति-काव्य को लांछित करना उपयुक्त नहीं। पुनः शारीरिक अंगों का वर्णन एक देश में अश्लील हो सकता है, दूसरे में नहीं। दक्षिण-पूर्वी देशों में अनेक स्थलों पर स्त्रियों के लिए कमर से ऊपर का समस्त खुला या केवल आभूषणयुक्त अंग-प्रत्यंग वहां के लिए अश्लील नहीं है, जब कि अपने देश के नागरिक समाज में उसे अश्लील माना जाता है। इसी प्रकार चित्रकला, और मूर्तिकला के अन्तर्गत पुरुष और नारी के अनावृत रूप भी अश्लील नहीं माने जाते। कभी-कभी एक ही पदार्थ या भाव का द्योतक शब्द एक भाषा में अश्लील नहीं माना जाता जबकि दूसरी में वही अश्लील समझा जाता है। अंग्रेजी के ब्रेस्ट, किस, एम्ब्रेस आदि शब्द हमें अश्लील नहीं लगते जब कि इनके पर्याय कुच, चुम्बन, आलिंगन आदि सामान्यतः अश्लील समझे जाते हैं। हां, रीतिकाव्य के कुछ वर्णन, जो कामशास्त्र पर आधारित होने के कारण हमारी निम्न वासनाओं को उभाड़ने वाले हैं, वे अवश्य वर्ज्य हैं।[1] विपरीत रति, सुरतांत आदि के वर्णन इस कोटि में आते हैं जो इस सारी रचना का शतांश भी नहीं है।[2]

२- द्वितीय आरोप भी बहुत ठीक नहीं है। यद्यपि रीतिकालीन साहित्य प्रमुख-तया शृंगारिक है पर इसके अन्तर्गत भी वीरता, भक्ति और नीति से युक्त रचनाएं भी

१- हिन्दी-रीति-साहित्य - डा० भगीरथ मिश्र - पृ० 20-24

२- पद्माकर - आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - पृ० 23

मिलती है। शिवराजभूषण, रामचन्द्राभरण, बिहारी सतसई इसके प्रमाण है जिनमें वीरता, भक्ति और नीति की बातें है। परन्तु इसके अतिरिक्त उस युग में अन्य काव्य-धाराएं भी प्रवाहित थीं जिनके अन्तर्गत आध्यात्मिक तथा लौकिक जीवन को प्रेरित करने की शक्ति थी। यह पूर्व ही निर्दिष्ट किया जा चुका है कि इन काव्यधाराओं में समाज को प्रगति देने की क्षमता है। इस काल की वीर तथा नीतिपरक काव्य में जीवन के मधुर-कटु अनुभवों के आधार पर उपयोगी तथा वांछनीय बातें कही गई हैं।[1]

३- आश्रयदाता की अतिशय प्रशंसा करने का दोष भी आंशिक रूप से ही स्वीकार किया जा सकता है। वस्तुतः उस युग के लिए आश्रयदाताओं की प्रशंसा कला और काव्य के संरक्षण के लिए किन्हीं अंशों में आवश्यक भी थी। उस समय यदि कविता, संगीत, चित्र आदि कलाओं को राजाश्रय प्राप्त न होता तो इनका विकास तो रुक ही जाता, ये सुरक्षित भी नहीं रह सकतीं थीं, अतः थोड़ी-बहुत आश्रयदाताओं की प्रशंसा जो गुणों और योग्यता के सन्दर्भ में ही की गई थी, वांछनीय ही प्रतीत होती है। पुनः रीति-काव्य के अन्तर्गत भूमिका या प्रस्तावना-रूप में अथवा ग्रन्थ के समापन के समय प्रशंसात्मक उक्तियां प्राप्त होती हैं।[2] जो चाटुकारिता वर्तमान स्वतंत्र भारत में राजकीय मंत्रियों को अभिनन्दन-ग्रन्थ समर्पित करने में हिन्दी के कविमन्य और पण्डितमन्य महानुभावों के द्वारा देखी जा रही है, उसका शतांश ही रीतिकालीन कवियों में मिल सकता है।[3] कुछ रीतिकवि स्वाभिमानी भी थे जिन्होंने अपने कृतित्व और व्यवहार से कवि और कविता- दोनों को ही गौरवान्वित किया।[4]

४-रीतियुग में काव्य के अन्तर्गत चमत्कार का विशेष महत्व था। दरबारी वातावरण के लिए जहां तड़क-भड़क और चमत्कार-प्रदर्शन की विशेषता थी, काव्य में भी चमत्कारिता आवश्यक थी। दरबार में रहने वाले और आने वाले कवियों और कलाकारों

१-हिन्दी-रीति-साहित्य- डा० भगीरथ मिश्र - पृ० 20-25

2- वही

3- हिन्दीसाहित्य का अतीत भाग 2 - पृ०३८५ आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

४-हिन्दी-रीति-साहित्य - डा० भगीरथ मिश्र - पृ० 20-25

के मध्य अपने को अन्य से बढ़कर सिद्ध करने के लिए चमत्कार की अपेक्षा थी। यह चमत्कार-प्रदर्शन कवियों की प्रतिभा का एक मार्ग था जिसके परिणमन में कलात्मक काव्यरचना हुई यद्यपि अभिव्यक्ति का सौष्ठव भी इस काव्य में उपलब्ध होता है। इस प्रकार चमत्कार-प्रियता अथवा अलंकरण या सजावट की वृत्ति को गुण के ही रूप में देखना समीचीन होगा।[१]

५- इस युग में रूढ़िवादी काव्य-रचना दृष्टिगत होती है। अन्य शब्दों में - एक ही प्रकार के प्रसंगों और विषयों पर इस काल में कविता-रचना हुई है। परन्तु यह परिपाटी-बद्धता किन्हीं-न-किन्हीं अंशों में सभी युगों के काव्य में परिलक्षित होती है। भक्ति-काव्य, सन्त-काव्य इसी प्रकार छायावादी, प्रयोगवादी, प्रगतिवादी- सभी काव्यों में यह बात न्यूनाधिक अंशों में उपलब्ध होती है जहाँ पद्धति, छन्द, अप्रस्तुतविधान और शब्दावली एक समान दिखाई देती है, अतः यह दोष भी उचित नहीं।[2]

रीतिकाल की उपलब्धियाँ

हिन्दी की रीतिकालीन कविता की जिन उपलब्धियों का उल्लेख किया गया है, वे निम्न प्रकार हैं :—

१-हिन्दी की समस्त रचना का यदि साहित्यिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से मूल्यांकन किया जाय तो हिन्दी का शृंगारकाल ही अनारोपित काल दिखता है। उत्कृष्ट कवियों की पर्याप्तता, रचना-परिमाणात्मकता तथा गुणात्मकता, मौलिक उद्भावनाओं आदि की दृष्टि से इसका महत्व असंदिग्ध है।[३]

२- रीतिकाव्य की सृष्टि के माध्यम से भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा का अवतरण सरस रूप में हिन्दी में सम्भव हुआ। इस प्रकार हिन्दी काव्य को शास्त्र-चिन्तन की प्रौढ़ि प्राप्त हुई और शास्त्रीय विचार सरस रूप में प्रस्तुत हुए। भारतीय भाषाओं में हिन्दी को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी यह प्रवृत्ति नहीं मिलती।[४]

१-हिन्दी-रीति-साहित्य - डा० भगीरथ मिश्र - पृ० २०-२६

२- वही -

३- पद्माकर - सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - प्रस्तावना - पृ० २३

४- हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं० डा० नगेन्द्र - पृ० ४१२ व ४३० से ४३४

३- इस युग के काव्य ने रस को ध्वनि के प्रभुत्व से मुक्त किया और रसवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा की। भारतीय काव्यशास्त्र में रस का स्थान मूर्धन्य होते हुए भी उसका विवेचन प्राय: असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य ध्वनि के अन्तर्गत अंगरूप में ही होता रहा है। हिन्दी रीति कवियों ने पूरी दो शताब्दियों तक रसराजश्रृंगार की ऐसी प्रतिष्ठा की कि श्रृंगार-वाद[१] एक प्रकार से स्वतंत्र सिद्धान्त के रूप में ही प्रतिष्ठित हो गया। यह रीति-श्रृंगार-काव्य रीतियुग की निजी सम्पत्ति है। इस काव्यसम्पत्ति में संस्कृत को छोड़कर कदाचित् ही किसी अन्य भाषा का साहित्य हो जो हिन्दी की समता कर सके।[२]

४-रीतिकाव्य का महत्त्व उक्ति-वैचित्र्य की दृष्टि से भी कम नहीं है। विदग्ध, चमत्कारिक, स्मरणीय-चुटीली अभिव्यक्ति इस काव्य की प्रमुख देन है। उक्ति की विशिष्टता ही काव्य को प्रभावशाली बनाती है। इस कसौटी पर रीतिकाव्य बड़ा खरा उतरता है।[३]

५-घोर पराभव के उस युग में समाज के अभिशप्त जीवन में सरसता का संचार कर इन कवियों ने अपने ढंग से समाज का उपकार किया था यद्यपि इनके काव्य से प्रदत्त आनंद उदात्त नहीं था। कला के उद्देश्य-मनोरंजन की पूर्ति भी मानव-जीवन की अपरिहार्य आवश्यकता है, जिसकी पूर्ति रीतिकाव्य करता है।[४] नायिका-भेद-प्रकरण की सामाजिक उपादेयता और इस रूप में पाई जाने वाली हिन्दी साहित्य की यह निधि ऐतिहासिक विवेचन के अतिरिक्त पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन-बोध की व्याख्या के लिए भी महत्त्वपूर्ण है।[५]

६-कला की दृष्टि से भी रीतिकाव्य का महत्त्व असंदिग्ध है। वास्तव में हिन्दी-

---

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं० डा० नगेन्द्र - पृ० ४१२, ४३० से ४३४

२- रीतिकाव्य नवनीत - डा० भगीरथ मिश्र - पृ० ३७

३- वही - पृ० ३६

४- हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं० डा० नगेन्द्र - पृ० ४१२, ४३० से ४३४

५- रीतिकालीन हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक व्याख्या - डा० महेन्द्रप्रतापसिंह पृ०४४

साहित्य के इतिहास में सर्वप्रथम रीतिकवियों ने ही काव्यों को शुद्ध कला के रूप में ग्रहण किया। अपने शुद्ध रूप में रीतिकविता न तो राजाओं और सैनिकों को उत्साहित करने का साधन थी, न धार्मिक प्रचार अथवा भक्ति का माध्यम थी, न सामाजिक सुधार अथवा राजनीतिक सुधार की परिचायिका ही। काव्यकला का अपना स्वतंत्र महत्त्व था-उसकी साधना उसी के अपने निमित्त की जाती थी, वह अपना साध्य आप थी।[1]

७-कला के क्षेत्र में व्यावहारिक रूप से भी रीतिकवियों की उपलब्धि कम नहीं है। ब्रजभाषा के काव्यरूप का पूर्ण विकास करके कवियों ने उसे कान्ति, माधुर्य और मसृणता आदि गुणों से मंडित कर दिया। छन्दों को जैसे खराद पर उतार कर चिक्कण रूप प्रदान किया गया। सवैया और कवित्त की रेशमी जमीन पर रंग-बिरंगे चित्र माणिक-मोती की तरह ढुलकने लगे। इन दोनों छन्दों की लय में अभूतपूर्व मार्दव और लोच आ गया। अभि-व्यंजना की साज-सज्जा और अलंकृति की दृष्टि से रीतिकाव्य का वैभव अपूर्व है। विलास-युग के रंगोज्ज्वल उपमानों और प्रतीकों के प्रचुर प्रयोग से रीतिकाव्य की अभिव्यंजना दीपा-वली की तरह जगमगाती है। पुनः गोष्ठी-मण्डन-कविता का जैसा उत्कर्ष रीतिकाव्य में हुआ वैसा न उसके पूर्ववर्ती काव्य में और न परवर्ती काव्य में ही सम्भव हो सका।[2]

८-रीति और शृंगार के वृत्त से बाहर वीरकाव्य, भक्ति-काव्य, नीतिकाव्य अथवा गद्य के क्षेत्रों में भी रीतिकाल का योगदान स्तुत्य है। वीरकाव्य के क्षेत्र में कवियों ने लोक-नायकों के शौर्य का ओजस्वी वाणी में वर्णन कर नये कीर्तिमान स्थापित किए। भक्तिकाव्य की धारा भी इस युग में पूरे वेग से प्रवाहित थी, मधुरा भक्ति का विस्तार कृष्ण-काव्य की सीमाओं को पार कर रामकाव्य में प्रतिष्ठित हो चुका था और राम-भक्ति में रसिक-भावना का पूर्णतः सन्निवेश हो गया था। भक्ति-काव्य के क्षेत्र में गेय पदों और लीलाओं की रचना व वर्णना प्रचुर मात्रा में हुई जिसमें रसार्द्रता है पर मौलिक प्रतिभा का अभाव है; अधिकांश कवियों ने प्रायः पूर्ववर्ती काव्य की पुनरावृत्ति ही की है। कविता के क्षेत्र में इस युग की एक विशेष घटना है - महाभारत का अनुवाद।[3]

९- हिन्दी गद्य का आविर्भाव रीतिकाल की अन्य महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इस

१- हिन्दी-साहित्य का इतिहास - सं० डा० नगेन्द्र - पृ० ४३० से ४३१

२ व ३- वही

युग का ब्रजभाषा और राजस्थानी का गद्य निश्चय ही पर्याप्त समृद्ध, प्रौढ़, प्रचुर और बहुमुखी है । टीकात्मक अनूदित रचनाओं की संख्या इस काल में अधिक है परन्तु मौलिक ललित गद्य का भी परिमाण विरल नहीं है । इस समय की प्रमुख गद्य-विधाएं – कथा, कहानी, वार्ता, बात, वर्णन-चरित्र, वचनिका आदि है । जिन विषयों का गद्य में प्रतिपादन किया गया है वे हैं – धर्म, दर्शन, अध्यात्म, इतिहास, भूगोल, ज्योतिष, काव्यशास्त्र, शकुन-शास्त्र, प्रश्न-शास्त्र, सामुद्रिक शास्त्र, गणित और व्याकरण । खड़ी बोली गद्य के आरंभिक निर्माता ईशाअल्ला खां, सदासुखलाल, सदल मिश्र और लल्लूलाल तथा इनके पूर्ववर्ती रामप्रसाद निरंजनी का आविर्भाव-काल यही है अर्थात् इसी युग में आधुनिक गद्य के विविध रूपों का प्रस्फुटन हुआ ।[1]

६-सम-सामयिक परिस्थितियां :—

झांसी जनपद का प्रारंभिक इतिहास उस राज्य से संबद्ध है जिसे विभिन्न कालों में `चेदि-देश `, `चेदि-राष्ट्र `, `चेदि-जनपद`, ` जेजाक-भुक्ति`, `जेझौति` या`जझौति`[2] के नाम से जाना जाता रहा है और अब बुन्देलखण्ड के नाम से जाना जाता है ।[3] यह प्रदेश नर्वदा के उत्तर और यमुना के दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत का मांडेर, कैमूर आदि शाखाओं से समाकीर्ण और यमुना की सहायक नदियों के जल से सिंचित सृष्टि सौन्दर्यालंकृत है । इसके अन्य नाम `दशार्ण`,` वज्र `,`जुझारखण्ड ` तथा 'विन्ध्येलखण्ड' भी रहे हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि विन्ध्याटवी में स्थित होने के कारण इस प्रदेश का नाम विन्ध्येलखण्ड पड़ा बाद में अपभ्रष्ट होकर`बुन्देलखण्ड` कहलाया ।[4] वैदिक, पौराणिक तथा महाभारतकाल में विभिन्न शासकों द्वारा इस जनपद के शासित होने का उल्लेख मिलता है । ई०पू० की चतुर्थ शताब्दी से ई०पू० की प्रथम शताब्दी तक यह प्रदेश क्रमेण नंदवंश, मौर्य, शुंग,सातवाहन, तथा तदनन्तर कुषाण साम्राज्य के अन्तर्गत रहा । कुषाण शासकों के पतन के अनन्तर यहां पुनः सातवाहन राजाओं का आधिपत्य हुआ । इन शासकों के पराभव के पश्चात् इस प्रदेश पर वाकाटक राजाओं तथा तदनन्तर नागाओं का आधिपत्य तृतीय-चतुर्थ शताब्दी में रहा ।

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास – सं० डा० नगेन्द्र – पृ० ४३० से ४३४

२- गजेटियर झांसी – १९६५– पृ० २७

३- दि सोशियो-एकोनामिक हिस्ट्री आफ झांसी डिस्ट्रिक्ट ड्यूरिंग दि लेटर हाफ आफ दि नाइन्टीन्थ सेन्चुरी–डा० एस०पी० पाठक – पृ० १ टंकित शोध प्रबंध-प्रति

नागा-शासन के पश्चात् गुप्त सम्राटों ने छठी शताब्दी के प्रारम्भ तक इसे अपने अधिकार में रखा। इसी शताब्दी में इस राज्य के शासक परिव्राजक प्रतीत होते हैं जिनके पराभव के पश्चात् गोंड शासकों ने जनपद के दक्षिणी भाग पर अपना अधिकार कर लिया। इस शासन के समाप्त होने पर प्रतिहार राजपूतों ने आठवीं तथा चन्देलों ने नवीं शताब्दी में इस भूभाग को अधिकृत किया। चन्देल-शासकों ने इस जनपद पर लगभग तीन शताब्दियों तक शासन किया। बारहवीं शताब्दी में पृथ्वीराज ने इस प्रदेश पर आक्रमण करके अपना राज्य स्थापित किया पर इसी शताब्दी में परमाल ने इसे अधिकृत किया। इसके पश्चात् चौदहवीं शताब्दी में यह राज्य तुर्की तथा विदेशी शासकों के अधीन हो गया। १६वीं शताब्दी में बाबर ने इस प्रदेश पर शासन किया। इस प्रदेश के उत्तरी भाग पर ओरछा के बुन्देला शासक रुद्र प्रताप का ही नियंत्रण था जिसके उत्तराधिकारी भारतचंद हुए।[1] इनके पश्चात् १६वीं शताब्दी में भारतचंद के उत्तराधिकारी मधुकरशाह हुए जिनके पुत्र वीरसिंह देव को ओरछा का राज्य जहाँगीर द्वारा सौंपा गया था। झाँसी प्रान्त भी इन्हीं वीरसिंह देव के अधीन था। उस समय झाँसी एक छोटा-सा गाँव था। वीरसिंह देव ने इसे एक बड़े किले के रूप में १६१७-१८ में परिवर्तित किया।[2] परन्तु सन् १६२७ में जब दिल्ली के सिंहासन पर शाहजहाँ आसीन हुआ तो वीरसिंह देव की लूटमार से जनता को क्षुभित देख कर उसने इनकी जागीर जब्त कर ली। तब से १७०७ तक झाँसी प्रान्त दिल्ली शासनाधीन रहा। सन् १७०७ ई० में बहादुरशाह के दिल्लीतख्त पर बैठने पर झाँसी का परगना पंवार राजपूत छत्रसाल को जागीर में दे दिया गया। इनकी राजधानी पन्ना थी। इन्होंने सारे बुन्देलखण्ड का राज्य कुशलतापूर्वक चलाया। छत्रसाल की स्वधर्माभिमानिता, शूरता तथा शासन-कौशल से प्रजा बहुत ही संतुष्ट थी। उनका यह उत्कर्ष मालवे के सूबेदार तथा इलाहाबाद के नवाब मुहम्मद खाँ बंगश न सहन कर सके परिणामस्वरूप इन दोनों ने बादशाह के साहाय्य से छत्रसाल के विरुद्ध युद्ध-योजना की। महाराज छत्रसाल ने महाराष्ट्र देश के राजा छत्रपति साहू महाराज के प्रधान मंत्री बाजीराव पेशवा से सहायता की याचना की।[3] महाराजा छत्रपति साहू की अनुमति से बाजी-

---

१-गजेटियर झाँसी -१९६५- पृ० १७ से १९

२- (अ) बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य- रामचरण ह्यारण `मित्र` - पृ० ४७
(ब) जय ओरछा- श्रवण कुमार त्रिपाठी- पृ० २५२

३- झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई - दत्तात्रय बलवन्त पारसनीक - पृ० २३-२५

राव समस्त सैन्य सहित बुन्देलखण्ड आए तथा उभयपक्षीय लड़ाई में अन्ततः शाही फौज तथा मुहम्मद खाँ बंगश ने अपनी पराजय का अनुमान कर संधि कर ली। बाजीराव के साहाय्य से प्रसन्न होकर छत्रसाल महाराज ने अपने राज्य के तीन हिस्से किए और बाजीराव को पुत्रवत् मानकर एक करोड़ की आय का एक भाग उन्हें जागीर में दे दिया। बाजीराव ने इस भाग के तीन हिस्से करके तीन सूबेदार नियुक्त किए। पहले भाग पर गोविन्द पन्त बुन्देल को नियुक्त किया जिनके अधीन सागर, गुरसराय तथा जालौन का ४० लाख आय वाला इलाका था। बांदा और कालपी का दूसरा भाग जो ४० लाख की आय वाला था, बाजीराव ने अपनी यवन-वेश्या मस्तानी से उत्पन्न पुत्र शमशेरबहादुर को दिया। बाकी २० लाख आय वाला झांसी का प्रान्त नारोशंकर मोतीवाले के अधीन सन् १७४२ में किया गया।[1] इन्होंने ही झांसी की बस्ती को बसाने का कार्य किया।[2] इस प्रकार सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड के राज्यों की समुचित व्यवस्था करने के अनन्तर वे दक्षिण चले गए।

सन् १७५७ में पेशवा बाजीराव ने नारोशंकर को वापस बुलाकर महाद जी गोविंद को झांसी राज्य की सम्यक् व्यवस्था अथवा विस्तार हेतु भेजा, जिन्होंने रुहेलखण्ड को भी अपने अधिकार में कर लिया। इनके पश्चात् रघुनाथ हरी नेवालकर झांसी के सूबेदार के रूप में नियुक्त होकर आए। सन् १८५७ ई० तक इन्हीं के वंशधर झांसी में राज्य करते रहे।[3]

झांसी के स्थायी सूबेदार के रूप में स्वीकार कर लिए जाने के अनन्तर रघुनाथ हरी ने अपनी वीरता, रण-कौशल तथा बौद्धिक प्रतिभा से केवल झांसी के पूर्वाधिकारियों-गोसाइयों - को ही पराभूत नहीं किया अपितु उनकी शक्ति को तितर-बितर कर उनके चार मठों को झांसी प्रान्त में मिला लिया। इस कार्य मे उनके भाई लक्ष्मणराव तथा शिवराव भाऊ ने बड़ी सहायता की। जिस समय सन् १७९६ मे रघुनाथ हरी पंचत्व को प्राप्त हुए उस समय पूना में पेशवाई गद्दी पर द्वितीय बाजीराव विद्यमान थे। उनके

1- महारानी लक्ष्मीबाई - दत्तात्रय बलवन्त पारसनीक - पृ० २७-२८

2- बेतवा-वाणी- अंक अगस्त-अक्टूबर ---- -१९७८ - पृ० ७५

3- महारानी लक्ष्मीबाई - दत्तात्रय बलवन्त पारसनीक - पृ० २७

शासन-काल में सम्पूर्ण महाराष्ट्र देश में अव्यवस्था और अन्धेर हो रहा था । सभी मरहठे सरदार स्वतंत्र होने का उपक्रम कर रहे थे । पारस्परिक संघर्ष तथा अव्यवस्था की स्थिति से अंग्रेजों ने लाभ उठाना चाहा । इसी के आंशिक कार्यान्वयन में सन् १८०४ में झाँसी के सूबेदार शिवराव भाऊ तथा ब्रिटिश सरकार में एक नूतन मैत्री-संधि हुई । यहीं से अंग्रेजी राज्य की जड़ बुन्देलखण्ड में मजबूत हुई[१] ।

शिवराव भाऊ के तीन पुत्र - कृष्ण राव, रघुनाथ राव, गंगाधरराव - थे । इनके पश्चात् कृष्णराव के पुत्र रामचन्द्र राव झाँसी की सूबेदारी पर नियुक्त हुए; परन्तु इनके अवयस्क होने के कारण इनकी माता सखू बाई तथा झाँसी के पुराने राजमंत्री गोपालराव राज्य का कार्य चलाते थे । इसी समय पूना के दरबार में द्वितीय बाजीराव पेशवा के भ्रष्ट तथा अनीतिपूर्ण व्यवहार से अव्यवस्था फैल गई[2] जिसका लाभ उठाकर सन् १८१७ के जून में अंग्रेजों ने उनसे अंतिम संधि की जिसके द्वारा पेशवा के सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड के अधिकार ईस्ट इंडिया कम्पनी को दे दिये गए । बाजीराव को इस संधि के द्वारा आठ लाख रु० वार्षिक पेंशन तथा बिठूर खास की जागीर मिली, परिणामतः उन्हें पूना त्याग बिठूर जाना पड़ा[3] । एतदनन्तर रामचन्द्रराव तथा अंग्रेज सरकार में दूसरी संधि हुई जिसके अनुसार पेशवाई शासन का स्थानापन्न कम्पनी सरकार को माना गया[४] । इस संधि-पत्र के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने झाँसी का राज्य रामचन्द्रराव को वंशपरम्परा के लिए अपनी ओर से दिया[५] । सन् १८३२ में रामचन्द्रराव और उनके वारिसों को ` राजा ` की उपाधि दी गई[६] ।

सन् १८३५ ई० में रामचन्द्रराव की निःसन्तान मृत्यु होने के पश्चात् उनकी विधवा ने कृष्णराव नामक एक बालक को गोद लिया जो अंग्रेजी शासन द्वारा अवैध माना गया। अंग्रेजी शासन ने इसके विपरीत शिवराव भाऊ के द्वितीय पुत्र रघुनाथ राव को झाँसी राज्य के शासक के रूप में मान्यता दी[७] । रघुनाथ राव दुर्व्यसनी और अत्याचारी थे । उनके समय

१-महारानी लक्ष्मीबाई - दत्तात्रय बलवन्त पारसनीक - पृ० २९-30

2- वही

3- झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई - डा० वृन्दावन लाल वर्मा - पृ० 2

४- वही ५-महारानी लक्ष्मीबाई - दत्तात्रय बलवन्त पारसनीक - पृ०३२

६-झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई - डा० वृन्दावनलाल वर्मा - पृ० 2

७- महारानी लक्ष्मीबाई - दत्तात्रय बलवन्त पारसनीक - पृ० ३२

में राज्य की आय घट गई और प्रजा को कष्ट का अनुभव हुआ । यह देख अंग्रेज सरकार ने सन् १८३७ ई० में झांसी राज्य की व्यवस्था अपने हाथ में ले ली । सन् १८३८ ई० में रघुनाथ राव के देहपात् के अनन्तर झांसी राज्य के चार अधिकारी खड़े हुए - ।१।गंगाधर-राव, ।२। रामचन्द्रराव का कथित दत्तक पुत्र कृष्णराव ।३। रघुनाथ राव का दासी या वेश्यापुत्र अली बहादुर तथा ।४। रघुनाथ राव की स्त्री । अंग्रेज सरकार द्वारा नियुक्त कमीशन ने यह निर्णय दिया कि शिवराव भाऊ के पुत्र गंगाधर राव ही राज्य के वारिस हैं और वे एतदनुसार झांसी की गद्दी पर बिठाए गए ।[१]

राजा गंगाधरराव का शासन-काल

कवि हृदयेश के आश्रयदाता राजा गंगाधरराव के शासन-प्रबन्ध के विषय में साहित्यकारों-इतिहासकारों में परस्पर मत-वैभिन्य है । गोरेलाल तिवारी का अभिमत है कि गंगाधरराव ने झांसी का बहुत उत्तम प्रबन्ध किया । झांसी राज्य पर देय ऋण उन्होंने अदा किया तथा राज्य की आय बढ़ाई । ये धार्मिक तथा अतिशय तीर्थपरायण थे ।[2] इसके विपरीत डा० वृन्दावन लाल वर्मा ने लिखा है कि उनके शासनकाल में भी अव्यवस्था अशान्ति तथा ऋणग्रस्तता बनी रही । यही कारण था कि कम्पनी ने पुनः सन् १८३९ ई० में इस राज्य को अपने अधीन कर लिया । इस बार कम्पनी की व्यवस्था के अनुसार झांसी नगर का शासन गंगाधरराव को सौंपा गया तथा अवशेष राज्य का प्रबन्ध-संचालन कम्पनी करने लगी ।[3] दत्तात्रय बलवन्त पारसनीक का मत गोरेलाल तिवारी के मत से मिलता है । पारसनीक महोदय ने लिखा है - गंगाधरराव झांसी प्रान्त की प्रजा को बहुत प्रिय थे । प्रजा उनके समय में सुखी थी । वे राज्यप्रबन्ध कुशल, कार्यदक्ष तथा अच्छे प्रशासक थे । उन्होंने ठाकुरों तथा बुन्देलों के उपद्रवों को शान्त किया ।[४] सर एडविन अर्नोल्ड नामक एक अंग्रेजी ग्रन्थकार ने गंगाधरराव की प्रशासनिक सुशीलता तथा धार्मिकता की ओर संकेत किया है ।[५] झांसी गजेटियर भी गंगाधरराव को योग्य शासक सिद्ध करते हुए उनकी प्रजापालकता

१-महारानी लक्ष्मीबाई -दत्तात्रय बलवन्त पारसनीक - पृ० ३२-३३

२- बुन्देलखण्ड का इतिहास - गोरेलाल तिवारी - पृ० ३४०

३- झांसी की रानी लक्ष्मीबाई - डा० वृन्दावन लाल वर्मा - पृ० ५, ८

४ व ५ - महारानी लक्ष्मीबाई - दत्तात्रय बलवन्त पारसनीक - पृ० , ४३

तथा सांस्कृतिक अभिरुचियों के सन्दर्भ में प्रकाश निक्षेप करता है।[1] साक्ष्य-बाहुल्य तथा विश्वस्तता के कारण बाद के मत ही समीचीन प्रतीत होते हैं। किसी एक इतिहास-कार का आग्रह किसी चरित्र-विशेष के प्रति हो सकता है परन्तु अधिकांश का ऐसा आग्रह बन गया हो, ऐसा नहीं स्वीकार किया जा सकता - पुनः ऐसी स्थिति में जब एक वैदेशिक विद्वान् ने उस चरित्र की प्रशंसा की हो। हो सकता है गंगाधरराव के नम्र पर दृढ़ व्यक्तित्व तथा कठोर निर्णय की विशेषता ने ऐसी भ्रान्ति उत्पन्न कर दी हो। महाराज का पाणिग्रहण संस्कार `मनु` नामिक एक महाराष्ट्रियन कन्या, जोस्नेहवश `छबीली` कही जाती थी, से हुआ था। यही आगे चलकर `महारानी लक्ष्मीबाई` के नाम से भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध हुई। विवाह के अनन्तर ही राजा गंगाधरराव को पुनः शासन के अधिकार प्राप्त हुए। ईस्ट इंडिया कम्पनी की पुरानी शर्ते दुहराई गईं। राज्याधिकार पाने पर गंगाधरराव ने जो कार्य किए उनमें उल्लेखनीय हैं - राज्य की व्यवस्थापिका सभा का निर्माण, डाकुओं के उपद्रवों का शमन, दरबार में कार्यदक्ष चतुर तथा प्रामाणिक पुरुषों की नियुक्ति, राज्य में शान्ति-स्थापन तथा प्रजा को सुखी एवं संतुष्ट करना। झाँसी राज्य को पुनः वैभव से युक्त करने का कार्य उन्होंने किया। लक्ष्मी-बाई से उन्हें एक पुत्ररत्न की प्राप्ति भी हुई थी जो दुर्भाग्यवश जन्म के तीन माह पश्चात् ही काल-कवलित हो गया था। इस शोक को न सहन करने के कारण महाराज रुग्ण हो गए और अन्ततोगत्वा संग्रहणी के भीषण रोग ने उनकी जीवन-लीला को समाप्त कर दिया।

महाराजा गंगाधरराव प्रदर्शनप्रिय और वैभवशाली पुरुष ही न थे अपितु उन्होंने राज्य को वैभव-सम्पन्न करने के लिए पर्याप्त प्रयास भी किए। उन्होंने अपने `सिद्धबक्स` नाम के उत्तम और सुन्दर हाथी का सभी सामान सोने का बनवाया था। अपनी वैभव-सम्पन्नता दिखाने के लिए हाथी-घोड़ों का सब सामान - अम्बारी, हौदा, जीन आदि सोने का तैयार कराया था। उन्होंने काशी से एक बहुत ही उत्तम तामझाम, जिस पर नक्काशी का कुल काम बड़ी कुशलता से किया गया, मंगवाया था।[2]

१- झाँसी गजेटियर - १९६५- पृ० ५२

२- झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई - डा० वृन्दावनलाल वर्मा - पृ० ८२

उनकी अन्य प्रवृत्ति थी – अभिनयप्रियता । संस्कृत नाटकों – रत्नावली, मृच्छकटिकम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम् आदि – का हिन्दी तथा मराठी में अनुवाद कराकर उन्हें अभिनीत कराने या करने में उन्हें प्रसन्नता का अनुभव होता था । नाट्य-निर्देशन करने के अतिरिक्त वे स्वयं भी अभिनय करते थे । उन्हें मात्र पुरुष के ही अभिनय से संतोष नहीं होता था और वे स्त्री-भूमिका को भी निभाते थे । स्त्रियों का अभिनय करने के लिए उन्होंने बहुत सुन्दर नाचने-गानेवाली स्त्रियों की नियुक्ति की थी जिनमें उल्लेखनीय मोती बाई तथा जुही हैं । मोतीबाई कुमारी तथा वेश्यापुत्री थी । वह यद्यपि कुशल अभिनेत्री थी तथापि उसे यथावत् अभिनय करने की शिक्षा महाराज ही दिया करते थे ।[१] एतदर्थ नाट्यशाला शहर के महल के पृष्ठभाग में स्थापित की गई थी ।

महाराज सांस्कृतिक रुचि-सम्पन्न थे । उनके दरबार में कवि, चित्रकार, संगीतज्ञ, गायक, वादक समादृत होते थे । वेद, उपनिषद्, दर्शन, पुराण, तन्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष, व्याकरण तथा काव्यग्रन्थों का संग्रह करने की उनकी सुप्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि लोग दूर-दूर से उन ग्रन्थों की प्रतिलिपि करने के लिए आते थे ।[2] उनका विशाल पुस्तकालय अँग्रेज सरकार द्वारा जला दिया गया था ।[३] हृदयेश तथा पद्मनेश कवि, मुगलखाँ गायक, सुखलाल चित्रकार, मोतीबाई – नाट्यशाला की अभिनेत्री, उनके राज्य की शोभाका वर्द्धन करते थे । सुखलाल चित्रकार ने तो महाराज तथा महारानी लक्ष्मीबाई का संयुक्त चित्र बनाया था । गंगाधरराव कवि-कर्म – विशेष रूप से नायक-नायिकाभेद परक काव्यरचना में कवि की विद्वत्ता, श्रमपरायणता को महत्त्व देते थे । पुनः कवियों को वे राजदरबार के शोभाधायक धर्म मानते थे । रोगशय्या पर पड़े रहने के समय भी वे अपनी इस रुचि के प्रतिफलन में ` चित्रकार सुखलाल, हृदयेश कवि .... ` का ही स्मरण करते हैं ।[४] यद्यपि महारानी लक्ष्मीबाई भी सांस्कृतिक रुचि की नारी-रत्न थीं तथापि उनकी आस्था नायिका-भेद प्रतिपादक रचनाओं में नहीं थी । वे भी महाराज की तरह ललित कलाओं की पोषक थीं; कवि, शिल्पी, चित्रकार सभी को वे पुरस्कृत करती थीं ।[५] उन्होंने भी सन् १८५८ में

१- झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई – डा० वृन्दावनलाल वर्मा – पृ० ९
२- वही – पृ० ८　　　३- वही – पृ० ४०९
४- वही- पृ० १२४　　　५- वही- पृ० ३३५

ग्वालियर से एक नाटक कम्पनी को आमंत्रित किया था जिसके द्वारा `हरिश्चन्द्र नाटक` अभिनीत किया गया।[1] इस पर ४000-00 रु0 व्यय किया गया था।

मर्यादाप्रियता महाराज की अन्य विशेषता थी। सामान्य शिष्टाचार का कोई अतिक्रमण कर जाय अथवा अनवसर होने पर भी धृष्टता करे, यह उन्हें सह्य नहीं था। इस सन्दर्भ में वे अपने साथियों को भी दण्ड दिए बिना नहीं छोड़ते थे। नाट्यशाला में रत्नावली की भूमिका अभिनीत करने वाली मोतीबाई के अभिनय तथा `नयन-मटकौवल` की अशिष्टजनोचित प्रशंसा करने वाले खुदाबख्श तथा रत्नावली के चरित्र का यथोचित निर्वाह न करने वाली मोती बाई से वे रुष्ट हो गए थे। इस अपराध पर अपने उक्त संगी खुदाबख्श को उन्होंने राजदरबार से पृथक् ही नहीं कर दिया था अपितु यह घोषणा करवाई थी कि झाँसी शहर में दिखाई देने पर उसकी नंगी पीठ पर कोड़े लगाए जाएंगे।[2] इसके पश्चात् एक दिन नाटकशाला में पुनः खुदाबख्श को देखते ही महाराज ने मोतीबाई को, जो खुदाबख्श से प्रच्छन्न प्रणय करने लग गई थी, को नाटकशाला से हटा दिया था।[3] बाद में जब उन्हें विदित हुआ कि खुदाबख्श नवाब अली बहादुर के यहाँ आता-जाता है तो उन्होंने इस अपराध पर नवाब साहब का महल जब्त कर लिया था।[4] इस प्रकार महाराज यह नहीं चाहते थे कि मोती बाई किसी विशेष दर्शक के प्रति आकृष्ट हों।[5] वे कला के प्रेमी थे विलासी नहीं। यह उनकी मर्यादावादिता का प्रभाव था कि सामान्यतया पर्दाप्रथा के विरुद्ध होते हुए भी वे रानी को महल में परदे में ही देखना पसंद करते थे। यही कारण था कि रानी घोड़े पर किले से बाहर नहीं जा सकती थीं।

भावुकता उनका अन्य धर्म था। मोतीबाई द्वारा शकुन्तला के स्वाभाविक अभिनय को सम्पादित करने पर उन्होंने न केवल उसकी पीठ ठोंक कर शाबासी दी अपितु उसके लिए एक बड़ा बाग जागीर में लगा दिया था।[6] उनकी यह भावुकता कभी-कभी सनक का भी रूप धारण कर लिया करती थी। उदाहरणार्थ मुगल खाँ धुरपदिये के

१-झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई - डा0 वृन्दावन लाल वर्मा - पृ0 ५0८

२- वही - पृ0 १३ ३- वही- पृ0 ८५ ४- वही- पृ0 ११८

५- वही- पृ0 १४ ६- वही- पृ0 १३

गाने पर उन्होंने उसके नापने को रुपयों से भरने की घोषणा की थी । उनके सहयोगी दतिया के राजा विजय बहादुर भी उनकी इस प्रवृत्ति रूप अग्नि में घृत का कार्य किया करते थे।[1] इस भावुकता के आवेश में महाराज वेश्याओं को 'अप्सरा' तक कह डालते थे।[2] परिस्थिति-विशेष के अनुरोध से वे सामान्य व्यवहार अथवा शिष्टाचार का पालन नहीं कर पाते थे। उनका एक जागीरदार आनंदराय उनके ऐसे तिरस्कार से क्षुभित हो गया था ।[3]

वे चतुर्वर्णव्यवस्था के समर्थक तथा पुरातनपंथी थे । वे नहीं चाहते थे कि किसी वर्णविशेष का व्यक्ति अपने स्वाभाविकधर्म का त्याग कर अन्य वर्ण के धर्म में प्रवेश करे । झांसी राज्य में स्पृश्य शूद्रों द्वारा 'जनेऊ-धारण' आन्दोलन प्रबल होने पर उन्होंने शूद्रों द्वारा जनेऊ-धारण प्रवृत्ति को प्रोत्साहित ही नहीं अपितु ऐसे प्रगतिशील शूद्र-समाज के लिए कठोर दण्ड-विधान किया था[4] जो तात्याटोपे के हस्तक्षेप से कार्यान्वित नहीं हो पाया । सामान्य रूप से वे प्रजा तथा विशेष रूप से ब्राह्मणों पर विश्वास तथा कृपा रखते थे ।[5] ब्राह्मणों द्वारा छोटी बाई के प्रति प्रणय के सन्दर्भ में जनेऊ उतारने की बात को सुनकर उन्हें यह विश्वास हो गया था कि ब्राह्मण ऐसा अधर्म नहीं कर सकते ।[6] भिक्षुक तथा भट्ट जाति को वे हीन समझते थे और कुलीनता को महत्व देते थे ।[7]

उनमें धर्म के प्रति अप्रतिम राग तथा दान में ईषणा थी । उन्होंने काशी, प्रयाग, गया आदि तीर्थों की यात्रा की थी और इन तीर्थों में दान भी दिया था ।[8] इस प्रवृत्ति की पुष्टि के अनन्तर वे झांसी में बड़े-बड़े उत्सव कराते थे जिनमें सामान्य जनता भी उपस्थित होती थी । शारदीय नवरात्र का महालक्ष्मी-उत्सव, ऐसे ही उत्सवों में एक था ।[9] पूजा, होम, जप, तप तथा अनुष्ठान में भी उनका दृढ़ विश्वास था परन्तु आपद्धर्म की शास्त्रीय व्यवस्था के स्वीकरण के लिए महाराज के हृदय में स्थान नहीं बन पाया । आत्म-रक्षा जैसे असाधारण अवसर के उपस्थित होने पर भी उन्होंने अंग्रेजी दवा का प्रयोग नहीं किया क्योंकि यह उनकी दृष्टि में हिन्दू-धर्म के विपरीत था ।[10] किले में गणेश, तथा शिव-

---

१- झांसी की रानी लक्ष्मीबाई - डा० वृन्दावन लाल वर्मा - पृ० ७३

२- वही- पृ० ३४	३- वही- पृ० ७४	४- वही- पृ०४८-४९
५- वही- पृ० ९१	६- वही- पृ० ५८	७- वही- पृ०३५
८- वही- पृ० ३७	९- वही- पृ० वही	१०- वही- पृ०१३२

मंदिरों की स्थापना उनकी धर्मनिष्ठा की सूचक है। महारानी लक्ष्मीबाई भी धार्मिक रुचि-सम्पन्न थी। राधा-कृष्ण-दर्शन, गीतापाठ, श्राद्ध, नवरात्र में यज्ञ, अथर्व का आवर्तन, महादेव का पूजन, भजन, उपवास, रामनामलेखन, पौराणिक कथाश्रवण, सप्तशती-पाठ उनके दैनंदिन तथा सामयिक कृत्य थे।

महाराज का व्यक्तित्व कोमलता तथा कठोरता के विरोधी धर्मों से युक्त था। एक तरफ तो वे अपराधियों को दण्ड देने में अत्यन्त कठोर हो जाते थे तो दूसरी ओर स्त्रियों या महिलाओं के प्रति करुण या सहृदय थे। वे जब क्रोधित होते थे तो उनका क्रोध शान्त नहीं होता था। यही कारण था कि अपराधी उनके समक्ष पहुंचने पर पसीने-पसीने हो जाया करते थे।[1] अपराधियों के अपराध के अनुरूप ही उनके दण्ड-विधान थे - यथा बिच्छू से डसवाना, पैरों का कट्टे में डालना, भाजना, गहन अपराधों में हाथ-पांव कटवा डालना, दहकते अंगारों से डाकुओं के अंग जलवाना,[2] नाक-कान कटवा कर गधे से शहर-बाहर करवा देना[3] आदि। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि मात्र कठोर दण्ड देने में ही उन्हें तुष्टि होती थी, वे अपराधों के लिए यथोचित प्रायश्चित्त का विधान भी किया करते थे। नारायण शास्त्री, जो अछूत रमणी - छोटी के प्रति आसक्त थे, की शुद्धि के लिए महाराज ने पंचगव्य प्रस्तावित किया था।[4] पारिवारिक या दाम्पत्यजीवन मे अपेक्षित सामंजस्य न होने के कारण उनके क्रोध की मात्रा में वृद्धि हो गई थी।[5] मतवाले हाथी को नियंत्रित करने वाले इमामबली की वीरता से प्रभावित होकर पारितोषिक-स्वरूप जमीन उसके नाम लगा दी थी, यह उनके नम्र व्यक्तित्व का परिचायक है।[6] ऐसे अन्य उदाहरण भी उपलब्ध होते हैं।

उनका दृढ़, सुन्दर तथा स्वस्थ व्यक्तित्व स्वाभिमानिता के गुण से युक्त था। वे अपनी संस्कृति तथा देश की भर्त्सना अंग्रेजों से सुनने के अभ्यासी नहीं थी। उन्हें पीड़ा थी कि देशी राजाओं की कायरता तथा परस्पर की फूट देश को अनवरत परतंत्रता की बेड़ियों मे कसती जा रही है।[7] इस सन्दर्भ में उन्होंने अंग्रेज अफसर गार्डन को फटकारा था। उनका स्वाभिमानी व्यक्तित्व रानी से भी पूर्ण सायुज्य नहीं स्थापित कर सका था।

१- झांसी की रानी लक्ष्मीबाई - डा० वृन्दावनलाल वर्मा - पृ० ४७

२- वही - पृ० ८६ 3- बढ़ बेतवा-वाणी- वर्ष २ अंक २ - पृ० १४

४- झांसी की रानी लक्ष्मीबाई - डा० वृन्दावनलाल वर्मा - पृ० ५७

५- वही- पृ० ८४ ६- वही- पृ० ८८ ७- वही - पृ० १३

राज्य की सुरक्षा तथा प्रजा-पालन की प्रवृत्ति भी उनमें पर्याप्त परिमाण में थी । उनकी सेना में पाँच हजार जवान थे । दो हजार गोल पुलिस, पाँच सौ घोड़ों का रिसाला और चार तोपखाने -ये सब उनके ही द्वारा योजित तथा स्थापित किए गए थे । अपने शासन-काल में उन्होंने विशेष रूप से डाकुओं का शमन किया था जो अंग्रेजी-शासन द्वारा भी प्रशंसित हुआ था ।[१] वे भांसी को अनाथ नहीं देखना चाहते थे । मृत्यु के समय भी वे भांसी के लिए चिंतित थे ।[2] वे कभी किसी के धन अथवा सम्पत्ति को हस्तगत करने की चेष्टा नहीं करते थे ।[3] उनके किले में सभी स्पृश्य-अस्पृश्य का बिना रोक-टोक के प्रवेश होता था । इन सभी का स्वागत इत्र-पान आदि से किया जाता था ।[४] वे नगरवासियों के प्रणाम का उत्तर मुस्करा कर देते थे ।[५] अपने राजवैद्य के अनुचित हठ पर उन्होंने रोग-शय्या की स्थिति में भी भांसी से बाहर एक छोटा नगर निर्मित करने हेतु भूमि की स्वीकृति दे दी थी ।[६] वे गुप्त रूप से भी प्रजा के सुख-दुःख की जानकारी प्राप्त करते रहते थे । सामान्यतः प्रजा उनके शासन से संतुष्ट थी । प्रजा में उनके विषय में जो भी प्रच्छन्न अपवाद प्रवर्तित था उसके मूल में उनकी नाटकीय स्त्रैणता तथा निर्णय की कठोरता ही प्रतीत होती है ।[७]

चरित्र की गरिमा उनकी दृष्टि में सर्वाधिक महत्त्व रखती थी । चरित्र के इसी वैशिष्ट्य के कारण वे भ्रष्ट ब्राह्मण अथवा सवर्ण की अपेक्षा पातिव्रत धर्मपरायणा अस्पृश्या रमणी की प्रशंसा करते थे । छोटी बाई के इसी गुण पर मुग्ध होकर उन्होंने उसे तथा उसके प्रणयी नारायण शास्त्री को धर्मासम्मत प्रणय करने पर भी मात्र भांसी से निष्कासित करने जैसी तुच्छ सजा दी थी[८] अन्यथा प्रजा के अनुसार दोनों को ही प्राण-दण्ड मिलना उचित था ।[९]

उनके व्यक्तित्व में संवेदनशीलता की पूर्ण प्रतिष्ठा थी । स्वपुत्रजन्म पर उनका यह धर्म अपनी व्यापकता का परिचय प्रस्तुत करता है । आनन्दोल्लास से युक्त होकर वे सम्पूर्ण भांसी को उपहारों से बोझिल कर देते हैं, कैदियों को मुक्त कर देते हैं और

१- भांसी की रानी लक्ष्मीबाई - डा० वृन्दावनलाल वर्मा - पृ० ८३
२- वही- पृ० १२३-२८ ३- वही- पृ० १०३ ४- वही- पृ०१०२
५- वही- पृ० ६२ ६- वही- पृ० ११९ ७- वही- पृ०३३
८- वही- पृ० ५८ ९- वही- पृ०५५

द्रव्य इस प्रकार व्यय करते हैं कि कोष ही रिक्त हो जाता है। इस हर्षोल्लास का विपर्यास तब दृष्टिगत होता है जब झाँसी को सनाथ करने वाला उनका नवजात शिशु तीन माह की अवस्था को प्राप्त होकर उन्हें अपना अनुगामी बनने के लिए बाध्य कर परलोकगामी हो जाता है।[१]

महाराजा गंगाधरराव द्वारा शासित झाँसी राज्य का समाज सामान्यतया दो वर्गों – राजन्य वर्ग अथवा शासक वर्ग तथा शासित वर्ग– में रखा जा सकता है। शासक वर्ग के अन्तर्गत राजा उनके सहायक सामन्त, दीवान, बड़े सरदार तथा जागीरदार आते हैं जो प्रजा पर राजा की ओर से अपना नियंत्रण रखते थे। ये छोटे-छोटे जागीरदार महाराजा द्वारा आयोजित विभिन्न उत्सवों पर अपनी-अपनी भेंटें देने पहुंचते थे। इन भेंटों के अनन्तर राजा द्वारा उन्हें पुरस्कृत किया जाता था।[२] राजा का कार्य था – राज्य की सुरक्षा-व्यवस्था, बड़े-बड़े विवादों का निर्णय तथा निर्णय के परिणाम-स्वरूप दण्ड-विधान।

शासित वर्ग के अन्तर्गत हिन्दू तथा मुसलमान धर्मों का पालन करने वाले विभिन्न पेशों, व्यवसायों के लोग आते हैं। हिन्दुओं में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, कायस्थ, खत्री आदि थे। अन्य पिछड़ी जातियों में संगार, बसोर, चमार, व भंगी आदि जातियां थीं। अहीर, गूजर, पंवार, धंधेरे भी पर्याप्त थे। तमेरे, बसेरे, सुनार, लुहार, कुम्हार आदि भी यहां निवास करते थे।[३] झाँसी के मराठा राज्य में बहुसंख्यक हिन्दू थे। मुसलमानों में शिया-सुन्नी वर्गों का प्रतिनिधित्व राज्य में था जिनमें सुन्नी मुसलमानों की संख्या अधिक थी।[४] इस वर्ग में अनेक विद्याओं – मंत्र, तंत्र, वैद्यक, युद्ध – के आचार्य थे। विभिन्न दर्शनों – शाक्त, शैव, वैष्णव तथा वाममार्गी के अनुयायियों की अवस्थिति वैचारिक पक्ष का पोषण कर रही थी यद्यपि इनमें छद्माचरण, आडम्बर तथा मिथ्या-चारिता को पर्याप्त शक्ति मिल रही थी।[५] राजा के महाराष्ट्र से संबंधित होने के कारण राज्य में महाराष्ट्र देश के लोगों की बहुलता थी। मुसलमानों के उक्त दोनों वर्ग भी राज्य में समान अधिकारों तथा कर्तव्यों का वहन करते हुए जीवनयापन कर रहे थे। समय

१– झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई – डा० वृन्दावन लाल वर्मा – पृ० ११८

२– वही– पृ० ७२-७३ ३– बेतवा-वाणी – वर्ष १ अंक १–पृ०८०

४– झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई – डा० वृन्दावनलाल वर्मा –पृ०२९८ ५–वही– पृ० ४१

की परिवर्तनशीलता तथा दिल्ली के केन्द्रीय शासन की अशक्तता के कारण सम्भवत: ये मुसलमान, जो सम्पूर्ण जनसंख्या के केवल ४ प्रतिशत ही थे,[1] सामंजस्यपूर्ण जीवन जी रहे थे यद्यपि उनकी धार्मिक कट्टरता जाने-अनजाने सामंजस्य का अप्रकट विरोध कर बैठती थी। इनके दोनों वर्गों में वैमनस्य था। परन्तु व्यापक धार्मिक कट्टरता के कारण दोनों वर्गों में एकता थी। परिस्थिति के अनुरोध से वे असंगतियों को सहन करते हुए भी जी रहे थे। सुन्नी मुसलमान वेश्या दुर्गाबाई का मंदिरों में नृत्य करना ऐसी ही असंगतियों में एक थी जो शिया-सुन्नी - दोनों ही वर्गों के मुसलमानों को अनुचित लगी थी।[2] इसी प्रकार महाराज के नाट्यशाला की अभिनेत्रियां अथवा नर्तकियां जैसे दीपावली का त्योहार मनाती थीं उसी प्रकार ताजियादारी भी करती थीं। ये रमणियां भी रानी द्वारा आराध्य-युगल - राधाकृष्ण- के दर्शन के समय मुरली मनोहर के मंदिर में उत्साहपूर्वक नृत्य और गान करती थीं भले ही उन दिनों मुहर्रम मनाए जा रहे हों।[3] मुसलमानों के सुन्नी वर्ग के लोग नौकर, कारीगर, हकीम, जर्राह आदि के कार्य करते थे।[4] शासन के विभिन्न विभागों में जिन मुसलमानों की नियुक्ति की गई थी, उनके नाम हैं - दरोगा बख्शीश अली, काले खां, रिसालदार, मेहरुद्दीन खां रिसालदार, शेख मुहम्मद बख्शी, जमादार फ़ैज अली, सलेह मुहम्मद, स्थानीय चिकित्सक मुहम्मद बख्श शेख जेल जमादार आदि। मुसलमानों को रानी लक्ष्मीबाई द्वारा पूर्ण सम्मान दिया जाता था। तत्कालीन झांसी समाज में साम्प्रदायिक वैमनस्य के उल्लेख नहीं उपलब्ध होते।[5] तत्कालीन असंगठित समाज में ऊंच-नीच तथा जाति-पांतिगत विद्वेष की भावना व्याप्त थी परन्तु ये संकीर्णताएं रानी के जीवन में नहीं घर कर सकीं।[6] सामाजिक-धार्मिक विद्वेष से ऊपर उठ कर वे हिन्दू-मुसलमान- दोनों को ही समान आदर या महत्त्व देती थीं।[7] असाधारण कर्तव्य-परायण हिन्दू-मुसलमान दोनों ही उनके लिए 'कुंवर' थे। उनकी दृष्टि में कर्म की श्रेष्ठता जाति की कुलीनता से बढ़कर थी। वेश्यापुत्री भी उनकी दृष्टि में क्षत्राणी के तुल्य थी।[8] रानी के समय में गुलाम गौस खां सदृश साहसी तोपची थे, बरहामुद्दीन सदृश

१- बेतवा-वाणी- वर्ष १ अंक १ - पृ०८०

2-झांसी की रानी लक्ष्मीबाई - डा० वृन्दावनलाल वर्मा - पृ० २१९

३- वही- पृ० वही ४- वही- पृ० २१८ ५-बेतवा-वाणी-वर्ष १ अंक १-पृ०८१

६-झांसी की रानी लक्ष्मीबाई -डा० वृन्दावनलाल वर्मा - पृ० ६३

७- वही- पृ० २६८ ८- वही- पृ० ३६४

राज्य या देशभक्त तो दूसरी ओर मीर अली जैसे गद्दार विश्वासघाती भी थे ।

ब्राह्मण वर्ण के लोग सम्मानजनक स्थिति में थे । विष्णुराव गोडशे के अनुमान के अनुमान के अनुसार झांसी में महाराष्ट्रियन ब्राह्मणों के 300 घर थे । स्थानीय ब्राह्मण इनके अतिरिक्त थे । गंगाधरराव तथा लक्ष्मीबाई के काल में झांसी में कई प्रसिद्ध महाराष्ट्रियन विद्वानों की अवस्थिति थी - इनके नाम हैं - नारायण शास्त्री, विनायक भट्ट, केशव भट्ट, माडवगणे, भैया उपासने, लालाभाऊ देकरे । महारानी लक्ष्मीबाई का दीवान लक्ष्मणराव निरक्षर पुरुष होते हुए भी बुद्धिसम्पन्न ब्राह्मण था।[1] ब्राह्मण वर्ग को राज्य द्वारा विशेष आदर दिया जाता था । इसी का यह परिणाम था कि हृदयेश राजा द्वारा विशेष समादृत थे जब कि वैश्यों के ब्राह्मण होने के कारण पजनेश कवि को स्वकीय काव्यप्रतिभा प्रदर्शन हेतु ही सम्भवतः यत्र-तत्र भटकना पड़ा ।[2] परन्तु शीर्ष पर अधिष्ठित ब्राह्मण वर्णोचित आचार से पराङ्मुख थे । जन्मना जाति की मान्यतानुसार ही उन्हें श्रेष्ठ समझा जाता था । ब्राह्मणवर्ण के ही नारायण शास्त्री मांस-मदिरा का सेवन करते थे तथा प्रगतिशीलता का परिचय देते हुए `छोटी` नामक मेहतरानी से प्रणय-संबंध स्थापित किए हुए थे । इन महानुभाव के व्यक्तित्व में न तो आचार को पवित्र रखने का संयम था और न इतना नैतिक साहस कि भंगिन को सामाजिक मान्यता देकर या दिलाकर अंगीकार कर सकें । फिर भी यह तो स्वीकार करना ही पड़ता है कि नारायण शास्त्री अपनी प्रेयसी छोटी मेहतरानी के लिए अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा का त्याग करने के साथ ही निर्वासन का दण्ड शिरोधार्य करके असाधारण साहस का परिचय देते हैं ।[3] ब्राह्मणों में एतादृशी प्रगतिशीलता के सन्दर्भ में मत-विभिन्नता थी । कुछ प्रगतिशीलता का प्रश्रय दे रहे थे तो अधिकांश पुरातनपंथी ही थे । स्पृश्य शूद्र, जो ब्राह्मण, क्षत्रिया तथा वैश्यों का जनेऊ धारण करना उच्चता का प्रमाण समझते थे, भी जनेऊ पहनने लगे थे यद्यपि इस कार्य को अधिकांश ब्राह्मण वर्ग तथा महाराज द्वारा स्वीकृति नहीं दी गई थी ।[4] झांसी के शूद्रों के जनेऊ-धारण-आन्दोलन का पर्यवसान महाराज गंगाधरराव के एतद्-संबंधी दण्ड-निर्धारण के साथ ही सम्पन्न हुआ ।[5] इस विषय में डा० कृष्णा अवस्थी

१-बेतवा-वाणी - अंक १ वर्ष १ - पृ०७९

२- वही- अंक २ वर्ष २ - पृ०९२

३- झांसी की रानी लक्ष्मीबाई - डा० वृन्दावनलाल वर्मा - पृ० ४८

४- वही- पृ०४१ ५- वही- पृ०४८

ने लिखा है – जिस युग में उपवर्णों का जनेऊ पहनना इतना बड़ा अपराध माना जाता हो कि राजा को तांबे के दग्ध जनेउओं से दागने का दण्ड-विधान करना पड़े, उस युग की जाति-पांतिगत संकीर्णता और रूढ़िवादिता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।[1] इसके विपरीत रानी लक्ष्मीबाई का अस्पृश्य झलकारी कोरिन को आत्मीय स्नेह प्रदान करना उनकी व्यक्तिगत उदारता और गौरव का सूचक है, तद्युगीन सामान्य दृष्टि का परिचायक नहीं।[2] समाज में छुआछूत व्याप्त थी पर राज दरबार में इसके लिए बहुत कम स्थान रह गया था। राजमहल में सभी वर्णों के लोगों का निर्बाध प्रवेश होता था। इन सभी का इत्र तथा पान से स्वागत किया जाता था। किले के उस भाग में जहां महादेव और गणेश मंदिर है अछूत – चमार, बसोर और भंगी का भी प्रवेश वर्जित न था। पर रानी के जिस कक्ष में गौर की प्रतिमा स्थापित थी वहां अछूत जातियों – चमार, बसोर, भंगी – का प्रवेश वर्जित था। रानी के जिस कक्ष में इन जातियों का प्रवेश निषिद्ध था वहां भी कोरी तथा कुम्भकार उपवर्णों की स्त्रियों का प्रवेश विहित था।[3]

समाज में अन्तर्जातीय संबंध भी विकास के लिए अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे परंतु रूढ़िवादी समाज तथा राजा के पुरातनपंथी दृष्टिकोण के आगे ऐसा सम्भव नहीं हो पा रहा था।[4] नारायण शास्त्री का छोटी मेहतरानी से प्रणय,[5] कवि पजनेश का तथाकथित स्त्रानी से प्रेम,[6] तात्या टोपे से जूही की प्रणयाकांक्षा, दूल्हाजू का कुणभी जाति की वीरकन्या सुन्दर के प्रति आकर्षण[7] – आदि ऐसे सन्दर्भ हैं जो तत्कालीन उभरती हुई प्रगतिशीलता के द्योतक हैं।

' यथा राजा तथा प्रजा ' के प्रतिफलन में समाज रसिकता में रुचि प्रकट करता था। समाज के निम्न तथा अस्पृश्य वर्ग में उत्पन्न पर सौन्दर्य, स्निग्धता तथा कोमलता में पद्मिनी जाति की नारी से समता करने वाली छोटी नायिका नवयौवना उपमाओं का जीवित स्वरूप बनी हुई थी।[8] समाज का विशिष्ट वर्ग उसे 'अप्सरा' से अभिधानित कर अपने हृदय के ताप को शमित कर लिया करता था। ब्राह्मण वर्ग की यह अधोपतन की सीमा ही तो थी कि वह उसकी प्राप्ति के लिए अपने यज्ञोपवीत तक उतारने के लिए

१-वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन – डा० कृष्णा अवस्थी-पृ०२१२ व २- ३-झांसी की रानी लक्ष्मीबाई – डा० वर्मा – पृ० १५

४-७- वही- पृ० ४३, ४२, २३७ तथा ३७१ ८- वही- पृ० ४६

तैयार था ।[1]

सामान्यतया समाज के विभिन्न वर्णों के व्यक्ति अपने व्यक्तिगत, जातीय तथा अन्तर्जातीय संबंधों अथवा विवादों के निर्णय में स्वाधीन थे । उनकी जातीय पंचायतें, जिनके निर्णय के विरुद्ध अपील भी राजा के पास नहीं हो सकती थी, असीमित अधिकार से युक्त थीं । जब कोई विवाद व्यापक सामाजिक स्तर पर उठ खड़ा होता था तथा राज्य से समाधान की अपेक्षा की जाती थी तभी राज्य उसमें हस्तक्षेप करता अथवा विवाद को निर्णीत करता था । शासन अपराधों के लिए जो दण्ड-विधान करता था उसमें एकरूपता नहीं थी । एक ही प्रकार के अपराध के लिए यदि ब्राह्मण पर एक रुपया दण्ड निर्धारित होता था तो ठाकुर पर पचास रुपये, बनिये पर पांच सौ और शूद्र के हाथ-पैर काट लिए जाते थे ।[2] महाराजा गंगाधरराव कठोर दण्ड-विधान में अपने कर्मचारियों तक को नहीं मुक्त करते थे ।[3] न्याय करने या सत्यता तक पहुंचने में उनकी अन्तर्दृष्टि इतनी तीव्र थी कि शीर्ष के धूर्त अपराधी भी उन्हें भ्रमित नहीं कर पाते थे । उनके दण्ड-विधान में कभी-कभी प्रायश्चित्त-विधान भी प्रस्तावित होता था[4] । महारानी भी अपराधों के लिए कठोर दण्ड-विधान करती थीं पर उनका निर्णय समय-सापेक्ष्य होता था। वे समयानुसार न्यायाकांक्षी को कृत अपराध के विरुद्ध स्वयं ही दण्ड देने का अधिकार दे देती थीं ।[5]

जनसामान्य यद्यपि असंगठित था फिर भी उसमें स्वातंत्र्य-प्रेम तथा देश-प्रेम अपरिमित मात्रा में था । झांसी के छोटे से राज्य द्वारा अंग्रेजों की विशाल तथा कुशल शक्ति से लोहा लेना इस तथ्य का सूचक है कि जनता में वीर पुरुषों की पर्याप्तता थी । भारतीयों से ही संघटित अंग्रेजों की काली पलटन ने विद्रोह कर गोरों तथा उनके परिवार की जो हत्या की थी उससे यद्यपि उनकी विवेकहीनता सिद्ध होती है तथापि अंग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति के प्रति जो आक्रोश व्यक्त होता है, वह उनकी अन्याय-असहिष्णुता, वीरता तथा स्वातंत्र्य प्रेम का द्योतक है । तत्कालीन विषम परिस्थितियों

१- झांसी की रानी लक्ष्मीबाई - डा० वृन्दावनलाल वर्मा - पृ० ५२
२- वही- पृ० ९१ ३- वही- पृ० ९२
४- वही- पृ० ५७ ५- वही- पृ० ३७२

तथा पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष के कारण महाराज गंगाधरराव अपनी कमजोर स्थिति के अनुरोध से अंग्रेजों से मैत्री करने में ही हित समझे हुए थे यद्यपि समय-समय पर उनका स्वाभिमान तथा देशाभिमान जागृत हो जाया करता था।[1] यहां का शौर्य अपनी अवमानना नहीं सहन कर सकता था भले ही वह शासन के सर्वोच्च द्वारा की गई हो।[2] स्वराज्य की बलिवेदी पर प्रणय की कोमल भावनाओं के पुष्प चढ़ाने वाले यहां के वीरों को अपनी प्रेयसी से स्वर्ग में आ मिलने का पूर्ण विश्वास और उत्कण्ठा देखी जाती है।[3]

समाज के विभिन्न वर्गों की स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी। उनका कार्य-क्षेत्र गृह की भित्तियों के अन्तर्गत ही थी। महारानी लक्ष्मीबाई को स्वयं भी अपने पति के जीवनकाल में परदे में ही रहना पड़ता था यद्यपि वे इसकी पोषक नहीं थी। श्री गोडशे ने लिखा है - महल के बाहर निकलने की क्या बात - महल के भीतर भी बाई साहब अधिकतर परदे मे रहती थीं। सशस्त्र स्त्रियां वहां हर समय पहरा दिया करती थी। पुरुष-प्रवेश वहां असम्भव था। बाल-विवाह, अनमेल विवाह सम्पन्न होते थे। रानी लक्ष्मीबाई एवं महाराजा गंगाधर राव की आयु मे स्वयं ३० वर्ष का अन्तर था। यही नहीं, लक्ष्मीबाई के पिता मोरोपन्त ने कन्या-विवाह के अनन्तर अपना विवाह किया था। कन्या-पक्ष के निर्धन होने पर वर-पक्ष से आर्थिक सहायता लेना वर्जित नहीं था। मोरोपन्त ने अपने विवाह का खर्च गंगाधर राव से लिया था। लड़कियों को दासियों के रूप में क्रय-विक्रय करने की प्रथा प्रचलित थी। रानी लक्ष्मीबाई की दासियां बनाने के लिए दक्षिण से अच्छे-अच्छे घरों की लड़कियां खरीद कर लाई गयीं थीं। स्त्री-शिक्षा अल्पल्प थी। धनवी वर्ग मे बालिकाओं को सामान्य पढ़ने-लिखने का ज्ञान करा दिया जाता था। झांसी राज्य की स्त्रियां शोभनदर्शना तथा साज-श्रृंगार-प्रवीण थीं। गोडशे ने इनकी सुरेखता, उनके नेत्रों की सुदीर्घता तथा काली पुतलियों की प्रशंसा की है।[4] यहां की निम्न जाति की अस्पृश्याओं मे कभी-कभी असाधारण सौन्दर्य

१-झांसी की रानी लक्ष्मीबाई - वृन्दावनलाल वर्मा - पृ० २- वही - पृ० ७५

३- वही - पृ० ४८३ ४- बेतवा-वाणी - अगस्त-अक्टूबर १९८१ पृ०८१-८२

के दर्शन हो जाते थे। छोटी बाई- भंगिन - जो नारायण शास्त्री की प्रेयसी थी, का सौन्दर्य पद्मिनी जाति की नारी-सदृश था।[1] स्त्रियां अच्छे वस्त्र तथा आभूषणों को धारण करने में रुचि रखतीं थीं। कीमती साड़ियां, जरीदार लहंगे, और हरे-लाल दुपट्टे उन्हें खूब भाते थे। वे सिर से पांव तक, स्वगृहस्थिति के अनुसार आभूषणों से सज्जित रहती थीं।[2] लक्ष्मीबाई के ओजस्वी व्यक्तित्व के प्रभाव से विभिन्न वर्गों की महिलाओं में स्वच्छन्दता अथवा स्वतंत्रता,[3] वीरत्व तथा देश-प्रेम की वृत्तियां प्रभूतरूपेण दृष्टिगत होती हैं। एक तरफ बख्शिन तथा झलकारी जैसी गृहस्थी में उलझी गृहिणियां, सुन्दर-मुन्दर तथा काशी जैसी दासियां, मोतीबाई तथा जूही जैसी नर्तकियां गोलंदाजी और आरसी जैसे सैनिक-कार्यों में इतना कौशल प्राप्त कर लेती है कि शत्रु तक को उनके भीम कर्मों को देखकर दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है।[4] महारानी के प्रभाव से स्त्री जाति अतिशय स्वातंत्र्य की ओर अग्रसर हो रही थी, जो राज्य के बहुत से लोगों को खटकता था।[5] आर्थिक कारणोंवश निम्नवर्गीय स्त्रियों में चरखा कातने का प्रचलन था।[6] ये सतीत्व-रक्षा में प्राणों का त्याग करना श्रेयस्कर समझतीं थीं।[7]

धर्म के विषय में सामान्यतया शासन-तंत्र तटस्थ था।[8] अन्य शब्दों में राज्य द्वारा जन सामान्य के धर्म के विषय में हस्तक्षेप नहीं किया जाता था - लोग अपने-अपने स्वाभाविक धर्मों अथवा कर्मों का पालन कर रहे थे। तो भी इसमें बाह्याडम्बर तथा छद्मता का प्रभूत अंश सम्मिश्रित हो गया था। धर्म के तात्त्विक अनुपालन पर जनसामान्य की दृष्टि नहीं थी। राज्य भी ऐसी सदसद्विवेकिनी प्रज्ञा से युक्त नहीं था जो आपद्धर्म जैसी शास्त्रीय व्यवस्था को स्वीकार कर सके। फिर भी राज्य यज्ञ, जाप, गीतापाठ, श्राद्ध, अथर्व का आवर्तन, दुर्गासप्तशती पाठ में विश्वास रखता था। ब्राह्मणों द्वारा राज्य के संरक्षण में तमाम अनुष्ठान और यज्ञ जैसे

१- झांसी की रानी लक्ष्मीबाई - वृन्दावनलाल वर्मा - पृ० ४६
२- बेतवा-वाणी - अगस्त-अक्टूबर १९८१- पृ०८१-८२ ३- झांसी ०लक्ष्मी०-वही-पृ० २९७
४- वही- पृ० ४०६ ५- वही- पृ० २९७ ६- वही- पृ० ९८
७- वही- पृ०३१२ ८- वही - पृ० ४२

नवचण्डी, शतचण्डी आदि होते रहते थे और महालक्ष्मी के देवालय में सहस्र ब्राह्मण-भोजन आदि प्रायः होता रहता था। महालक्ष्मी देवी झाँसी की कुल स्वामिनी के रूप में स्वीकृत हैं।[१] पूजार्चन हेतु चन्दन, नन्दादीप, महानैवेद्य, शहनाई, गायक, नर्तकी आदि की सुन्दर व्यवस्था थी। गणपति तथा विष्णु के देवालयों में पूजा के लिए झाँसी सरकार से खर्च बंधा था। विष्णु गोडशे ने झाँसी की धर्मप्राणता के सन्दर्भ में लिखा है – जैसे दक्षिण में पुणे वैसे हिन्दुस्तान में झाँसी है।[2] देवी दुर्गा यहाँ के बुन्देलों की इष्टदेवी हैं।[३] बुन्देलों के समान चन्देले शासक भी देवी के भक्त तथा उपासक रहे हैं।[४] शिव की उपासना को बुन्देलखण्ड में दुर्गा के पश्चात् स्थान दिया जाता है।[५]

समाज में यथेष्ट आर्थिक सन्तुलन नहीं था। असमानता तथा विषमता स्पष्ट थी; परन्तु आर्थिक श्रृंखला की कड़ियाँ मजबूती के साथ जुड़ी हुई थीं। धन इकट्ठा हो-होकर बंट जाता था। एक-एक आश्रय पर शत-शत आश्रित थे। ये सभी आश्रय सतत् क्रियाशील थे। महाराज गंगाधरराव के समय में झाँसी में ५२ लखपती थे। इन लखपतियों को ही सुखात्मक अथवा आनन्दात्मक अवसरों पर महाराज द्वारा पुरस्कृत किया जाता था।[६] जिस युग में राज्याश्रित कवि " लाग " के लिए शासन से प्रार्थना करते रहे हों उसकी आर्थिक विषमताओं अथवा विडंबनाओं का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।[७] फिर भी शहर में गरीबी कम थी।[८] जनपदीय लोग कृषि पर अवलंबित थे पुनः उद्योग धंधे और व्यापार के कारण भी आर्थिक स्थिति समुन्नत थी। सन् १७५२ में झाँसी में आए हुए हण्टर नामक अंग्रेज ने लिखा है – दक्षिण से फर्रुखाबाद और दोआब के अन्य नगरों में जाने वाले व्यापारिक काफले यहाँ से गुजरते हैं, इसलिए यहाँ अत्यधिक सम्पन्नता है जो चन्देरी के कपड़े के व्यापार और बुन्देल जातियों के हथियारों – धनुष-बाण और भालों के निर्माण-कार्य से और बढ़ गई है। गोडशे के अनुसार पीतल के सामान के लिए झाँसी प्रसिद्ध थी।[९] झाँसी नगर की केन्द्रीय

१-बेतवा-वाणी- अगस्त-अक्टूबर १९८१ – पृ० ७५ 2- वही – पृ० ७५
३-वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन – डा० कृष्णा अवस्थी-पृ० १७०
४- वही – पृ० १७०-७१ ५- वही – पृ० १७2
६-झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई – वृन्दावनलाल वर्मा – पृ० १११ ७- बेतवावाणी अ 2 पृ० ५४
८- झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई- डा० वर्मा पृ०६० ९- बे०वा० अग-अक्टू० पृ० ७६

स्थिति के कारण व्यापारिक काफलों से चुंगी तथा कर के रूप में भारी आय होती रही होगी। इसके अतिरिक्त अनाज और वस्त्र व्यापार भी तरक्की पर था। गलीचे, रेशमी वस्त्र झांसी की अपनी विशेषता थी। रानी चन्देरी की साड़ी पहनती थी। चन्देरी की मलमल की झांसी में प्रसिद्ध थी।[1] झांसी की प्रसिद्धि कालीनों के कारण भी थी।[2] यहां के व्यापारी गुसाईं बड़े धनी थे। अन्य व्यापारी गहोई वैश्य, अग्रवाल, खत्री प्रमुख थे – ये गल्ले, तिलहन और कपड़े का व्यापार करते थे। झांसी के मराठा राज्य के अन्तर्गत झांसी का उपर्युक्त चित्र अपूर्ण होते हुए भी असन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता। मजदूर और खेतिहर किसानों की स्थिति के लोगों को छोड़कर सामान्यतः लोग सुखी थे।[3]

महाराजा गंगाधरराव के शासन-काल में झांसी ही नहीं सम्पूर्ण देश अस्त-व्यस्त राजनीतिक स्थिति से गुजर रहा था। अंग्रेजों के हथकण्डों से एक तरफ तो जनता व्याकुल थी तो अन्य ओर राजा और नवाब भी त्रस्त हो रहे थे। कम्पनी सरकार अपनी शक्ति तथा कौशल का प्रयोग कर क्रमशः विभिन्न प्रदेशों पर अपना आधिपत्य करती जा रही थी। झांसी राज्य को विभिन्न संधियों के आधार पर नियमित किया गया था। राज्य की सुरक्षा तथा उचित व्यवस्था के हेतु अंग्रेजी सरकार की सेना रखी गई थी[4] जिसके खर्च का भार झांसी राज्य के शासक पर था। झांसी जनपद की शासन व्यवस्था अंग्रेजों के हाथ में थी जब कि झांसी शहर पर महाराज का ही अधिकार था। अंग्रेजों के द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में पंचायतें समाप्त कर देने की प्रतिक्रिया-स्वरूप ग्रामीण जनता भी क्षुब्ध होकर विघटनकारी डाकुओं का साथ देने लग गई थी।[5] कम्पनी सरकार की आज्ञा के बिना महाराज तीर्थयात्रा आदि के लिए भी बाहर नहीं जा सकते थे।[6] दुर्भाग्य तो यह था कि कम्पनी सरकार के अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाने का साहस बुन्देलखण्ड के किसी भी शासक में नहीं था। ये सभी निर्जीव-से हो गये थे।[7]

विपरीत राजनीतिक परिस्थिति में भी सांस्कृतिक रुचियां समाज में

१-वेतवा-वाणी- अगस्त-अक्टूबर १९८१- पृ० ७७ 2- वही - पृ० ७८
३- वही - पृ० ७९ ४- झांसी की रानी लक्ष्मी० - डा० वर्मा-पृ०८१
५- वही - पृ० २८५ ६- वही - पृ० ८२ ७- वही - पृ० ९३

प्रचलित थीं। जनसामान्य कविता, नाटक, गायन, वादन आदि में पर्याप्त राग रखता था। महाराज गंगाधरराव के कविता-नाटक-प्रेम एवं महारानी लक्ष्मीबाई की वैविध्यमयी सांस्कृतिक रुचि-सम्पन्नता के सन्दर्भ में पूर्व प्रकाश-निक्षेप किया जा चुका है। गंगाधरराव तथा महारानी लक्ष्मीबाई ही नहीं उनके पूर्ववर्ती सूबेदार भी साहित्य और विद्या के प्रेमी थे। यद्यपि उस युग मे शिक्षा का अधिक प्रचार नहीं था फिर भी जनसामान्य मे साहित्यिक अभिरुचियां विद्यमान थीं र रघुनाथ हरी ने अपने शासनकाल में एक अच्छे राजकीय पुस्तकालय की स्थापना की थी जिसमें अंग्रेजी के प्रख्यात ग्रन्थ भी उपलब्ध थे। परवर्ती काल में गंगाधर राव की प्रकृष्ट साहित्यिक रुचि ने इस पुस्तकालय को विशद रूप प्रदान किया जिसमें चारों वेद, उनके भाष्य, भाष्य सहित समस्त वैदिक शाखाओं के सूत्र तथा परिशिष्टों तक के भाष्य विद्यमान थे। स्मृति, पुराण, ज्योतिष तथा आयुर्वेद के ग्रन्थों का भी इसमें संग्रह था। सुदूरस्थ दुर्लभ ग्रन्थ के संबंध में सुनते ही उसकी प्रतिलिपि सुलेखक भेजकर करा ली जाती थी। इस ग्रन्थागार की महत्ता इसी से प्रमाणित है कि यहां काशी के पंडित भी अध्ययनार्थ आते थे। यह विशाल पुस्तकालय १८५७ के स्वातंत्र्य-संग्राम में हुए कत्ले-आम के पश्चात् अंग्रेजों द्वारा जला दिया गया था[१] जिससे उठती हुई गगनचुम्बी लपटों ने महारानी के सुदीर्घ नेत्रों को अश्रुओं से सिक्त कर दिया था।[२]

नाटकों में भाग लेने वाले कलाकारों की साज-सज्जा हेतु खजाने के हीरे-जवाहरात, जरी के वस्त्रों आदि का उपयोग होता था। नाटक-मंडलियां पुरस्कृत होती थीं। गोडसे के अनुसार - अच्छे पुराने गवैये, सितारवादक तथा देश के प्रसिद्ध कारीगर झांसी में थे। राजा गंगाधरराव के काल मे नाट्यशाला की प्रमुख अभिनेत्रियां - नर्तकियां मे मोरत्नबाई, पन्ना बाई, मोती बाई, हीरा बाई, जवाहर बाई और सुरूप बाई उल्लेखनीय थीं। विशिष्ट अंग्रेज अधिकारियों के झांसी आने पर यहां के सूबेदारों द्वारा गवैयों और नृत्यांगनाओं को अपनी कला-प्रदर्शनार्थ आहूत किया जाता था।[३]

१- बेतवा-वाणी - वर्ष १ अंक १ पृ० ८२-८३

२- झांसी की रानी लक्ष्मीबाई - वृन्दावनलाल वर्मा - पृ० ४१४-१५

३- बेतवा-वाणी- वर्ष १ अंक १ - पृ०८३

झांसी के चित्रकार विशेषतया कागज तथा भित्ति-चित्रों के लिए प्रख्यात थे। यहां के सांस्कृतिक पर्वों में होली और हल्दी कुंकुं विशेष प्रसिद्ध हैं जो महाराष्ट्र से संबद्ध है। भुजरियों के त्योहार और मेलों के कारण भी झांसी सर्वजन-आह्लादकारिणी थी। कवियों मे पजनेश, हृदयेश तथा भग्गी दाऊ जू आदि प्रशंसित थे जो झांसी के रत्न कहे जाते थे। गायन मे मुगल खां, नृत्य में दुर्गा, चित्रकारी में सुखलाल झांसी राज्य की सम्पत्ति थे।[1]

झांसी राज्य के सांस्कृतिक तत्वों में विवाह संस्कार उल्लेखनीय है। यह सामान्यतः माता-पिता, भाई आदि गुरुजनों द्वारा आयोजित होता है। लड़के-लड़की का सम्बन्ध निश्चित करने के लिए दोनों के ग्रह मिलने आवश्यक माने जाते हैं। कन्या और वर की जन्म-कुण्डली, टीपना या जन्मपत्रियों पर पंडित या ज्योतिषी विचार करते हैं। कुण्डली मिलने पर पारिवारिक, सामाजिक एवं आयु संबंधी विषमताओं को विशेष महत्व नहीं दिया जाता।[2] शुभ लग्न में पुरोहित मण्डप के नीचे वर के दुपट्टे और कन्या की साड़ी का पल्ला जोड़कर ग्रन्थि-बन्धन सम्पन्न करता है। इसके पश्चात् पाणिग्रहण संस्कार और तब वैदिक मंत्रों के साथ अग्नि प्रदक्षिणा की जाती है।[3] ग्रहों का तालमेल बैठने पर दाम्पत्य-जीवन सुखी रहेगा – ऐसा विश्वास जन-साधारण के सभी वर्गों में व्याप्त है। मनू बाई की असाधारण जन्मपत्री के कारण ही उनके रानी होने की घोषणा की गई थी।[4]

जीवन की प्रत्येक गतिविधि मे भाग्य पर विश्वास किया जाता है। विद्वता, धन, अधिकार, पद आदि उपलब्धियों को योग्यता तथा पुरुषार्थ से अर्जित न मानकर भाग्य का प्रसाद माना जाता है।[5] अपवादस्वरूप लक्ष्मीबाई ऐसे भाग्य की विरोधिनी थी और कर्म मे उनका अटूट विश्वास था। फ्रायड आदि मनोविश्लेषणशास्त्री चाहे स्वप्नों को अन्तःचेतन में संचित -दमित वासनाओं की प्रतिक्रिया मानते हों; परन्तु लोकजीवन में इस विषय में अनेक प्रकार के विश्वास चिरकाल से प्रतिष्ठित हैं। प्रचलित विश्वासों के अनुसार रात्रि के विभिन्न प्रहरों में देखे गए स्वप्न भिन्न-भिन्न प्रकार से

१-बेतवा-वाणी -अंक १ वर्ष १ -पृ० ८४

२-झांसी की रानी लक्ष्मीबाई – वृन्दावनलाल वर्मा – पृ० ३३-३४

३- वही- पृ० १६३   ४- वही – पृ० २८

५- वही- पृ० १८

भविष्य का संकेत देते हैं। रानी लक्ष्मीबाई द्वारा स्वप्न मे देखी गई, तोप के गोले हाथों पर झेलने वाली स्वप्न-सुन्दरी का संविद्-वर्णन सबेरा होते-होते नगर के सभी स्त्री-पुरुषों में बिजली-सी भर देता है।[1] मृतक को भू-शय्या दी जाती थी और मुंह मे गंगाजल डाला जाता था।[2] मृतकों के श्राद्ध क्वार माह में किये जाते थे।[3]

व्यक्तिगत परिस्थितियाँ

किसी भी व्यक्ति की स्वकीय, वर्तमान, पर्यावरणीय तथा वंश-परम्परागत परिस्थितियाँ उसके व्यक्तित्व-निर्माण मे अक्षुण्ण स्थान रखती हैं। कवि विशिष्ट सामाजिक तथा संवेदनशील प्राणी होता है, अतः ऐसे प्रभाव से वह अछूता नहीं रह सकता। कवि हृदयेश के पूर्व उल्लिखित जीवन-वृत्त से यह प्रायः सिद्ध हो जाता है कि वे एक ऐसे निर्धन ब्राह्मण-परिवार में उत्पन्न हुए थे जो उन्हें मात्र जन्म देकर आगामी दायित्वों से मुक्त हो गया था। उपलब्ध विवरण से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि अपने पिता का एकमात्र पुत्र था - बहिन भी संभवतः उसके नहीं थी। ब्राह्मण-कुल में जन्म लेने तथा क्रमागत कौटुम्बिक व्यवस्थानुसार पौरोहित्य का वरण कवि को करना पड़ा था। इस जीविका उपार्जन के साधन के अतिरिक्त अन्य कोई आधार जो नहीं प्राप्त था। यतः इस कर्म से ही उसकी सांसारिक-यात्रा सम्यक्रूपेण चल नहीं पा रही थी अतः जप, यज्ञ, पूजा-पाठ आदि कर्मों का सम्पादन भी कवि का अतिरिक्त कर्म था। इनस्वभावज कर्मों के अतिरिक्त प्रतिभावशात् काव्यरचना भी कवि की अविभाज्य तथा प्रधान प्रवृत्ति थी। ऐसी सम्भावना की जा सकती है कि 'विश्व-प्रकाश' के लिए क्रमबद्ध पद रचना से पूर्व कवि स्फुट काव्य निर्माण करता रहा होगा।

अनुमानतः सम्वत् १८९२ के आसपास कवि को झाँसी राज्य के सूबेदार अथवा राजा रघुनाथ राव का आश्रय उपलब्ध हुआ। रघुनाथ राव की प्रशंसा में जो पद उपलब्ध होते हैं उनसे उक्त राज्याश्रय ग्रहण की पुष्टि होती है; परन्तु दुर्भाग्यवश राजा रघुनाथ राव सम्वत् १८९४ मे ही परलोकगामी हुए।[4] कवि उनके राज्यकाल

१- झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई - वृन्दावनलाल वर्मा - पृ० ३८७
२- वही- पृ० १३३ 3- वही- पृ० ३२१
४- वही- पृ० ६

में भी सम्भवतः कवि अपनी लौकिक अनिवार्य अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं कर पाया।

रघुनाथ राव के दिवंगत होने के अनन्तर महाराजा गंगाधर राव झांसी के शासक के रूप में अभिषिक्त हुए जो अपेक्षाकृत अधिक सांस्कृतिक अभिरुचियों से सम्पृक्त थे। कवि ने उनका भी आश्रय स्वीकार किया और उनके द्वारा पुत्र-प्राप्ति हेतु किये जाने वाले जाप-यज्ञादि में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन धार्मिक कृत्यों के पारिश्रमिक के रूप में सम्भवतः कवि को भूमि वितरित की गई थी पर दैव दुर्विपाक से उसमें राज्य के एक भ्रष्ट कर्मचारी द्वारा अवरोध उपस्थित कर दिया गया था। आजीविका की कठोर समस्या से आक्रान्त एवं त्रस्त कवि ने अन्ततः 'चार आदमियों की लाग' हेतु महाराज से याचना की।[1] इस सन्दर्भ में प्रमाण नहीं मिलते कि इस अपेक्षा की पूर्ति हुई अथवा नहीं।

कवि के व्यक्तित्व का दुर्भाग्य उतना कटु विपाक देकर ही शमित नहीं हुआ। उसकी धर्मपत्नी से या तो कोई सन्तान नहीं हुई अथवा जन्मग्रहण कर दिवंगत हो गई- जिससे क्षुभित होकर कवि को दत्तक-विधान करना पड़ा और यह स्वीकृत शिशु मथुरा प्रसाद के नाम से अभिधानित हुआ।[2] यह एक आश्चर्यजनक संयोग था कि कवि के आश्रयदाता महाराज गंगाधरराव तथा उनके आश्रित कवि - दोनों को ही समान परिस्थितियों का सामना करते हुए गोद लेना पड़ा था।

अपने वंश-परम्परागत पौरोहित्य के प्रति कवि को कोई राग नहीं था। उसे यह शास्त्र-निंदित कर्म श्वान-वृत्ति सदृश प्रतीत हुआ। कवि यत्र-तत्र-सर्वत्र जीविका-उपार्जन हेतु ठोकरें खाना ठीक नहीं समझता था - वह चाहता था कि आश्रयदाता स्वयं ही उसका योगक्षेम वहन कर ले -

सेवा करौ थोरी भौत आप सब जान कर
ऐसी कृपा कीजै द्वार और के न धावै सो।[3]

१- केशव-वाणी- वर्ष ३। अंक २ पृ० ९४

२- वही- पृ०९३

३- वही- पृ० ९४

उपर्युक्त याचना के सन्दर्भ में कवि की इच्छा-पूर्ति होने के प्रमाण तो नहीं उपलब्ध होते पर गंगाधरराव के सुलभ-प्रहृष्टमन वाले व्यक्तित्व से यह आशा करने में किंचित् मात्र संदिग्धता न होगी कि उन्होंने कवि की याचना को तिरस्कृत न किया होगा और इस स्वीकृति के साथ ही हृदयेश राज्य द्वारा किए जाने वाले धार्मिक कृत्यों तक सीमित रह गए होंगे ।

अपनी कवित्व-प्रतिभा, व्यावहारिकता, चारित्रिक-गरिमा, सादगी, अप्रतिम सन्तोष आदि के कारण कवि को राज्य तथा राज्य के नागरिकों द्वारा अपेक्षित सम्मान दिया जाता था । एक तरफ अपने जीवन की अवसान-बेला में भी महाराजा गंगाधरराव कवि का स्मरण करते हैं[1] तो दूसरी ओर छन्द-दोष के कारण कुष्ट से दूषित देह धारण करने वाले कवि का सम्मान जनसामान्य द्वारा ` चन्द्रमा-महाराज ` कहकर किया जाता था ।[2]

स्वकीय अनैश्वर्यमयी वैयक्तिक परिस्थितियों के समाधान हेतु कवि ने आश्रयदाताओं अथवा नायक-नायिकाओं के आमोद-प्रमोद, रास-रंग, हास-विलास, तड़क-भड़क आदि का वर्णन किया है पर उसकी परिस्थितियां पूर्णतया समाधानित हुई - ऐसा प्रमाणाभाव में नहीं कहा जा सकता । राजसी वातावरण में रहते हुए भी कवि सात्त्विकगुणोपेत होकर ` सादा जीवन उच्च विचार ` की कहावत को चरितार्थ करता हुआ सफेद पगड़ी, सफेद अंगरखा और सफेद पंडिताऊ धोती धारण कर प्रभावशाली नागरिक के रूप में समादृत होता रहा और अपने अंतिम आश्रयदाता गंगाधरराव के अवसान के अनन्तर, ऐसा अनुमान किया जाता है कि वह उदारवादी जनकवि के रूप में अपना अदृष्टपूर्व परिचय प्रस्तुत करना चाहता था । डा० वृन्दावनलाल वर्मा को जो कवि के हस्तलेख में रचित अपूर्ण कविता उपलब्ध हुई उसमें एक पंक्ति का प्रथम शब्द ` अधरम ` लिखकर विराम ले लिया गया है - पंक्ति भी पूर्ण नहीं की गई है । ऐसा अनुमान है कि काव्यरचना की इसी तादात्म्य की अवस्था में ही कवि के व्यक्तित्व को वैदेशिक राहु द्वारा ग्रस लिया गया होगा और समकालीन जीवन के यथार्थंकिरण के लिए तत्पर होने वाले माँ भारती यह उपासक कालकवलित हो गया ।

१-झांसी की रानी लक्ष्मीबाई - डा० वृन्दावनलाल वर्मा - पृ० १२८
२- बेतवा-वाणी- वर्ष २। अंक २ - पृ० १००
३- झांसी की रानी लक्ष्मीबाई - डा० वृन्दावनलाल वर्मा - पृ०४०३

द्वितीय अध्याय

नायक-नायिका- भेद परम्परा एवं " विलक्षकरन " का उसमें स्थान

रीतिकालीन हिन्दी- साहित्य में नायक-नायिका भेद पर आधारित लक्षण ग्रन्थ लिखने की जिस परम्परा का निर्वाह मिलता है उसके स्रोत संस्कृत के ग्रन्थ - भरत-मुनिकृत नाट्यशास्त्र तथा तदनन्तर अन्यान्य काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। यद्यपि संस्कृत नाट्यशास्त्र के सन्दर्भ में तीन ग्रन्थ - धनंजय का दशरूपक, सागरनंदी का नाटक लक्षण रत्न कोश और रामचन्द्र गुणचन्द्र का " नाट्यदर्पण " - उपलब्ध हैं जिनमें नायक-नायिका भेद का यथास्थान विवेचन हुआ है तथापि ये ग्रन्थ अपने पूर्व काव्यशास्त्रियों के अनुकरण-मात्र है, अतः " नाट्यशास्त्र " को ही इस विषय का प्रवर्तक मानना युक्ति-युक्त है।[1] यतः नाट्यशास्त्र मात्र अभिनय से संबंधित ग्रन्थ है, अतः उसमें नायक- नायिकाओं का वर्णन अभिनय के ही संदर्भ में हुआ है[2] फिर भी इस ग्रन्थ में लगभग सभी महत्वपूर्ण नायक-नायिका भेदों का वर्णन किया गया है।

नायक-नायिका-भेद निरूपण की दृष्टि से काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों की दो श्रेणियाँ दृष्टिगत होती हैं :-

१- शृंगाररस के आलंबन विभाव के अन्तर्गत नायक-नायिका भेद सम्बन्धी ग्रन्थ जिनमें रुद्रट का " काव्यालंकार", भोज का " सरस्वती कंठाभरण" तथा " शृंगार-प्रकाश " विश्वनाथ का " साहित्यदर्पण " उल्लेखनीय हैं। इन प्रमुख ग्रन्थों के अतिरिक्त रुद्रभट्ट, व्यास, श्रीकृष्ण कवि, वाग्भट्ट प्रथम, हेमचन्द्र, शारदातनय, विद्यानाथ, शिंग-भूपाल, वाग्भट्ट द्वितीय और केशव मिश्र के द्वारा रचित काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में भी उक्त विषय का प्रतिपादन हुआ है परन्तु इनमें कोई उल्लेखनीय नवीनता नहीं उपलब्ध होती।

२- केवल नायक-नायिकाभेद निरूपक ग्रन्थ रचना के क्रम में भानुदत्त की " रसमंजरी" और रूपगोस्वामी का " उज्ज्वलनीलमणि " अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इसी परम्परा पर हिन्दी रीतिकाल के अनेक कवि-आचार्यों ने स्वतंत्र रूप से नायक-नायिका भेद का विवेचन

१- हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा० सत्यदेव चौधरी - पृ० ३७०

२- नाट्यशास्त्र - भरत मुनि - अध्याय २४ पद सं० १८४

कर हिन्दीसाहित्य की श्री-वृद्धि की है। इससे पूर्व कि हिन्दी के प्रमुख आचार्यों द्वारा नायक-नायिकाभेद प्रकरण के सन्दर्भ में कृत प्रयत्नों का संक्षेपतः प्रस्तुतीकरण किया जाय, संस्कृत साहित्य में इस विषय का जो निरूपण किया गया है उस पर दृष्टिपात् अपेक्षित है :-

१- भरत मुनि के ` नाट्यशास्त्र ` में नायक-नायिका भेद

भरतमुनि के ` नाट्यशास्त्र ` के ` सामान्याभिनय ` नामक २४वें अध्याय में रतिसंयोगकारण श्रृंगार का स्वरूप निर्धारण करने के उपरान्त नायक-नायिकाभेद का निरूपण किया गया है। ` बाह्योपचार ` नामक २५वें तथा ` प्रकृतिभेद ` नामक ३४वें अध्याय में भी इसी विषय का प्रतिपादन है। यह गौण विषय ` नाट्यशास्त्र ` में नायक-नायिका के पारस्परिक प्रेम-संबंधों को व्यक्त करने के लिए ही प्रस्तुत किया गया है क्योंकि भरतमुनि का प्रतिपाद्य था - नायक की अभिनेयता[१] से संबंधित सिद्धान्तों का निरूपण। गौण रूप से प्रस्तुत इस विषय का ग्रहण आगामी आचार्यों ने अपने-अपने नायक-नायिकाभेद संबंधी ग्रन्थों में किया है इस प्रकार वे भरतमुनि के ऋणी हैं।

१- नायक-भेद - नाट्यशास्त्र में विभिन्न आधारों पर नायक-भेद प्रस्तुत किया गया है। प्रकृति के आधार पर पुरुष या नायक के तीन भेद किए गये हैं - उत्तम, मध्यम और अधम[२]। शील के आधार पर नायक के धीरोद्धत, धीरललित, धीरोदात्त और धीरप्रशान्त भेद गिनाए गए हैं।[३] नायिका के प्रति प्रेम या रति भाव तथा अन्य व्यवहार के आधार पर चतुर, उत्तम, मध्यम, अधम और सम्प्रवृद्ध ये पाँच भेद उल्लिखित हैं।[४] नायिका द्वारा नायक के प्रति किए गए स्नेहजन्य सम्बोधनों के आधार पर नायक के सात भेदों - प्रिय, कान्त, विनीत, नाथ, स्वामी, जीवित और नंदन[५] - का कथन है तो क्रोधावेशजनित

१- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि - २४। १८४

२- वही ३४। २

३- वही ३४। १७

४- वही २५। ५४

५- वही २४। २९२

सम्बोधनों के आधार पर भी नायक के सात भेद – दुश्शील, दुराचार, शठ, वाम, विदूषक, निर्लज्ज और निष्ठुर – किए गए हैं।[1]

२– नायिका भेद – नाट्यशास्त्रकार ने प्रथमतः लौकिक-अलौकिक जातियों के शील के आधार पर नारी या नायिका के इक्कीस भेद – देवताशीला, असुरशीला, गन्धर्वशीला, रक्षशीला, नागशीला, पतत्रीशीला, पिशाचशीला, यक्षशीला, व्यालशीला, नरशीला, वानरशीला, हस्तिशीला, मृगशीला, मीनशीला, उष्ट्रशीला, मकरशीला, खरशीला, शूकर-शीला, वाजिशीला, महिषाशीला और गौशीला[2] किए हैं। सामाजिक व्यवहार के आधार पर नायिका बाह्या, आभ्यन्तरा तथा बाह्याभ्यन्तरा भेदों में वर्गीकृत है। इनमें कुलीना को आभ्यन्तरा, बाह्या को वेश्या तथा बाह्याभ्यन्तरा को कृतशौचा, जो वेश्यावृत्ति का त्याग कर शुद्ध रूप से प्रेमी के साथ रहती है, कहा गया है।[3] सामाजिक व्यवहार के ही आधार पर नायिका के कुलजा और कन्यका दो भेद हैं।[4] नायिका के नायक के साथ संयोग या विप्रयोग की अवस्थानुसार नायिका के आठ भेद – वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता, स्वाधीनपतिका, कलहान्तरिता, खण्डिता, विप्रलब्धा, प्रोषितभर्तृका और अभिसारिका[5] किए गए हैं। नायक के प्रति प्रेम के तथा प्रकृति के आधार पर पुनः नायिका के मदनातुरा, अनुरक्ता, विरक्ता ये तीन भेद – उत्तमा, मध्यमा और अधमा[7] भेद वर्णित हैं। यौवनलीला के आधार पर नायिका के चार भेद – प्रथम यौवना, द्वितीय यौवना, तृतीय यौवना और चतुर्थ यौवना[8] गुणों के आधार पर चार भेद – दिव्या, नृपपत्नी, कुलस्त्री और गणिका[9] – परिगणित हैं। राजाओं के अंतःपुर में अधिष्ठित स्त्रियों को महादेवी, स्वामिनी, स्थापिता भोगिनी शिल्पकारिणी, नाटकीया, नर्तकी, अनुचारिका, परिचारिका, संचारिका, प्रेषण-चारिका, महत्तरी, प्रतिहारी, कुमारी, स्थविरा और आयुक्तिका[10] – में परिगणित कराया गया है।

१– नाट्यशास्त्र – भरतमुनि –	२४। २९२	२– वही–	२४। ९४–९५
३– वही–	२४। १४२–४५	४– वही–	२४। १४२४५
५– वही–	२४। २०३–२०४	६– वही–	१९। २३ –२७
७– वही–	२४। ३६	८– वही– निर्णयसागर प्रेस –	२४। ७
९– वही–	२४। ४३–५२	१०– वही– चौखम्बा–	२४। २९ –३१

३- दूती-भेद- भरतमुनि ने नायक-नायिका की पारस्परिक कामाग्नि शमनार्थ सन्देश-प्रेषण के लिए दूती को नियोजित करने का विधान किया है।[1] मूर्खा, सुन्दरी, धनी अथवा रुग्णा दूती का सतदर्थ निषेध है। दूती को प्रोत्साहन देने में कुशल, मधुर-भाषिणी, अवसर पहचानने वाली, व्यवहार में निपुण तथा रहस्य को गोपनीय रखने-वाली होना चाहिए। नाट्यशास्त्र में नायक-नायिका के परस्पर मिलन कराने में नैपुण्य के आधिक्य के कारण उक्त जाति की दूतियों - सखी, प्रतिवेश्या तथा कुमारी के साथ श्रमणी, लिंगिनी, शैल्पजीवना, दासी, दारु शिल्पिका, धात्री, पाखंडिनी और ईक्षणिका[2] का भी उल्लेख हुआ है।

इस प्रकार विभिन्न आधारों पर भरतमुनि निरूपित नायक-नायिका भेद प्रकरण में सखा, दूती, सखी आदि संबंधित विषयों का भी सन्निवेश होने से आगामी काल में प्रवर्तित नायिका-नायक भेद की पर्याप्त तथा आधारभूत सामग्री प्राप्त हो जाती है। यद्यपि भरतमुनि के अधिकांश वर्गीकरण आगामी लक्षणग्रन्थों में गृहीत नहीं हुए तथापि उनके स्रोत नाट्यशास्त्र में उपलब्ध हो जाते हैं।[3]

२- रुद्रट के ' काव्यालंकार ' में नायक-नायिकाभेद

नाट्यशास्त्र के अनन्तर व्यासकृत ' अग्निपुराण ' में शृंगार रस के आलंबन विभाव के रूप में नायक-नायिका भेद का प्रतिपादन हुआ है जो विशेष उल्लेखनीय नहीं है। इस क्रम में आगामी उल्लेखनीय ग्रन्थ रुद्रट प्रणीत ' काव्यालंकार ' है, जिसके १२ वें अध्याय में शृंगार रस के अन्तर्गत नायक-नायिका भेद-निरूपण उपलब्ध होता है। इस ग्रन्थ के अन्तर्गत प्रस्तुत नायक-नायिका भेद की मौलिकता के सन्दर्भ में डा० सत्यदेव चौधरी का अभिमत है - यह प्रकरण इतना सुव्यवस्थित है कि आगे चल कर कई शताब्दियों तक इसी भेद-योजना को ही मूल रूप में अपनाया गया, पर इस सुव्यवस्था का सारा श्रेय रुद्रट को नहीं दिया जा सकता। भरत और रुद्रट के बीच लगभग एक सहस्र वर्ष के सुदीर्घ काल में कालकवलित अनेक ग्रन्थों में इस प्रसंग की चर्चा हुई होगी जिसका विकसित और परिष्कृत रूप रुद्रट के ग्रन्थ में स्थान पा गया। जो हो, आज तक की

१-नाट्यशास्त्र - भरतमुनि - २४ । १९०-९२

२- वही- २४। ९, १०

३- ब्रजभाषा साहित्य का नायिका-भेद - प्रभुदयाल मीतल - पृ० सं० ८४

लोगों के अनुसार काव्यालंकार ही प्रथम काव्यशास्त्र है जिसके नायक-नायिका-भेद को मूल रूप में अपना कर समय-समय पर उसमें परिवर्द्धन और परिष्करण होता रहा ।[1]

१- नायक-भेद - भरत के धीरोद्धत आदि नायकों के अभिनयोचित वर्गीकरण को अस्वीकार करते हुए रुद्रट ने नायक के नायिका के प्रति प्रेम-व्यवहार के आधार पर चार भेद - अनुकूल, दक्षिण, शठ तथा धृष्ट किए हैं ।[2] इसका कारण प्रस्तुत करते हुए डा० सत्यदेव चौधरी लिखते हैं - " भरतसम्मत धीरोदात्तादि चार भेदों का उल्लेख रुद्रट ने सम्भवतः जानबूझ कर नहीं किया । वस्तुतः ये भेद शृंगार रस के नायक के हैं भी नहीं "।[3] काव्यालंकारकार ने नायक की गुप्त बातों में सहायक - नर्मसचिव - के तीन भेदों - पीठमर्द, विट और विदूषक -[4] का भी उल्लेख किया है । इनका नायकभेद यहीं तक सीमित है ।

२- नायिकाभेद - रुद्रट ने प्रथमतः नायिका का त्रिविध वर्गीकरण - आत्मीया, परकीया तथा वेश्या -[5] उपस्थित किया है । मनोवैज्ञानिक व्यवहार के आधार पर आत्मीया के तीन भेद[6] - मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा - प्रस्तुत किए गए हैं जिनका आधार रतिविकास भी माना जाता है । मुग्धा यदि नवयौवनजनित उत्साह से सम्पृक्त होती है तो मध्या में मन्मथ का पूर्ण उत्साह तथा किंचित् सुरतविषयक चातुर्य का उन्मेष होता और प्रगल्भा रतिकर्म में पूर्णतः विशारदत्व से युक्त होता तथा नायक के आश्लेष से द्रवीभूत होकर यह विवेक भी खो देती है कि वह कौन है, नायक कौन और यह सब कुछ क्या हो रहा है ।[7] कृतापराध नायक के प्रति व्यवहार के आधार पर मध्या तथा प्रगल्भा में से प्रत्येक के तीन-तीन भेद - धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा - किए गए हैं ।[8] मुग्धा तथा प्रगल्भा में वे या तो एक ज्येष्ठा होती है तो अन्य कनिष्ठा ।[9] इस प्रकार छः प्रकार की

१- हिन्दी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा० सत्यदेव चौधरी - पृ० ३७४

२- काव्यालंकार - रुद्रट - १२।९

३- वही० हिन्दी रीतिपरंपरा के प्रमुख आचार्य- डा० चौधरी - पृ० ३७४

४- काव्यालंकार १२।१४

५-वही- १२।१५

६- वही - १२।१७

७-वही- १२।१८, २१, २४, २५

८- वही- १२।२३, २६, २७

९-वही- १२।२८

मध्या, छः प्रकार की प्रगल्भा तथा मुग्धा के मात्रैक भेद[1] को सम्मिलित कर आत्मीया के १३ भेद हो जाते हैं। इनके साथ परकीया के दो भेदों - कन्या तथा ऊढ़ा[2] तथा मात्रैक रूपा वेश्या[3] को मिलाकर नायिका के कुल सोलह भेद हो जाते हैं। रतिभावापन्न कन्या कुमारी कही जाती है। ऊढ़ा वह स्त्री होती है जो विवाहित होते हुए भी अपने पति के अतिरिक्त अन्य पति का सेवन करती है। वेश्या या गणिका जैसा कि सर्वविदित है, धन खींचने के लिए ही प्रेम का नाटक करती है।[4] आत्मीया रुद्रट के अनुसार द्विविध है - स्वाधीनपतिका और २- प्रोषितभर्तृका[5]। यह वर्गीकरण सम्भवतः इसीलिए किया गया है कि परकीया और वेश्या के ये दोनों भेद हो ही नहीं सकते हैं। पुनः आत्मीया, परकीया तथा वेश्या के अन्य दो-दो भेद - अभिसारिका और खण्डिता भी रुद्रट को स्वीकृत हैं।[6] इस सन्दर्भ में डा० सत्यदेव चौधरी का कथन है - इन दोनों की संगति इन तीनों नायिकाओं के साथ घटित होना सम्भव नहीं है। अभिसरण का क्षेत्र परकीया तक ही सीमित है, न वेश्या को इसकी आवश्यकता है और न आत्मीया को। परिस्थितिवश कभी इन्हें अभिसरण करना भी पड़े तो हमारे विचार में काव्यशास्त्र द्वारा तत्क्षण के लिए इन्हें 'परकीया' नाम से अभिहित करने की बाधा मिल जानी चाहिए। खण्डिता का सम्बन्ध आत्मीया के साथ है, परकीया के साथ भी यह संगत हो सकता है; पर वेश्या के साथ यह तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता - वैशिक से एकनिष्ठानुरक्तता की आशा रखना उसके लिए दुराशा-मात्र है। भिन्न-भिन्न वैशिक के लिए वह खण्डिता बनकर दुखड़े रोती रहेगी।[7] इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि भरतसम्मत अवस्थानुसार अष्टविध नायिकाभेद में से चार नायिकाओं - वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता, कलहान्तरिता तथा विप्रलब्धा को रुद्रट ने न जाने क्यों छोड़ दिया ; हो सकता है उन्होंने वासकसज्जा को स्वाधीनपतिका में, विप्रलब्धा तथा विरहोत्कंठिता को प्रोषितभर्तृका में तथा कलहान्तरिता को खण्डिता में अन्तर्भावित कर लिया हो;

१- काव्यालंकार	१२।२८	२- वही	१२।३०
३- वही	१२।४० की वृत्ति	४- वही	१२।३९
५- वही	१२।२७	६- वही	१२।४१

७- हिन्दी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा० सत्यदेव चौधरी - पृ० ३७४

यद्यपि आगामी काल में दशरूपककार ने इस मनःस्थिति सम्भावना का पूर्ण निराकरण करते हुए यह सिद्ध कर दिया है कि उक्त आठ नायिकाओं में से कोई भी दूसरे से संबद्ध नहीं हो सकती ।[1]

३- भोजराज के ` सरस्वतीकण्ठाभरण ` में नायक-नायिका-भेद

भोजराज ने अपने ` सरस्वती कण्ठाभरण ` नामक ग्रन्थ के ` रसविवेचन ` नामक पंचम परिच्छेद तथा अन्य ग्रन्थ ` शृंगार-प्रकाश ` के रत्यालम्बन विभाव प्रकाश ` नामक पन्द्रहवें परिच्छेद में नायक-नायिका-भेद का विवेचन प्रस्तुत किया है । समन्वयात्मक या संकलनात्मक वृत्ति का आश्रय ग्रहण कर उन्होंने समसामयिक तथा अपने समय में अप्रचलित लगभग सभी काव्य-सिद्धान्तों का यथासम्भव वर्गबद्ध संकलन तथा सम्पादन किया है; परन्तु उनकी इस सार्वग्राहिणी विशदता से आगामी आचार्य प्रभावित नहीं हुए । भोजराज की उक्त वृत्ति का प्रतिफलन नायक-नायिका भेद भी है । नायक-नायिका भेदों की इस अनंतता में वर्गबद्धता तथा लक्षणों की संक्षिप्तता की दृष्टि से उनका प्रयास अभ्यर्थनीय है । फिर भी ` सरस्वतीकण्ठाभरण ` में न तो अन्य आचार्यों की तरह असम्बद्ध भेदों की सम्बद्धता है और न तो आकारविस्तृतता । यह दोष उनके ` शृंगारप्रकाश ` पर अवश्य ही आरोपित किया जा सकता है जिसमें अन्य आचार्यों की त्रुटियां परिलक्षित होती है । इस पर भी उनका कृतित्व महत्वपूर्ण है ।

१- नायक-भेद[2] - भोजराज ने नायकभेद निरूपण विभिन्न आधारों पर किया है । कथावस्तु के आधार पर प्रथमतः नायक, प्रतिनायक, उपनायक, नायकाभास, उभयाभास, तथा निर्यकाभास - भेदों में नायक को विभक्त किया है । गुणों के आधार पर नायक का अन्य वर्गीकरण उत्तम, मध्यम तथा अधम में है तो सामान्य लक्षणों को आधार बना कर नायक को धीरोद्धत, धीरललित, धीरप्रशान्त तथा धीरोदात्त में भी प्रस्तुत किया गया है । नायिका के साथ संबंध या व्यवहार की दृष्टि से नायक के अन्य भेद - अनुकूलादि भी किए गए हैं । प्रकृति के आधार पर पुनः इसमें सात्विक, राजस तथा तामस का रूप दिया गया है । एकाधिक पत्नी-सेवन के आधार पर जो असाधारण तथा साधारण वर्ग

१- दशरूपकम् - धनंजय - व्याख्याकार डा० श्रीनिवास शास्त्री २।२३ का वृत्ति भाग

२- सरस्वती कण्ठाभरण - ५।१०१-१०२, १०७-१०९

2– नायिका–भेद – भोज के कथित ग्रन्थ-द्वय – सरस्वती कण्ठाभरण तथा 'शृंगार-प्रकाश' में नायिका-वर्गीकरण के दस विभिन्न आधार ग्रहण किए गए हैं।[1] कथावस्तु के आधार पर नायिका त्रिभेदों – नायिका, प्रतिनायिका, उपनायिका तथा अनुनायिका में विभाजित है। उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा भेदों में गुणों का आधार ग्रहण किया गया है। वय तथा चातुर्य के आधार पर कृत तृतीय वर्गीकरण में नायिका के मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा रूप उपलब्ध होते हैं। धैर्य के आधार पर नायिका को धीरा तथा अधीरा भेदों में उपस्थित किया गया है। अपने पंचम वर्गीकरण में भोज ने परिग्रह के आधार पर नायिका के स्वकीया, अन्यदीया भेद किए हैं। अन्यदीया के दो भेदों – ऊढ़ा तथा अनूढ़ा का परिगणन है। उपयमन के आधार पर ज्येष्ठा तथा कनिष्ठाभेद षाष्ठ वर्गीकरण में अन्तर्निविष्ट है। यहाँ ज्येष्ठा का भाव पूर्व पाणिग्रहीतया तथा कनीयसी का तात्पर्य तदनन्तर परिग्रहीता है। मान के आधार पर कृत सप्तम वर्गीकरण में उद्धता, उदात्ता, शान्ता तथा ललिता भेदों का उल्लेख है। वृत्ति का आधार ग्रहण करते हुए सामान्या, पुनर्भू तथा स्वैरिणी भेदों का परिगणन अष्टम वर्गीकरण में समाश्रित है। गणिका, रूपजीवा तथा विलासिनी में कृत नवम भेद आजीविका के आधार पर किया गया है। अवस्थाओं – स्वाधीनपतिकादि – के आधार[2] पर किया गया वर्गीकरण दशम है जो भरतमतानुकूल है। उनके 'शृंगार प्रकाश' में नायिका के प्रमुख चार भेदों – स्वकीया, परकीया, पुनर्भू और सामान्या का उल्लेख है तो स्वकीया और परकीया के गुण के आधार पर – उत्तमा, मध्यमा, कनिष्ठा, परिणय के आधार पर – ऊढा और अनूढा, धैर्य के आधार पर धीरा, अधीरा, वय के आधार पर – मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा – भेद किए गए हैं। पुनर्भू के अक्षता, क्षता, यातायाता, यायावरा, सामान्या के ऊढा, अनूढा, स्वयंवरा, स्वैरिणी, वेश्या, वेश्या के गणिका, विलासिनी और रूपाजीवा भेद भीउल्लिखित हैं। नायिका के अवस्थानुसार ८ भेद –वासकसज्जा आदि का भी उक्त ग्रन्थ में पुनः विवेचन किया गया है।

१– सरस्वती कण्ठाभरण – ५ । १०१, १०२, १०५ –१०७, ११० –११३

२– शृंगार प्रकाश । राघवन । पृ० ३३

४- विश्वनाथकृत ` साहित्य-दर्पण ` में नायक-नायिका-भेद

नाट्य-काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ ` साहित्य- दर्पण ` के तृतीय परिच्छेद में आलंबन विभाग के अन्तर्गत नायक-नायिका-भेद का निरूपण किया गया है। इस समग्र प्रकरण में नवीनता-मात्र यही है कि स्वकीया नायिका के उपभेदों की वृद्धि हुई है तथा दूत-दूती के नये भेदों की उद्भावना की गई है। डा० सत्यदेव चौधरी के अनुसार - नायक-नायिका-भेद का इतना सुव्यवस्थित और सरल निरूपण इनके पूर्व नहीं हो पाया था। अपने समय की विस्तृत सामग्री में से सार ग्रहण करके उसे संक्षिप्त रूप में और विद्वानों तथा छात्रों दोनों के लिए उपयोगी रूप में प्रस्तुत कर देना विश्वनाथ जैसे प्रौढ़ और सुलझे हुए आचार्य का ही काम था।[१]

१- नायक-भेद - नाट्यशास्त्र की परम्परा पर अभिनियोजित धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीर-ललित तथा धीरशान्त भेद कविराज द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं[2] तदनन्तर इनमें से प्रत्येक को यौनभावना की दृष्टि से दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल तथा शठ[3] भेदों में परिगणित किया गया है। इस प्रकार १६ भेदों में वर्गीकृत नायक को त्रिभेदों - उत्तम, मध्यम तथा अधम - में विभाजित कर नायक संख्या ४८ तक पहुंचाई गई है।[४]

२- नायिका-भेद - नायिका के परम्परानुक्त त्रिविध भेद - स्वीया, अन्या और सामान्या[५] करने के अनन्तर स्वीया नायिका के पुनः तीन भेद - मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा गिनाए गए हैं[६]। एतदनन्तर मध्या और प्रगल्भा के पुनः धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा[७] भेद परिगणित हैं। उक्त मध्या तथा प्रगल्भा में से प्रत्येक के दो-दो भेद - ज्येष्ठा एवं कनिष्ठा[८] को लेकर नायिका संख्या बारह हो जाती है।[९] परकीया नायिका को भी परोढा तथा कन्यका[१०] भेदों में उपस्थित किया गया है। परोढा। पर परिणीता। वह नायिका है जो यात्रा आदि में अभिरुचि रखती है, अन्यों से प्रेमप्रसंग रखती है तथा किसी के साथ संसर्ग में उसे लज्जा नहीं हुआ करती है।[११] सामान्या नायिका कलाप्रगल्भ

१-हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य -डा० सत्यदेव चौधरी - पृ० ३७९

२- साहित्यदर्पण - विश्वनाथ -	३।३१	३- वही	३।३५
४- वही-	३।१३०	५- वही	३।५६
६- वही-	३।५७	७- वही	३।६१
८- वही-	३।६४	९- वही-	३।६५
१०-वही-	३।६६	११- वही	३।६६

वेश्या होती है जिसका कृत्रिम प्रेम धन या समृद्धि के आधार पर ही होता है।[1] इन सोलह प्रकार की नायिकाओं के भी स्वाधीनपतिकादि अष्टविध अवस्था-भेद से १२८ नायिका-भेद हो जाते हैं।[2] इन १२८ प्रकार की नायिकाओं के भी उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा भेद से यह संख्या बढ़कर ३८४ तक पहुंच जाती है।[3]

३- दूत-दूती-भेद - उपर्युक्त अध्याय में ही कविराज ने निसृष्टार्थ, मितार्थ तथा संदेशहारक भेदों में दूत को वर्गीकृत किया है।[4] निसृष्टार्थ दूत वह है जो कि दोनों (नायक-नायिका) के मन की बात जानकर स्वयं ही सभी प्रश्नों का समाधान किया करता है और जो भी कार्य हो, उसे समीचीनतया सम्पादित कर सकता है। मितार्थ दूत वह होता है जो बात थोड़ी करे; किन्तु जिस कार्य के लिए भेजा गया हो उसे अवश्य सिद्ध कर आवे। तीसरे प्रकार का दूत संदेशहारक कहा जाता है जो उतनी ही बात करता है जितनी उसे बताई गई हो।[5] उक्त अध्याय में दूतियों का वर्गानुसार भेद प्रस्तुत किया गया है जो सखी, नटी, दासी, धाइ की लड़की, पड़ोसिन, बालिका, संन्यासिनी, धोबिन, बढ़ई की स्त्री, नाईन, रंगरेजिन, अथवा स्वयं नायिका हो सकती है।[6] ये विभिन्न प्रकार की दूतियां भी उत्तम, मध्यम और अधम - इन तीन श्रेणियों में विभक्त की गई हैं।[7]

४- यौवनजालंकार - भरतमुनि प्रणीत 'नाट्यशास्त्र' में जिन बीस युवावस्थाजन्य नायिकालंकारों - भाव, हाव, हेला, शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य, धैर्य, लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, बिब्बोक, ललित तथा विहृत - का उल्लेख मिलता है,[8] उनका परिवर्द्धन करते हुए कविराज द्वारा इनकी संख्या २८ निर्धारित की गई है। जिन आठ अलंकारों की अतिरिक्त योजना हुई है उनके नाम हैं - तपन, मद, तपन, मौग्ध्य, कुतूहल, हसित, चकित और केलि।[9]

१- साहित्य- दर्पण -	३।६७-७१	२- वही-	३।७२-७३
३- वही-	३।८७	४- वही-	३।४७
५-वही-	३।४८	६- वही-	३।१२८
७-वही-	३।१३०	८- नाट्यशास्त्र	२२।४
९- साहित्य-दर्पण	३।९१-९२		

५- भानुदत्त मिश्र कृत ` रस मंजरी ` में नायक-नायिका-भेद

` रस मंजरी ` में भानुदत्त मिश्र नेयद्यपि पूर्वाचार्यों के अनुसार ही शृंगाररस के आलंबन विभाव के अन्तर्गत ही नायक-नायिका-भेद का निरूपण किया है तथापि विषय की स्वतंत्र निरूपण-पद्धति का ही सम्भवतः यह परिणाम हुआ कि आगामी रीतिकालीन आचार्यों तथा कवियों ने इसका अनुकरण किया । मात्र उक्त पद्धति ही नहीं अपितु उनके नायक-नायिका-भेदों को भी हिन्दी आचार्यों । कवियों ने प्रभूतरूपेण ग्रहण किया है । इस विशिष्ट कृतित्व की महत्ता के सन्दर्भ में डा० सत्यदेव चौधरी का अभिमत है - भरत और भोजराज के ग्रन्थों में विषय का विस्तार था पर इतनी सुव्यवस्था नहीं थी; रुद्रट और विश्वनाथ के ग्रन्थों में व्यवस्था अवश्य थी; पर विषय-सामग्री संक्षिप्त औरअस्वतंत्र रूप से प्रतिपादित की गई थी । किन्तु भानुमिश्र के निरूपण में विषय का स्वतंत्र विस्तार भी है और उसका सुव्यवस्था-पूर्ण प्रतिपादन भी[१]।

डा० राकेश गुप्त का भी कथन इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है - नायक-नायिका-भेद विषय को भानुदत्त का योगदान मौलिक तथा विस्तृत दोनों ही प्रकार का है[२]। नायक-नायिका भेद के संयत लक्षण उनके दोषाभाव, स्थान-स्थान पर एतद्विषयक तर्कसम्मतता के कारण यह ग्रन्थ रीतिकालीन आचार्य एवं कवियों का सार-सर्वस्व रहा है ।

१- नायक-भेद - भानुदत्त मिश्र ने नायक के तीन भेद किए हैं - पति, उपपति तथा वैशिक ।[३] प्रथम दो का पुनः अनुकूल, दक्षिण, शठ तथा धृष्ट में वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है[४]। वैशिक के भेद - उत्तम, मध्यम तथा अधम[५] गिनाए गए हैं । मानी और चतुर[६] दो अन्य भेद स्वीकार करते हुए उन्होंने इनको शठ के अन्तर्गत समाविष्ट किया है । चतुर नायक भी द्विविध - वाक्चतुर तथा चेष्टा चतुर- है[७]। नायिका की अष्टावस्थाओं के सन्दर्भ में भानुमिश्र के अनुसार प्रोषित अवस्था में नायक का केवल एक प्रकार - प्रोषितपति[८] हो सकता है । नायिका की सांकेतिक चेष्टाओं को न

१- हिन्दी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा० सत्यदेव चौधरी - पृ० २८१
२- स्टडीज इन नायक-नायिका-भेद - डा० राकेश गुप्त - पृ० ६२
३- रस मंजरी - भानुमित - पृ० २७८ ४- वही- पृ० २८०, २९१
५- वही- पृ० २९३ ६- वही- पृ० २९७
७- वही- पृ० २९९ ८- वही- पृ० ३०१

समझने वाला गुणहीन नायक नायकाभास होता है।[1] नायिका के सन्दर्भ में कृत दिव्या, अदिव्या तथा दिव्यादिव्या वर्गीकरण भानुमिश्र के अनुसार नायक पर भी घटित होता है। ऐसे नायकों में इन्द्र दिव्य, माधव ।मालती-माधव नाटक का । अदिव्य तथा राजादि दिव्यादिव्य है।[2]

२- नायिका-भेद - 'रस मंजरी' में नायिका प्रधान रूपेण त्रिभेदों - स्वीया, परकीया तथा सामान्या[3] - में वर्गीकृत की गई है। लज्जा और रति के आधार पर स्वीया के प्रमुख तीन भेद निर्दिष्ट किए गए हैं - मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा।[4] अब तक अविभाज्य मुग्धा के भी दो भेद -अज्ञात यौवना और ज्ञात यौवना[5] करके भानुमिश्र ने अपनी नवोद्भावनाशक्ति का परिचय प्रस्तुत किया है। वे यहीं विराम नहीं लेते अपितु इसके नवोढा तथा विश्रब्धा नवोढा भेद[6] करते हैं। प्राथमिक स्थिति की नवोढा ही पति के विश्वास को प्राप्त विश्रब्धा नवोढा में परिणत हो जाती है।[7] मान के न्यूनाधिक्य के आधार पर मध्या और प्रगल्भा प्रत्येक के तीन-तीन उपभेद किए हैं - मध्या धीरा, मध्या अधीरा और मध्या धीराधीरा; प्रगल्भा धीरा, प्रगल्भा अधीरा तथा प्रगल्भा धीराधीरा। पति-प्रेम के न्यूनाधिक्य के विचार से उपर्युक्त धीरादि के छः भेदों में प्रत्येक के दो उपभेद - ज्येष्ठा और कनिष्ठा किए गए हैं।[8] भानुमिश्र ने मध्या का कोई उपभेद नहीं किया है। ब्रजभाषा के आचार्यों को भी प्रायः यही विधान स्वीकृत रहा है। रसमंजरी में उल्लिखित प्रगल्भा के दो उपभेद - रतिप्रीता तथा आनन्दात्संमोहा[9] भी ब्रजभाषा आचार्यों को स्वीकृत हैं। परकीया को दो भेदों - परोढा तथा कन्यका[10] में वर्गीकृत किया गया है। परोढा नायिका वह है जो कि नायक के अतिरिक्त अन्य की परिणीता होती है। इसके पुनश्च छः उपभेद - गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयाना तथा मुदिता - हैं।[11] गुप्ता वह है जो अपने पति के साथ संभोगावस्था में वक्ष पर पड़े विभिन्न नखक्षतादि के चिह्नों के पड़ने का अन्य कारण बताती है। कृत सुरत गोपना में वह तब परिवर्तित होती है जब

१- रस मंजरी - भानुमिश्र - पृ० ३०५ २- वही - पृ० १४४
३- वही- ।श्रीकृष्ण निबंध भवनम् बनारस। पृ०५ ४- वही - पृ० ७
५- वही- पृ० सं० ७, ८ ६- वही- पृ० १७
७- वही- पृ० सं० १७ ८- वही- पृ० ४१
९- वही- पृ०सं० ५१ १०- वही- पृ० ५२
११- वही- पृ०सं० ५३

उसकी इच्छित संभोग क्रिया पूर्व ही सम्पन्न हो चुकी होती है। इसी क्रम में वर्तिष्यमाण सुरतगोपना वह होती है जिसका संभोग सम्पन्न हो चुका है एवं भविष्य में भी यह संपन्न होगा। विदग्धा वह है जो नायक से कौशलपूर्वक सम्पर्क की योजना करती है। यह कौशल यदि वाणी के माध्यम से सम्पन्न होता है तो वह वाग्विदग्धा एवं जब यह क्रिया के माध्यम से अभिव्यक्त होता है तो उसे क्रिया-विदग्धा[1] कहते हैं। लक्षिता वह है जिसकी उपपति सह रति का ज्ञापन अन्य जनों को हो जाता है। कुलटा वह है जो अपनी असाधारण वासनात्मक वेगवत्ता के कारण अनेक पुरुषों के साथ संभोग की इच्छा रखती है। अनुशयाना अर्थात् जो खेद द्वारा आक्रान्त होती है, तीन प्रकार की होती है - प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय।[2] प्रथम अपने दुःख का कारण अपने समागम के स्थान के ध्वंश को मानती है। द्वितीय के दुःख का कारण यह होता है कि उसे भविष्य में मागम का उचित स्थान नहीं उपलब्ध हो पाएगा। तृतीय को इस बात का पश्चाताप होता है कि वह संकेत-स्थान तक पहुंचने में समर्थ नहीं हो सकी, जहां उसका प्रियतम पूर्व ही पहुंच चुका है। रति में परोढा मुदिता होती है जब वह कुछ ऐसी बात सुनती है जिसके कारण उसकी प्रणयी के साथ स्वच्छन्द समागम में सहायता प्राप्त होगी। सामान्या के दो भेदों - रक्ता तथा विरक्ता[3] की चर्चा भानुमिश्र ने की है। उन्होंने पुनः नायिका की दशानुसार अन्य तीन भेद - अन्य संभोगदुःखिता, वक्रोक्तिगर्विता तथा मानवती - गिनाए हैं[4] जो उनकी नायिकाभेद संख्या में परिगणित नहीं हैं। ऐसी रमणी जो अन्य कामिनी के शरीर पर पड़े हुए अपने पति द्वारा कृत रति-चिह्नों को देखती है तो वह अन्यसंभोगदुःखिता होती है। जब वह वक्रोक्ति या अप्रत्यक्ष भाषण द्वारा अपना मान व्यक्त करती है तब उसे वक्रोक्तिगर्विता से अभिधानित किया जाता है। यदि उसे अपने पति द्वारा किए गए प्रेम पर गर्व होता है तो वह प्रेमगर्विता कथित की जाती है।[5] पुनः सौन्दर्यविषयक गर्व के कारण वह सौन्दर्यगर्विता कही जाती है। इस प्रकार नायिका के कुल प्रमुख १६ भेद- स्वीया के १३ भेद परकीया के २ तथा मुग्धा का मात्रिक भेद - भरतादि सम्मत स्वाधीनपतिकादि अष्टभेदों तथा उत्तमादि तीन भेदों के गुणन के द्वारा भानुमिश्र के मत में नायिका के कुल ३८४ भेद हो जाते हैं।[6] अवस्था के अनुसार प्रवत्स्यत्पतिका नामक नवीं नायिका का भी परिगणन भानुदत्त मिश्र ने किया है।

१- रसमंजरी - प्र०श्रीकृष्ण नि०प्र० - पृ० ५८   २- वही-   पृ० ६४
३- वही-   पृ० ७७   ४- वही-   पृ० ७५
५- वही-   पृ० ८०   ६- वही-   पृ०१५१ (सुरभि टीका)

नायिका का ईर्ष्यायुक्त आक्रोश जो उसके प्रणयी की अन्य स्त्री से सम्पर्क की इच्छा से उद्भूत होता है, मान कहलाता है। यह लघु, गुरु तथा मध्यम भेद से तीन प्रकार का है। नायक का अन्य स्त्री की ओर दृष्टिपात करना लघु मान के अन्तर्गत आता है; अपने मुख से अन्य स्त्री का नामोच्चारण मध्यम मान का कारण बनता है और नायक का अन्य स्त्री के साथ संयोग गुरुमान का कारणभूत कहा गया है। मान के इस त्रिविध वर्गीकरण के आधार पर ही मानवती नायिका के लघु मानवती, मध्यम मानवती तथा गुरु मानवती रूप[1] सम्पन्न होते हैं। इन तीनों का मनःप्रसादन क्रमशः अनायास, सायास तथा अत्यन्त आयास से होता है।

उपर्युक्त अवस्थानुसार नवीं नायिका – प्रवत्स्यत्पतिका[2] का अन्य नाम प्रोषित-पतिका भी है जिसका प्रेमी विदेश में रहने का निश्चय कर लेता है। अभिसारिका के चतुर्भेदों – ज्योत्स्नाभिसारिका, जो संकेत स्थान के प्रति चन्द्रोदय होने पर प्रस्थान करती है; कृष्णाभिसारिका, अथवा तमिस्राभिसारिका, जो घोर अन्धकारपूर्ण रात्रि में सदर्प प्रस्थान करे; दिवाभिसारिका, जो दिन में ही अभिसरण करे; तथा वर्षाभि-सारिका जो वर्षा की स्थिति में अभिसरण करें – का परिगणन परम्परानुक्त[3] है। ये सभी नायिकाएं उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा भेदों में विभाजित हैं। उत्तमा वह है जो द्वेषभाव रखने वाले प्रेमी के प्रति भी उदार रहती है, मध्यमा उदार प्रेमी के साथ उदार व द्वेषी प्रेमी के साथ द्वेषभाव का प्रकाशनकरती है।[4] श्रेष्ठता के विचार से भानुदत्त ने नायिका को दिव्या, अदिव्या तथा दिव्यादिव्या[5] में पुनः विभाजित किया है। उनके अनुसार इन्द्राणी दिव्या, मालती अदिव्या तथा सीता दिव्यादिव्या हैं।

६– रूपगोस्वामी के 'उज्ज्वलनीलमणि' में नायक-नायिका-भेद

'उज्ज्वलनीलमणि' नामक ग्रन्थ मे रूपगोस्वामी ने नायक-नायिका-भेद - निरूपण को मधुरा रति के सन्दर्भ मे प्रस्तुत कर काव्यशास्त्र-जगत् में एक अभूतपूर्व कार्य किया है। इस रति के आलंबन विभाव के रूप में कृष्ण और उनकी वल्लभाएं

१– रसमंजरी – श्रीकृष्ण नि०भ० – पृ० ८०

२– वही– पृ० ८९

३– वही– पृ० ९०

४– वही– श्रीकृष्ण नि०भ० पृ० ९२

५– वही – चौखम्बा – पृ० ५५–६०

प्रस्तुत की गई है।[१] इस प्रकार यह समग्र प्रकरण लौकिकता से सर्वथा पृथक् अलौकिकता की सीमा तक पहुँचाया गया है। इसके मूल में श्रीकृष्ण के परत्व की व्यंजना होने के कारण यह ग्रन्थ वैष्णवों का सार-सर्वस्व तो है ही, काव्यशास्त्र के अन्तर्गत नायक-नायिका-भेद के सुष्ठु लक्ष्य प्रसंग प्रस्तुत करने के कारण हिन्दी कवियों एवं आचार्यों का उपजीव्य हो सका है। डा० सत्यदेव चौधरी के अनुसार - हिन्दी की रीतिकालीन परम्परा के आचार्य नायक-नायिका-भेद के लक्षण पक्ष में यदि भानुमिश्र प्रणीत `रसमंजरी` से प्रायः प्रभावित हैं तो लक्ष्य पक्ष में `उज्ज्वलनीलमणि` से। उक्त कवियों। आचार्यों ने उदाहरण निर्माण के लिए प्रायः रूपगोस्वामी के समान ही गोपी-कृष्ण या राधा-कृष्ण को नायक-नायिका-भेद का माध्यम बनाया है और इसी में इस ग्रन्थ का गौरव निहित है।[2]

१- <u>नायक-भेद -</u> रूपगोस्वामी ने नायक का वर्गीकरण धीरोदात्तादि चार भेदों में किया है जिनमें से प्रत्येक के पुनः दो-दो भेद - पति, उपपति[३] - किए गए हैं। भगवान् कृष्ण को ही पति समझा गया है जो केवल परिणीता रुक्मिणी के ही नहीं अपितु उन सभी पतिभावा कुमारियों के भी पति हैं जो अपने हृदय में पति की भावना रखती हैं। उन्हें उन विवाहिता गोपियों का भी उपपति माना गया है जो उनके प्रति प्रेम-प्रकाशन या ज्ञापन के लिए बाध्य थीं। यहाँ प्रेम अपनी उत्कृष्ट सीमा पर अवस्थित है।[४] ऐसी स्थिति में वैशिक जड़ नामक अन्य भेद के लिए कोई अवकाश ही नहीं है अथवा यह भेद जानबूझ कर छोड़ दिया गया है। इस सन्दर्भ में डा० चौधरी का कथन समीचीन प्रतीत होता है - वैशिक नायक-भेद अस्वीकार करके उन्होंने अपने इष्टदेव के प्रति न्याय ही किया है, अन्यथा कृष्ण और उनकी वल्लभाओं के बीच वैशिक-वेश्या सम्बन्ध की स्थापना करके आचार्य भक्ति-रसराट् मधुर रस के निरूपण में सदा के लिए एक अपरिमार्ज्य लांछन छोड़ जाते।[५] उक्त अष्टविध नायकों में से प्रत्येक के चार-चार भेद - अनुकूल,

---

१- उज्ज्वलनीलमणि - रूपगोस्वामी - पृ० ५
२- हिन्दी-रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा० सत्यदेव चौधरी - पृ० ३८४
३- उज्ज्वलनीलमणि - रूपगोस्वामी- नायक भेद-प्रकरण - पृ० १
४- वही- पृ० १४
५- हिन्दी-रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा० सत्यदेव चौधरी - पृ० ३८४

[illegible] ४० और पृष्ठ – गिनाए गए हैं। धीरोदात्तादि उपर्युक्त भेदों के अन्य तीन–तीन प्रकार – पूर्णतम, पूर्णतर तथा पूर्ण – उल्लिखित हैं[2] जिनको सम्मिलित कर नायक संख्या ९६ हो जाती है।[3]

२– नायिका–भेद – उज्ज्वलनीलमणिकार के अनुसार नायिका के प्रमुख दो भेद – स्वकीया तथा परकीया – किए गए हैं।[4] सामान्या को इसमें कोई स्थान नहीं दिया गया है। स्वकीया का मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा के रूप में वर्गीकरण[5] किया गया है। मध्या तथा प्रगल्भा में प्रत्येक के तीन–तीन – धीरा, अधीरा, धीराधीरा – वर्गीकरण किए गए हैं।[6] इस प्रकार मुग्धा के मात्रैक भेद को सम्मिलित कर स्वकीया के कुल ७ भेद हो जाते हैं।[7] परकीया को परोढा तथा कन्या में विभक्त किया गया है। परोढा के पुनः परोढा मुग्धा, परोढा मध्या तथा परोढा प्रगल्भा भेद हो जाते हैं। परोढा मध्या तथा परोढा प्रगल्भा में से प्रत्येक के धीराधीरादि भेद होकर छः, कन्या तथा परोढा मुग्धा के १–१ भेद को एकत्रित करने पर परकीया के ८ भेद सम्पन्न होते हैं। नायिका के १५ भेद स्वाधीनपतिकादि अष्टावस्थाओं की संख्या तथा इनके भी उत्तमादि भेदत्रय के गुणनफल के द्वारा नायिकाएं ३६० प्रकार की हो जाती हैं।[8] साहित्यदर्पणकार की परम्परा पर रूपगोस्वामी ने मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा नायिकाओं का सूक्ष्म दशानुसार विभाजन किया है जिसमें उनकी स्वकीय मौलिकता के दर्शन होते हैं। मुग्धा के उपभेद हैं :– नव वयाः, नवकामा, रती वामा, सखी वशा, सव्रीडरत प्रयत्ना, रोषकृतबाष्पमौना, तथा माने विमुखी।[9] मान के अवसर पर विमुखी मुग्धा के दो रूप – मृद्वी तथा अक्षमा – वर्णित हैं।[10] मध्या को समानलज्जमदना, प्रोद्यत्तारुण्यशालिनी, किंचित्प्रगल्भवचना, मोहान्तसुरतक्षमा, माने कोमला तथा माने कर्कशा[11] में विभाजित किया है। पूर्णतारुण्या, मदान्धा, उरु–

१– उज्ज्वलनीलमणि – रूपगोस्वामी – नायक भेद – पद २० पृ० ३०–३१

२– वही	पद ३८ पृ० ४०	३– वही–	पद ३८ पृ० ४०
४– वही	पृ० ४९	५ ६– वही–	पृ० ४९–६३
६– वही	पृ० १०७	७– वही–	पृ० ५३
८– वही–	पृ० १४५	९– वही–	पृ० १०८
१०– वही–	पृ० १०८–११३	११– वही–	पृ० १२२

रतोत्सुका, भूरिभावोद्गमा-अभिज्ञा, रसाक्रान्तवल्लभा, अतिप्रौढवचना, अतिप्रौढचेष्टा तथा माने कर्कशा[1] प्रगल्भा के उपभेद हैं। ध्यातव्य है कि रूपगोस्वामी ने मुग्धा के उपभेदों - वास यौवनादि - को ही समाप्त नहीं किया अपितु मध्या तथा प्रगल्भा के परम्परागत उपभेदों - ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा को भी उपर्युक्त प्रकरण में स्थान नहीं दिया है। इसका कारण डा० राकेश के अनुसार है - ...... दीज निगलेक्टेड सब-डिवीजन्स डिनोट नाट फुलफ्लेज्ड टाईप्स आफ दि हीरोइन, ईव वन आफ विच डु हैव ए डिफरेन्शिया आर ए क्लियर लाईन आफ डिमारकेशन टु डिस्टिंगिश इट फ्राम इट्स को-स्पेसीज, बट मेयरली गिलम्प्सेज फ्राम दि डिफरैन्ट ऐंगिल्स आफ देयर इमीडिएट जीनस, देयर बुड बी नथिंग अनरोमेन्टिक आर इल्लाजिकल इन इट[2]। पुनः उज्ज्वलनीलमणिकार का कथन है कि हरि की वल्लभाओं का ज्येष्ठा-कनिष्ठा होने से तात्पर्य भी क्या? अभी जो एक ज्येष्ठा है वही देखते-देखते- अगले क्षण में कनिष्ठा भी बन जाती है[3]।

३- <u>दूती-भेद</u> - उज्ज्वलनीलमणिकार ने दूती के दो भेद -स्वयंदूतिका तथा आप्त दूती - गिनाए हैं। नायिका स्वयं दूतिका के रूप में अपना संदेश नायक तक अप्रत्यक्ष वचन द्वारा, ओष्ठ वादन द्वारा तथा नेत्र-इंगितों द्वारा प्रेषित करती है। आप्त दूतिका त्रिविध है - १- अमितार्था, जो नायक तथा नायिका के परस्पर प्रेम का अभिज्ञान कर अपने प्रयासों से उनमें सम्पर्क करा देती है, २- निसृष्टार्था, जो नायक अथवा नायिका द्वारा कार्य सौंपे जाने पर उन दोनों का मिलन अपनी योजना द्वारा संपन्न कराती है, ३- पत्रहारी वह है जो केवल संदेश प्रसारित करती है। पत्रहारी निम्न-लिखित जातियों की हो सकती है - शिल्पकारी, दैवज्ञा, लिंगिनी, परिचारिका, धात्रेयी, वनदेवी, तथा सखी[4]। इस दूती-सखी प्रकरण मे निरूपित भेदोपभेदों की संख्या अत्यधिक है, पर इनका आगामी नायक-नायिका-भेद संबंधी निरूपणों पर कोई स्पष्ट प्रभाव लक्षित नहीं होता[5]।

१- उज्ज्वलनीलमणि - पृ० १२२
२- स्टडीज इन नायिका भेद - डा० राकेश गुप्त - पृ० ६१
३- उज्ज्वलनीलमणि - पृ० १३०-३१
४- वही- पृ० १५५-१७८
५- हिन्दी-रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा० सत्यदेव चौधरी - पृ० ३८५

२– कामशास्त्र में नायक-नायिका-भेद

कामशास्त्र पर कृत कार्य सम्भवतः सर्वप्रथम है जो नायक-नायिका-भेद से संबंधित है;[1] परन्तु दोनों कार्यों – काव्यशास्त्र तथा कामशास्त्र – की लक्ष्योपलब्धि में पर्याप्त अन्तर है। यद्यपि नायक-नायिका, सहायक तथा दूत-दूती सभी का ग्रहण कामशास्त्र में है तथापि उनका प्राणभूत तत्त्व वैसा नहीं है जैसा काव्यशास्त्र में वर्णित है। संस्कृत के नाट्य-काव्यशास्त्रियों में से भरतमुनि, रुद्रट आदि ने कामशास्त्र की परम्परा का अनुगमन करते हुए तत्संबंधी विषयों पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला है[2], अतः कामशास्त्रीय सिद्धान्तों को काव्यशास्त्रीय नायक-नायिका-भेद का आधार मान लेने में आपत्ति नहीं की जा सकती।[3] यद्यपि कामसूत्र और काव्यशास्त्रों की पारिभाषिक शब्दावली में कहीं-कहीं अन्तर दृष्टिगत होता है पर दोनों के विषय-सामग्री विषयक दृष्टिकोण और स्वरूपोल्लेख में विशेष अन्तर नहीं है।[4]

कामशास्त्र से संबंधित चार प्रख्यात ग्रन्थों – वात्स्यायन कृत कामसूत्र, कक्कोक का रति-रहस्य, कल्याणमल्ल का अनंग रंग और ज्योतिरीश्वर का पंचसायक – में नायक-नायिका-भेद निरूपण उपलब्ध होता है। अंतिम दो ग्रन्थों में यह प्रकरण 'रति-रहस्य' पर आधृत है तथा अति संक्षिप्त एवं साधारण कोटि का और लगभग एक-सा है।[5]

१–वात्स्यायनकृत 'कामसूत्र' में नायक-नायिका-भेद

१– नायक-भेद – 'कामसूत्र' के प्रथम अधिकरण के पंचम अध्याय में नायक को मात्र 'पति' का अभिधान दिया गया है।[6] परदारा के साथ गुप्त संबंध रखने वाले 'प्रच्छन्न' नायक को कामसूत्रकार ने गौण स्थान दिया है।[7] 'कामसूत्र' के वैशिक नामक छठे अधिकरण में वेश्यारत नायक का भी उल्लेख किया है। इस प्रकार इस योजना में काव्यशास्त्रीय नायक विषयक मान्यता के स्रोत– पति, उपपति तथा वैशिक – उपलब्ध हो जाते हैं। काव्यशास्त्र-सम्मत नायक के उत्तम,

---

१–स्टडीज इन नायक-नायिका-भेद – डा० राकेश गुप्त – पृ० ३०

२– (अ) नाट्यशास्त्र –भरतमुनि– २४।१४१–४२, २१३, २२४
   (ब) काव्यालंकार–रुद्रट– १४।१५, १६

३– हिन्दी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य –डा० सत्यदेव चौधरी – पृ० ३११

४– वही– पृ० ३१३   ५– वही– पृ० ३७१   ६–कामसूत्र – १।५।२८

७– वही– १।५।२९

मध्यम तथा अधम भेद भी ` कामसूत्र ` में उपलब्ध होते हैं ।[१] काव्यशास्त्र में निरूपित नायक के अनुकूलादि भेदों में से दक्षिण के स्रोत कामसूत्र के ` सिद्ध ` तथा ` सम ` नायक में उपलब्ध होते हैं ।[२] कामसूत्रीय ` पुरुष ` के विभिन्न व्यवहारों तथा काव्यशास्त्रीय ` धूर्त ` तथा ` शठ ` की क्रियाओं में एकरूपता है ।[३] काव्यशास्त्रीय अनुकूल नायक की ध्वनि ग्रन्थ की उपसंहारसूचक दो कारिकाओं से ग्रहण की जा सकती है ।[४] काव्यशास्त्र में सर्वथा अनुपलब्ध नायक के शश, वृष तथा अश्व भेद कामसूत्र में प्राप्त होते हैं ।[५] वेग या द्रुति के आधार पर नायक के मन्द वेग, मध्यम वेग तथा चंड वेग भेद प्राप्त होते हैं । शीघ्र, मध्य तथा चिरकाल भेदों में नायक का अन्य वर्गीकरण उपलब्ध होता है ।[६]

२- <u>नायिका-भेद</u> - कामसूत्रकार ने प्रमुख तीन नायिकाएं - कन्या, पुनर्भू तथा वेश्या - मानी हैं ।[७] उनके द्वारा स्वीकृत चतुर्थ नायिका - परिगृहीता परिणीता अथवा परिरक्षिता । रखेल । है ।[८] पुनः उन्होंने कन्या को बाला, युवती, वत्सला तथा प्रौढ़ा में वर्गीकृत किया है ।[९] उनके अनुसार वेश्या के उपभेद निम्न प्रकार है - कुम्भदासी, परिचारिका, कुलटा, स्वैरिणी, नटी, शिल्पकारिका, प्रकाशविनष्टा, रूपजीवा तथा गणिका ।[९] नायिका का अन्य वर्गीकरण - मृगी, वाडव, तथा हस्तिनी के रूप में[१०] उपलब्ध होता है । नायिका भी मन्द-शीघ्रादि वेगों[११] में परिगणित है । अगम्या नायिकाओं के वर्गीकरण में - कुष्ठिनी, उन्मत्ता, पतिता, भिन्नरहस्या, प्रकाश - प्रार्थिनी, गतप्राय यौवना, अतिश्वेता, अतिकृष्णा, दुर्गन्धा, संबंधिनी, सखी, संन्यासिनी, संबंधी की सखी, वेदपाठी की पत्नी, मित्रपत्नी अथवा राजदारा, प्रव्रजिता सन्निविष्ट है ।[१२] कामसूत्र के ` कन्याविस्रम्भणम् ` नामक अध्याय में नवोढा को विश्रब्ध करने के जो उपाय नवविवाहित पुरुष को समझाए गए हैं उनके अवगाहन

१- कामसूत्र - १।४।३०   २- वही - ४।२।८५
३- हिन्दी रीतिपरम्परा के प्रमुख आचार्य - पृ० २९४ - डा० सत्यदेव चौधरी
४- वही पृ० वही   ५- वही- अधि० १।४।२९
६- वही- २।१।८   ७- वही- १।५।२६
८- वही- १।५।२६   ९- वही-
१०-वही- २।१।१   ११-वही-
१२-वही-

में स्वकीया के दो उप भेद – नवोढा और विश्रब्ध नवोढा के स्रोत उपलब्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार `सपत्नी ज्येष्ठा-कनिष्ठा वृत्त` नामक प्रकरणों पर ही स्वकीया के दो उपभेदों – ज्येष्ठा और कनिष्ठा के स्रोत दृष्टिगत होते हैं। वात्स्यायन ने ज्येष्ठा को पूर्वविवाहिता माना है तथा कनिष्ठा पश्चात् विवाहिता को। काव्यशास्त्र में सर्वप्रथम भानुदत्त ने ही पतिस्नेह की अधिकता एवं न्यूनता के आधार पर इन दो भेदों का स्वरूप निर्धारित करके पूर्वविवाहिता भी ज्येष्ठा को विपरीत स्थिति में कनिष्ठा मानने के लिए बाध्य कर दिया है।[1]

कामसूत्र के `अयत्नसाध्य योषित्`[2] `परिचय-सम्पादन – बाह्य एवं आभ्यन्तर – विधि`[3], और भावपरीक्षा`[4] नामक प्रकरणों में सरलतापूर्वक परकीया के विविध भेदों-उद्बुद्धा, उद्बोधिता तथा इन्हीं के अन्तर्गत पुन साध्या और असाध्या के स्रोत प्राप्त हो जाते हैं। प्रच्छन्न रूप में परकीया आदि के अन्य भेद कुलटा आदि भी कामसूत्र के `भावपरीक्षा` प्रकरण में विद्यमान हैं।

कामसूत्र के वैशिक अधिकरण में गणिका और विलासिनी[5] के उल्लेख काव्यशास्त्र की विभिन्न वेश्याओं के भेदों के उपजीव्य रहे हैं। अन्य भेदों की उद्भावना भी सम्भवतः इसी अधिकरण के आधार पर हुई होगी।

<u>दूती-भेद</u> – कामसूत्र में दूत-दूतियों के जिन अपेक्षित गुणों तथा संबंधित क्रिया-कलापों[6] की चर्चा की गई है लगभग इनकी प्रतिच्छाया काव्यशास्त्रों में उपलब्ध होती है। वात्स्यायन के अनुसार विधवा, दासी, भिक्षुकी, शिल्पकारिका ये दूती होने की अर्हता रखती हैं। इनके जिन भेदों का उल्लेख कामसूत्रकार ने किया है वे हैं – निसृष्टार्था, परिमितार्था, पत्रहारी, स्वयंदूती, मूढदूती, भार्यादूती, मूकदूती और वातदूती[7,8]। इनमें

1- रसमंजरी – भानुदत्त – पृ० ४४
2- कामसूत्र- वात्स्यायन – ५। १। ५१-५२
3- वही- ५। २। ४, १७
4- वही- ५। ३। १ –३०
5- वही- ६। ५। १२, ५, २६
6- वही- ४। ४। २ –२८
7- वही- ४। ४। ४४

से प्रथम दो का ग्रहण कविराज विश्वनाथ ने किया है। कामसूत्रकार की अन्य दूतियों का अन्तर्भाव विश्वनाथ की सन्देशहारिका में हो जाता है। वात्स्यायन द्वारा गृहीत स्वयंदूतिका द्विविध है – १– नायिका स्वयं अपने लिए नायक से दूती की तरह व्यवहार करे, २– नायिका द्वारा प्रेषित दूती स्वयं ही नायक की नायिका बन जाये।[1] उज्ज्वल-नीलमणि की स्वयं दूती में[2] तथा अन्य काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में स्वयंदूती के दोनों रूप सोदाहरण उपलब्ध हो जाते हैं। वात्स्यायन-गृहीत मूढ़दूती[3] तथा भार्यादूती[4] में प्रायः अभेद है। मूढ़दूती वह बालिका है जो मुख से कुछ भी बोलने में असमर्थ होती है पर पत्रादि का आदान-प्रदान सम्पादित करती है। वातदूती का कार्य नायक-नायिका द्वारा एक-दूसरे के प्रति द्व्यर्थक शब्दों को एक दूसरे के प्रति व्यक्त करा देना मात्र है, भले ही वह स्वयं उन अर्थों से अवगत न भी हो। वात्स्यायन की इन आठ दूतियों में प्रथम तीन दूतियाँ ही काव्यशास्त्रीय दूती के स्वरूप पर संघटित होती हैं अन्य नहीं। संभवतः यही कारण है कि काव्यशास्त्र और नाट्यशास्त्र के किसी भी ग्रन्थ में शेष दूतियों का नामोल्लेख तक नहीं है।[5]

कामसूत्र के समग्र नायक-नायिका-भेद का अध्ययन प्रस्तुत करने के अनन्तर डा० राकेश गुप्त ने कतिपय निष्कर्ष[6] निकाले हैं जिनसे कामशास्त्रीय तथा काव्यशास्त्रीय नायक-नायिकाभेद का पार्थक्य प्रमाणित होता है –

१– वात्स्यायन ने स्वकीया का ग्रहण ` कामसूत्र ` में नहीं किया। उनके अनुसार नायिका वह नहीं जो प्राप्त हो चुकी है अपितु वह है जिसे प्राप्त करना है।

२– विवाहिता पत्नी, जिसे कामसूत्रकार नायिका नहीं मानते, से संबंधित अध्याय में प्रधानतया उसके गार्हस्थ्य कार्यों का ही कथन किया है।

३–परकीया का वर्णन करते समय वात्स्यायन ने प्रेम या रति पर जोर न देकर यह चेतावनी दी है कि मात्र प्रेम के लिए परकीया का ग्रहण न किया जाय। इसका ग्रहण कतिपय विशिष्ट परिस्थितियों में ही किया जा सकता है।

१– कामसूत्र ५।४।५३–५५   २– वही – ५।४।५७–६१

३– उज्ज्वलनीलमणि पृ० १५५–५६   ४– वही– सदेव

५– हिन्दी रीतिपरम्परा के प्रमुख आचार्य–डा० सत्यदेव चौधरी पृ० २९८

६– स्टडीज इन नायक-नायिका भेद – डा० राकेश – पृ० ३०–३१

४- वात्स्यायन ने नायक-नायिकाओं के अन्य लैंगिकादि भेदों की अवतारणा की है जो प्रत्यक्ष-रूपेण कामजनित अवयवों के परिमाणों पर आधारित है। ये भेद निश्चयत: काव्यशास्त्र के विषय नहीं हैं।

५- नायक-नायिकाओं के अवस्था तथा व्यवहार आदि के आधार पर कृत भेद कामसूत्र में नहीं उपलब्ध होते।

६- नायिका की धारणा के अनुकूल वात्स्यायन की दूती का प्रमुख कार्य स्त्री या नायिका को नायक से प्रेमाबद्ध कराना होता है, यह कार्य काव्यशास्त्र की दूती का नहीं है।

२- कक्कोक कृत ` रति रहस्य ` में नायक-नायिकाभेद

` रति-रहस्य ` में नायक-नायिकाभेद-निरूपण ` कामसूत्र ` तथा अन्य एतादृश ग्रन्थों के अनुकरण पर ही किया गया है, जैसा कि ग्रन्थकर्ता के स्वयं के कथन से सुस्पष्ट है।[१] नायक के परम्परागत लैंगिक परिमाण तथा कामवेग की तीव्रता के आधार पर कृत भेदों का ही ग्रहण इस ग्रन्थ में हुआ है। ` रतिरहस्य ` के जात्यधिकार में नायिका के कामशास्त्रीय भेदों - पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी -[2] का प्रारम्भ मे उल्लेख है। ग्रन्थकार ने स्वयं ही यह स्पष्ट किया है कि ये भेद उन्होंने पूर्ववर्ती आचार्य नंदिकेश्वर से ग्रहण किए हैं।[३] संक्षेप में इन चतुर्विध नायिकाओं की विशिष्टताएं हैं - पद्मिनी की सुकोमल हृदयता, चित्रिणी की कलाप्रियता, शंखिनी में सद्गुणों और दुर्गुणों के समान समावेश के कारण उसकी साधारण स्थिति और हस्तिनी की चपलकिता और मतिमंदता।[४] ये ही वे मूलभूत अन्तर्वृत्तियां है जिनको दृष्टिगत करते हुए कामशास्त्रियों ने उक्त नायिकाओं के विभिन्न अभिधान दिए हैं। पुन: मदनमंदिर के परिमाण के आधार पर नायिकाओं के मृगी, अश्वा या बड़वा तथा हस्तिनी भेद किए हैं।[५] सम्भोगकाल की क्षमता के आधार पर नायक की तरह नायिका के मन्द वेगा, मध्य वेगा एवं चण्ड वेगा भेद किए गए हैं। प्रत्येक के तीन-तीन भेद होने से उक्त त्रिप्रकारक नायिकाओं के ९ भेद हो जाते हैं।[६] नायिका का अन्य

१- रति रहस्य- कक्कोक - पद सं० १ २- वही- पद सं० १०-१९

३- वही - तत्र प्रथमं .... किमप्युद्धृतम् - उद्धृत हिन्दी रीति परंपरा के प्रमुख आचार्य - पृ० ३९९

४- हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा० सत्यदेव चौधरी - पृ० ४००

वर्गीकरण वय के आधार पर किया गया है – सोलह वर्ष पर्यन्त बाला, तीस वर्ष पर्यन्त तरुणी, पचपन वर्ष तक की नायिका प्रौढ़ा एवं तत्पश्चात वृद्धा ।[१] पुनः त्रिदोषों – वात, पित्त कफ – के आधार पर भी नायिका के भेद दिखाए गए हैं ।[2] स्वभाव के आधार पर यक्ष सत्वा, देवसत्वा, नर सत्वा, गन्धर्व सत्वा, पिशाच सत्वा, काक सत्वा, कपि सत्वा, खर-सत्वा[3] नामक नौ नायिकाओं की परिकल्पना की है । देशभेद से नायिकाओं को चौदह देशों से संबद्ध किया है – मध्य देश, बाल्हीक, आभीर देश, इरावती, सिन्धु, सतलज, व्यास, वितस्ता, गुर्जर देश, लाट देश, आन्ध्र, महाराष्ट्र, द्रविड़, गौड़, कामरूप उड़ीसा । इस भेद मेंनायिकाओं की भोगक्षमता, संभोग-विचित्रता तथा रतिरण में जूझने की विभिन्न क्रिया-प्रतिक्रियाओं का सविस्तार वर्णन किया गया है ।[४]

३- कल्याणमल्ल के ` अनंगरंग ` में नायक-नायिका-भेद

` अनंगरंग ` में सर्वप्रथम नायिकाओं के पूर्व परम्परागत चतुर्भेदों – पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी[५] का समुल्लेख है । त्रिदोषों – वात, पित्त और कफ[६] के आधार पर पूर्व आचार्यों का वर्गीकरण अनंगरंगकार को भी मान्य है । परम्परा के अनुधावन में ग्रन्थकार ने नायिका को आयु तथा गुणों के आधार पर बाला, तरुणी आदि भेदों तथा तत्पश्चात् देवसत्वादि[७] भेदों में वर्गीकरण प्रस्तुत किए हैं । लैंगिक परिमाण के आधार पर नायक को कल्याणमल्ल ने मात्र शश, वृष और अश्व[८] में विभाजित किया है । अन्य भेदों की चर्चा उन्होंने नहीं की । स्त्रियों को इसी आधार पर मृगी, अश्वा, तथा हस्तिनी में विभाजित किया है ।[९] स्वभाव के आधार पर स्त्रियों को गन्धर्व, यक्ष, मानव, पिशाच, नागिन, काक, बानरी, गर्दभी में वर्गीकृत किया है ।[१०] देशीय आधार पर स्त्रियों के स्वभाव को मध्यदेश, मालव, कुरुक्षेत्र, भड़ौंच, अवध, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, आसाम, काश्मीर से संबद्ध किया है ।[११] अवस्थाके अनुसार खंडिता

१- रति-रहस्य – सामान्य धर्माधिकार प्रकरण – पद सं० १
२- वही- पद सं० ५
३- वही- १४-१८ ४- वही- देशजानाधिकार प्रकरण पद -१-२२
५- अनंगरंग -कल्याणमल्ल- पृ० ३ ६- वही- पृ० ३३-३४
७- वही- पृ०३३ ८- वही- पृ० २१
९- वही- पृ०२१ १०- वही- पृ०३४-३५

वासकसज्जा, कलहान्तरिता, अभिसारिका, विप्रलब्धा, वियोगिनी, स्वाधीनपतिका, उत्कंठिता- अष्ट नायिकाओं का वर्णन है।[1]

४- ज्योतिरीश्वर कृत ' पंच सायक ' में नायक-नायिकाभेद

इस कामशास्त्रीय ग्रन्थ में भी उपर्युक्त नायक-नायिका भेदों का ही पिष्ट-पेषण उपलब्ध होता है।सामान्यत: कामशास्त्रीय नायक-नायिकाभेद में जो निरूपण है वह वात्स्यायन कृत ' कामसूत्र ' के अनुसार ही है।[2] नायिका के कामशास्त्रीय चार भेदों - पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी की चर्चा जो ' पंचसायक ' में की गई है, वह प्राय: ' रति रहस्य ' से गृहीत है।[3] इस प्रकार इस ग्रन्थ में किंचित् भी नवीनता या मौलिकता न होने तथा परम्परानुविद्धता के कारण पुन: उपर्युक्त भेदों - प्रभेदों का वर्णन या निरूपण नितान्त असंगत प्रतीत होता है।

हिन्दी-साहित्य में नायक-नायिकाभेद

संस्कृत नाट्य-काव्यशास्त्र में निरूपित नायक-नायिका-भेद की परम्परा का जो पल्लवन ब्रजभाषा-हिन्दी-साहित्य में हुआ उसमें वैविध्य तथा विशदता दृष्टिगत होती है। हिन्दी के नायक-नायिकाभेद के आदि कवि-आचार्य कृपाराम से लेकर चिन्तामणि के पूर्व तक जो इस विषय की परम्परा उपलब्ध होती है, उसमें सूरदास (साहित्य लहरी), नंददास (रसमंजरी), केशवदास (रसिकप्रिया), रहीम (बरवै नायिकाभेद), सुन्दर (सुन्दर श्रृंगार), तथा तोष (सुधानिधि) उल्लिखित किए जाते हैं। केशवदास की ' रसिकप्रिया ' को छोड़कर इन सभी आचार्य-कवियों ने भानुदत्तमिश्र की रसमंजरी का आश्रय ग्रहण किया है जो साहित्य-दर्पण, रसार्णव सुधाकर, सरस्वती कण्ठाभरण आदि की सामग्री पर आधारित है। हिन्दी के कवि चिन्तामणि का ग्रन्थ 'कविकुल कल्पतरु ' इस अवधारणा का अपवाद नहीं है।

१- अनंगरंग -कल्याणमल्ल - पृ० १२४-२६

२-हिन्दी रीतिपरम्परा के प्रमुख आचार्य- डा० सत्यदेव चौधरी - पृ० ३९९

३- वही- पृ० ३९९

१-चिन्तामणिकृत ` कविकुलकल्पतरू ` में नायक-नायिकाभेद

संस्कृतज्ञानगरिमामण्डित चिन्तामणि के ग्रन्थ ` कविकुलकल्पतरू ` के पंचम प्रकरण के द्वितीय, एवं तृतीय भाग में नायिका-नायक भेद विषय समाहित है। अधिकांशत: यह विषय भानुदत्तमिश्र कृत ` रस मंजरी ` पर आधृत है; परन्तु यत्र-तत्र दशरूपक तथा साहित्यदर्पण को भी आधार बनाया गया है। चिन्तामणि की विशेषता यह कि उक्त प्रकरण में उन्होंने उदाहरण अपनी मौलिक सूझ-बूझ से प्रस्तुत किए हैं :-

नायकभेद - चिन्तामणि के द्वारा नाटक की कथावस्तु के आधार पर नायक को धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीर ललित तथा धीर प्रशान्त-चार भेदों में वर्गीकृत किया है। श्रृंगार रस के आधार को ग्रहण कर पुन: नायक के अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ भेद गिनाए हैं। चिन्तामणि ने सर्वाधिक महत्व धीरप्रशान्त नायक को दिया है।[1] एक स्वकीया नायिका में रत नायक को अनुकूल तथा बहुत नायिकाओं में समान रूप से रत नायक को दक्षिण का अभिधान दिया गया है। धृष्ट नायक वह है जो कृता-पराध होने पर भी भयभीत न हो। बाह्यरूपेण नायिका के प्रति प्रीति ज्ञापित करने वाला पर गूढ़ रूपसे उसका अपकार करने वाला नायक शठ कथित किया गया है।[2]

नायिका-भेद - चिन्तामणि ने अधोलिखित आधारों पर नायिका के भेदोपभेद गिनाए हैं :-

।क। जाति के आधार पर - जाति के अनुसार नायिका के दिव्या, अदिव्या तथा दिव्यादिव्या भेद किए गए हैं। पहली देवतिया है, दूसरी इहलौकिक नारी तो तीसरी भूअवतरी अमर नारी।[3] चिन्तामणि ने इनके रूपचित्रण अथवा नखशिख-चित्रण क्रमभेद का भी उल्लेख किया है।[4]

।ख। धर्म के अनुसार - धर्म के आधार पर नायिका के परम्परित तीन भेद-स्वकीया, परकीया और वेश्या - किए गए हैं।[5] स्वकीया नायिका शील, कुलता

१- कविकुलकल्पतरू - चिन्तामणि - ५। ३। ३, ५, ७, ९
२- वही- ५। ३। १२, १५, १७
३- वही- ५। २। ७१, ७२
४- वही- ५। २। ७३
५- वही- ५। २। ७४

तथा लाज से सम्पृक्त होती है तथा अपने पति में ही प्रीति रखती है।[1] स्वकीया नायिका के पुनः तीन भेद – मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा –[2] हो जाते हैं। इनमें से मुग्धा उसे कहा है जिसमें यौवन का अंकुरण हो रहा हो। इसे ही वयःसंधि-युक्ता भी कहा गया है। मुग्धा नायिका के उपभेद हैं – अविदित यौवना, अविदितकामा, विदितकामयौवना, नवोढ़ा, विश्रब्ध नवोढ़ा और कोमलकोपा[3]। मध्या नायिका लज्जा और मदन के समान भावों से युक्त होती है। चिन्तामणि ने इसे भी चार भेदों – आरूढ़ यौवना, आरूढ़ मदना, विचित्रसुरता और प्रगल्भ-वचना में विभाजित किया है।[4] प्रगल्भा या प्रौढ़ा नायिका रतिकेलिकला में अत्यन्त चतुर तथा मदन के वशीभूत होकर भी लज्जा से युक्त होती है।[5] प्रौढ़ा के अन्य उप-भेद हैं – यौवनप्रगल्भा, मदनमत्ता व रीतिप्रीतिमती तथा सुरतिमोदपरवशा[6]। कृता-पराध नायक के प्रति व्यक्त मान के आधारपर स्वकीया । मुग्धा को छोड़कर । मध्या तथा प्रगल्भा के अन्य तीन उपभेद हो जाते हैं – धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा। मान या कोप के समय मध्याधीरा के कोपवचन अप्रकट होते हैं जब कि मध्या अधीरा इन्हें प्रकट कर देती है। धीराधीरा कोप वचनों के साथ रुदन का भी आश्रय लेती है।[7] कोप के समय प्रौढ़ा धीरा कोप को किसी भी रूप में प्रकट नहीं होने देती अपितु उसका पहले की अपेक्षा अधिक आदर कर लज्जित करती है – रति से उदास रहती है।[8] प्रौढ़ा अधीरा तथा धीराधीरा के स्वरूपों की चर्चा चिन्तामणि ने नहीं की। एतद् अनन्तर चिन्तामणि ने पतिस्नेह के न्यूनाधिक्य के आधार पर स्वकीया के दो अन्य भेद –ज्येष्ठा और कनिष्ठा –[9] माने हैं। परपुरुष के साथ अप्रकट रूप से प्रेम करने वाली नायिका को परकीया कहा है। कवि-आचार्य ने परकीया के दो भेद– ऊढ़ा और अनूढ़ा मानकर ऊढ़ा के छः भेद– सुरतगोपना, चतुरा, कुलटा,

---

१– कविकुल कल्पतरु – ५। २। ७५, ७६   २– वही– ५। २। ७८, ९५, १०२

३– वही ५। २। ८१, ८२   ४– वही– ५। २। ९७

५– वही ५। २। १०२   ६– वही– ५। २। १०३

७– वही ५। २। १११, ११२   ८– वही– ५। २। ११४

९– वही ५। २। १२१

लक्षिता, अनुशयाना और मुदिता माने हैं।[1] चतुरा के दो प्रकार – वचन चतुरा, क्रिया चतुरा है तो अनुशयाना तीन प्रकारों में निरूपित है – वर्तमानस्थानविघट्टिता, भाविस्थानाभावशंकिता और संकेतस्थलगमनासमर्था।[2] सामान्या नायिका या वेश्या का उल्लेख चिन्तामणि ने पृथक से नहीं किया है। अवस्थानुसार नायिका के अष्टविध भेदों में इस नायिका के आठ उदाहरण उन्होंने अवश्य प्रस्तुत किए हैं।[3] उन्होंने भरत, धनंजय तथा भानुमिश्र आदि संस्कृत आचार्यों के अनुगमन में उपर्युक्त नायिका के अवस्थानुसार आठ भेद किए हैं – स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता, विप्रलब्धा, खण्डिता, कलहान्तरिता, प्रोषितपतिका और अभिसारिका।[4] प्रोषित-पतिका को तीन उपभेदों[5] – प्रवत्स्यत्पतिका, प्रवसत्पतिका, और प्रोषितपतिका-में परिगणित किया है। इनका सम्बन्ध क्रमशः भविष्य, वर्तमान तथा भूतकाल से स्थापित किया गया है। गुण के आधार पर चिन्तामणि ने नायिका को उत्तमा, मध्यमा और अधमा[6] में गिनाया है।

२– सोमनाथकृत `रस पीयूषनिधि` में नायक-नायिकाभेद

सोमनाथ के उपर्युक्त ग्रन्थ में जो नायक-नायिकाभेद सामग्री उपलब्ध होती है उससे पूर्व इस विषय के कई ग्रन्थ दृष्टिगत होते हैं। इनमें से उल्लेखनीय हैं – तोष कृत सुधानिधि, जसवन्तसिंह कृत भाषा भूषण, मतिरामकृत रसराज, कुमारमणि कृत `रसिक रसाल`, और देवकृत `भावविलास, रस विलास, भवानीविलास तथा सुखसागरतरंग। सोमनाथ के रसपीयूषनिधि की आठवीं तरंग से तेरहवीं तरंग तक के छः अध्यायों में शृंगाररस का निरूपण है, इसी के अन्तर्गत २४१ पदों में नायक-नायिका भेद विषय का प्रस्तुतीकरण है।

१– नायकभेद – सोमनाथ के अनुसार नायक के प्रमुखतः तीन भेद – पति, उपपति तथा वैशिक हैं।[7] स्वपत्नी या नायिका के प्रति व्यवहार के आधार परपति के चार उपभेद-

---

१– कविकुलकल्पतरु – ॥ २। १२१, १२६ २– वही– ॥ २। १३५

३– वही ॥ २। १२१, १४७, १५३, १७०, १७७, १८३, १९४, २०३

४– वही ॥ २ । १३३, १३४ ५– वही ॥ २। १८८ ६– वही ॥ २। २१७

७– रसपीयूषनिधि – सोमनाथ – १३। ३ –१६

अनुकूल, दक्ष, शठ और धृष्ट -हो जाते हैं।[1] उन्होंने पुनः नायक को उत्तमादि[2] तीन भेदों में विभाजित किया है। इसके अनन्तर नायक के तीन भेद - मानी अनभिज्ञ और प्रोषित - किए गये हैं।[3] अपने अन्य ग्रन्थ ` रसमंजरी ` में उन्होंने उक्त प्रोषित को तीन उपभेदों -प्रोषितपति, प्रोषितोपपति तथा प्रोषित-वैशिक - द्वारा उपस्थित किया है।[4]

२- नायिकाभेद - सोमनाथ ने अधोलिखित आधारों पर नायिकाभेद निरूपण प्रस्तुत किया है :-

।क। कामशास्त्रीय आधार पर -कामशास्त्र का आधार ग्रहण करते हुए उन्होंने नायिका के चार भेद[5] - पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी तथा हस्तिनी - किए हैं यद्यपि इस भेद की संक्षेपप्रियता से इसके प्रति उनका उपेक्षा भाव अभिव्यक्त हो जाता है।

।ख। धर्म के आधार पर - नायिका के धर्मानुसार तीन भेद - स्वकीया, पर-कीया तथा वारवधू[6] - उन्होंने गिनाए हैं। पतदनन्तर स्वकीया को मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा मे विभाजित किया है। इनमें से मुग्धा के दो भेद[7] - ज्ञात यौवना तथा अज्ञात यौवना- उन्होंने किए हैं। स्थिति के अनुसार अज्ञात यौवना को नवोढ़ा तथा विश्रब्ध नवोढ़ा[8] में कथित किया गया है। मान के आधार पर मध्या तथा प्रगल्भा के तीन-तीन भेद - धीरा, अधीरा, धीराधीरा[9] - हो जाते हैं। स्वकीया का अन्य वर्गीकरण - ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा[10] - को प्रस्तुत करता है। परकीया नायिका`क प्रमुख दो भेद - ऊढ़ा और अनूढ़ा[11] - हैं। वारवधू - सामान्या का कोई भेद नहीं प्रस्तुत किया गया, अपितु वह एक ही प्रकार की वर्णित है।[12]

।ग। कृतापराध नायक के प्रति प्रतिक्रिया के आधार पर - सोमनाथ ने इस आधार पर नायिका के तीन भेद - अन्य संभोगदुःखिता, मानवती और गर्विता - किए हैं।[13] मानवती के त्रिप्रकारक मानभेदों - लघु, मध्यम तथा गुरु-[14] का भी उल्लेख उन्होंने कियाहै।

१-रसपीयूषनिधि - १३।३ -१६   २- वही- १३।१७-१९
३-वही १३।२० -२३   ४- वही- रस मंजरी ।टीका भाग ।पृ०१८३-८८
५- हिन्दी रीतिपरम्परा के प्रमुख आचार्य - डा० सत्यदेव चौधरी - पृ०४३३
६- रसपीयूषनिधि - ८।२१, २२   ७- रसमंजरी ।टीका भाग। पृ० ७,८,२२
८- रसपीयूषनिधि - ८।३२-३७   ९- वही ८।४२
१०- वही ८।६६   ११- शृंगार विलास ४।१०७, १०९
१२- रसपीयूषनिधि - ९।०४२७   १३- वही १०।१, ३   १४-वही १०।७,८

।घ। अवस्था के आधार पर – नायिका के अवस्थानुसार आठ भेदों –स्वाधीनपतिका, खण्डिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, उत्कंठिता, वासकसज्जा, अभिसारिका और प्रोषितपतिका[1] – का परिगणन कर सोमनाथ ने प्रवत्स्यत पतिका तथा आगमिष्यत्पतिका[2] ये दो अन्य नायिकाएं मानी है। उनकी अभिसारिका त्रिभेदमयी– शुक्लाभिसारिका, कृष्णाभिसारिका तथा दिवाभिसारिका– है[3]।

।ङ। गुणों के आधार पर– अहित करने वाले पति के प्रति किए गए हित, हिताहित तथा अहित के आधार पर नायिका के उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा[4] – भेद किए गए हैं।

।च। जाति के आधार पर – इस आधार पर नायिका तीन भेदों – दिव्या, अदिव्या तथा दिव्यादिव्या– में उपनिबद्ध है[5]।

३– सखी–दूती–निरूपण – नायिका की सखी के चार कार्यों – मण्डन, शिक्षा, उपालम्भ और परिहास[6] तथा दूती के दो कार्यों – मिलाप कराना और विरह– निवेदन करना[7] – का भी उल्लेख सोमनाथ ने किया है।

३– भिखारीदास के कृतित्व में नायक–नायिका–भेद

सोमनाथ, भिखारीदास तथा गुलाम नबी ` रसलीन ` समकालीन आचार्य है। भिखारीदास के द्वारा रचित ` श्रृंगार–निर्णय ` तथा ` रस सारांश ` नामक ग्रन्थों मे नायक–नायिकाभेद निरूपण किया गया है –

१– नायकभेद – ` श्रृंगारनिर्णय ` में प्रथमतः नायक के दो भेद – पति और उपपति–[8] किए हैं तदनन्तर इन्हें अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट –[9] भेदों में प्रस्तुत किया है। नायक के अन्य भेद वैशिक[10] का उल्लेख उनके ग्रन्थ ` रससारांश ` मे मिलता है। नायक

१–रसपीयूषनिधि – १२।१, २ २–हिन्दीरीतिपरम्परा के प्रमुख आचार्य – व २– डा० सत्यदेवचौधरी – पृ० ४३९
४– रसपीयूषनिधि– १२।१, ४, ६ ५– वही १२।८, ९
६– ७ – वही १२।१०, २१ ८– भिखारीदास – श्रृं०नि० पद १०
९– वही पद १२, १६, २१, २४ १०– वही –रस सारांश – पद १६१

पुन: मानी, चतुर तथा प्रोषित- भेदों में विभाजित है।[1] चतुर भी वचन चतुर तथा क्रियाचतुर – उपभेदों में उपनिबद्ध है।[2] स्व-नायिका के प्रति कृतापराध के आधार पर दास ने पुन: नायक को उत्तम, मध्यम तथा अधम[3] में विभक्त किया है।

२- नायिकाभेद – दास ने नायिका-भेदनिरूपण अधोलिखित आधारों पर किया है।

(क) धर्म के आधार पर – इस आधार पर नायिका परम्परागत भेदों में निरूपित है। ये भेद हैं – स्वकीया परकीया तथा गणिका।[4] वय:क्रम के आधार पर स्वकीया के पुन: मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा[5] भेद हो जाते हैं। मुग्धा की परम्परागत दो दशाओं – ज्ञात यौवना तथा अज्ञात यौवना –[6] का उल्लेख कर दास ने ज्ञात यौवना मुग्धा के दो उपभेद – नवोढ़ा तथा विश्रब्ध नवोढ़ा –[7] किए हैं। मान के आधार पर मध्या तथा प्रौढ़ा के परम्परागत तीन-तीन भेदों[8] – धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा का परिगणन हुआ है। पति-प्रेम के आधार पर भी उन्होंने तीनों नायिकाओं में से प्रत्येक के दो-दो भेद ज्येष्ठा- कनिष्ठा –[9] गिनाए हैं। परपुरुष से प्रगल्भता, निर्भीकता तथा धीरता से प्रेम करने वाली परकीया के लौकिक व्यवहार के आधार पर दास ने उसके दो प्रमुख भेद – ऊढ़ा और अनूढ़ा –[10] किए हैं। पुन: प्रकृति के आधार पर इसके छ: भेद[11] – गुप्ता, विदग्धा, कुलटा, मुदिता, लक्षिता और अनुशयाना हो जाते हैं। इसके पुन: ईर्ष्याजन्य आक्रोश के आधार पर तीन उपभेद-[12] गर्विता, मानिनी तथा अन्यसंभोगदु:खिता कथित है। विदग्धा पुन: दो उपभेदों-[13] वचनविदग्धा तथा क्रिया विदग्धा में निरूपित है। उपर्युक्त गुप्ता के त्रिभेदों –[14] भूतगुप्ता, भविष्यद्गुप्ता तथा वर्तमान गुप्ता- का उपपादन किया गया है। अनुशयाना तीन भेदों में निरूपित है – केलिस्थानविनाशिता, भविष्यस्थानाभावा, तथा संकेतनिष्प्राप्यता।[15] सुरतिलक्षिता तथा हेतुलक्षिता[16] ये दो उपभेद लक्षिता

१-भिखारीदास- रसारांश – पद १७७		२- वही –	पद १६
३- वही-	पद १८६	४- वही –	पद २१
५- वही-	पद २४	६- वही –	पद ३० –३२
७- वही-	पद ३५–३६	८- वही-	पद ४५
९- वही-	पद ५७	१०- वही-	पद ७२
११-वही-	पद ७९	१२- वही-	पद १०१
१३-वही-	पद ८३–८७	१४ वही-	पद ८०–८२
१५-वही-	पद ७९	१६- वही-	पद ९१–९२

के हैं। नायक के प्रति व्यवहार के आधार पर परकीया के तीन अन्य भेदों - कामवती, अनुरागिनी तथा प्रेमासक्ता[1] का परिगणन करने के अनन्तर प्रेम की स्थापना के आधार पर उसे उद्बुद्धा तथा उद्बोधिता[2] भेदों में विभाजित किया गया है। स्नेह के आधार पर उद्बुद्धा के दो भेदों का उल्लेख है - अनुरागिनी और प्रेमासक्ता[3]। कायर स्वभाववाली उद्बोधिता की मानसिक दशा के अनुसार उसके तीन उपभेदों[4] - असाध्या, दुःसाध्या और साध्या - का कथन है। असाध्या परकीया जिन हेतुओं से अपने प्रियतम से नहीं मिल पाती उनके आधार पर उसके पाँच भेद - गुरुजनभीता, दूतीवर्जिता, धर्मसभीता, अतिकातरा तथा खलवेष्टिता -[5] हो जाते हैं। मात्र धन से प्रीतिरखने वाली तथा स्वकीया-परकीया के सभी गुणों से मंडित गणिका केवल एक ही प्रकार की कही गई है[6]।

।ख। <u>गुणों के आधार पर</u> - इस आधार पर स्वकीया तथा परकीया नायिकाओं के तीन-तीन भेद - उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा[7] दास को भी स्वीकृत हैं।

।ग। <u>अवस्था के आधार पर</u> - अवस्थानुसार दास ने नायिका के परम्परागत स्वाधीनपतिकादि आठ भेदों के अतिरिक्त प्रवत्स्यत्पतिका और आगमपतिका भेदों का भी उल्लेख किया है[8]। इस प्रकार ये दस नायिकाएं आठ अवस्थाओं में ही परिगणित की गई हैं[9]। इन नायिकाओं में से स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा तथा अभिसारिका को संयोग शृंगार[10] तथा अवशिष्ट सात को वियोग शृंगार के अन्तर्गत रखा गया है[11]। स्वाधीनपतिका के उपभेद रूपगर्विता, प्रेमगर्विता तथा गुण-गर्विता-[12] कथित हैं। आचार्य दास का यह मौलिक चिन्तन ही कहा जायगा; क्योंकि अन्य आचार्यों ने इनका नामोल्लेख करके भी स्वाधीनपतिका से संबद्ध नहीं किया[13]। अभिसारिका के प्रकरणमें

१-भिखारीदास - रससारांश - पद १०१		२- वही	पद ७५
३- वही- शृंगारनिर्णय	- पद ८६	४- वही	पद ९१
५- वही- रससारांश -	पद ६२	६- वही	पद १५४
७- वही-	पद १४८	८- वही	पद ११८
९- वही-	पद ११४	१०- वही शृं०नि०	पद १५१
११-वही-	पद १५१	१२- वही	पद १५२

१३- हिन्दी-रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा० सत्यदेव चौधरी - पृ० ४५५

दास ने स्वकीया, परकीया, शुक्लाभिसारिका तथा कृष्णाभिसारिका[1] का निवेश किया है। प्रोषितभर्तृका के चार उपभेदों[2] – प्रवत्स्यत्पतिका, प्रोषितपतिका, आगच्छत्पतिका और आगतपतिका में प्रस्तुतीकरण है। अष्टनायिकाओं में से खंडिता नायिका के चार भेद[3] – मानवती, धीरा, अधीरा और धीराधीरा गिनाए हैं। कलहान्तरिता के मानशान्ति का मौलिकरूपेण उल्लेख करते हुए दास ने मानशान्ति के लघु, मध्यम और गुरु भेदों का उपन्यास्त किया है।[4]

।घ। <u>कामशास्त्रीय नायिका-भेद</u> – कामशास्त्रोक्त नायिका के प्रसिद्ध चार भेदों[5] – पद्मिनी, चित्रिणी, हस्तिनी तथा शंखिनी – को आचार्य दास ने संक्षेप में स्थान दिया है। इस वर्णन से इन नायिकाओं के प्रति उनका उपेक्षाभाव सिद्ध हो जाता है।[6]

<u>३–दूती–निरूपण–</u> दास ने संदेश ले जाने तथा ले आने की क्रिया को सम्पादित करने वाली दूती के – दूती तथा स्वयंदूती –[7] भेद किए हैं। अन्य द्वारा प्रेषित को दूती तथा स्वकीय प्रेषिता को स्वयंदूती कहा गया है।[8] पुनः कर्म-नैपुण्य के आधार पर ये दूतियां उत्तम, मध्यम तथा अधम में विभाजित हैं।[9] स्वयंदूती के उपभेद हित, हिताहित तथा अहित किए गए हैं जो प्रेषक के उपकार के आधार पर निर्धारित हैं।[10] इनके अतिरिक्त धनी, नाइन आदि जाति की दूतियों[11] का भी परम्परायुक्त वर्णन दास का विषय बना है।

४– <u>प्रतापसाहि का नायक-नायिका-भेद निरूपण</u>

आचार्य भिखारीदास के अनन्तर नायक-नायिका-भेद के सन्दर्भ में दो उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं – पद्माकर का जगद्विनोद तथा बेनीप्रवीन कृत नवरसतरंग। ये ग्रन्थ सरस उदाहरणों की अवतारणा की दृष्टि से ही अपना महत्व रखते हैं।

१–भिखारीदास– शृं० नि० – पद १६५–६८ २– वही – पद १८७–८८
३– वही– पद १७६–७९ ४– वही रस सारांश – पद३७२
५– वही– पद १९० ६–हिन्दी री०प०प्र०आचार्य–पृ०४३८
७– भिखारीदास–र०सा० – पद२२२ ८– वही – पद २२२
९– वही पद २२३ १०– वही– पद २३८
११– वही पृ० २९ से ३२ तक

प्रतापसाहि द्वारा रचित 'व्यंग्यार्थकौमुदी' प्रधानतः नायक-नायिका-भेद का ही ग्रन्थ है। पद्य तथा गद्य दोनों में रचित इस ग्रन्थ में नायक-नायिकाभेद के साथ अलंकार तथा ध्वनि का भी परिचय प्राप्त हो जाता है। व्यंग्यार्थकौमुदी के अन्तर्गत गृहीत नायक-नायिकाभेदों के नामों तथा लक्षणों में रसमंजरीकार भानुदत्तमिश्र का प्रमुखतया आधार लिया गया है। गौण रूप से प्रतापसाहि हिन्दी के आचार्य गुलाम नबी रसलीन तथा कुमारमणि से प्रभावित हैं। उनका नायक-नायिका-भेद निम्नप्रकार है:-

1-<u>नायक-भेद</u> - भानुदत्त कृत रसमंजरी का आधार ग्रहण करते हुए प्रतापसाहि ने नायक को सात भेदों - अनुकूल, दक्षिण, उपपति, वैशिक, मानी, प्रोषितपति और धृष्ट- में विभाजित किया है।[1] इन नायकों के लक्षणों में कोई नवीनता नहीं। प्रायः ये सभी रसमंजरी के ही अनुकरण पर निर्मित हुए हैं।[2]

2-<u>नायिका-भेद</u> - व्यंग्यार्थकौमुदीकार ने नायिका के परम्परागत भेद - स्वकीया, परकीया तथा गणिका- स्वीकार किए हैं। स्वकीया के पुनः तीन भेद - मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा करके मुग्धा को चार उपभेदों - अज्ञात यौवना, ज्ञात यौवना, नवोढ़ा और विश्रब्धा में परिगणित किया है। पुनः मध्या और प्रौढ़ा के मानावस्थाजन्य तीन-तीन भेद किए हैं - धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा। अन्ततः इन षड्विध नायिकाओं को पतिस्नेह के न्यूनाधिक्य के आधार पर ज्येष्ठा और कनिष्ठा में उल्लिखित किया गया है।[3]

परकीया नायिका के दो भेद - परोढ़ा और अनूढ़ा करके इन दोनों की प्रकृति के आधार पर छः भेद - गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयाना तथा लक्षिता गिनाए हैं। विदग्धा को पुनः दो उपभेदों - क्रिया विदग्धा तथा वचन विदग्धा में विशिष्टीकृत किया गया है।[4] अनुशयाना को भी तीन उपभेदों -प्रथमा, द्वितीया तथा तृतीया - में परिगणित किया है।[4]

1- व्यंग्यार्थकौमुदी - प्रतापसाहि - पद सं० ११९-२५

2- द्रष्टव्य हिन्दी रीतिपरम्परा के प्रमुख आचार्य - डा० सत्यदेवचौधरी - पृ० ४६६

3- व्यंग्यार्थ कौमुदी - पद सं० १५-४०

4- वही- पद सं० ४१-६५

गणिका को भी प्रतापसाहि ने तीन भेदों - स्वतंत्रा, जनन्याधीना तथा नियमिता- में गिनाया है[1]। पुनः स्वकीया, परकीया तथा गणिका को दो सामान्य भेदों - अन्य संभोगदुःखिता तथा मानिनी - में उल्लिखित करके मानिनी को तीन उप-भेदों - प्रेमगर्विता, रूपगर्विता तथा गुणगर्विता - में प्रस्तुत किया है[2]। अवस्थानुसार नायिकाओं के परम्परागत भेद - प्रोषितपतिका, खण्डिता, कलहान्तरिता (मध्या-प्रौढ़ा), विप्रलब्धा, उत्कंठिता, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका, अभिसारिका, प्रवत्स्यत्पतिका तथा आगतपतिका - किए हैं। खण्डिता को धीरा, अधीरा; कलहान्तरिता को मध्या, प्रौढ़ा; तथा अभिसारिका को श्यामाभिसारिका, चन्द्राभिसारिका, दिवाभिसारिका के उपभेदों में परिगणित किया है। वासकसज्जा के भी दो प्रकार हैं - ऋतुकाल - स्नानोपरान्त पति के आगमन की प्रतीक्षा में वासकसज्जा तथा परदेश से लौटनेवाले पति के आगमन की प्रतीक्षा में वासकसज्जा[3]।

विषय-सामग्री की मौलिकता, मूलभाग की सरसता, उपादेयता, लक्षणों की स्वच्छता, उदाहरणों की सरलता तथा सुबोधता की दृष्टि से उक्त ग्रन्थ की अपनी विशिष्टता है। प्रतापसाहि की मूल और टीका समन्वित शैली का अनुगमन यद्यपि भावी हिन्दी या संस्कृत के काव्यशास्त्रियों ने नहीं अपनाया तथापि उनका पक्ष त्रिप्रकारक - नायक-नायिकाभेद, शब्दशक्तिभेद, अलंकार-भेद - कृतित्व सर्वथा श्लाघ्य है। कहना अप्रासंगिक न होगा कि डा० नगेन्द्र ने प्रतापसाहि को रीति-युग के प्रथम श्रेणी के कवियों स्थापित करते हुए उनके कृतित्व तथा आचार्यत्व की भूरि-भूरि प्रशंसा की है[4]।

१- व्यंग्यार्थ कौमुदी - प्रतापसाहि - पद सं० ६६ टीका भाग

२- वही- पद सं० ६८-६९

३- वही- पद सं० १०० टीका भाग

४-देव और उनकी कविता - डा० नगेन्द्र - पृ० ३०७

कवि हृदयेश द्वारा निरूपित नायक-नायिका-भेद का हिन्दी नायक-नायिकाभेद काव्य में स्थान

कामशास्त्र की उपजीव्य संस्कृत नाट्यशास्त्र - काव्यशास्त्र के अन्तर्गत प्रहीत नायक-नायिकाभेद की परम्परा का जो स्वीकरण तथा निरूपण हिन्दी के कवि-आचार्यों द्वारा रीतिकाल में किया गया, उसी का निर्वाह कवि हृदयेश के काव्यग्रन्थ ` विश्वविलास ` में उपलब्ध होता है। हृदयेश रीतिकालीन आचार्य-कवि हैं, इस प्रकार शास्त्रीय दृष्टि से उनका समग्र कृतित्व रीतिमुक्तक काव्य की श्रेणी में आता है। इस काल की प्रधानतया दो प्रवृत्तियां - १-रीति-विवेचन तथा २- शृंगारवर्णन दृष्टिगत होती है। हृदयेश के काव्य में यद्यपि विभिन्न देवी-देवताओं के प्रति कुछ स्तुतियां भी उपलब्ध होती हैं; परन्तु प्रधानतः उसका काव्य उपर्युक्त प्रधान प्रवृत्तियों से अनुप्राणित है। शृंगार-निरूपण तथा आचार्यत्व का सूक्ष्म ज्ञापन उनके प्रमुख विषय हैं जबकि गौण रूप में विनय-भक्ति आदि का भावना की भी प्रस्तुति उनके काव्य में है। उनकी इस भक्ति-विनय-भावना को भक्तिकालके अभिनन्दनीय सन्दर्भ में देखना उचित नहीं प्रतीत होता है। इस प्रसंग में कवि देव के प्रति अभिव्यक्त डा० नगेन्द्र का अभिमत प्रस्तुत करना अप्रासंगिक न होगा जो समग्र रीतिमुक्तक कवि-आचार्यों के साथ-साथ हृदयेश के सन्दर्भ में भी पूर्णतया घटित होता है - " उनकी वैराग्य भावना अतिशय राग की प्रतिक्रिया, दूसरे शब्दों में राग-क्लान्ति ही है, जो निर्गुण अथवा सगुण सन्तों के शमभाव से सर्वथा भिन्न है। उनकी इस प्रवृत्ति को शृंगारिकता से पृथक् कर सन्तों की वैराग्य-काव्यपरम्परा में देखना अनुचित होगा।[१]" मांसल शृंगारिक भावना आदि की अतिरेकता से क्लान्त होकर अथवा विशिष्ट व्यक्तिगत सन्दर्भों में यदि स्वकीय राग-क्लान्ति का अनुभव कर कवि ने भक्तिभावनायुक्त गीत गाए हों और इस प्रकार से अपने मानस या अन्तः-करण का शोधन, परिष्करण किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

कवि हृदयेश कृत नायक-नायिकाभेद प्रकरण ४५५ छन्दों में उपलब्ध होता है। नायक, नायिका, सखी, दूती आदि के लक्षण तथा उदाहरणों की प्रस्तुति

१- देव और उनकी कविता - डा० नगेन्द्र - पृ० ३०५

करके उन्होंने रीतिकालीन परम्परा का पालन या अनुगमन किया है। इस अनुगमन में प्रथमतः उन्होंने नायिका के स्वकीया, परकीया तथा गणिका-भेदत्रय[1] को प्रस्तुत किया है। स्वकीया के उपभेदों -मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा[2] का उल्लेख करने के अनन्तर मुग्धा के पुनः दो भेद – अज्ञात यौवना तथा ज्ञात यौवना किए हैं।[3] कामक्रीड़ा के आधार पर इसी मुग्धा को नवोढ़ा तथा विश्रब्ध नवोढ़ा[4] में विभाजित किया है। मान के आधार पर परम्पराग्रहीत मध्या तथा प्रगल्भा नायिकाओं में से प्रत्येक के तीन-तीन उपभेद – धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा भेद[5] उन्हें भी स्वीकृत हैं। इन नायिकाओं को पतिस्नेह के आधार पर पुनः दो-दो भेदों -ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा[6] – में प्रस्तुत किया गया है। परकीया के परम्परा-ग्रहीत दो भेदों – ऊढ़ा तथा अनूढ़ा[7] का उल्लेख करने के अनन्तर अनूढ़ा परकीया के गुप्ता, वचन विदग्धा, क्रिया विदग्धा, लक्षिता कुलटा तथा मुदिता भेद[8] करके त्रिप्रकारक अनुशयाना[9] का परिगणन कराया गया है। अनुशयाना के परम्परागत द्वितीय भेद – भाविसंकेतस्थानाभाव के स्थान पर ` ललत ससुरार ` की योजना उनकी अपनी है। मात्र धन के लिए प्रेम करने वाली गणिका या सामान्या के अन्य सुरत-दुःखिता, प्रेम गर्विता, रूप गर्विता तथा मानिनी[10] – भेद किए गए हैं। अवस्थानुसार परम्पराग्रहीत प्रोषितपतिकादि[11] दस भेदों को स्वीकार करके प्रत्येक को मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा, परकीया तथा गणिका के भेदों में उपस्थित किया है। उनकी ये नायिकाएं पुनः उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा[12] – ९० भेदों में गिनाई गई हैं। हृदयेश का यह प्रकरण आगामी पृष्ठ पर भी देखा जा सकता है।

१– विरवप्रकरन – हृदयेश – पद सं० १०
२– वही– पद सं० १४
३– वही– पद सं० १८
४– वही– पद सं० २५, २८
५– वही– पद सं० ३७
६– वही– पद सं० ४६
७– वही– पद सं० ६०
८– वही– पद सं० ६७
९– वही– पद सं० ६८
१०–वही– पद सं० १११, ११६, १२२, १२६
११–वही– पद सं० १३३
१२–वही– पदसं० २४३, २४६, २४९

१– नायिका भेद

१– स्वकीया   २– परकीया   ३–गणिका

१–स्वकीया भेद

मुग्धा   मध्या   प्रौढ़ा

अज्ञात यौवना   ज्ञात यौवना

नवोढ़ा   विश्रब्ध नवोढ़ा

धीरा   अधीरा   धीराधीरा   धीरा   अधीरा   धीराधीरा
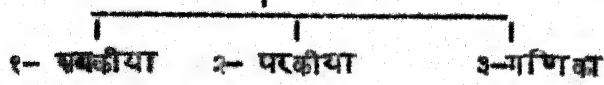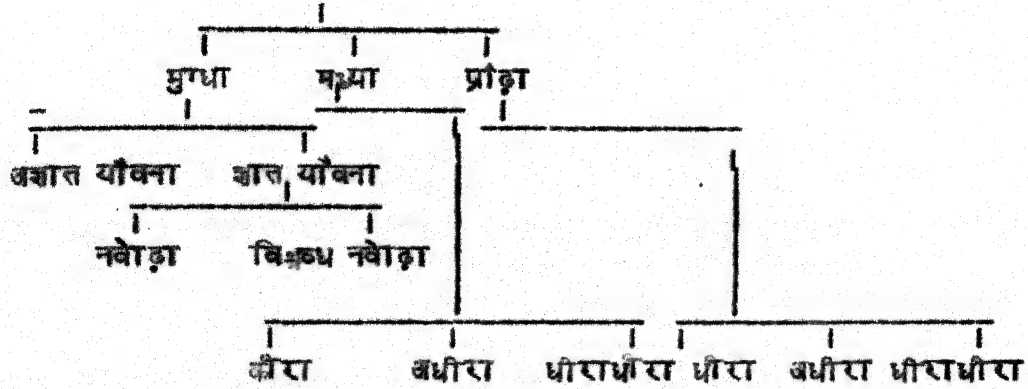
विशेष– पति–प्रेम के आधार पर स्वकीया नायिकाओं में से प्रत्येक के दो–दो उपभेद – ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा – हो जाते हैं।

२– परकीया–भेद
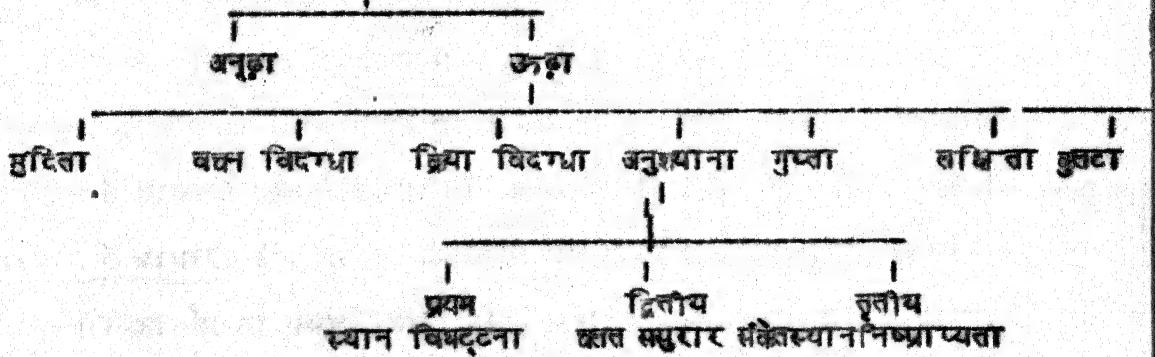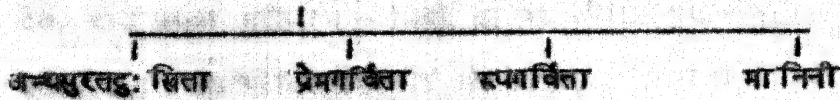
अनूढ़ा   ऊढ़ा

मुदिता   वचन विदग्धा   क्रिया विदग्धा   अनुशयाना   गुप्ता   लक्षिता   कुलटा

प्रथम स्थान विघट्टना   द्वितीय भावी संकेत   तृतीय संकेतस्थानानिष्प्राप्यता

३– गणिका–भेद

अन्यसुरतदुःखिता   प्रेमगर्विता   रूपगर्विता   मानिनी

अवस्थानुसार समग्र नायिकाओं के भेद

१– मुग्धा – प्रोषितपतिकादि दस भेद
२– मध्या – प्रोषितपतिकादि दस भेद
३– प्रौढ़ा – प्रोषितपतिकादि दस भेद
४– परकीया– प्रोषितपतिकादि दस भेद
५– गणिका– प्रोषितपतिकादि दस भेद

२- नायक भेद । धर्म के आधार पर ।

पति | उपपति | वैशिक

नायक भेद । नायिका के प्रति व्यवहार के आधार पर ।

अनुकूल | दक्षिण | शठ | धृष्ट

नायक के अन्य भेद

क्रिया चतुर | वाक् चतुर | मानी | अनभिज्ञ | प्रोषित

३- दूती भेद

उत्तम | मध्यम | अधम
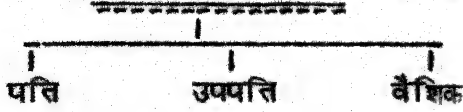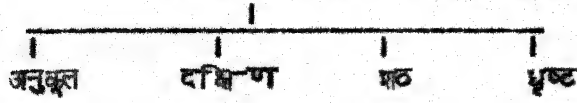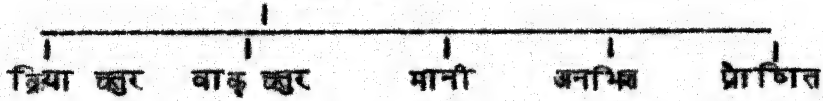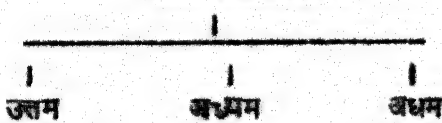
हृदयेश के उपर्युक्त प्रकरण के सूक्ष्म प्रस्तुतीकरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक तरफ तो वे भानुदत्त की रसमंजरी से उपकृत हैं तो अन्य ओर लक्षण-उदाहरण प्रस्तुति तथा प्रविधि की दृष्टि से हिन्दी के कवि तथा आचार्य मतिराम से प्रभावित हैं । हृदयेश के काव्य के पाठ के अवगाहन से यह भलीभाँति प्रमाणित हो जाता है कि वे मतिराम के आभारी है । वस्तुतः संस्कृत साहित्यशास्त्र की जिस सुदीर्घ परम्परा ने नायक-नायिका भेद का प्रवर्तन किया, उसकी समाप्ति उन-उन आचार्यों के कृतित्व के अनन्तर हो गई थी । इस दृष्टि से हिन्दी के आचार्य या कवि चाहे केशव हों, बिहारी, देव, दास अथवा मतिराम - किसी का भी मौलिक स्थान नहीं निर्धारित किया जा सकता है । लक्षणों-उदाहरणों की स्वच्छता, स्पष्टता, भावबोधगम्यता, रसान्विति, भावों की मौलिकता आदि की दृष्टि से अवश्य उन-उन आचार्य-कवियों की श्रेणियाँ निर्धारित की जाती रहीं है । वस्तुपरक दृष्टि से हृदयेश का स्थान-निर्धारित करते हुए कहा जा सकता है कि विभिन्न नायक-नायिकाभेद प्रवर्तक ग्रन्थों की सुदीर्घ परम्परा में अपने कृतित्व के माध्यम से उन्होंने एक नव्य अध्याय जोड़ा । उनका नायक-नायिका भेद यद्यपि परम्परायुक्त है तथापि विभिन्न प्रकार के वस्तु-वर्णनों, भावव्यापनाओं, शब्दालंकारिक रसानुगामी अनुभूतियों की सृष्टि की दृष्टि

से उनका न्यूनाधिक वैसा ही स्थान है जैसा अन्य एतादृश कवि-आचार्यों का है।

पुनः जहाँ तक संस्कृत के आचार्यों में हृदयेश के स्थान-निर्धारण का प्रश्न है, इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि साहित्य या काव्यशास्त्रियों का कृतित्व द्विविध है। प्रथम श्रेणी में वे आचार्य आते हैं जिन्होंने काव्य-सिद्धान्तों की मौलिक उद्भावना की है। इनमें उल्लेखनीय कृतित्व भरतमुनि, भामह, दण्डी, वामन, आनंदवर्धन, अभिनवगुप्त, कुन्तक का है जिन्होंने रस,अलंकार,रीति,ध्वनि, वक्रोक्ति आदि सिद्धान्तों की उद्भावना की। द्वितीय कोटि में वे काव्यशास्त्री परिगणित होते हैं जिन्होंने उक्त सिद्धान्तों की व्याख्या करके समन्वयवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया और काव्य के विभिन्न अंग-उपांगों का पोषण किया। ऐसे आचार्यों में उल्लेखनीय हैं - मम्मट, विश्वनाथ तथा पंडितराज जगन्नाथ। इन दोनों कोटियों में हृदयेश को किसी भी कोटि में नहीं रखा जा सकता; क्योंकि उन्होंने न तो काव्य-सिद्धान्तों की मौलिक उद्भावना की और न स्थापित सिद्धान्तों की व्याख्या ही प्रस्तुत की। फिर भी नायक-नायिकाभेद प्रकरण में नव्य उदाहरणों तथा प्रसंगों की अवतारणा, रसात्मक विषयों तथा प्रसंगों की प्रस्तुति तथा कल्पना की रमणीयता और व्यापकता की दृष्टि से उनका महत्त्व दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता।

हिन्दी-रीतिकाल के रीति-अनुगामी कवियों के कृतित्व पर सामान्य दृष्टि निक्षेप करते हुए इस काल के आचार्य-कवियों को तीन विभिन्न श्रेणियों में रखा जा सकता है - १- मम्मट तथा विश्वनाथ आदि की शैली पर काव्य के समग्र अंगों की समीक्षा करने वाले आचार्य २- शृंगारतिलक तथा रसमंजरी के अनुसार केवल शृंगार रस तथा उसकी अंगभूता नायिका के भेदों को प्रस्तुत करने वाले आचार्य तथा ३-चन्द्रालोक तथा कुवलयानन्द आदि की शैली के आधार पर अलंकारमात्र का निरूपण करने वाले आचार्य। कवि हृदयेश ने काव्य के सम्पूर्ण दशांगों का विवेचन न कर केवल नायक-नायिकाभेदादि को ही काव्य-विषय बनाया है, अतः वे उपर्युक्त द्वितीय श्रेणी में ही रखे जा सकते हैं। नायक-नायिकाभेद -प्रकरण की दृष्टि से उनके प्रतिद्वन्द्वी -मतिराम, देव तथा पद्माकर आदि आते हैं। देव का सा व्यापक

१-देव और उनकी कविता - डा० नगेन्द्र - पृ०२०६

विषय-क्षेत्र, रस की प्रतिष्ठापना, मौलिकता तथा गीति-तत्व, मतिराम की भाव और भाषा की माधुरी तथा स्वच्छता, पद्माकर की गम्भीरता हृदयेश में नहीं है । सामान्य रूप से समग्र रस और विशेषतः शृंगार रस की एकदेशीय पर पुष्ट योजना तथा शब्दालंकारमयी भाषा के प्रयोग की दृष्टि से वे विशिष्ट स्थान पाने के अधिकारी हैं । उनके कृतित्व में वस्तु-निरूपण की दृष्टि से नवीनता नहीं है पर सहृदय के हृदय को आकृष्ट करने वाली रसात्मकता है; गतानुगतिकता से युक्त होने पर भी हृदयेश का काव्य कल्पना की बहुरंगी उद्भावनाओं से सहज मंडित है, जो कवि की अनुभूति की तीव्रता को अभिव्यक्त करती हैं । यह हृदयेश के काव्य का एकपक्षीय प्रस्तुतीकरण है , जहाँ तक उनके समग्र कृतित्व के मूल्यांकन अथवा उनके स्थान-निर्धारण का प्रश्न है, यह अन्यत्र व्यवहृत किया जाएगा।

तृतीय अध्याय

` विश्ववसकरन ` में नायक-नायिका-भेद

वासन्ती के पट पर किसी अज्ञात चेतना द्वारा उभारे गए मधुमासी चित्रों को निहार कर विश्व के उत्सुक नयन अनायास ही आकर्षित हो जाते हैं, फिर संवेदनशील कवि-हृदय का कहना ही क्या ? जीवन के मधुमास में यौवनजन्य सौन्दर्य से उसकी आँखें भी स्वतः आकर्षित हो जाती है, चाहे वह सौन्दर्य किसी युवती में हो अथवा किसी युवक में। सम्भवतः इसी कारण साहित्य-जगत् में नायक-नायिका-भेद की परम्परा का अवतरण हुआ। यह सर्वविदित तथ्य है कि नारी सौन्दर्य का अक्षय भण्डार होती है। यही कारण है कि कवियों ने प्रारम्भ से आज तक नारी का चित्रण वयः अवस्था एवं प्रकृति के अनुसार अनेक रूपों में जितने विस्तार से किया है उतने विस्तार से पुरुष का नहीं[1]। इसीलिए कवियों ने श्रृंगाररस के आलंबन के रूप में प्रायः प्रथम नायिकाभेद का विवेचन किया है तदनन्तर नायक-भेद को स्थान दिया है।

संस्कृत के नायक-नायिकाभेद ग्रन्थ ` रसमंजरी ` में विशिष्टरूपेण नायक-नायिका-भेद का ही निरूपण होने के कारण रीतिकालीन कवि-आचार्यों ने उसे ही आधार मानकर हिन्दी जगत् में भी इस विषय को स्वतंत्र ही नहीं अपितु सर्वप्रधान अंग के रूप में उपस्थित किया। रीतिकाल के प्रांगण में अवस्थित हृदयेश ने भी इसी विषय को अपनी लेखनी का विषय बनाया। उनके ग्रन्थ में श्रृंगार का रसराजत्व के रूप में स्वीकरण है जिसके आलंबन-विभाव हैं - प्रिय-प्रियतम अथवा नायक-नायिका --

प्रगट होत श्रृंगार रस जह प्रिय प्रियतम दोय।
बनत सकल कवि नायका नायक ग्रन्थ विलोय ।।[2]

कवि के अनुसार ऐसी लावण्यमयी रमणी जिसका साक्षात्कार प्रत्यक्ष होते ही हृदय में काम-भाव जागृत हो, ` नायिका ` पद से अभिधानित होती है --

लखत कुसुमसर जग परत द्रगन भरत छवि बान।
गनत नायका रसिकजन पुन पुन करत बखान ।।[3]

१- रीतिकालीन काव्य पर संस्कृत काव्य का प्रभाव- डा० दयानंद शर्मा - पृ० १७८
२- विश्ववसकरन - पद सं० ६
३- वही- पद सं० ७

कवि की उपर्युक्त परिभाषा में नायिका के प्रभाव का कथन ऋजुवृत्ति द्वारा किया गया है। `क्षणे- क्षणे यन्नवतामुपैति ` धर्मसंयुत नायिका के आह्लादकारी व्यापारों को शब्दजाल में बद्ध नहीं किया जा सकता। फिर भी कवि की दृष्टि में उसके बाह्य सौन्दर्य का ही महत्व है। नायिका का ऐसा रूपचित्रण अवेक्षणीय है -

हाटक वरन मृदु करन हरन कंज अंजन दृगन मनरंजन करत है।
सहज सुवास कर फैलत सुगंध अंग मंद कर चंदन सुगंधन हरत है।
भनत हृदेस पिक बोलन मनोहरन मंद मंद डोल तन आनद भरत है।
उझकि झरोखा झुकि झाँकत मयंकमुखी उछल उछल छवि भूतल परत है।[1]

उनकी नायिका स्थिर तथा गत्यात्मक - दोनों ही स्थितियों में लावण्यमयी है। सहज औत्सुक्यवश उसका झरोखे से नाटकीय मुद्रा में झाँकना अत्यन्त आकर्षक बन पड़ा है।

नायिकाभेद के विभिन्न आधार

संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्य भोजराज ने अपने ग्रन्थद्वय -`सरस्वतीकंठाभरण ` तथा श्रृंगारप्रकाश `- में नायिका को दस विभिन्न आधारों - कथावस्तु, गुण, वय एवं कौशल, धैर्य, परिग्रह, उपयमन, मान, वृत्ति, आजीविका तथा अवस्था - पर वर्गीकृत किया है, जो इसी प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। इन विभिन्न भेदों में आनन्त्य दोष के साथ-साथ वर्गबद्धता तथा लोकाचारानुकूलता के गुण भी हैं, तथापि इन आधारों में से कई आगामी आचार्यों को मान्य नहीं हुए। रसमंजरीकार आचार्य भानुदत्त तथा हिन्दी कवि मतिराम के नायिकाभेद से अधिकांश रीतिकालीन कवि -आचार्य प्रभावित हुए हैं। हृदयेश इस परम्परा के अपवाद नहीं कहे जा सकते। उनका नायिकाभेद निरूपण निम्न आधारों पर प्रस्तुत किया गया है -

१- धर्म के आधार पर -

इस आधार पर नायिका तीन भेदों - (क) स्वकीया (ख) परकीया तथा (ग) गणिका -में विभक्त है। धर्म से यहाँ नायक-नायिका का सामाजिक संबंध अभिप्रेत है।

(क) स्वकीया - जो लज्जा तथा शीलसंयुक्त, गृहकार्यरत तथा पतिहितपरायण हो, वह स्वकीया है -

---

१-विरवबसकरन- पद सं० ८

लाज पगी अह काज पग पतिव्रित पगी हमेस ।

देहि सीलता मैं पगी यह सुकिया कौ देस ।।[1]

धार्मिक दृष्टि से स्वकीया नायिका सर्वोत्कृष्ट मानी गई है। प्रधान रस की नायिका बनने की क्षमता भी इसी में है। सामान्यत: इसमें लज्जा का आधिक्य, शीलता तथा गाम्भीर्य की समवेत स्थिति रहती है। क्यानुसार इसमें सम्मुग्धता का गुण भी देखा जा सकता है -

लाज कौ जलधि सिरताज कुल नारिन में पद वृजराज के हिये में धार राखो हैं।

घूंघट उघार सखिजन लौं न देखें रंच मृदुलित वक्त पयूण सम लाखो हैं।

सीलता की समद गम्भीरता कृदेस अत सोभा के समूह अंग अंग अभिलाखो हैं।

गुरुजन याके गुन कहत तिया के ताके जैसे सुनें साके अंबिका के वेद भाखो हैं[2]।

2- वय:क्रम के आधार पर -

स्वकीया नायिका के वय के आधार पर तीन भेद - मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा - हो जाते हैं[3]।

।क। मुग्धा - आचार्य विश्वनाथ ने मुग्धा की पांच विशेषताओं - यौवन का प्रथम अवतरण, काम का प्रथम संचार, रति में वामाचरण, मान में मृदुता, लज्जा का आधिक्य - का उल्लेख किया है। हृदयेश के मुग्धा स्वरूपांकन में ये विशिष्टताएं देखी जा सकती हैं -

रंच भर हिय मैं हुलास कौ विकास होत मंद मंद भास रंच हास हरसत है।

सखिन के पास बैठ सुनत विलास रंच उर मैं उरोजन उकास सरसत है।

भनत कृदेस केस गमन करी सौं रंच देखो देखो बात लाज मन लसत है।

कछुकि नितंब भये पीन द्रग मीन रंच बचन प्रवीन कटि छीन दरसत है।[4]

और भी -

तिय तन छवि जत अतन की दिन दिन बढ़त अलेख।

बदन मलित सौतन करत पिय मन हरत असेख।।[5]

1- विलक्सकरन - पद सं० ११ 2- वही पद सं० १२

3- वही- पद सं० १४ 4- वही- पद सं० १६

5- वही- पद सं० १७

वय: क्रमजन्य विभिन्न आन्तरिक-बाह्य, परिवेशीय तथा स्वभावज विशिष्टताओं के अंकन में मुग्धा का रूपवैविध्य देखा जा सकता है। काम व्यापार के चित्र का अंकन यद्यपि कवि नहीं कर पाया है पर समग्र वर्णन में इन व्यापारों की रमणीयता की ध्वनि सम्भावित की जा सकती है।

मुग्धा के यौवनज्ञान के आधार पर उसके दो भेद[1] - अज्ञात यौवन तथा ज्ञात यौवना- हो जाते है। अज्ञात यौवना अपने यौवनागमन से अनभिज्ञ रहती है। काम की परिव्याप्ति, छवि की नितनवपरिष्कृति, नैत्रों की सुस्फीतता भी उसे स्वकीय स्थिति का बोध कराने में असमर्थ रहती है —

> समुझ परत नहि अतन तन छवि झलकत नित जात।
>
> द्रुव पलका छलकत नयन भनत लका अग्यात[2]।।

भले ही मुग्धा अज्ञात यौवना को अपने स्वरूप का बोध न हो, पर प्रियतम का रोम रोम झंकृत करने वाला संस्पर्श तथा तज्जन्य उद्रिक्त सात्विक भाव उसके अन्तर-बाह्य को प्रभावित करके ` किंचित् उत्पात ` की सूचना देने लग जाते हैं। वह पगली अपनी सखी से ही इस परिवर्तन के सन्दर्भ में प्रश्नशील हो जाती है -

> काल कुंज फूलत मैं दौनो संग झूलत मैं गावत उमंग रंग छायौ मधुवन मैं।
>
> आज सीसफूल छूट कान्हर सम्हारौ रंच आंगुरी परस होत कहा भयौ छन मैं।
>
> भनत छ्देस सखी जानिये न जात बात कौन उतपात उठे रोम रोम तन मैं।
>
> भर भर नैन आप गदगद बैन आप थर थर कंप उठौ स्वेद भयौ तन मैं[3]।

इस अप्रत्याशित तथा अभूतपूर्व घटना से वह इतनी आतंकित हो गई कि प्रियतम की छाया भी उसमें स्तब्धता, विह्वलता का संचार करने के लिए पर्याप्त हो गई -

> परत छांह नदलाल मग फरफरात द्रुम संग।
>
> धरधरात हिय विकल ह्वौ थरथरात सब अंग[4]।।

ज्ञात यौवना को अपने यौवनागम की स्पष्ट प्रतीति हो जाती है। इसके सुखद परिणाम[5] में वह अपने हृदय में उल्लास का अनुभव करती है। इस पहिचान के परिणाम-

---

1- विलासप्रकरन - पद सं० १८ 2- वही- पद सं० १९
3- वही- पद सं० 20 4-वही- पद सं० 21
5-वही- पद सं० 22

स्वरूप उसके व्यापारों में परिवर्तन भी दृष्टिगत होता है -

वाढी रुच मंजन मै मृग दृग अंजन मै कंज पुंज गंजन की भंजन करत जात ।

सुमन सुबीनन प्रवीनन सबीन लीन दीन कर चंद की प्रदीपत हरत जात ।

भनत ब्रदेस तै सिंगार पै बढत जात कोमल कढत बात सुधा सी झरत जात ।

पीछै पीछै तनक तरौछै ह्यौं तकत तिय त्यौं त्यौं पिय पीछै पीछै आनंद भरत जात।[1]

आनंद का अनुभव करते हुए भी वह लज्जा के पूर्वरूप संकोच का परित्याग नहीं कर पाती। ज्ञात यौवना की इस विरोधी प्रवृत्ति का प्रतिफलन अवेक्षणीय है -

चितवत चित सकुचत चितै नित दरपन मुख देख ।

कुच निरखत प्रफुलित वदन आनंद भरत अलेख ।।[2]

मुग्धा नायिका ही नवोढ़ा तथा विश्रब्ध नवोढ़ा के रूप में विभाजित की गई है। नवोढ़ा नायिका रति में उदासीन तथा भीरू, पति के प्रति अविश्वासी, रस-वार्ताओं में झिझकती है[3]। रतिदान का अवसर उपलब्ध कराए जाने पर उसकी करुण-स्थिति हो जाती है -

साज सिंगारन सेज परी खिगिरी सखियाँ दुलही पग दावत ।

आय गयौ बृजराज ब्रदेस गही अंगुरी रस बात सुनावत ।

दाव लई त्रिय सौं मनभामन लाज भरी भय भाज न पावत ।

ब नैनन तैं बरसात करै नहि बात करै पिय हात न आवत ।।[4]

स्वप्नावस्था में उसका भीरू व्यक्तित्व प्रियतम को अनजाने ही पकड़ लेता है, पर इसका भान होते ही वह संकोच के कारण मौन धारण कर लेती है - ठीक भी तो है, प्रियतम आलिंगन जन्य अधर्म जो हो गया है -

तिय सोवत सपनौ भयौ झपट गह्यौ भुजदान ।

सकुच समिट गठरी भई जागत कहुत न बान ।।[5]

विश्रब्ध नवोढ़ा भीरू हृदय, रति से विरत, प्रियदर्शनाकांक्षी होती है। नायक के साथ कुछ दिन सम्पर्क रहने के कारण उसकी झिझक का आधिक्य शनैः-शनैः दूर होने

1- विरहविलास- पद सं० 22   2- वही- पद सं० 23

3- वही- पद सं० 25   4- वही- पद सं० 26

5-वही- पद सं० 27

लगता है। तदनन्तर उसमें विश्रम्भ का आगमन होता है -

दरसन लालसा बिसालता तिहारी लखि जान सखियान संग भीतर चली गई।
भाज गई दूतिका निलाज मो अकाज कर अंक भर लीनी अंगअंगन मली गई।
भनत छ्देस हेरौं अब न भरोसाैं तेरौं बार बार टेरौं जाने कौन मत ली गई।
आज हाैं न ऐहै कोट बल सौं तिहारे लाल काल बाल जालन के छल सौं छली गई[1]।।

(ख) मध्या - मुग्धा स्वकीया नायिका मे लज्जा का आधिक्य उत्कण्ठा का प्रस्फुटन पूर्णरूपेण नहीं होने देता। उसका यौवन अपने विकास पर होता है। मध्या की दशा तक पहुंचते-पहुंचते उसमें यौवन का पूर्ण विकास हो जाता है तथा लज्जा एवं स्मर की भावनाएं भी समान स्तर पर उठती हुई दिखाई देती हैं[2]। तात्पर्य यह कि मध्या की लज्जा इतनी प्रबल नहीं होती कि उसके कामवेग को दबाने में समर्थ हो सके और न ही मन्मथ उसकी लज्जा को दबा पाने में समर्थ होता है। यौवन के पूर्णोदय से वशीभूत मध्या की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति द्विविधामयी होती है —

लाज रसराज के बिहाज जुग शीतल मे जित जित दाब तिति तुर तुर जात हैं।
लाज मनमोहन के चुर चुर जात द्रग मंद मुसिक्यात मुख मुर मुर जात है।
भनत छ्देस वेस उर उर जात प्रीत बचन विलास सुनै बुर बुर जात है।
उभक्त झांकत पिया की छवि पेख पेख गुरुजन देख देख दुर दुर जात है[3]।

(ग) प्रौढ़ा - प्रौढ़ा अथवा प्रगल्भा नायिका की सबसे बड़ी विशेषता है - कामवासना की स्पष्टतम अभिव्यक्ति। उसमें उत्कण्ठा की अपेक्षा लज्जा का भाव बहुत ही कम रह जाता है। लोक-लाज, गुरुजन, चिन्ता आदि की आशंका तो उसे रहती ही नहीं कर्तव्याकर्तव्य का विवेक भी नहीं रहता। वह श्रृंगारविशारदा होती है -

कलरस रसरस चतुर अत पति जुत करत अनंद।
सो प्रौढा बरनन करत बुध वल पद पढ़ छंद[4]।

1- विस्वबसकरन- पद सं० २९
2- वही- पद सं० ३१
3- वही- पद सं० ३२
4- वही- पद सं० ३४

लज्जा तथा भय से सर्वथा विरहित प्रौढ़ा नायिका रति-रण में जिस तन्मयता तथा तल्लीनता का प्रमाण प्रस्तुत करती है वह रति की चरम परिणति का द्योतक है -

आभरन जटित जवाहर प्रभाकरन वै चंद सी बदन देहि दीपन झनक सी ।
साज परजंक पर अंक भर प्रीतक के सकल बखान काम भामिनी बनक सी ।
भनत इदेस ह्वाँ अभीत विपरीत रीत रत-रन बीत घटी प्रीत ना तनक सी ।
केल मनभामिनी करी है यार जाम नीकी कामिनी कीं भई सारी जामिनी छनक सी।[1]

प्रौढ़ा की कामकेलि मे संकोच अथवा लज्जा का आत्यन्तिक तिरोभाव हो जाता है। नायक के आनंदात्मक सामीप्य अथवा आलिंगन के अधिकाधिक लाभ हेतु उसके व्यापारों मे तीव्रता तथा गहनता आ जाती है - वह सम्पूर्ण प्रणय के क्षणों का सर्वोत्तम उपभोग कर लेना चाहती है --

सुरत करत सकुचत न चित रत रन जित पति संग ।
लपट लपट आनंद भरत झपट झपट लगि अंग ।[2]

३- मान के आधार पर -

अपराधी नायक के प्रति मान या रोष के आधार पर मध्या तथा प्रौढ़ा को धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा में वर्गीकृत किया गया है -

मान करत मै त्रिविध वुम मध्या प्रौढ़ा वाम ।
धीरा और अधीर भन धीराधीरा नाम ।।[3]

।क। मध्या धीरा - यह नायिका प्रियका अपराध देखकर भी वाणी पर संयम रखती है; कठोर शब्दों का प्रयोग न कर केवल लाक्षणिक अथवा व्यंग्यमयी उक्तियों द्वारा, जो उद्वेगकारी नहीं होतीं, अपने भावों को प्रकट कर देती है। इसीलिए तो वह धीरा है। वास्तव मे वह नायक को जता देना चाहती है कि उसकी गुप्त हरकतों से वह अनभिज्ञ नहीं है। वह व्याधि की चिकित्सा तो करना चाहती है, किन्तु कटु अथवा तिक्त औषधि द्वारा नहीं अपितु मधुर पेयास से ही, अर्थात् वह उपालम्भमय वचनों से ही अभीष्ट प्रभाव की सृष्टि करना चाहती है -

---

१- विश्ववसकरन- पद सं० ३५

२- वही- पद सं० ३६

३- वही- पद सं० ३७

विंग वचन पिय सौं कहत प्रगट करत नहि रोस ।
सो मध्या धीरा कहत हिय धीरज को कोस ।।[1]

कृतापराध नायक के उपनायिका सह जागरण के प्रति विभिन्न आरोपण कितने मार्मिक, प्रभावोत्पादक, रसोपकारक तथा करुण बन पड़े है -

जागे फागराग मे सभागे प्रेमपागे किधौं क्रोध कर सनुमुग लागे हालवाल से ।
ताही तैं गुलाल से मसाल दीप जाल से हैं कुसुम रसाल से विसाल भानवाल से ।
भनत इदेस लागै प्रानहू तैं प्यारे जुव छवि छकारे अनियारे भरे आलसे ।
कहत बनै ना कहू अनत रमैना लैना देनौ लाल जैना भए नैना रंग लाल से ।।[2]

नायिका प्रकट रूप में यही व्यक्त करती है कि उसका प्रियतम अब कभी फाग जैसा विग्रह विदारक उत्सव न मनाए क्योंकि उसके शरारती संगियों ने ही तो उसकी ऐसी दशा बना दी है पर अप्रकट में वह कितनी मर्मान्तक पीड़ा का वहन कर रही है यह तो उसका हृदय मात्र जानता है -

लाल लाल लोचन भये मेली मूठ गुलाल ।
ऐसी फाग न खेलवी बडे बठाई ग्वाल ।।[3]

।ख। मध्या अधीरा - यह नायिका उपर्युक्त स्थिति में अपने धैर्य का त्याग कर देती है तथा परूष वचनों द्वारा अपनी आन्तरिक वेदना की अभिव्यक्ति करती है । नायक के प्रति रोष की भावना होने पर भी लज्जा का अंकुश होने के कारण उसकी उक्तियों मे प्रौढ़ा सदृश कटुता नहीं होती अपितु उनमें वाणी का अपेक्षाकृत संयम ही मिलता है । यही नहीं वह नायक का सामुख्य नहीं करती अपितु उसकी भ्रकुटियां वक्रता को धारण कर भंगिमा से ही उसकी प्रतिकूलता का प्रकाशन करती है -

वचन भरी कठोरता रही ऐंठ मुख मोर ।
मध्या भनत अधीर तिय कही ललर द्रग कोर ।।[4]

इसे नायक की शपथों में विश्वास नहीं । नायक का तिरस्कार करने में भी उसे हिचक

१- विलक्षणकरन- पद सं० ३८
२- वही- पद सं० ३९
३- वही- पद सं० ४०
४- वही- पद सं० ४१

नहीं होती -

> राम कहा तुम सौंहु करौ सब गाम कहै इत मामसे हो ।
> जाउ निसंग विहार करौ अब जाय परौ जह रात बसे हौ ।
> नाम छ्देस सुनौ मनमोहन औ उत मोहन जाय फसे हौ ।
> भ्राम कहा बदनाम भए अब काम कहा यह धाम धसे हौ ।[1]

उसका कोप यहीं पर शमित नहीं होता, अपितु वह अत्यधिक मुखर होकर परनायिका के रतिचिह्नों की ओर इंगित कर बैठती है जो नायक के विग्रह पर विद्यमान हैं -

> दिपत भाल बैंदा ललित द्रग पलकन पर प्र पीक ।
> समभा परत विपिरीत रत को कर सकत अलीक ।।[2]

।ग। मध्या धीराधीरा नायका -यह नायिका न तो धीरा के समान गंभीरता का आचरण करती है और न अधीरा के समान अधीर ही होकर परुष वचन कहती है । मन के भावों को न तो उपहास द्वारा ही व्यक्त करती है और न कटु वचनों के द्वारा ही वह नायक का अनादर करती है । वह वस्तुतः चेष्टाओं के माध्यम से तथा मुख-मुद्रा द्वारा अपना मान प्रकट करती है -

> विंग वचन कहि रोस भर द्रगन सजल कर देष ।
> मध्या धीराधीर तिय बरनत रसिकि विसेष ।।[3]

उसके व्यंग्यवचनों में परुषता नहीं होती, वह रुष्ट होती है पर उद्धत नहीं होती, क्षुभित होती है पर कठोरता नहीं धारण करती, अश्रु नैत्रों में भर लेती है, पर उन्हें छलकाती नहीं -

> कीनी निस बिगत कुंजप रति अंक कुच आनै अलसानै नीद लोचन भर कै ।
> भाल छ्देस मद मुकुर निहार अली देष लाल लोचन हरष धर धर कै ।
> बीनै कर रोनै कै लवात बाल बीनै कुच छुवत अधीनै परजंक पर पर कै ।
> उठी हरबर कै सरोस दिल भर कै विलोक दिल भर कै सुद्रग भर भर कै ।।[4]

1- विहववसकरन - पद सं० ४२
2- वही- पद सं० ४३
3- वही- पद सं० ४४
4- वही- पद सं० ४५

पर अन्ततोगत्वा उसके अश्रुबिन्दु प्रवित होने पर हीउसे आश्वस्त कर पाते है -

को कहि सकत गुपाल सौं प्रतपालक वृजवाल ।
बचन कहत द्रगजल बहत जनु जलधर छविजाल ।।[1]

।घ। प्रौढ़ा धीरा नायिका - मध्या धीरा अपना रोष न तो चुप रहकर ही प्रकट कर सकती है और न वह मनमाने बहु शब्दों द्वारा ही मन के आवेश को हलका कर सकती है, अत: वक्र कथन का आश्रय ही उसे लेना पड़ता है; किन्तु प्रौढ़ा नायिका अपने रोष को पूर्णतया छिपा लेती है। उसका व्यवहार पहले की अपेक्षा अधिक सम्मानपूर्ण तथा शिष्ट होता है। यही आतिशय्य उसके मान का व्यंजक होता है। `अत्यन्त आदर शंका उत्पन्न करता है` यह उक्ति लोक मे प्रसिद्ध भी है। ऐसी नायिका सापराध नायक के प्रति गुप्त अप्रीति रखती है तथा रति मे उदासीन रहती है -

सुरत करत प्रफुलित न मन लिय हिय गुपत अप्रीत ।
प्रौढ़ा धीरा नायका कहत सुकवि गुन रीत ।।[2]

उसके विलक्षण व्यवहार का विवरण दृष्टव्य है -

जैसे सीत भान की असीतल किरन पीत तैसें प्रात सीत कर दीप हरजात है।
भनत कुदेस नील रोत दरसात जात वैस ही दिपात रात आमली की पात है।
तैस ही तिहारे प्यारे द्रग जल जात सण सण कर जात पत संपुटित गात है।
नाह ब्रजचंद ऐसी भाखे सबै संद मेरौ चंद कैसौ बदन अमंद दिवरात है।।[3]

पातिव्रत धर्म की परम्परा का यथावत् अनुपालन जब नायिका का परम धर्म हो जाता है जिसके अन्तर्गत वह सापराध नायक के चरणों का स्पर्श करती है; परन्तु उसका रागातिशय्य प्रिय के अन्तर को आशंकाग्रस्त कर ही देता है -

लगत प्रात पिय पद प्रसम जिम पतिव्रत की रीत ।
अधिकि प्रीत पति जानगौ जामै कछुकि अनीत ।।[4]

१-विल्वबल्लभरन - पद सं०४६
२-वही- पद सं०४७
३-वही- पद सं०४८
४-वही- पद सं० ४९

।च। प्रौढ़ा अधीरा नायिका - इस नायिका में कोप की पराकाष्ठा पाई जाती है। यह नायक को पूर्णतया अभिभूत कर लेती है। वह अपना क्रोधातिशय्य कटु से कटु शब्दों का प्रयोग करके ही विरत नहीं होती अपितु मारपीट पर भी उतर आती है यद्यपि यह कार्य कुलीन ललनाओं की दृष्टि में जघन्य समझा जाता है, नायक के रक्तिम-नेत्रयुगल के सादृश्य पर उसके भी नेत्र लाल हो जाते हैं -

लाल लाल द्रुग लाल के लखत बाल द्रग लाल।
प्रौढ अधीरा नायका ताय कहत कवि जाल ।।[1]

यह नायिका गृह की संकीर्ण परिधि में अपने को बद्ध नहीं करती अपितु अपराधी नायक की गतिविधि पर भी दृष्टि रखती है। नायक बेचारा अपनी भ्रमरवृत्ति को अधिक समय तक इसी के कारण पुष्ट-तुष्ट नहीं कर पाता, वह रंगेहाथ पकड़ लिया जाता है। दण्ड-विधान में यद्यपि वह ध्यान रखती है कि नायक के अवयव विद्रूप न हो जायं -

हेर अचानक घेर लियौ पलनार विहार खलाल भयौ है।
डार गरे भुज लाय घरै तिय के हिय में दुगजाल भयौ है।
जावक रंग क्देस प्रदीपत लाल सरासर भाल भयौ है।
बाल प्रसून की माल हनै तन लाल कदंब की माल भयौ है ।।[2]

।छ। प्रौढ़ा धीराधीरा - यह नायिका धीरा तथा अधीरा दोनों का समन्वित रूप है। यह कोप को छिपा नहीं पाती पर इसका क्रोध इतना तीव्र भी नहीं होता कि प्रौढ़ा अधीरा की भांति अत्यन्त कटु वचनों का प्रयोग करे या नायक को ताड़ित करे। व्यंग्योक्तियों द्वारा ही यह अपना क्षोभ प्रकट करती है। रति-क्रीड़ा में यह नायिका अत्यन्त उदास होती है तथा रोषयुक्त नेत्रों से अपने आक्रोश का प्रकाशन करती है -

अत उदास रत तै रहत द्रगन बतावत भाम।
ताय कहत प्रौढ़ा सभव धीराधीरा बाम ।।[3]

उसकी प्रखरता तथा नेत्रों की वक्रता द्रष्टव्य है -

दीपक सी देहि दीप वगरत मंदिर में अंखा की ओट मान दमकत दामिनी।
हार बाल बान की हिये पै लाल धार कर बाय प्रात भौन मैं बिताय कर जामिनी।

१-विरहवारीश- पद सं० ५०
२-वही - पद सं० ५१
३-वही - पद सं० ५२

भवत हृदेस कर गहत्तन प्रीतम के रोसा भौ अर्णाहित प्रकं परी भामिनी ।

मान वैठी मान छिन देश दमान वैठी तान वैठी भ्रुटि कमान सम कामिनी ।[1]

उसका समन्वित व्यक्तित्व सुधा सदृश वचनों से प्रियतम का आदर करती है, पर नायक के आलिंगन हेतु तत्पर होने पर उसका प्रतिरोध करता है तथा अन्तत: अश्रुपात भी करने लगता है -

आवत लश आदर कियौ कहे अमृतवत वैन ।

वाह गहत नादर कियौ भरवादर कर नैन ।[2]।

४- नायक-प्रीति के परिमाण के आधार पर -

इस आधार पर हृदयेश ने नायिकाओं के दो उपभेद किए हैं - ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा । इन दोनों ही नायिकाओं का लक्षण कवि ने एकसाथ प्रस्तुत किया है । ज्येष्ठा नायिका वह होती है जिसे प्रिय उत्कण्ठावश अधिक स्नेह देता है तथा कनिष्ठा वह है जिसे अपेक्षाकृत नायक का न्यून स्नेह-लाभ प्राप्त होता है —

धुग दुलहिन वरनन करत गुरु लघु दित अनंग ।

पति जित चाहत गुरु कहत लघु जित लघु सत्संग ।[3]।

इस वर्गीकरण मे वय:क्रम का आग्रह नहीं है अपितु पति-प्रेम को महत्त्व दिया गया है । हो सकता है पति का प्रेमातिशय नवपरिणीता के प्रति हो और पूर्वपरिणीता के प्रति अपेक्षाकृत वह कम राग रखता है । हिन्दी रीति काव्यगत इस वर्गीकरण पर संस्कृत आचार्यों की वर्णनपद्धति का प्रभाव पड़ा है । नायक ज्येष्ठा के प्रति विशेष प्रेम का प्रकाशन करता है पर वह इसका ध्यान रखता है कनिष्ठा या इसे लक्ष्य न कर सके । बाह्य व्यवहारों से वह समान प्रेमभाव को व्यक्त करता है पर उसके हृदय में ज्येष्ठा ही विशिष्टतया विराजमान रहती है । प्रस्तुत उदाहरण मे नायक चन्द्रदर्शन कराने के व्याज से कनिष्ठा का ध्यान अन्यत्र आकृष्ट कर ज्येष्ठा के प्रति स्नेह-ज्ञापन करता है -

वृाच के अटान पै घटान पै तहर लेत दोनौ प्रानप्यारी प्रानप्यारो सम धूमै है ।

अंगन अनंग रंग तारी छवि रंग बालम की गोद मनमोद भर झूमै है ।

१-विरचवसकरन- पद सं० ४३

२-वही- पद सं०४५

३-वही- पद सं० ४६

भगत छदेस निज प्यारी के कपोल गोल देख देख रीझ लाल वाहि चित भूले है ।
वाल कौ छिपाकर छपाकर दिखाय इत वदन छपाकर भापाक ताक चूमै है ।।[1]

दोनों ही नायिकाओं के प्रति कृत पृथक्-पृथक् व्यापारों से नायक का तुष्टिलाभ अवेक्षणीय है। भले ही वय तथा अनुभव के आधार पर कनिष्ठा चतुर मान ली जाय पर नव-परिणीता होते हुए भी ज्येष्ठा अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित कर ही देती है -

उत इक तिय वंशुकि कमत वतरस करत अलेख ।
इत कुच परसत हरखा अव छवि छकिछकि मुख देख[2] ।।

ख- प र की या

स्वकीया के अनन्तर परकीया नायिका का विवरण काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। जिस नायिका का परपुरुष में होने वाला अनुराग प्रकट नहीं होता, उसे परकीया कहते हैं। ऐसी नायिका अपनी सखियों पर भी परकीय-प्रेम का प्रकाशन नहीं करती -

सुरत करत परपुरुष सौं दुरत रहत सखियान ।
पर तिय ताय बखानहीं जे कविजन गुनमान ।।[3]

इस परकीया के दो भेद - ऊढ़ा तथा अनूढ़ा हैं। इन्हें ही परोढ़ा तथा कन्यका क्रमेण रसमंजरीकार द्वारा अभिधानित किया गया है।

।१। ऊढ़ा - परोढ़ा या ऊढ़ा का प्रेम न तो शास्त्रसम्मत है और न लोकसम्मत ही, अतः उसे शृंगारस के आलंबन के रूप में काव्यशास्त्रकारों ने स्वीकार नहीं किया है और ऐसी रसानुभूति को रसाभास के अन्तर्गत परिगणित किया है। इस निषेध के होने पर भी परकीय प्रेम का जितना चित्रण साहित्य में उपलब्ध होता है, उतना स्वकीया का नहीं। इसका कारण यह हो सकता है कि इस लुकाछिपी के प्रेम में जो तीव्रता, उत्कण्ठा तथा तत्परता की अवस्थिति रहती है वह स्वकीया के प्रेम में कहाँ। फिर भी कवियों ने तो ईश्वर प्रेम का आदर्श परकीय-प्रेम को ही माना है। कवियों ने लोक

१- विरवसतन- पद सं०५७
२-वही- पद सं०५८
३-वही- पद सं०५९

तथा शास्त्र विपरीत इस प्रेम को आलम्बनात्मक अलौकिक प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करने में अपनी प्रतिभा का उपयोग किया है। जब परकीय-प्रेम के आलंबन श्यामसुन्दर बन जाएं तब उसमें निषेध की स्थिति कहां। वृजराज-रति में सभी कुछ विध्यात्मक है -

कौन भात जोग परै लर धर तोग परै

मिलै ना वियोग परै दुग भी झपट है।

नीर भरवे मैं ना उदास सखी आसपास

पीछै वैरवास सास आवत दपट है।

मेरे मन आवत इदेस साज साज कर

लाज तज आज सखी कौन समट है।

नव रसराज महराज सुख सेज साज

साज वृजराज लगै हीतल झपट है।[1]

(२) अनूढ़ा - अनूढ़ा अर्थात् कन्यका (कन्या) यद्यपि परस्त्री नहीं हो सकती क्योंकि वह गुरुजनादि के अधीन होती है। स्वकीयासदृश वह मिलन, सुरत आदि में स्वच्छन्दता का अनुभव नहीं करती। उसका प्रेम भी धर्मशास्त्र के अनुसार अनुचित ही माना जाता है। यदि यह प्रेम दाम्पत्यरति के रूप में परिणत हो जाय तो अवश्य यह धर्मसम्मत हो जाता है। इसी संभावना को लक्ष्य करके ही कन्या रति को भारतीय साहित्य में स्वीकार किया गया है। किशोरावस्था में उद्भूत कन्या का प्रेम प्रियतम की विभिन्न क्रीड़ाओं से पुष्ट और सघन होता हुआ यदि दाम्पत्य रति की सुखद परिणति को प्राप्त करता है तो संभवतः यह प्रेम का सघनतम रूप होगा। कन्यका अथवा अनूढ़ा की इसी स्थिति का प्रकाशन दृष्टव्य है -

आवत रहत नित गावत गुनानवाद

अरज करत सीस पग धर धर कै।

षोडस प्रकार कर पूजत करत धुव

सुमन चढावत ही थार भर भर कै।

१-विरवल्लभ- पद सं० ६२

चित चक्चूर हित पूरन ह्रदेस कवि कीजै निवर्तक मिटै संक घर घर के ।

वर वर कीजै दया सखर संभुरानी हरि वर दीजे मोय हरवर कर कैं ।[1]

परकीयानुरागिणी जप करने । कराने के लिए भी उक्त है -

सगी रुद्रजामल जपौं नंदसामल घर जाय ।

मनभामन भामर परै तवि तामल पर जाय ।।[2]

मतिराम के अनुगमन पर ह्रदेस द्वारा उपर्युक्त परकीया ऊढ़ा तथा अनूढ़ा भेद से दो प्रकार की कही गई है । रसमंजरीकार की परोढ़ा ही ऊढ़ा और कन्यका ह अनूढ़ा है ।

परकीया-भेद

५- स्वभाव तथा गुण के आधार पर - इस आधार पर कवि द्वारा परोढ़ा के सात उपभेद किए गए हैं — १- गुप्ता २-वचनविदग्धा ३- क्रिया विदग्धा ४-लक्षिता ५-कुलटा ६- मुदिता तथा ७- त्रिप्रकारक अनुशयाना ।[3]

क- गुप्ता परकीया - जब नायिका उपपति से रति करने से उत्पन्न नख तथा रद-क्षत का गोपन कर अपने प्रेम को छिपाती है तब उसे गुप्ता कहा जाता है ।[4] मतिराम ने इसे `सुरति छिपानेवाली नायिका` के रूप मे स्वीकार किया है ।[5] अपनी `सुरति` के गोपन मे वह जिस कपोलकल्पित वृत्त का आश्रय ग्रहण करती है, कवि ह्रदयेश के शब्दों में अवेक्षणीय है -

वीनै बाग सुमन प्रदोस शिवपूजन कौं लतिका गुलाब तरु कंटकन वर है ।

मृदुलित गात के निशंग भपटानी लट-टानी छिद कंचुकि करौट कुच पर है ।[6]

` देह प्रान तै प्रिय कछु नाही ` इस उक्ति को चरितार्थ करते हुए यदि नायिका ने उपपति का साहाय्य ग्रहण कर लिया तो इसमे अनौचित्य कहाँ -

---

१-विश्वबसकरन- पद सं० ६५

२-वही- पद सं०६६

३-वही- पद सं०६७-६८

४-वही- पद सं० ६९

५- मतिराम ग्रंथावली- रसराज - पद सं० ६७

६-विश्वबसकरन- पद सं० ७२

अगम अथुआ जमुन जल धस परी बहतन जान अनाथ ।
लपट कपट तज लपट हिय झपट गह्यौ वृजनाथ ।।[1]

ख- वचन विदग्धा परकीया- जो नायिका अपनी प्रेम-भावना को वाणी के माध्यम से प्रस्तुत करती है उसे वचनविदग्धा परकीया कहते हैं।[2] वह अपनी रमणेच्छा को विदग्धतापूर्ण वचनों से विभिन्न प्रकार से व्यक्त करती है। कवि हृदयेश ने चार छन्दों में विभिन्न विदग्धताओं का चित्रण किया है। प्रथम उदाहरण के अनुसार नायिका अकेली है, उसने गुलाब की कंटकित लता को डाल सहित तोड़ लिया पर असावधानीवश गुलाब का काँटा उसकी हथेली में चुभ गया। पीड़ा के कारण क्षुभित उसे देवर ही उचित अवलंब समझ पड़ा। क्यों न हो उसका धर्म तो यही था कि वह उसे कष्ट-मुक्त कर दे-

सघन गुलाब की लतान प्रफुल्लित जान लीनी एक सुमन ब निसंग गह डार कैं।
पास ना सहेली गूढ़ हृदद भर भोली पीर मंदिर अकेली बैठी अधिक पुकार कैं।
भनत हृदेस सुन देवर परोस वास आइ कर पास लख्यौ धरम विचार कै।
दया उर धार कर दरद निवार कर फेर पग धार कर कंटक निकार कैं।।[3]

एकाकीपन नायिका को अतिशय त्रस्त करता है विशेष रूप से जब सास-श्वसुर दूरस्थ होकर प्रणय-लाभ कर रहे हों, ननद स्वैरिणी हो, पति सपत्नी-रत हो। परिस्थिति के अनुरोध से नायिका उपपति की कृपा की याचना करेगी ही -

ससुरक मेरो सास हार मैं कोरो छियौ नाह सौत चेरो भयौ आवत अबेरो है।
ननद निगोड़ी नित्य होत ही सबेरो करै घर घर फेरौ समुझाउ बहुतेरो है।
भनत हृदेस वृज ठाकुर सहाय तेरो बर तन ज्वाल साँझ नभ घन घेरो है।
कृपा द्रग हेरो जीव अंमृत घनेरो मेरो दीपक उजेरो परो मंदिर अंधेरो है।[4]

1-विस्ववसकरन- पद सं० ७३
2-वही- पद सं०७४
3-वही- पद सं०७५
4-वही- पद सं०७६

पावस-ऋतु के प्रबल पयोधर, चित्त में चकाचौंध उत्पन्न कर देने वाली बिजली, पपीहे की 'पीउ-पीउ' की ध्वनि, तीव्र गति से प्रवाहित होने वाला वात, मयूरों की आनंदात्मक ध्वनि या निनाद, दादुर-समष्टि का मंगलगान – ये सभी उद्दीपन विभाव यदि परकीया के प्रेम या रतिभाव को न उद्दीप्त करें तो इन उपादानों की क्या विशेषता ? नायिका की विनय-माधुरी हृदयावर्जक है –

चित वकि चौंधे चड़ी चंचला घमंडै मंडै लषत प्रचंडै मन कौन कौन डर गौ ।
भनत छ्देस पी हि पीकत पपीहा तैसी भनक भिल्लीन सब्द भूतल वगर गौ ।
दीप लियौं पौन भौन हौन कौ न गौन मो पुकार सुनै कौन तौन जौन दीप हर गौ ।
तैसी सोर सोर मोर कोरन करत गोर तैसी जोर जोर घनघोर सोर भर गौ ।[1]

+ +

आए घन घुमंड प्रचंड वर भर लाए चाप्रकन चौंदद विचित्रिकि विचर है ।
धरा पर धौर धौर धूम धुरवाहे करैं गन गुर वाचै कुछ गरज अधर है ।
भनत छ्देस रहौ पथिकि निवार निसि आगै सलिता मै जल ताकी सोरतर है ।
नगर प्रदूर लखि वात लगा वात वात जौ लौं वात वात छपौ वात दिनकर है ।[2]

सुन्दर कदंब के कानन में पुष्प-चयन के सन्दर्भ मे नायक से साहाय्य-याचना वचन विदग्धा का एक विशिष्ट माध्यम बन जाता है –

कल कदंब के वन सुमन मो पर वनत न ऊल ।
तोर देउ नदनंद ब्रू ह्यौं कर वर अनुकूल ।।[3]

ग- क्रिया-विदग्धा परकीया- जो नायिका अपनी आन्तरिक प्रेमभावना को क्रिया के व्दारा अभिव्यक्त करती है, उसे परकीया क्रिया-विदग्धा कहा जाता है । इसकी क्रियायें, नेत्र-भंगी तथा भावभंगी से सम्पादित होती है –

नैन सैन स्यि सैन कर करत चाव दिन रैन ।
क्रिया विदग्धा कहत कबि रसिकन मैं सुखदैन ।।[4]

१–विरवबालकरन– पद सं०७७
२–वही– पद सं०७८
३–वही– पद सं०७९
४–वही– पद सं० ८४

नायिका वस्त्राभूषणों से सुसज्जित अपनी सखियों के साथ अवस्थित है, इसी बीच उसने परकीय या उपपति के वाणी सुनी । सम्भवत: वह सायंकालीन वेला रही होती, अत: अपनी उत्कण्ठा को न नियंत्रित कर पाने वाली यह नायिका नवोदित चन्द्रदर्शन के व्याज से प्रिय-दर्शन-लाभ करती है -

> मंदिर जटित मन दिपत अखंड दीप गुच्छ मुक्तावल की छविसरसत है ।
> बैठी वृषभान की लड़ैती बनितान मद्ध आसपास अंग की सुगंध बरसत है ।
> भनत प्रदेस बृजनंदन की बान सुन दोइज की चंद लख लख हरसत है ।
> चंदमुखी बाल अरविंद सों गुबिंद मुख चांद मिस उमगि निरख दरसत है ।[1]

कभी वह सूर्य-दर्शन या सूर्य-नमन के व्याज से उपपति के प्रणाम का उत्तर देती है -

> होत प्रात आवत भ्रुखत देखें नंदकिशोर ।
> भान सामने वामने सिर नायों कर जोर ।।[2]

घ- लक्षिता परकीया - जिस परकीया नायिका पर पुरुषानुराग सखी के समक्ष सहज में ही लक्षित हो जाता है अर्थात् जो नायिका अपने नायक या उपनायक के प्रति किए गए प्रेम को नहीं छिपा पाती वह लक्षिता नायिका । परकीया । कही जाती है -

> सुख निधान पिय जान की रत नख छत छतियान ।
> कहत लच्छिता लच्छ सखि रसवत कर बतियान ।।[3]

उपनायक के संयोग के कारण नायिका का समग्र विग्रह तथा उसका अलंकरण प्रभावित हो जाता है; उसका मुख-मालिन्य, कपोल-मंडन, दन्तक्षत, मालती की सुगंधित माल का म्लान तथा नायक के श्रम-स्वेद की गंध गुप्त प्रीति को सूचित कर ही देती है -

> पूछें कहा दोस तापै परत सरोस बल मलिन परों है जो प्रदीप मुख चंद कौ ।
> मंडित कपोल भये खंडित दसन दाग आनद घमंड ही उमंडित दुचंद कौ ।
> भनत प्रदेस का छिपावत छिपत प्रीत ह्वां रही प्रसिद्धि कहै वाक छलछंद कौ ।
> मालती की माल कौ सुगंध परो मंद तापै फैल गो अमंद स्वेद गंध नदनंद कौ ।[4]

1-सिरक्ककरन- पद सं० ८५

2-वही- पद सं०८६

3-वही- पद सं०८७

4-वही- पद सं०८८

ख- कुलटा परकीया - जिस नायिका के गुरुजन अथवा लोकलज्जा का कोई भय नहीं रहता, जो रतिहेतु अनेक पुरुषों के संसर्ग की इच्छा करती है, वह कुलटा कहलाती है -

निस दिन रत चाहत फिरत नखर तरुन अनेक ।
सो कुलटा बरनन करत बुधवत धर धर टेक ।।[1]

इस व स्वैर-विहारिणी नायिका का समग्र विग्रह, इसका अलंकरण, प्रसाधन, दृष्टि-निक्षेप, वचनोच्चारण, मुख-दीप्ति सभी कुछ तो वशीभूत करने वाला है -

कंप कलका सी पट ओट चंचला सी भासी ताकन तरौछी ताकी मानों तीर गांसी है ।
वचन सुधा सी रसरूप के फला सी छवि लचकि करत कटि छिगुनी छला सी है ।
भनत छ्देस कवि ही रत हुलासी सदा करत फिरत नर नागर तलासी है ।
अद्भुति रमा सी मुख दीप चंद्रमासी भासी मोहनी कला सी सांसी हांसी मैनफांसी है[2]

इसका प्रभाव व्यापक ही नहीं कहर ढाने वाली है । इसके नेत्रों का वैशिष्ट्य दृष्टव्य है -

भनत छ्देस जाकी ओर मुख दैन जोर मैन सैन मैन नैन कोर पर जात है ।
अमृत गरल मदि भरे सेत स्याम लाल जियत मरत फेर झुक-झुक जात है[3]

और भी -

दिपत सरस मृगवत नयन वदन मयंक प्रभास ।
नजर परत चित नरन पर करत करत तित वास ।।[4]

उपर्युक्त उद्धरणों में ` नर नागर तलासी ` तथा ` नरन ` पदसमष्टि से ` बहुनायक रति ` स्पष्ट हो जाती है ।

ग- अनुशयाना परकीया - अनुशयाना वह नायिका होती है जो पश्चाताप करती है । इसी आधार पर तीन प्रकार की अनुशयाना निर्दिष्ट की गई है । प्रथम तो वह जो संकेत-स्थल के नष्ट होने से पश्चाताप करती है; द्वितीय वह जो पतिगृह जाते समय चौररति की असम्भावना से क्षुभित होती है; तृतीय वह जो पूर्वनिर्दिष्ट संकेतस्थल पर अपने प्रिय का गमन जानकर स्वयं न पहुंचने पर खिन्न होती है । यथा -

प्रथम भ्रष्ट अस्थान रत द्रुतिय जात ससुरार ।
त्रितिय मित्र संकेत फिर दुख अनुसयना नार ।।[5]

१- विश्वबल्लभ - पद सं० ९२   २- वही- पद सं० ९३
३- वही- पद सं० ९४   ४- वही- पद सं० ९५
५- वही- पद सं० ९६

प्रथम अनुशयाना का क्षोभ अवेक्षणीय है -

कुंज कदंब दमार लगी सुन टार झरोखन आपु निहारी ।
भूल हुलास विलास गए सखि लेत उसास छिनौ छिन भारी ।
साज इदेस सबै सुखदान तबै मन तै तन भौ दुख भारी ।
केलि करी सब रैन हियै लगि सोवत बालम रोवत प्यारी ।।[1]

द्वितीय अनुशयाना नायिका का पति उसे स्वगृह ले जाने के लिए आता है । नायिका को इस बात का दुःख होता है कि अब वह अपने प्रिय से नहीं मिल सकती; परन्तु उसकी सखी उसे धैर्य बंधाती हुई कहती है कि उसे सास-गृह मे भी उपयुक्त स्थान पर प्रियतम - मिलन संभव होगा -

भनत इदेस पिय आयगौ लिवावन कौं सुनत न धात बात व्याकुल परत जात ।
जैसे जैसे जलध अखंड बरसत तैसे नैनन तै नीर मेघ झर सौ झरत जात ।[2]

+ +

वृथा सोच हीतल करत द्रग भर भर कर वारि ।
सास सदन कित वाह के होत सकल बिहु वारि ।।[3]

अनुशयाना के क्षोभ की तृतीय स्थिति संभवतः सर्वाधिक शोचनीय होती है । प्रियतम के संकेतस्थल पर पहुंच जाने पर भी गुरुजनों के नियंत्रण अथवा अन्य अपरिहार्य व्यापारों के कारण वह वहां नहीं पहुंच पाती; उसकी मुख-दीप्ति हत हो जाती है -

वर मनमंदिर मै भासत विचित्र रूप सरद नखिशपति दीपत हरत है ।
आसपास आलिन मैं करत विलास हास आनन विकास रास संग निदरत है ।
भनत इदेस कान्ह बांसुरी सुनत कान कानन तें आवै कौं तानन भरत है ।
दीन मन हीन पीत द्रग मीन जलदीन देहि भई छीन बाल बीन ना परत है ।।[4]

ङ- मुदिता परकीया - जिस परकीया नायिका को उपपति के साथ सम्भोग सुख प्राप्त करने की आशा से प्रसन्नता होती है, उसे मुदिता नायिका से अभिधानित किया गया है -

---

१-विलासहरन - पद सं० ९७ 2- वही - पद सं० १००

३- वही- पद सं०१०१ ४-वही- पद सं० १०२

जो मन रुचि सो उक्ति वकि मुदित होय जो बाम।
सो मुदिता है नायका बरनत कवि गुणधाम।।[1]

स्वकीय जनों की व्यथा से प्रकट रूप में यह नायिका क्षुभित अवश्य होती है पर उसके अन्तर में यह प्रसन्नता होती है कि वह क्षोभ प्रकाशन के व्याज से उपपति के सामीप्य-सुख का लाभ प्राप्त कर सकेगी -

स्यायौ पिय सार मैं पथिकि कत दियौ हात बांधौ धुर सकत अधिकि उतपात है।
सैसक भयौ है वहै मैसक न रंच भर दैसक छ्वारन की दौलत विलात है।
भनत छ्रदेस सखि देखत अनत गत सुनत निहात भौ विषाद तात मात है।
ऊपर सवी तै दुख सौगुनो दिखात बाल हीतल उमग सुख सौगुनो दिखात है।[2]

मुदिता नायिका के प्रसन्न होने का अन्य कारण पति का- अल्प समय के ही लिए सही- विदेश या परदेश गमन होता है। ऐसी स्थिति की सम्भावना पर वह अहर्निशि उपपति के स्मरण-चिन्तन में पुलकित तथा मुदित होती रहती है -

गमन विदेस दिन धारक विचार ठान सखिन ललक ना निहारत छलक पै।
भनत छ्रदेस मन धरक न रंच भर दरक न नैन पंकसर की छलक पै।
ध्यान पिय जान बान उदित सरूप बाल मुदित रहत दिन रातहू ललक पै।
उमगत स्वेद अंग भलक पलक पर कंपत पलक पुलिकावत पलक पै।।[3]

यह नायिका जिस किसी कारण से उपपति सामीप्य की अपेक्षा करती है। उसका पति यदि बारात को जाता है, तब भी वह उपपति-मिलन की सम्भावना से आनंदित होती है -

निज पति जात बरात कौ दिवस आठ की काम।
हरष बाल सुन धाम के रखवारे घनस्याम।।[4]

३- ग णि का

गणिका या सामान्या नायिका अनेक पुरुषों से मात्र धन के निमित्त प्रेम-प्रकाशन करती है। यह अपने रूप-बाल की जगमगाहट से अनुरागी जनों के चित्त का हरण करती है -

---

१- विश्वदसकरन - पद सं० १०४
२- वही- पद सं० १०५
३- वही- पद सं० १०६
४- वही- पद सं० १०७

धन धन धन हित हित करत जन जन जन छित छाय।
धन कविजन मनका मनत उफनत छवि छित छाय।।[1]

यह नायिका सौन्दर्य-प्रसाधन, संगीत-नृत्यवाद्यप्रवीणता, कटाक्ष आदि के द्वारा रसिकजनों को आह्लादित करती है -

बैठी बाल छाजै दरवाजें लै सतार बाजै अंग अंग सोभित अनंग रंग भरी है।
आनंद की खान करै लाखन की मान पान नैन बान तान बान तान गुन भरी है।
भनत हृदेस सारी सारी जरतार भरी हरी कंचुकी पै कोर मोतिन कीलरी है।
हेम कैसी छरी है जवाहर सी जरी भारी भलाभल भरी है परी सी टूट परी है।[2]

नितनव श्रृंगार-प्रसाधन इसका प्रधान व्यापार है, हृदय नहीं अपितु धन-हरण स्वभाव तथा कच-कुच का संवारना इसका सर्वस्व -

छिनवत जित तित चित हरत नित नव करत सिंगार।
तन दरपन सम दुत करत कुच कच ललित सिवार।।[3]

६- दशानुसार नायिका-भेद -

भानुदत्त की रसमंजरी तथा मतिराम के 'रसराज' की परम्परा पर हृदयेश ने दशाभेद से नायिकाओं के तीन भेद - अन्यसंभोगदु:खिता, गर्विता - प्रेमगर्विता तथा रूप गर्विता - तथा मानवती (मानिनी)- किए हैं -

(क) अन्यसुरत दु:खिता - जब नायिका, नायक के पास प्रेषित, सुरत-चिह्नों से युक्त अपनी सखी या दूती को नायक द्वारा उपभुक्त होने का अनुमान करती है, अथवा उपपत्नी के शरीर पर सुरत-चिह्नों को लक्षित करती है तब तीव्रवेदनामयी यह नायिका अन्यसुरतदुखिता का अभिधान ग्रहण करती है -

मनभामन की रत प्रगट समभ्ह और तन वाम।
अन सुरत दुखिता कहत होत क्रोध की धाम।।[4]

खण्डिता नायिका और अन्यसुरत दु:खिता में भेद है। खण्डिता के सामने प्रात:-काल सम्भोग-चिह्नों से युक्त प्रियतम आता है जिसे देख कर वह रुष्ट होती है; किन्तु

१- चित्रकलाधर- पद सं० १०८   २- वही- छंद सं० १०९
३- वही - पद सं० ११०   ४- वही- पद सं० १११

अन्यसंभोगदु:खिता के समक्ष उपर्युक्त दूती या नायिका की सखी ही उपस्थित होती है। प्रथम में नायिका के रोष का आलंबन नायक होता है, जबकि द्वितीय में नायिका की सखी या दूती। नायिका की आशा पर उसकी ही दूती किस प्रकार तुषार-पात करती है तथा नायिका उसके विश्वासघात से कैसा आर्तनाद करती है -

जान के प्रवीनी कीनी दूतिका नवीनी दीनी तू तो रंगभीनी भयी मति की उछीनी है।
कंचुकि नवीनी दीनी सिथिलित कीनी भीनी बसन कमीनी हीनी बर न कमीनी है।
लीनी लखि कलित कपोल भा मलीनी परी सखा हृदेस रदछत छवि दीनी है।
सतवत कीनी बीनी पतिवत कीनी दीनी दुखि कित कीनी रीनी रत कित कीनी है।[1]

उपर्युक्त नायिका के क्षोभ की अन्य स्थिति वहाँ उत्पन्न होती है जब वह अपनी सम्पूर्ण व्यथा का चित्रण अपनी पत्रिका, जो दूती के व्दारा प्रेषित करती है, के माध्यम से अभिव्यक्त करना चाहती है, पर दूती व्दारा विश्वासघात किया जाता है -

गुनगन तेरे मै न हेरे ना कहे रे काहू भेजी लिखि सार समाचार पतिया मै है।
अमित अबेर कीनी बीच काहू घेर लीनी जान परी जेर कीनी फेर बतिया मै है।
भनत हृदेस सुखपाल की निहाल कर आई प्रातकाल गई साँझ रतिया मै है।
आपु सुख पाय लीनौं थकित उपाय कीनौं प्रबल अपाय दीनौं दाह छतिया मै है।[2]

+ +

हिति सौ पठई मनभावन पै इत आवन की चित लाग लगी।
रत मानी हृदेस प्रमानी ठई पिय के हिय सौं निस जाग लगी।
हम जानौ सबै सुख मानौ तु ही मधु पीबै मलिंद पराग लगी।
छतिया छत ना नखदाग लगी पर ही की बिराक सौं आग लगी।।[3]

दूती के शारीरिक अवयवों के सौन्दर्य की वर्णना नायिका के ही शब्दों के माध्यम से वर्णनीय है -

भली दूतपन तू करौं अधर लाल अनमोल।
कुच कोर नख छत लगे रद छत दिपत कपोल।।[4]

।ख। प्रेमगर्विता - जब नायिका अपने पति के प्रेम के कारण - जो उसकी शोभा पर आधारित होता है - गर्व करती है, तब वह प्रेमगर्विता कहलाती है -

---

1- विरवक्षकरन - पद सं० ११२
2- वही- पद सं० ११३

लखि सोभा तिय वदन पिय करत निछावर प्रान ।
प्रेम गर्व तिय हिय उमग ताकौं भनत सुजान ।।[1]

नायिका का वीर उसे मायके ले जाने के लिए आता है । सम्भावित प्रियतमा-वियोग के कारण नायक की अत्यन्त दयनीय दशा है । वह नहीं चाहता कि उसकी प्रेयसी उसे छोड़कर जाए । नायिका अपने भ्राता तथा प्रिय के स्नेह तथा प्रेमभाव का आकलन करती हुए अपनी सखी से कहती है -

दिन चार कौ आए लिवावन वीर करै नित रार रहे भुण री ।
तब तै पति प्रान अधार छदेस न जाउ न जाउ कहै सुण री ।
वहु कौन की राग रही रूण री इत जात तौ तुम उते पुणरी ।
सखि मायके जात कौ है सुण री पिय के बिछुरे कौ महादुण री ।।[2]

नायक के प्रेम-गर्व में पूर्णतया आविद्ध नायिका मान करे भी तो कैसे । नायक उसी के रूप-सौन्दर्य पर रीझा हुआ है, वह ~~मनसा~~ मनसा-वाचा-कर्मणा नायिका के अनुकूल है -

मोही तन हेरत रहत वारै तन मन प्रान ।
कहत बात सोई करत करौं कौन विध मान ।।[3]

।ग। रूपगर्विता - जब नायिका अपने रूप पर गर्व करती है, तब वह रूपगर्विता कहलाती है -

निज मुख लखि निसिपति निरख निधरक करत गरूर ।
रूपगर्विता तिय सकल वरनत विबुध जरूर ।।[4]

नायक ऐसी नायिका के रूप-सौन्दर्य से आकृष्ट होकर उसके आवास के द्वार से हटकर कहीं अन्यत्र नहीं जाना चाहता, प्रसिद्ध प्राकृतिक उपादान भ्रमर तथा चकोर भ्रमवश नायिका में कमलगंध तथा चन्द्र का आरोप कर लेते है । एक ओर नायक का अपरिहार्य आग्रह, दूसरी ओर भ्रमरों का गुंजन तथा उत्पीड़न तो तीसरी ओर चकोरों का मुखचन्द्र-स्पर्श हेतु प्रयास - इन सब से नायिका बच कर निकले भी तो कैसे-

श्रवन सुनै तै ओर रूप कौ अधिकि ओर तब तै गुपाल किधौ द्वार पर बसवौ ।
भनत छदेस दुवे द्रगन पर भौर भाये भाषत चकोर चाहै मुख कौ परसवौ ।

1-विरवबत्तकरन- पद सं० ११६
2- वही- पद सं० ११७
3- वही- पद सं० १२१ 4- वही- पद सं०१२२

गोकल मरोर कैसी मोर वरजोरकर हरण हिराय गयौ औठ कौ विकसबौ ।

कैधौं दुग बान परौ घूंघट प्रमान परौ मुसिक्नि आन परौ भौन तें निकसवौ ।[1]

नायिका संकेत-स्थल पर भी नहीं जा सकती । उसका रूपातिशय ही इसमें बाधक होकर उपस्थित है –

उहाँ कौन छल सकत सखि कुंज भानजा तीर ।

मो तन सहज सुगंध पर परत भौंर की भीर ।।[2]

।ब। मानिनी – जो नायिका कभी अपने प्रिय के किसी अपराध से और कभी अकारण क्रोधित हो जाती है, वह मानवती कहलाती है । यथा –

पर तिय हिय लग पिय सुनत तिय पिय हिय दुग जान ।

मान ठान धुम बान कर लगत सतर भुवतान ।।[3]

ऐसी नायिका के नेत्र आक्रोशवश लाल हो जाते हैं, चंचलता में ये मीन के नेत्रों को भी पराभूत कर देते हैं; सौन्दर्य से सर्वतोभावेन दीप्तिमान् उसकी मुखमण्डल चन्द्र की आभा को मलिन कर देताहै– सखी के एतादृश चाटु-वचनों का प्रभाव ऐसी नायिका पर पड़ने से रहा –

द्रग ललिताई पाई मीन चंचलाई कहा वदन भाई कहा चंद की निकाई है ।

छल सुखदाई तुव जगत बढाई माई अद्भुति द्रदेस गुन भासत कन्हाई है ।

म्रदुल कलीन रूचि रूचि के बिछाई सेज लैसी कुंज कुंवरित पल छवि छाई है ।

तू तौ गौनहाई आई जानै कहा मान माई एती निठुराई कौन सौन ने सिखाई है।[4]

जब सखी के चाटु-वचनों का प्रभाव उस पर नहीं पड़ता तो वह उद्दीपनात्मक समग्र पर्यावरण का उत्तेजक, मादक तथा आकर्षक चित्र उपस्थित करती हुई मान-त्याग-हेतु अनुरोध करती है –

लाल ललिछैहै काम ताप तलफैहै लैहै मान मैन लैहै वसु ठ उर धार है ।

सरद समै है व्योम चंद दरसै है स्वच्छ सुधा वरसैहै गोरा वदन निहार है ।

भनत द्रदेस सुण देहै जस पैहैं व्रज धरम पलैहै पलभर अपार है ।

फेर पछतैहै ऐसी बनत न रैहै पैहै सरता बहैहै वात करन वनार है ।[5]

1– विश्वबसकरन– पद सं० १२३ 2– वही– पद सं० १२५

3– वही– पद सं० १२६ 4– वही– पद सं० १२७

5– वही– पद सं० १३१

७- अवस्था के आधार पर नायिकाभेद - अवस्था अथवा विभिन्न परिस्थितियों के आधार परम्पराभुक्त १० नायिकाओं - प्रोषितपतिका, खंडिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, उत्का, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका, अभिसारिका तथा आगतपतिका - का वर्णन हृदेस के काव्य में उपलब्ध होता है।[१] इन दस भेदों में कई भेद तो ऐसे हैं जो अभी तक किसी न किसी रूप में पूर्व पृष्ठों में आ चुके हैं; जैसे खण्डिता के रूप में धीरादि भेदों का वर्णन किया जा चुका है, अतः इस दृष्टि से केवल इन दसविध नायिकाओं का संक्षिप्त लक्ष्यरूप ही प्रस्तुत किया जाएगा।

मतिराम की ही परम्परा का अनुगमन करते हुए हृदयेश ने उक्त नायिकाओं में से प्रत्येक के मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा, परकीया तथा गणिका । सामान्या । भेद प्रस्तुत किए हैं। इस प्रकार ये नायिकाएं पचास की संख्या तक पहुंच जाती हैं ।

।१। मुग्धा प्रोषित पतिका

जिस नायिका का पति विदेश या परदेश में निवास करता है; विरह की ऐसी अवस्था में काम जिसको पीड़ित करता है वह नायिका प्रोषितपतिका कही गई है -

पति विदेश तिय उमग तन रत पति करत अदेस ।
प्रोषितपतिका गुंथ मति लखि लखि भनत हृदेस ।।[2]

यह नायिका विरह-व्यथा के कारण अनवरत अश्रु-वर्षण किया करती है, उसकी दशा दृष्टव्य है -

जादिन तें व्रजराज गयौ तिय ता दिन तें घर व्दार न भावत ।
बूझत बात हृदेस सखीगन थाकि रहीं पर भेद न पावत ।
नैनन वारि भर्यौ झलकै विरहानल सोखत भूमि न आवत ।
नीर पियै नहि धीर पियै नहि पीर कढ़ी नहि पीर बतावत ।[3]

वियोग उसके समग्र अवयवों शोषित कर लेता है। उसका हृदयावर्जक सौन्दर्य विरह के कारण क्षीण हो जाता है -

पिय वियोग तन दूवरी नवल बाल दरसाय ।
जवर सीत के परत ज्यौं जात कमल कुम्हिलाय ।।[४]

१-विरह-वचसकरन- पद सं० १३३   २- वही- पद सं० १३४
३- वही- पद सं० १३५   ४- वही- पद सं० १३६

।2। मध्या प्रोषितपतिका

इस नायिका में मन्मथ तथा लज्जा का समप्राधान्य रहता है। वय के आग्रह से यह वाणी के माध्यम से अपनी विरहव्यथा की अभिव्यक्ति करती है -

झर न सुहात मेघ तरु न सुहात छांह घर न सुहात उठ आवत वगर ह मैं।
वान ना सुहात खान पान ना सुहात रंग कान ना सुहात तान गावत नगर मैं।
भनत द्विदेस वीर तीर सौं समीर लागै भूल जात कांच भौन जगर-मगर मैं।
बींधौ देह मेरौ रतराज लाज फंदन मैं गयौ मन भाज वृजराज की डगर मैं।[1]

।3। प्रौढ़ा प्रोषितपतिका

प्रौढ़ा होने के कारण इसके हृदय में लज्जा तथा झिझक समाप्त हो जाती है। कामवासना के चरम वेग के परिणामस्वरूप वह पतिवियोग को किंचित् भी सहन नहीं कर पाती। उद्दीपनात्मक पदार्थ उसकी व्यथा को अनन्तगुना बढ़ा देते हैं। मध्या नायिका की अपेक्षा उसकी व्यथा कितनी असह्य तथा जटिल है -

सकल सराहै सुख्य सारंग सरद सार सूर से सरस सर सरसत सांम के।
जौन जाल जान कौं जरावत जुलम जोर जुर सौं जगत जामै जहर तमाम के।
भनत द्विदेस बल व्याकुल विरह वर वेदन वदन बधी वरवस काम के।
तारापति तपत तवा सौं तेज तोर कर तारागन तरुन अंगारा ज्वालाधाम के।[2]

।4। परकीया प्रोषितपतिका

जिस उद्दीपनात्मक वातावरण में नायिका परकीय-प्रेम की पुष्टि-तुष्टि किया करती थी, वह वियोग की स्थिति में अब उसे शापित-तापित करने लगता है। उसके प्रियतम को उसके प्रच्छन्न प्रणय का बोध नहीं हो पाता -

पूनी परीं कुंजे पे मलिंद फिरै गुंजै पुंजै होत भौ अनंद यहां डार गलवायै तैं।
देख देख फूलन कौं फूलन अकूल वर हीतल मैं होत सूल द्रग दखायै तैं।
भनत द्विदेस नंदलाल के वियोग भौ तनक न चैन अैन मैन के तपायै तैं।
पूछै पति बात यहां कौन है हवाल बात ताप चढी बालम बसंत रित आयैं तैं।[3]

१-विलवलासकरन- पद सं० १३७   २- वही- पद सं० १३९

३- वही- पद सं० १४१

।४। गणिका प्रोषितपतिका

मात्र धन के प्रति ऐकान्तिक राग रखने वाली यह नायिका यह अपेक्षा करती है कि उसका प्रिय परदेश या विदेश से पर्याप्त आभूषण इत्यादि लाकर उसकी आकांक्षा की पूर्ति करेगा -

छाय रहे मथुरा मनमोहन ले अस हाल संदेस पठावै ।
ल्यावत भौत जराव जरे नग मो मन की अभिलाष पुजावै ।
गावत आपु छदेस मनोहर बीन बजावत कुंज बुलावै ।
या सखि ग्राम गमार वसै अब कौन कौं फाग धमार सुनावै ।।[1]

2- खण्डिता नायिका

अन्य नायिका के संभोग चिह्न धारण किए हुए प्रातःकाल जब नायक नायिका के पास पहुंचता है तब वह खण्डिता कहलाती है।[2]

।१। मुग्धा खण्डिता

अलसात लोचन लजात भप भप बात वलत भुकत पद सिथिलित गात है ।
लटपट पेच लट मंडित कपोलन पै कुंडल कलित कान लटक प्रभात है ।
भनत छदेस मनरंजन अधर छवि अंजन सहित हितभंजन ललात है ।
आए प्रातकाल लीक जावक की लाल भाल देख बाल लाल भए द्रग जलजात है[3] ।

।2। मध्या खण्डिता नायिका

अंजन अधर मनरंजन कपोल पीक अंजन से नैन भरौ आलस अलोच है ।
जावक भुजान भाल लाल गरै मुक्तमाल कोइ दीनी गुंजमाल रंचक न सोच है ।
भनत छदेस दुगुन मोकलदिपत छवि भुकत मतंगवत अदभुत रोच है ।
फरकत औठ बाल कहत न बात बनै हीतल मै कोप भरौ मुख मै सकोच है ।।[4]

।३। प्रौढ़ा खण्डिता

सुंदर रूप बनौ मनमोहन भूमत आवत ज्यौं मतवारे ।
देख छदेस सबै पग मोहत जात नहीं सिर पेच सम्हारे ।

१- विश्वासकरन- पद सं० १४४
२- वही- पद सं० १४७
३- वही- पद सं० १४९
४- वही- पद सं० १४९

छाकि रहे छवि के मदि सौं उहि ताकि रहे धर ध्यान बिचारे।
जाग लगे हिय और तिया घर प्रात लखो बड भाग हमारे।।[1]

।४। परकीया खण्डिता

आछी करी सावरे न पाछे की निबाही प्रीत छोड़ दीनी नीत साधी रीत दुरजन की।
पूरों भयो काज ना अकाज भरपूर भयौ खण्डित समाज छूटी लाज पुरजन की।
भनत ब्रदेस साची वेदन पुरान बाची पति न पराए होत वान सुरजन की।
मैंने कहा ठानी है बिकानी सो दिवानी जानी पानी गौ न मानी बानी सीख गुरजनकी[2]

।५। गणिका खण्डिता

छूट परी अलकैं बिथुरी वर अंगन अंग सुगंध मढे हौ।
नीद ब्रदेस भरी अखियान सुजान कहीं तिहि रूप गढ़े हौ।
प्रीत करी धनवार बड़े लखि जाउ घरे बिन काज खड़े हौ।
जानत तौ तुम लाज बडे निरलाज बड़े छलबाज बड़े हौ।।[3]

\+ \+

हीरन की मुदरी कहाँ देन कही निरलाज।
वसन कहाँ हमरे छिहा कियौ और घर काज।।[4]

३-ई- कलहांतरिता नायिका

जब नायिका प्रणय-कलह मे प्रवृत्त होकर नायक की उपेक्षा करती है, तब वह कलहांतरिता कही जाती है। नायक के निराश होकर चले जाने पर यह दुःखी भी होती है। इसकी सखियाँ इन दोनों के मिलाप अथवा पारस्परिक सामंजस्य हेतु उद्योग भी करती है।[५]

।१। मुग्धा कलहान्तरिता

हार वर हीरन के सुंदर न एक तामें तान बैंकी भौंह मान बैठी बाल मान की।
मोहन मनावै दरसावै राग तान गावै पग सिर नावैं भावै कहत न बान की।

१-विश्ववसहरन- पद सं० १५१ 2- वही- पद सं० १५३

३- वही- पद सं० १५५ ४- वही- पद सं० १५६

भनत छ्रदेस लाल रूस गयौ कुंजन मै रंचक न हेरो भरै अधिक गुमान कौ ।

रात सखात लागी हीतल डरान लागी मन पछितान लागी ध्यान लागी पान कौ।[1]

\+ \+

गोरी थोरे दिवस की वृथा करत कलकान ।

हार मान पिय उठ गयौ अब लागी पछतान ।।[2]

। २ । मध्या कलहान्तरिता

रंचकनि कित विन हसत सकित नित नित हू के कित अनवनत न मन तैं ।

भनत छ्रदेस हित करत धरत पद परत डरत अत तरत नरन तैं ।

जात पति सुनत सुबात पछितात गात छिन मै विलात जात मदन कदन तै ।

हलक हलक बोल हलत हलक अत झलक झलक जल झरत द्रगन तै ।।[3]

\+ \+

मनमोहन पग पर परो हमै मनावन काज ।

झपट हिये पर ना लयौ अली घरै यह लाज ।।[4]

।३। प्रौढ़ा कलहान्तरिता

भोर रही मुख मोर किना झकझोर तकी द्रग कोर चढे से ।

भौत करी विनिती गिनती नहि मान मिटावन मंत्र पढे से ।

अैन कहौ तन मैन छ्रदेस न चैन परै तन उदार गढे से ।

मान करी पति सौं अत सौ अब जात वृथा बल प्रान कढे से ।।[5]

\+ \+

हार मान मोहन गयौ तब तू कही न बात ।

हरी हरी कह करत अब परी परी पछितात ।।[6]

।४। परकीया कलहान्तरिता

लाज तव दीनी ग्रेहि काज तव दीनौ सबै लाज तजि सखिन समाज तव दीनो है ।

हास भयौ कुव मै विलास भयौ कुंजन मै नास भयौ मीत कौ न तापै कित दीनो है ।

१-विल्वसकल - पद सं० १५८ | २- वही- पद सं० १५९
३- वही- पद सं० १६० | ४- वही- पद सं० १६१
५- वही- पद सं० १६२ | ६- वही- पद सं० १६३

ऐसे सुखदायक ब्रदेस मनमोहन सौं टेरर बैठी प्रीत गयौं उठ कर रौनौ है ।
हाट की न मानी पै रही न कौनौ बाट की मै घर की न घाट की कृपा हीमानकीनौहै ।[1]

\+ \+

मनमोहन मोहन जगत गयौं कुंज दुखमान ।
अरे मुग्धई मान तू करी नेह की हान ।।[2]

।५। गणिका कलहान्तरिता

देख मलीन परी कुररी बिन बोलत जाय रगाय लई है ।
आपुन साज सिंगार ब्रदेस लखौं छवि छाय वताय लई है ।
लाखन देत न मान करौ पिय पाय परौ धर राय लई है ।
भूल गई अपुनी रसना निजदांतन दाब दबाय लई है ।।[3]

\+ \+

अवलाखा पूरन करी दै लाखन की साज ।
ता पिय सौं निसि रिस करी गयौ बिसर सबि काज ।।[4]

४- वि प्र ल ब्धा ना यि का

जो नायिका प्रिय-मिलन की आशा से संकेतस्थल पर पहुंचती है; परन्तु वहां अपने प्रिय को न पाकर विरह-व्यथित हो ती है, उसे विप्रलब्धा कहते हैं -

पिय न मिलन रत भवन तिय लखत कुसुम सर वाज ।
विप्रलब्ध तन विकल अत प्रिय लियतल दुख मान ।।[5]

।१। मुग्धा विप्रलब्धा

संग सखियान के उमंग चली कुंजन कौं तहां परजंक रचौ आनद के ख्याल कौं ।
लखौं केल मंदिर दिखानी सेज संदर सी सुंदर हिये मैं भयौ चोद वर जाल कौं ।
भनत ब्रदेस भौंहु बैठी कर बैठी सेज छोर प्रखेआभूखान वैदा भाल लाल कौ ।
मानौं मंद मंद परो राहु फन्दफंद ऐसे मंद परौ बदन गुविंद बिन बाल कौ ।।[6]

१-विप्रलब्धकरन- पद सं० १६४ 2- वही- पद सं० १६५
३- वही- पद सं० १६६ ४- वही- पद सं० १६७
५-वही- पद सं० १६८ ६- वही- पद सं० १६९

लखि न परहु पिय सेज पर लगत कंद दुति मंद ।
नवल वाल मुख त्यौं रहौ मनौ संपुटित कंज ।।[1]

।2। मध्याविप्रलब्धा

वार वार वारि वहै मंद द्रग कंजन तैं मार मार कीनी दया देहि की मनत ना ।
स्वास भर शीतल मैं ताप सी तपत खात धुवा सी कमत दसा बनत भनत ना ।
भनत द्विदेस वाग वाघ सौं दिखान लागौ आग सौं सिंगार लागै राग कौ अनत ना ।
सूनी सेज देख लाल सहत वनत वात पिय न मिलै कौ दुख कहत बनत ना ।।[2]

+ +

पिय न मिलन संकेत मैं तपत विरह भरपूर ।
परत स्वास जे आसुनी गिरत वाग तै दूर ।।[3]

।3। प्रौढ़ा विप्रलब्धा

अंग अंग जटित जवाहर के आभरन जगमग होत मन अद्भुति परी सी है ।
प्रीत प्रतपाल कौ उताल गजवल वाल वैंदा अभाल लाल दीपै मैन मंजरी सी है ।
भनत द्विदेस सोहै मौतिन कौं माल गरैं बदन मयंक दुति भासत भरी सी है ।
देखौ ना बिलात नंदलाल कुंज तिहि ठात बात कुम्हिलानी जात सुमन छरी सी है।[4]

+ +

पिय न मिलन रत भवन तिय हनत कुसुम सर वान ।
तलफत तलफत दुवरी भई परत न तन पहिचान ।।[5]

।4। परकीया विप्रलब्धा

साज सिंगार हुलास भरी डिगरी छत सौं अलिपुंज भरे मैं ।
सेज परी सुथरी बिथुरी जब का संग होत विहार घरे मैं ।
भूखन अंग अगार भए वर जागत मैन द्विदेस जरे मैं ।
लाज तजी गृह काज तजौ बृजराज मिलौ नहि कुंज भरे मैं ।[6]

1- विरुदप्रकाश- पद सं० १७० 2- वही- पद सं० १७१
3- वही- पद सं० १७२ 4- वही- पद सं० १७३
5- वही- पद सं० १७४ 6- वही- पद सं० १७५

।४। गणिका विप्रलब्धा

कर कर सकल मनोरथ मनोज भरी काम सुन्दरी की नीकी नीकी दीप जीती है।
तहाँ नंदनंद की न भेंट भई कुंजन में होत भई व्याकुल लखै ते सेज रीती है।
भनत इन्देस चांद भान के प्रमान भयौ मान तान भूल गई सो सबै परीती है।
आई होत साम की रही न कौनौ काम की मैं धन की न धाम की तमाम रैन बीती है[1]।

\+ \+

कुंज ठाकुर नहि कुंज मैं वृथा बुलाई रैन।
सदन बहुत हेती हते सह करती बर बैन[2]।।

५- उत्का अथवा विरहोत्कंठिता नायिका

जब नायिका स्वयं विहारस्थल अथवा संकेतस्थल पर पहुंच जाय और प्रिय वहाँ न पहुंचे तो उस समय वह प्रिय के न आने का कारण विचारती हुई नायिका उत्कंठिता का अभिधान धारण करती है -

सब सिंगार कृपाची पलग करत बात मन चिंत।
मनभामन आवै क्यौं उत्न ताकि भीत[3]।।

विप्रलब्धा और उत्कंठिता नायिका में बड़ा ही सूक्ष्म अन्तर है। निर्धारित समय पर संकेतस्थल पर प्रिय को न पाकर जो नायिका विप्रलब्धा कहलाती है वही नायिका यदि प्रिय के न आने के कारण पर विचार कर उत्कण्ठापूर्वक प्रिय की प्रतीक्षा करती है तब वह उत्कंठिता कही जाती है।

।१। मुग्धा उत्कंठिता

सांझहि तैं उकिलात बधू कब आवत मोहन प्रीत नई है।
सेज परी उठ बैठत लेटत हेरत हेरत नींद गई है।
देखन की क्ति चाह इन्देस लला छवि नैनन छाय रई है।
आवत धावत जात बटान बटा नट की बर बात भई है[4]।।

१- विल्वक्सकरन - पद सं० १७७
२- वही- पद सं० १७८
३- वही- पद सं० १७९
४- वही- पद सं० १८०

नवल बाल हिय लाज सौं बूझत बनत न बात ।
लगी लगन नदनंद सौं फरफरात सब गात ।।[1]

।२। मध्या उत्कंठिता

संपुटित जलज लहैती अलबात जब कुमुद विकास मुकिलित दरसात है ।
मृग द्रग सकल निहारत रहत सिर ढोरत करिंद बोल कोकिल नसात है ।
हृदयेस नदनंद हेरत तिहारो मग जगमग दिपत बिसाल बाल गात है ।
त्रिषित चकोर छवि छकत रहत अब छपत नछतपति लषत लजात है ।।[2]

\+ \+

सकुच रहत बोलत नहीं चुव मग हेरत बाल ।
भयौ प्रभाकर चलत है मयौ निसाकर लाल ।।[3]

।३। प्रौढ़ा उत्कंठिता

कौन बास तारी भई देर अब भारी परे सौतन की वारी ना निहारी नभलाली कौ ।
हो चले भिखारी सो बिहारी बात सारी भई देहि याद सारी मारी मृद पटकाली कौं ।
भनत ब्रदेस केस गंध गसकारी लगै कव्वल भारी सो उसार अब हाली कौं ।
सारी रात झाली झाली रोम रोम साली जाली ये री क्त आली जा तलासवनमालीकौं[4]

\+ \+

मयौ छपाकर छिपि सबै गई पहर निस तीन ।
नदनंदन आयौ नही भयौ कौन सौं लीन ।।[5]

।४। परकीया उत्कंठिता

भिल्लिन की भनक भलान बल कान कर काम की कमान कोकलान कूक हर तैं ।
चित लषि जात दरसात बरसात घटा पर सरसात छटा छैलता अधर तैं ।
भनत ब्रदेस रहे कित निस बीत मीत करत अनीत जा तलास हरखर तैं ।
पौन भकि भकोर तरु तोर जल बोर फोर कर घोर घनघोर मयौ सोर जलधर तैं ।[6]

१- विस्वप्रकरन - पद सं० १८१ 　 २- वही- पद सं० १८२
३- वही- पद सं० १८३ 　 ४- वही- पद सं० १८४
५- वही- पद सं० १८५ 　 ६- वही- पद सं० १८६

छल बल कर आई यहां निज पति गयौ ब्यार ।
मनमोहन आए नहीं लखि सखि कवन विचार[1] ।।

।५। गणिका उत्कण्ठिता

हेरत हेरत हार गये द्रग पेरत मैन तरंग बरावत ।
जान परी वद कौल भयौ कछु और हितू घर चौल करावत ।
मोतिन के गजरान हदेस को पटवान दुकान वरावत ।
बीत गई रजनी सजनी बजनी पग पायल लाल जरावत[2] ।।

+ +

बार वधू पति पंथ लखि बार बार उबिलात ।
कवि स्यावत बंकना ललित हीरन जटित प्रभात[3] ।।

६- वासकसज्जा नायिका

जो नायिका अपने प्रिय के निश्चित आगमन को जानकर शृंगार-प्रसाधन करती है तथा अपने मनभावन की शय्या को सुसज्जित करती हुई अनेक प्रकार के मनोरथों की उद्भावना से प्रसन्न होती है वह वासकसज्जा कहलाती है -

सुमन सरस पर्यंक सज रमन मिलन कित चाय ।
अंग अंग नग जगमग दिपत बसन अतर लपटाय[4] ।।

।१। मुग्धा वासकसज्जा

साज के सेज सिगार सबै रत तै अत रूप प्रवाल धरी है ।
कौन कहै वह बाल बिसाल सबै घर मै वर लाल धरी है ।
बेग करौ गुणपाल हदेस मिलौ तुमकौ गुण माल धरी है ।
त्यौं पर्यंक रसाल मसाल मनौ छवि कौ यह बाल धरी है[5] ।।

+ +

रतन जटित पर्यंक पर सुमनन सेज बिछाय ।
नवल बाल ब्रजी ललित सवि सखियन गुणपाय[6] ।।

१-बिरवबसकरन- पद सं० १८७ २- वही- पद सं० १८८
३- वही- पद सं० १८९ ४- वही- पद सं० १९०
५- वही- पद सं० १९१ ६- वही- पद सं० १९२

।२। मध्या वासकसज्जा

गज मुक्तान के गजरा भरे है गरे बीच बीच हीरन की दीप दमकत है।
कंकन कलित मन किंकिन ललित छवि श्रवन तरौना सीसफुल झमकत है।
भनत छदेस बाल लाज भरे लोचनन बैठी सेज साज अंग काम चमकत है।
लागी लाल वोट लगी घूंघट मै लोटपोट अंचला की ओर चंचला सी चमकत है।[1]

+ +

अमित सरस भूषन सजे मृदुलित सेज बिछाय।
सलज दिपत परजंक पर मृगलोचन छवि छाय।।[2]

।३। प्रौढ़ा वासकसज्जा

राचै वृषभानजा समाचै काम छवि लाचै काचै वृजराचै साज साचै अकलान की।
भनत छदेस मनमंदिर महक सेज अंगन तडपन छटा रद चंचलान की।।
बैदी भाल जटित जवाहर जगत जोत उमग उमग फैल झलकि झलान की।
मानौं मारतंड बैठो मंडिति अखंड छंड दीप चंद मंडल मै षोडस कलान की।।[3]

+ +

सुमन सरस भूषन पहिर मखमल सेज सम्हार।
मनमोहन मन मिलन कौं बैठी दिपत अपार।।[4]

।४। परकीया वासकसज्जा

छिपत प्रभाकर के छिपि के सिगार साज सौंधी सेज सकल सुगंधन सौं पाट है।
बार बार झांकत झरोखन की टार टार ढार ढार नैन लाल आवन की बाट है।
भनत छदेस बाल लेटत उमंग भरी सोय गए लोग पौर आवत सपाट है।
सुंदर कपाट दैन डाट दीनी सांकर की आंगुरी छुयें तै खुल आवत झपाट है।।[5]

१-विरवकसकरन- पद सं० १९३
२- वही- पद सं० १९४
३- वही- पद सं० १९५
४- वही- पद सं० १९६
५- वही- पद सं० १९८

।४। गणिका वासकसज्जा

लाल इजार वनी गुलजार हिये पर हार वडी परवीनै ।
वास प्रकास भलाभल वास दिये मुखचंद छरी कर लीनै ।
सेज छ्देस वडी छवि देत विहारत वाल मनोरथ कीनै ।
आवत आज गुपाल मनोहर ल्यावत साज सिगार नवीनै ।।[1]

७- स्वाधीनपतिका नायिका

जिस नायिका का पति उसके अधीन हो, उसे स्वाधीनपतिका कहा गया है -

वचन मधुर छवि वदन लखि पति नित रहत अधीन ।
सो पतिकास्वाधीन कहि हित नित वढत नवीन ।।[2]

।१। मुग्धा स्वाधीनपतिका

आई वाल गौने वैठी लाज भरी कौने वृजराज ललितौने ताकिवे कौ तरसौ करै ।
अंग अंग सौने ते सरस झलकत छवि हास मृदु वचन वोलन सुधा सौ वरसौ करै ।
कोक कैसे छौने कुच लसत छ्देस लौने छ्दैक डग डोलतन दीठ परसौ करै ।
मंद मदि ऊनौ मनवारज कौ सूनौ रहै निसिदित पूनौ घर दूनौ दरसौ करै ।।[3]

\+ +

लखि लखि छवि देखौ भइ लट् भयौ वृजराज ।
पग भ्रावत जावक भरत तनक न आवत लाज ।।[4]

।2। मध्या स्वाधीनपतिका

ता छिन तैं पग भ्रावत भावत राग सराग रिझाय रयौ है ।
आपुन हाथन माग सम्हार भरै सिंधुरा छवि छाय गयौ है ।
लाज न आवत लाइ छ्देस सखी लखि मो मन लाज छयौ है ।
सोवत मै रस की वस कौ रस की ससकी वस लाल भयौ है ।।[5]

१-विल्वमसकरन- पद सं० २००
२- वही- पद सं० 202
३- वही- पद सं० 203
४- वही- पद सं० 208
५- वही- पद सं० २०५ । २०४ ।

सज सिंगार आपुन करत ह्यौं छवि छकि छक्कूर ।
तनक तास सकुचत नहीं हाँ सकुचत भरपूर ।।[1]

।३। प्रौढ़ा स्वाधीनपतिका

देखौ प्रानपति मनमोहन मुनीस मन सणुचत नाहि रंच वृज के नरन कौं ।
आपुनै करत साज हीरन के आभरन रतन जटित हेम कंकन करन कौं ।
भनत ह्रदेस केस लावत फुलेल अंग तोर कर धारै वोर वेल वेहरन कौं ।
वरन वरन पहिरावत दुकूल वर रीभ रीभ जावक लगावत चरन कौं ।।[2]

।४। परकीया स्वाधीनपतिका

उझकि झरोखन ह्यौं झांखत कला सी झझरीन ह्यौ प्रभा कौं झला झलकावत कौ
चिकन दरीच बीच चीकन मरीचन सौं छिति छकि चौंध सौं प्रदीप रलपत कौं ।
भनत ह्रदेस स्वच्छ गुच्छ मुकुतानगन आभरन अंग जगमग रसमत कौं ।
सौगुनी नछित्रपति सहित नछित्र देखि छिव कौं छिती सौं रहौ पुत्र जसुमत कौं ।।[3]

।५। गणिका स्वाधीनपतिका

रस रही तनकी सजनी धर लेत हियैं भर देत गरौ है ।
आपुन हाथन नीर पिवावत पान चबावत वान चरौ है ।
मोमन की अभिलाष ह्रदेस करैं परपूर नहीं विसरौ है ।
या पति सौं हित कौन तबै तिहि के चित सौं दरव्दार भरौ है ।।[4]

\+ \+

रीझ रीझ मन आपुनै ल्यावत वसन नवीन ।
वरन वरन रंग नित करत पहिरावत परवीन ।।[5]

१- विस्ववसकरन - पद सं० २०६
२- वही- पद सं० २०७
३- वही- पद सं० २०९
४- वही- पद सं० २११
५- वही- पद सं० २१२

८- अभिसारिका नायिका

अभिसारिका नायिका समाज में अपवाद की चिन्ता छोड़, कुलशील को तिलांजलि देकर वर्षा, आंधी, अंधकारादि की अवगणना करती हुई प्रिय से मिलने हेतु संकेतस्थल पर पहुंचती है अथवा प्रिय को अपने गृह आहूत करती है -

रत हित पति पर सज कलत कै निज सदन बुलाय ।
गनत भनत अभिसार कवि उफनत छवि सरसाय ।।[1]

यह अभिसारिका भी अनेक प्रकार की हो सकती है। हृदयेश ने इसके मुग्धादि भेद वय के अनुसार तथा समय के अनुसार दिवाभिसारिका तथा चन्द्राभिसारिका भेद प्रस्तुत किए हैं, जो अग्रांकित हैं -

।१। मुग्धाभिसारिका

नवल वधू लै चली रात भलीभांति अली जहाँ प्राणप्यारो वही कुंवरत वारे कौ ।
प्रीत कौं दिखावत बढ़ावत प्रमोद मन लोक यौं पढ़ावत लजाय अत वारे कौ ।
भनत हृदेस गैसी छवि की छटान फैलीं बाल पर वारियत हंस गत वारे कौ ।
मानौं करत किये जात आंकुस कौं दिये जात लिये जात स्वारथी मतंग मतवारे कौ ।[2]

।२। मध्याभिसारिका

चंद सौं वदन अरविंद से चरन कर द्रगन समेट लीनी खंजन की रीत कौं ।
चंपक सौ रंग अंग उरज उतंग तंग सखिन के संग जात प्रीतम की प्रीत कौं ।
भनत हृदेस मलताव सौं प्रकास रास फैल गयौ हुव गैलगैल तमजीत कौं ।
काम की लपेट पग धरत अमीत बाल लाज करै दाव पग परत पछीत कौं ।।[3]

+ +

भरी लाज मदि बाल वर चली जात पति हेत ।
उमंग धरत पग फिर फिरत पलपल फिरकी लेत ।।[4]

१- चित्रचन्द्रकरन- पद सं० २१३

२- वही- पद सं० २१४

३- वही- पद सं० २१६ ४- वही- पद सं० २१८

।३। प्रौढ़ाभिसारिका

राधिका सुजान सुणदान जात पास कान्ह अंग की सुगंध ना समान कै ।
मंद मंद हास मुख चंद की प्रकास रास अंधकार नास ज्यों प्रकासैं भासमान कै ।
आनद छ्देस कवि भणगत भ्रुकत कुंज नैन कंज मंजु कंज पुंज ना समान कै ।
वेंदा मुक्त जाल भाल छूट छूट परैं लरैं टूट टूट परैं मान तारे आसमान कै ।[1]

\+ \+

अंग अंग सकल सिंगार कर करी दीप रत मंद ।
सरद चंद तैं दुगुन दुति जात सेज वृजचंद ।।[2]

।४। परकीयाभिसारिका

ललित लवंगन की वलित सपुंज कुंज पवन सुगंधित कदंब गन वन की ।
भनत छ्देस भी अनंद नंदनंद संग सारंग अंधेरी तैसी वारि नभ घन की ।
सटपट मावी भजी झटपट चंद लखि भाग न वची है आज लाज गुरुजन की ।
छाह कर धीर धीर आवै चली तीर तीर पीछे परी भीर वीर भीर मधुपन की ।।[3]

।५। चंद्राभिसारिका

सारी सेत बादला की हीरन किनारी भारी कुंज की सिधारी प्रानप्यारी पतिनागरी ।
वगर वगर दुति जगर मगर होत डगर डगर चकि वीथि रत आगरी ।
मांग भरी मोतिन सुहाग परपूर भरी लाज भरी हीतल छ्देस हित पागरी ।
सरद सुधाकर की भाकर मलीन सवि मुख चंद ताकर दिवाकर उजागरी ।।[4]

\+ \+

गज मुक्तन के आभरन वसन सुभ्र मुख चंद ।
मिली जात अति जौन मैं समझ परत छलछंद ।।[5]

1- विलक्षकरन – पद सं० २१९
2- वही- पद सं० २२१
3- वही- पद सं० २२२
4- वही- पद सं० २२४
5- वही- पद सं० २२५

।६। दिवाभिसारिका

झलाबोर भारी जरतार भरी सारी धारी केसर कौ रंग अंग कुंदन समान है।
छूट छूट परत मरीच नग जूट ताकी झलकि अंगार सी न परत प्रमान है।
भनत छ्देस नंदलाल हिति पालन कौ राधका पधारी प्यारी परत न जान है।
दीप कौ निसान है कि दैवला कौ वान है कि हीरन की खान है कृसान है कि भानहै।[1]

+ +

ग्रीष्म दोपहर हरि मिलन चली जात वृजवाल।
अंग आभरन जगमगत मनौं भान की जाल।।[2]

।७। गणिकाभिसारिका

वार फूल हार फूल हायन मैं धार फूल फूल भरी हीतल मैं फूल भरौ गात है।
सीसफूल फूलन के कानन मैं गांस फूल देख सोग होत सूल भूल जात वात है।
भनत छ्देस जितै हेरत मयंकमुखी रात मिट जात दीस परत प्रभात है।
रूप रास नागरि सहेली आसपास लियैं प्रानपति पास कौ हुलास भरी जात है।[3]

+ +

सज सिंगार सब साज कै गई दोघरी रात।
हरी मिलन आनंद भरी चली परी सी जात।।[4]

९- प्रवत्स्यत्पतिका नायिका

जो नायिका प्रिय के भविष्य मैं होने वाले प्रवास से विह्वल हो जाती है, वह प्रवत्स्यत्पतिका नायिका कहलाती है -

गमन करत पति भवन तव तिय तन तपत अनंग।
भनत प्रवत्सत दुष्पित अव द्रग जल वहत उमंग।।[5]

१- विस्ववसकरन - पद सं० २२६
२- वही- पद सं० २२७
३- वही- पद सं० २२८
४- वही- पद सं० २२९
५- वही- पद सं० २३०

।१। मुग्धा प्रवत्स्यत्पतिका

श्रवन सुनत बाल चलत गुपाल काल हीतल विसाल ह्यौ विहाल सरसार है।
उठत बरम्मर प्रज्वाल तन बात जाग ललित सिगार हार लागत अंगार है।
भनत ह्रदेस या बसंत मैं प्रदेस क्स दिगन प्रदीप दिन दुगुन विहार है।
तिम तिम तक्त तमाल दल पुष्पमाल जिम जिम झरै द्रग बारजन वार है।[1]

\+ \+

मुग्ध पीरी सीरी परी चलब सुनत बृजराज।
प्रथम बिरह सहि कौ सकत नवल बाल बर लाज।।[2]

।२। मध्या प्रवत्स्यत्पतिका

जात सुनै तुमकौ मनमोहन बाल निहार रही अवनी तर।
आपु चले इहि प्रान तबे फिर हास विलास करौं वह कौतर।
लाल ह्रदेस न मान लखौ पुन भीतर नैक लगौ छाती तर।
पोर मनोज भरै अंसुवा धंस आवत लाज समैटत भीतर।।[3]

।३। प्रौढ़ा प्रवत्स्यत्पतिका

परत न ब रैन बत पलक न लागै पल बिरह प्रदीप जाल ज्वालन सौं सानै से।
भनत ह्रदेस मुग्ध सरद मयंक भयौ जरद हरद बत रंग लपटानै से।
हीतल तै उमग उमंग जल झलकत कोइन तैं श्रवत जलध बरसानै से।
लाल लखि चलत लली के द्रग लाल लाल जैसे लाल लागै लाल कंब कुसमानै से।।[4]

\+ \+

मो तन आप अकाज कर कहाँ जात बृजराज।
प्रफुलित वन गुंजत भ्रमर प्रगट भयौ रितराज।।[5]

१– चित्तचसकरन – पद सं० २३१
२– वही– पद सं० २३२
३– वही– पद सं० २३३
४– वही– पद सं० २३६
५– वही– पद सं० २३७

।४। परकीया प्रवत्स्यत्पतिका

रात सुनौ हरि की कलवौ उठ प्रात भई तन ताप बढ़ी है।
लाजन सौं घर जाय सकै न सुहाय कछू नहि प्रीत बढ़ी है।
यौं छल कीन प्रवीन हृदेस छली उहि मारग बीच अड़ी है।
भीषणत बाग बिहार करे तिहि छीकत बाल पछीत खड़ी है।।[1]

।५। गणिका प्रवत्स्यत्पतिका

आँषिन तै जलधार बहै यह भांत अली मनमोहन मोहै।
दूर करी पलका पर पैड़न जाय तैं लाल प्रथी पर सोहै।
धूर कपूर हृदेस मलै तन या विधि मैन विथा सवि षोहै।
ल्याउगे आप जराउ जरे नग जीवत कौ फिर पै रत कोहै।।[2]

१०– आगतपतिका नायिका

जो नायिका प्रिय के विदेश या परदेश से आने पर प्रसन्नता का अनुभव करती है वह आगतपतिका कहलाती है। संस्कृत के लक्षण-ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं के बराबर ही है; किन्तु लक्षणेतर काव्यों में इसके उदाहरण प्रभूत मात्रा में प्राप्त हो जाते हैं।[3] रीतिकालीन कवियों की परम्परा का अनुगमन करते हुए हृदयेश ने इसे अवस्था के अनुसार १०वीं नायिका के रूप में स्वीकार किया है –

आयौ दिवसवितोइ बहु दुष मोचन प्रिय जान।
तब सोचन लोचन हरष आगतपतिका वाम।।[4]

।१। मुग्धा आगतपतिका

आय गयौ सुषदाय हृदेस अलेष भए दिनमान पिया के।
देषत ही मुषचंद बढ़ी दुति आनद नाहि समात हिया के।
वेग करौ सषियान सिंगार विहार सिषाय दये रतिया के।
घूंघट मैं मुसिक्याय भली विध नैन रहें सषु आय तिया के।।[5]

१– विश्ववसकरन – पद सं० २३८
२– वही– पद सं० २४०
३– रीतिकालीन काव्य पर संस्कृत काव्य का प्रभाव– डा० दयानंद शर्मा – पृ० सं० २८६
४– वही– पद सं० २८२
५– वही– पद सं० २८३

आवत लष्यो नंदनंद कौं मुदित बाल मुखदान।
मनौं कमल विकिसत ललित उदित होत जब भान।।[1]

।2। मध्या आगतपतिका

झलकत स्वेद कन फरकत बाम भुज आमन सुनै तै बलबीर बीर नंद के।
सकुच सकुच कल करत सिंगार अंग अतर लगावत सुगंधित अमंद के।
भनत छ्देस वेस मंद मंद हास करै मंद भयौ छंद देखौ बाल मुखचंद के।
रोम रोम चैन भरी हीतल मैं चैन भरौ नैन भरौ अंजन विलोके नंदनंद के।।[2]

।3। प्रौढ़ा आगतपतिका

आयौ पी विदेस तैं रलेस कौं कलेस मैट फरकत नैन खुरौ करकत जान मैं।
छूट छूट जात छूट बारन के बंध सवि फूट फूट जात ते वियोग भरे मन मैं।
भनत छ्देस बाजूबंध बंध टूट जात लूट जात लाज कूटरात रत रन मैं।
कुछ न समात कस कंचुकि दरक जात हरष्प समात ना उमंग सवि तन मैं।।[3]

।4। परकीया आगतपतिका

आयौ येक बरस वितीत कर मीत गीत गावत अभीत प्रीत रीत लहरी फिरै।
सरकत सीस पट थरकत नैन जुग फरकफरक भुज बगर करी फिरै।
झलक छ्देस अंग बमित अनंग रंग पुलकत स्वेद मन उमंग धरी फिरै।
दास परौसिन कौ अरस परस हेत हरष्प परौसिन तैं सरस भरी फिरै।।[4]

\+ \+

जा मनमोहन सौं लगी गुप्त प्रीत जुग बीत।
आयौ सुन धाई लखन तजि सवि कुल की रीत।।[5]

1- विस्ववसकरन - पद सं० 284
2- वही- पद सं० 285
3- वही- पद सं० 287
4- वही- पद सं० 289
5- वही- पद सं० 290

। ५ । गणिका आगतपतिका

लखि जाय परी तिय की जित ही चित आवत लाल उछाह भरे ।
हित भेंट करी हिय सौं मिल कैं तन के मन के सबि सोच टरे ।
गुणमान हृदेस करी बतिया भमरे बगरे तब सेज परे ।
जितनै परदेस पराउ परे तितनै नग देउ जराउ जरे ।।[1]

+ +

गुण पायौ लायौ हियैं ज्यौं पायौ तिय राज ।
पिय आयौ लायौ कहा, मोमन भायौ साज ।।[2]

८- प्रकृति । स्वभाव । के आधार पर भेद :-

दास, रसलीन, पद्माकर आदि कवि-आचार्यों की परम्परा के अनुगमन में हृदयेश ने स्वकीयादि नायिकाओं की प्रकृति के आधार पर तीन भेद किए हैं - उत्तमा, मध्यमा और अधमा । इनमें उत्तमा मानरहित, मध्यमा लघु मानवती एवं अधमा अकारण-मानवती दास द्वारा कही गई है; परन्तु देव का आभार स्वीकार करते हुए हृदयेश नें ब इन्हें निम्नप्रकार परिभाषित किया है -

उत्तमा अनहित में हित करती है[3], मध्यमा प्रेम से ही प्रेम करती है[4];
पर अधमा नायिका हित में भी हित करना नहीं जानती[5]।

उक्त नायिकाओं का लक्ष्य पक्ष दृष्टव्य है -

उत्तमा नायिका

ढरक ढरक पति सेवत अनेक तिय परण परण बात आनंद भरत है ।
ललक ललक पग भावत रहत नित निछल बढ़त प्रेम उछल परत है ।
भनत हृदेस कवि कुशल सदैव भाव अमृत बचन मृदु फूल से भरत है ।
मार सी करत नाह रार सी करत नाह नार सी करत क्रोध आरती करत है ।।[5]

१- विश्वबसकरन- पद सं० २५१ २- वही- पद सं० २५२
३- वही- पद सं० २५३ ४- वही- पद सं० २५५
५- वही- पद सं० २५१ ५- अ- वही- पद सं० २५४

प्रगट करत अपराध पिय तिय जिय टरत न प्रीत ।
करद भेद नहि वेद लखि सुन बुध वस गुण रीत ।।[1]

मध्यमा नायिका

रात बसे वह प्रानपिया तिय मान बढ़ौ लखि कै घर आवत ।
भौंह कमान समान चढ़ीं अखियां उमिडी घन सी झर लावत ।
हास विनोद करौं पिय नै मुसक्याय हृदेस तकी सुख पावत ।
कान्ह करौं गुनगान भलीविधि मान गर्यो त्रुटि तान सुनावत ।।[2]

+ +

पग लागौ सुखदान जब गयौ भूल सब मान ।
मृगनैनी पिय हिय हरण लगी भवावन पान ।।[3]

अधमा नायिका

रूस रही अपराध बिना तुव कौ यह बान परी कित घाई ।
हास विलास करौं अत ही पर नैक तबै नहि नैन रखाई ।
कौन करै उपचार हृदेस भयौ हिय भान पखान लखाई ।
थाकि रहौं पिय ताकि हहा करि तो हिय मै वहु लाज न आई ।।[4]

नायक-वर्णन

रीतिकालीन कवियों की जिस तूलिका ने नायिकाओं के वर्णन में अपनी कलात्मकता व्यक्त की, उसी ने नायक-वर्णन में उतनी विशेष रुचि नहीं ली । कल्पना सहृदयता एवं भावना- कवित्त-निर्माण की ये तीनों शक्तियां नारी-स्वरूप हैं । कवि-हृदय में पनपने वाली इन तीनों शक्तियों ने नायिका-हृदय की जिस सूक्ष्म ढंग से परीक्षा की, उस ढंग से पुरुष-हृदय की नहीं । यही कारण है कि केवल रीतिकाल में ही नहीं बल्कि संस्कृत के ग्रन्थों में भी नायिकाभेद की तुलना में नायकभेद वर्णन-विस्तार न पा सका।[5] हृदयेश रीतिकालीन एतादृशी वर्णना-सरणि के अपवाद नहीं हो सकते थे ।

१- विश्ववशकरन- पद सं० २५५ २- वही- पद सं० २५७
३- वही- पद सं० २५८ ४- वही- पद सं० २६०
५- संस्कृत रीतिकालीन काव्य पर संस्कृत काव्य का प्रभाव- डा० दयानंद शर्मा - पृ०३५७

नायक-लक्षण- कवि के अनुसार वह पुरुष जो रसप्रवीण, बुद्धिमान, सुन्दर, गुणयुक्त, मृदुभाषी, गीतवाद्य-कविता-निपुण हो, नायक का अभिधान ग्रहण कर सकता है -

रसवर बुधवर छवि प्रबल गुनवर मृदुलित बान ।
गान तान कवितानिपुन सो नायक परमान ।।[1]

नायक-भेद

रीतिकाव्य में नायक के- कथावस्तु तथा धर्मवृत्ति के आधार पर धीरोद्धतादि, गुणों के आधार पर उत्तमादि, प्रकृति के आधार पर सात्विकादि, परिग्रह अथवा धर्म के आधार पर पति आदि, प्रेम-व्यवहार के आधार पर अनुकूलादि तथा भिन्न व्यापारों या क्रियाओं के आधार पर क्रियाचतुरादि भेद स्वीकार किए गए हैं। कवि हृदयेश को ये सभी भेद मान्य नहीं हुए। उनके नायक-भेद को निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है -

१- धर्म के आधार पर -

कवि ने धर्म के आधार पर नायक के तीन भेद- पति, उपपति और वैशिक किए हैं -

निजपति भन उपपति भनत वैसक भन पति तीन ।
व्याख्यों ब भनत प्रमान पति उपपति वैसक हीन ।।[2]

अर्थात् जो नायक नायिका का विधिपूर्वक पाणिग्रहण करता है उसे पति की संज्ञा दी गई है, उपपति वह नायक है जो अन्य नायिकाओं से प्रेम करता है अथवा जो पति स्त्री के आचार और धर्मानुष्ठान के नाश का कारण बनता है[3] और जो नायक गणिकाओं से प्रणय संपादित करता है उसे वैशिक का अभिधान दिया गया है।[4]

पति

कवि ने पति को स्वरूपायित करते हुए लिखा है -

कुंजन कुंजन गुंजत भौंर सपुंजन पुंजन कोकिल गावत ।
फूल रहीं लतका लहरैं सुभ मारुत मंद सुगंध उड़ावत ।
देख बहार बसंत हृदेस अनंदित डोलत लाल रिझावत ।
राधिका पाय धरैं जित ही जित ही कै साँवरो फूल बिछावत ।।[5]

१- विश्वबसकरन- पद सं० २०२ २- वही- पद सं० २०५
३- वही- पद सं० २११ ४- वही- पद सं० २११
५- वही-

।२। उपपति

साज साज सकल सिंगार मुण भार वारू बाज पाइबेब पाय लाजन परत है ।

वदन निसाकर निसाकर कठोर कुच अधर सरस बैन सुमन भरत है ।

भनत ब्रुदेस रंच हेरी भयौ बेरी मन फेरी फेरी गेरौ छविसिंधु मैं तरत है ।

मेरौ हियौ तो कटाक्ष विकट निकट डट भटपट भटपट कलल करत है ।।[१]

।३। वैशिक

मालती के हार परे कर गजरान भरे वार वार फूल भरे मारे नैन बाज लौं ।

बादला की ओढनी सौं जगमग होत जात मुण मक्ताव कैसौं चंद सिरताज लौं ।

तन मन धन प्रान पान जान माल कहा दीजिए ब्रुदेस रीझ लाजन कौं राज लौं ।

दस कत या जुदा कहे ते कुच मसकत ससकत वाल हिये कसकत आज लौं ।।[२]

और भी-

मन प्रफुल्लित कर धन लखत मो मन णाटकत आन ।

मुण दीपत दरसत सरस सुधा भान परमान ।।[३]

२- प्रेम-व्यवहार के आधार पर -

स्वपत्नी के प्रति प्रेमव्यवहार के आधार पर नायक विषक- अनुकूल -दक्षिण, धृष्ट तथा शठ- चतुर्धा विभाजित है - तद्यथा -

।१। अनुकूल

जो नायक अपनी पत्नी से अत्यन्त प्रेम करता है तथा परनारी से विमुख रहता है, उसे अनुकूल नायक कवि ने कहा है।[४] उदाहरणार्थ-

अंचला की ओट देहि चंचला छमंक जैसैं लोकत निसंक अंक भर भर रावरै ।

हौं करत वाढत विनोद जी निसां करत सांक रत जी मै रंच ना करत तावरै ।

१- विरुदावलीकरन- पद सं० २९२   २- वही- पद सं० २९४

३- वही- पद सं० २९५   ४- वही- पद सं० ३०१

और मृगलोचनी न आवत इन्देस मन तेरौ मुखचंद कौ चकोर लगौ बावरे ।
वचन सुधा सौं रोम रोम जात भीज भीज रीभ रीभ पीहि प्रान करत निछावरें ।[1]

।2। दक्षिण

सभी पत्नियों से समान प्रेम करने वाला नायक दक्षिण नायक कहा गया है[2]। यथा –

कीनी मिजवानी मृदुवानी सुखदानी कान्ह जानी वृजवाल बाल भोजन के चाहनै ।
माँग भर चंदन सौं चंदन लपेट अंग अतर सुगंधन अमंद कित चाहनै ।
भनत इन्देस राग सागर कौ राग राग मोहि मोहि लीनी मन मदन उमाहनै ।
सीतल करीं है सबै सीतल गुलाब जल हरि छवि हीतल तें निकसत नाहिनै ।।[3]

।3। धृष्ट

पत्नी के मान की चिन्ता न कर निर्भयतापूर्वक अपराध करने वाला नायक धृष्ट नायक कहा जाता है –

निलज रहत नहिं डर करत करै रहत कित चाय ।
गारि सुनत तिय मुख अरुण धृष्ट भनत कवि ताय ।।[4]

तद्यथा –

बालम की मत जालिम चोर करै तिय चोर न चित्त धरै है ।
रात कौ कहु प्रात भजै घर लाज डरै नहि मार डरै है ।
जोवन के मद मोद इन्देस करै मन मै कुछि आन अरै है ।
बाल खिजाय कै फनाय करै फिर धाय के आय कै पाय परै है ।।[5]

।4। शठ

अपराध करने में थोड़ा –भी भयभीत न होकर वाक्-चातुर्य और स्वार्थ-सम्पादन की क्रिया में अत्यन्त कुशल शठ नायक कहलाता है –

मधुर वचन कर हिय हरत तिय हिय करत सु चैन ।
कंजन छद विग हिय कपट सो सठ कहत बनै न ।।[6]

1– विश्ववशकरन– पद सं० २८०　　2– वही– पद सं० २८२
3– वही– पद सं० २८३　　4– वही– पद सं० २८५
5– वही– पद सं० २८६　　6– वही– पद सं० २८८

यथा-

दिपत कपोल जातरूप तै अमोल गोल मग द्रग देख देख हियौ हरसत जात ।
रूप मै कला सी है हुलासी मैनका सी भासी प्रभा के भला सी चंचला सी दरसत जात ।
भनत छ्रदेस कहा भयौ जाइ भोर वोर परत कठोर हतै तन तरसत जात ।
कोप भरी वान रसखान मान मेरे जान वदन सुधाकर तै सुधा वरसत जात ।।[1]

और भी -

विन दुरगुन द्रगवल भरत नित प्रत करत कलेस ।
सपत करत तुव कुवन पर कर धर जुगल महेस ।।[2]

नायक के अन्य भेद

कवि ने नायक के परम्परागत चार भेद - मानी, वचन चतुर, क्रियाचतुर तथा प्रोषित किए हैं -

मानी वचनन चातुरी क्रिया चतुर गुनमान ।
प्रोषित नायक ना भनत ज्यौ प्रोषित तिय जान ।।[3]

।१। मानी नायक

जिस प्रकार मानिनी नायिका नायक से मान करती है उसी प्रकार मानी नायक अपराधी होते हुए भी नायिका से मान करता है। इस विशिष्ट व्यापार में नायिका नायक-मानमोचन का प्रयास करती है -

वोल वोल पंडित प्रवीन गुन मंत्रन मै रावरे मिलाप की करावे जप जाप की ।
मान कर बैठे कहा वान परीसुभदान कौन निरवार है असंगत निलाप की ।
भनत छ्रदेस वेस वान सुनै वेली देखी छूट पैसी सेसी मेघ करहै तराप की ।
वेग क्यौ धाप हरौ वाल के हिये की ताप मान करै आप के मनावे लाल आप की ।[4]

१- विरुदप्रकाश- पद सं० २८९
२- वही- पद सं० २९०
३- वही- पद सं० २९६
४- वही- पद सं० २९७

।२। वचन चतुर नायक

वचन चतुर नायक अपनी वचनचातुरी द्वारा नायिका के समक्ष अपना अभिप्राय व्यक्त कर देता है। ऐसे नायक में बुद्धि प्रभूत परिमाण में रहती है।[1] यथा -

ग्वाल कही जमुना तट कौं बरनायुध नै जब बान गही है।

कान्ह कही इस बान अचानक तान भरी रसगान पगी है।

बैठ कुदेस सुनौं सुखदायक भान नहीं यह कौन घड़ी है।

हौन दै प्रात दिखात नहीं कछु बात कहां अब रात बड़ी है।।[2]

।३। क्रिया चतुर नायक

यह नायक उपर्युक्त नायक की तरह क्रियाचातुरी द्वारा अपना गोप्य अभिप्राय प्रकट करता है। यह नायक गुण-सम्पन्न, छल-बल-प्रवीण तथा अत्यन्त रसप्रवीण होता है।[3] तद्यथा -

मोर के पक्ष किरीट बिसाल मनोहर मूरत बान बढ़ी है।

नैन रसाल गरे बनमाल भरी छबि चालन ग्वाल छड़ी है।

नंद को लाल सपंडित मंडित भोलन मंत्र कुदेस पढ़ी है।

छ्वै छिगुनी छिन मैं छतिया बतिया कहिकै छलबाज बढ़ी है।।[4]

और भी-

न्हात बाल छल नीर मैं भयी मीन लपटाय।

लई लपट नँदनंद नै झपट लियै लपटाय।।[5]

।४। प्रोषित नायक

जब नायक विदेश या परदेश में जाकर अपनी प्रियतमा के वियोग में व्याकुल होता है तो वह प्रोषित कहलाता है। यत: प्रोषितपतिका नायिका की तरह ही इसकी व्यथा आविर्भूत होती है, अत: कवि ने इतना ही कहकर - 'प्रोषित नायक ना भनत ज्यों प्रोषित तिय जान' अवकाश ले लिया। पद्माकर कवि ने इस नायक का वर्णन

1- जिह्ववविलासकरन- पद सं० २९९ 2- वही- पद सं० ३००

3- वही- पद सं० ३०२ 4- वही- पद सं० ३०३

5- वही- पद सं० ३०४

किया है।[१]

नायिका की सहायिकाएं

संस्कृत-काव्यशास्त्रियों तथा हिन्दी के कवि-आचार्यों ने नायिका की सहायिकाओं का भी परिगणन नायिका-भेद विषय के सन्दर्भ में किया है। साहित्य-दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने इस प्रसंग में सखी, नटी, दासी, धायपुत्री, पड़ोसिन, संन्यासिनी, शिल्पकार की स्त्री आदि का उल्लेख करने के अनन्तर स्वयंदूतिका नायिका की उद्भावना संभवत: इसलिए की है कि प्रणय की तीव्रता, गंभीरता, विषय की गोपनीयता आदि का यथावत प्रस्तुतीकरण तथा निर्वाह नियुक्त मध्यस्थ द्वारा निवेदित प्रणय में नहीं हो पाता। वास्तविक तथ्य तो यह है कि अन्य के अवलम्ब के बिना ही जिस प्रेम का विकास होता है, वही प्रेम उच्चकोटि का होता है। `षट्कर्णो भिद्यते मंत्र:` के अनुसार मध्यस्थ के कारण प्रेम का रहस्य खुल भी सकता है, अत: चतुर नायिका प्राय: स्वयंदूतिका होना पसंद करती है।[२] परन्तु सखी अथवा दूती का उपयोग उस स्थिति में अवश्य हितकारी सिद्ध होता है जब नायिका नारी सुलभ लज्जा के आवरण-वश अपने प्रेम को स्वत: प्रकट नहीं करना चाहती अथवा जब वह अपने प्रणय की उपयुक्त तथा प्रभावी शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करने में अपने को असमर्थ समझती हो। ऐसी स्थिति में नायिका के आन्तरिक भावों का सुष्ठु विज्ञापन दूती के द्वारा किया जाता है, जिसके मनोवैज्ञानिक परिणाम में नायक अथवा नायिका की दृष्टि में प्रणय-पात्र का आकर्षण अनंतगुना बढ़ जाता है। संस्कृत साहित्य में प्रणय-निवेदन हेतु नायिकाओं द्वारा ही दूतीयोजना नहीं अपितु नायक द्वारा भी एतादृश सम्प्रेषण उपलब्ध होता है। बाणभट्ट ने `हर्षचरितम्` में नायक दधीचि द्वारा सरस्वती के प्रति प्रणय-प्रकाशन हेतु दूती मालती का निवेश किया है।[३] इसमेंसन्देह नहीं कि दूती का कार्य बड़ा ही कठिन होता है। अपने पक्ष के प्रति दूसरे पक्ष में उत्कण्ठा तथा सहानुभूति को जागरित करने तथा निवेदित प्रणय को सफल बनाने का कार्य आसान नहीं है फिर प्रेम के जागरित हो जाने पर भी उसे सुरक्षित रखना, संकेत-स्थान निश्चित करना, मान की दशा में पारस्परिक विश्वास तथा सम्मिलन के लिए उचित भूमि प्रस्तुत करना आदि व्यापार तो और भी दुःसाध्य हैं और यह सब करना पड़ता है अपने आपको

१- पद्माकर ग्रन्थावली- विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - जगद्विनोद- पद सं० ३१६

२- बिहारी और उनका साहित्य- डा० हरवंशलाल शर्मा व अन्य - पृ०

प्रणय-सरोवर के जल से पद्मपत्र के समान असम्पृक्त रहते हुए[1]।

स खी

कवि हृदयेश के अनुसार सखी वह है जो नायक तथा नायिका के अन्तस्तल की बात अपने हृदय में धारण कर उपयुक्त समय आने पर एक दूसरे पर प्रकट करती रहे-

पिय तिय जिय की बात जिहि कहत दुरावत नाहि।
ताय कहत सांची सखी राखत है हिय माहिं।।[2]

इसके चतुर्विध कार्य - मंडन,[3] शिक्षा[4], उपालम्भ[5], तथा परिहास[6] - हैं। इन माध्यमों से वह प्रणयीजनों के पारस्परिक प्रेम को प्रवृद्ध करती है।

दू ती

कवि ने दूती के उत्तम, मध्यम तथा अधम भेद प्रस्तुत किए है -

।१। उत्तम दूती

इस कोटि की दूती नायक तथा नायिका दोनों के हृदयों को अपने अमृत-सदृश वचनों से मोहित कर लेती है। इसका दृष्टिकोण यह रहता है कि येनकेनप्रकारेण प्रणयीजनों का सम्मिलन संभव हो जाय। इस प्रयोजन में विधि-निषेधों या वर्जनाओं के लिए अवकाश नहीं -

मनमोहत दोनों तरफ अमृत बचन दरसाय।
उत्तम दूती भनत कवि छलबल देत मिलाय।।[7]

।2। मध्यम दूती

यह दूती प्रणय-सन्देश-निवेदित करने में किंचित् भी गोपनीयता या दुराव की प्रवृत्ति नहीं रखती। प्रेमीयुगल के हिताहित को समदृष्टि से महत्व देती हुई यह स्वव्यापारवत होती है -

---

1- ~~विरहवसकरन-स्वकर~~ बिहारी और उनका साहित्य- डा० हरवंशलालशर्मा व अन्य-पृ०११
2- विरहवसकरन- पद सं० ३१९ 3- वही- पद सं० ३२१
4- वही- पद सं० ३२३ 5- वही- पद सं० ३२५
6- वही- पद सं० ३२७ 7- वही- पद सं० ३३०

हित अनहित वचनन भनत तन मन यही सुभाइ ।
मद्धिम दूती कहत है बुध बल अत कित लाइ ।।[1]

।3। अधम दूती

उद्धत स्वभाव वाली यह दूती प्रणयीजनों के पारस्परिक प्रणय-निवेदन में नीरस, कर्कश अथवा कठोर वचनों का प्रयोग करती है। अपने कर्म की प्रतिक्रियास्वरूप दुष्परिणाम की संभावना से भी भयभीत नहीं होती -

बचन कहत नीरस सकल भौहैं सौंहैं तान ।
अधम दूतिका कहत है वे दुरगुन पहिचात ।।[2]

इसके वचनों का आस्वाद लेते ही बनता है -

लजनी बड़ी है पायजेव बजनी है वडी रजनी बडी है बाल फूल कैसी छरी है ।
ता लखम जामहै जहान दीप फैल है दिखान भान तोगन के जान सुधाभान किधौंपरी है ।
भनत हृदेस दिव्यनारिन सौं खेल मेल नाहि ल्ली जोत हिये त्याउ त्याउ ह भरी है ।
झटपट होत कैसो गटपट ह्वै है बडी अटपट बात तुम्है खटपट परी है ।।[3]

पुनर्यथा -

लाज सरम जानत नहीं रसिया भये नवीन ।
तनक धीर धारत नहीं चाहत तिया प्रवीन ।।[4]

नायिका-भेद परीक्षण

रीतिकालीन कवि हृदयेश ने नायक-नायिकाओं के वर्णन में जिस विशाल भित्ति की कल्पना कर उसके ऊपर जिन विभिन्न चित्रों को उत्कीर्ण किया उनकी प्रेरणा पूर्ववर्ती कवियों - मतिराम, देव, दासादि - से प्राप्त हुई है। इन सभी वर्णनों में न केवल शास्त्रीय परम्परा का निर्वाह है अपितु कवि की अनुभूति की गहराई, नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का उपयोग एवं भावना का स्वतंत्र उच्छलन भी उपलब्ध होता है।

धर्म के आधार पर कविकृत नायिका-वर्गीकरण जिसके अनुसार स्वकीया, परकीया तथा गणिका परिगणित है, सार्थक तथा युक्तियुक्त है। ज्येष्ठा-कनिष्ठा का एकमात्र

1- शिखनखबकरन- पद सं० 335 2- वही- पद सं० 338
3- वही- पद सं० 339 4- वही- पद सं० 340

आधार नायिका के प्रति पति के प्रेम की न्यूनता-अधिकता ही है, परन्तु यह वर्गीकरण गौण है।[1] इन नायिकाओं में स्वकीया की पतिव्रता का आदर्श अपनी उच्चभूमि पर अवस्थित होता हुआ दृष्टिगत होता है। वय:क्रमानुसार स्वकीया के मुग्धा, मध्या एवं प्रौढ़ा भेद किए गए हैं जो परम्पराग्रहीत तथा उपयुक्त हैं। परन्तु वय के साथ-साथ रतिप्रसंग के प्रति नायिका के दृष्टिकोण में जो परिवर्तन होता जाता है वास्तविक महत्त्व उसका है। फिर भी वय से अधिक उपयुक्त एक शब्द शायद और नहीं मिल सकता था।[2] नायिका के धीरादि भेदों का आधार माना गया है नायिका का मान अथवा ईर्ष्या-कोप; जिसका संबंध नायक के अपराध से है। यह विभाजन अधिक मूलगत न होकर बहुत कुछ संयोग और परिस्थिति पर आश्रित है और फिर यह खण्डिता आदि की सीमा में भी पहुंच जाता है,[3] अत: यह अधिक समीचीन तथा आवश्यक नहीं।

परकीया की कल्पना का आधार भी पूर्वप्रचलित संस्कृत ग्रन्थों की प्रणाली ही है। अपने प्रियतम को छोड़ परपुरुष से प्रेम करने वाली नायिकायें पहले से ही प्रचलित हैं। दुनियां की आंखों में धूल झोंक कर यह नायिका उपपति के द्वारा आयोजित संकेतस्थल पर पहुंचती है। इस नायिका के वैवाहिक जीवन और अविवाहित स्थिति को ध्यान में रखते हुए कवि ने ऊढ़ा और अनूढ़ा। परम्परागत परोढ़ा और कन्यका। ये दो भेद किए हैं। अनूढ़ा चूंकि अविवाहित रहने पर किसी पुरुष के प्रति प्रेम की भावना से भावित होती है, इसलिए प्रथमानुराग का अनुभव करने के कारण यह निम्न श्रेणी में नहीं रखी जा सकती। शेष गुप्तादि परकीयायें कुलटा - कुलं त्यक्त्वा अटतीति - के रूप में स्वीकारी जा सकती हैं। ये सभी परपुरुषरति अथवा प्रेम का गोपन जिस किसी प्रकार से करने का प्रयत्न करती हैं।

गणिका अथवा वेश्या नायिका के वर्णन भी संस्कृत काव्यों की देन हैं। भारतीय इतिहास में एतादृश वर्णनों की न्यूनता नहीं। हृदयेश कवि का युग वेश्याओं से सर्वथा संबद्ध रहा है। झांसी राज्य के इतिहास के साथ वेश्याओं का अतिकृत संयुक्त रहा है यह बात भी सर्वजनविदित है। इस राज्य के तत्कालीन शासक वेश्याओं से सम्पृक्त रहे हैं। अत: इसके नायिकात्व में असमीचीनता नहीं।

१- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० १३४

२- वही- पृ० १३४

३- वही- पृ० १३४

दशा-भेद के अनुसार अन्यसुरतिदुःखिता, गर्विता तथा मानवती - ये तीन भेद कवि ने स्वीकार किए हैं। परिस्थितिवशात् ये सभी नायिकाएं परिवर्तित मनोदशाओं में दृष्टिगत होती हैं। कोई भी नायिका यह नहीं सहन कर पाती कि उसका प्रिय उसकी सपत्नी अथवा दूती के साथ ही रमण करे, अतः यह भेद समीचीन ही है। डा० शर्मा ने इसकी उद्भावना के सन्दर्भ में लिखा है - सामन्ती युग में एक नायक की बहुत-सी नायिकाएं होने के कारण अनेक सम्भोगदुःखिताएं होती होगीं जिससे संस्कृत के काव्यों में उनके अनेक चित्र उभर कर आगए तथा रीतिकाल में उनको यथासंभव परिवर्तित कर अपनाया गया। दूसरी नायिका गर्विता के स्रोत भी संस्कृत काव्य में प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होते हैं जहां वह कभी अपने रूप पर गर्व करती है तो कभी प्रेम के ऊपर। मानवती नायिका के चित्र अमरूशतक तथा गाथासप्तशती जैसे ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं,[1] अतः कवियों की परम्परानुसार ही इन्हें ग्रहण कर लिया गया। इस त्रिविध नायिकाभेद की स्थिति वर्तमान में भी देखी जाती है, अतः इनकी उद्भावना में अनौचित्य नहीं। परन्तु इस वर्गीकरण के सन्दर्भ में डा० नगेन्द्र का अभिमत है - इस विभाजन के अन्तर्गत अन्यसुरतिदुःखिता और मानवती का तो खण्डिता तथा धीरादि में पूर्णतः अन्तर्भाव हो जाता है और गर्विता भी स्वाधीनपतिका में सरलता से अन्तर्भुक्त कर ली जा सकती है, अतः लक्ष्यों में प्रमाणों या उदाहरणों - दृष्टान्तों की संभावना होने पर भी यह वर्गीकरण अधिकशिथिल और अनावश्यक है।[2]

अवस्थानुसार स्वाधीनपतिकादि दश भेदों में स्वकीया, परकीया तथा गणिका वर्गीकृत है। स्वकीया के अन्तर्गत मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा को लेकर तथा तदनन्तर परकीया तथा गणिका को सम्मिलित कर स्वाधीनपतिकादि दश नायिकाओं में से प्रत्येक के पांच-पांच भेद - मुग्धादि क्रम से - किए गए हैं। यह परम्परागत नायिका-वर्णन असंगत होने के कारण दोषपूर्ण है यद्यपि अवस्थानुसार मौलिक वर्गीकरण जिसमें स्वाधीनपतिकादि अष्ट अथवा दश नायिकाएं परिगणित हैं, समीचीन तथा सुसंगत है।[3] असंगतियों के कारण निम्न हैं -

---

1- रीतिकाव्य पर संस्कृत काव्य का प्रभाव- डा० दयानंद शर्मा - पृ० २३६

2- रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र - पृ० १३३

3- वही- पृ० १३३

१- स्वकीया नायिका तो स्वाधीनपतिका हो सकती है; पर परकीया तथा गणिका को स्वाधीनपतिका कैसे कहा जा सकता है ? जिस अनूढ़ा तथा ऊढ़ा परकीया किसी अन्या के पति को वशीभूत कर लिया है उसे स्वाधीनपतिका कथमपि नहीं कहा जा सकता। गणिका या सामान्या मात्र अर्थ के लिए ही प्रेमप्रदर्शित करती है और वह इसी प्रयोजन की पूर्ति हेतु किसी भी वैशिक की अंकशायिनी बनने के लिए उद्यत रहती है। ऐसी गणिका को स्वाधीनपतिका का अभिधान कैसे दिया जा सकता है ?

2- खण्डिता नायिका के सन्दर्भ में भी कुछ ऐसी ही बात है। खण्डिता का पति जब कहीं अन्य स्त्री के पास रात्रि व्यतीत कर प्रात: उसके पास आता है तो वह खण्डिता कहलाती है पर परकीया और गणिका को खण्डिता किस दृष्टि से कहा जाएगा ? वह परकीया जो किसी एक ही व्यक्ति से प्रेम करती है; उस अनन्या का प्रिय यदि कहीं अन्यत्र रात्रि बिताकर प्रात: उसके पास आता है तो उस परकीया को किसी सीमा तक खण्डिता मान भी सकते हैं पर गणिका को खण्डिता कहना कदापि समीचीन नहीं।

3- इसी प्रकार स्वकीया और परकीया तो प्रोषितपतिका मानी जा सकती है पर गणिका प्रोषितपतिका कैसे ? क्या गणिका का कोई एक पति होता है ? यदि उसका कोई एक पति है तो फिर वह गणिका कैसी ? अत: प्रोषितपतिका के सन्दर्भ में गणिका का नाम न रखना ही उचित होता।

४- अभिसारिका के प्रकरण में पूर्ववत मुग्धादि पांच प्रकार की अभिसारिकाओं का वर्णन हुआ है। यह वर्णन भी मनोवैज्ञानिक तथा युक्तियुक्त नहीं। वस्तुत: अभिसारिका का संबंध परकीया से ही है, स्वकीया से नहीं; अत: स्वकीया को अभिसारिका कहना असंगत है। मुग्धादि नायिकाओं के अभिसरण का क्या अर्थ ? अभिसरण वही करेगी जिसे तो लगाव, भय या डर हो; स्वकीया नायिका क्यों काली रात्रि के भयानक वातावरण में गृह त्याग कर संकेतस्थली को जाने लगी ? गणिका अभिसारिका भी अनावश्यकतया परिगणित है। अर्थदासी गणिका भला प्रिय के लिए प्राणोत्सर्ग जैसी जड़ता क्यों करने लगी ?

५- अवस्था के अनुसार उपर्युक्त नायिकाओं के आठ भेद - स्वाधीनपतिका, प्रोषितपतिका, उत्का, वासकसज्जा, अभिसारिका, विप्रलब्धा, खण्डिता, कलहान्तरिता- ही लगभग संस्कृत के सभी ग्रन्थों के आचार्यों द्वारा स्वीकार किए गए हैं। रसमंजरीकार ने अवश्य नवीं नायिका - प्रवत्स्यत्पतिका - का संकेतमात्र किया; किन्तु हिन्दी के कवि-

आचार्यों ने आगतपतिका की नवोद्‌भावना की है तथा प्रवत्स्यत्पतिका की सम्भावना को आकार प्रदान किया है। हृदयेश ने इन दोनों भेदों को ठीक ही स्वीकार किया है क्योंकि लक्ष्य साहित्य में ऐसी नायिकाओं के पर्याप्त वर्णन उपलब्ध होते हैं।

नायक-भेद-परीक्षण

नायिकाओं के प्रति व्यवहार के आधार पर नायक चार प्रकार के उल्लिखित हैं - अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ। ये भेद केवल पति के हैं। उपपति के भेद कवि ने नहीं किए। दक्षिण, शठ तथा धृष्ट भेद उपपति में भी किए जा सकते थे।

धर्म के आधार पर कवि ने नायक के त्रिभेद - पति, उपपति और वैशिक- माने हैं। यह वर्गीकरण युक्तियुक्त ही है।

नायक के अन्य भेदों में वाक्चतुर, क्रियाचतुर, मानी तथा प्रोषित परिगणित हैं। ये भेद भी समीचीन तथा संगत हैं।

काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में भरतसम्मत अष्टनायिकाओं के समकक्ष केवल प्रोषित नायक का ही वर्णन होता है जब कि अष्ट अथवा दश नायिकाओं के समकक्ष अष्ट अथवा दश नायकों की भी कल्पना या उद्‌भावना की जा सकती थी, परन्तु ऐसा काव्यशास्त्रियों ने नहीं किया। हिन्दी काव्यशास्त्र में वर्णित नायिकाभेदों में उपर्युक्त भेदों का प्राय: अभाव रहा है। इसे पुरुषों के प्रति अनुचित पक्षपात ही कहना चाहिए। सम्भवत: नायक के इन भेदों के न लिखने का कारण पुरुषों का बहुपत्नीविवाह भी रहा होगा। जो भी हो, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का अभिमत यहां प्रस्तुत करना असमीचीन न होगा जिन्होंने रसज्ञ-रंजन ग्रन्थ में लिखा है - नायिकाभेद के समान नायकभेद का भी विस्तार दिया जा सकता था।[1]

डा० दयानंद शर्मा ने नायकभेदविस्तार के संदर्भ में जो अभिमत प्रस्तुत किया है वह उल्लेख्य है - नायकों की भूमिका तो नायिकाओं पर ही आधारित है। अतएव पति, उपपति और वैशिक इन तीनों की परिणति नायिकाओं के तीनों भेदों में हो जाती है, क्योंकि नायकों की विभिन्न चेष्टाओं के फलस्वरूप ही तो नायिकाओं की भित्ति खड़ी होती है। यही कारण है कि संस्कृत और हिन्दी कवियों ने इनके वर्णन में केवल परंपरा का निर्वाह ही किया है। तभी तो नायकवर्णन उतना विस्तार नहीं ले सका जितना कि नायिका-वर्णन।[2]

१- रसराज श्रृंगार - डा० रामचंद्र वर्मा - पृ० ४४

चतुर्थ अध्याय

हृदयेश का भाव पक्ष एवं कला पक्ष

अपौरुषेय वेदों के उत्तर भाग वेदान्त में ब्रह्म को रसस्वरूप कहकर उसकी अवाप्ति को आनन्दोपलब्धि का कारण माना गया है।[1] इसी प्रकार सौन्दर्योपासना सम्पृक्त काव्य आनन्दानुभूति के साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। यह आनन्दानुभूति रसास्वादमूलक है, क्योंकि रसास्वादन से ही आनंद की प्राप्ति होती है। आनन्दानुभूति उस अनिर्वचनीय स्थिति की सूचिका है जिसमें स्व-परसंवेदनराहित्य के साथ वेद्यान्तर का विगलन होता तथा स्वाकारवदभिन्नत्व का प्रकाशन। इस पारलौकिकी पर विभावादिजीवितावधिका अनुभूति को `ब्रह्मानंद सहोदर' के रूप में मान्यता दी गई है।[2]

नाट्यशास्त्राचार्य भरतमुनि ने रस को आस्वाद्य स्वीकार करते हुए कथित किया है कि जिस प्रकार विविध व्यंजनों से संस्कृत अन्न का भोग करते हुए मानव रस का आस्वादन कर हर्षादि का अनुभव करते हैं उसी प्रकार नानाभावों के अभिनय से व्यंजित स्थायी भावों का आस्वाद करते हुए सहृदय तज्जन्य हर्ष का अनुभव करते हैं।[3] ये भाव या मन के विकार[4] सहृदयों के अन्तःकरणों में प्रसुप्तावस्था में अवस्थित रहते हैं जो अनुकूल विभावादि के संयोग से उद्बुद्ध होकर रस के रूप में पर्यवसित होते हैं। भरतमुनि का मन्तव्य है :-

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः[5]

रस के ये अवयव - विभावादि - क्या हैं ? काव्यप्रकाशकार मम्मट विवृत करते हैं -

---

१- तैत्तिरीयोपनिषद् - २।७

२- साहित्य- दर्पण - ३।२, ३

३- नाट्यशास्त्र - पृ० ७१

४- अमरकोश - विकारो मानसः भावः - १।७।२

५- नाट्यशास्त्र- पृ०७१

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च ।

रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः ।।

विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः ।

व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायिभावो रसः स्मृतः[1] ।।

गोस्वामी तुलसीदास ने भाव तथा रस-भेदों की संख्या अपार कही है,[2] पर साहित्याचार्यों ने आठ[3] या नव[4] स्थायिभावों के अनुरूप रसों की उद्भावना की है। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने `वत्सलता`[5] स्थायिभाव स्वीकृत कर इन रसों की संख्या दस निर्धारित की है। ये भाव तथा रस निम्न प्रकार हैं -

	स्थायी भाव	चर्व्यमाण रस
१-	रति	शृंगार
२-	हास	हास्य
३-	शोक	करुण
४-	क्रोध	रौद्र
५-	उत्साह	वीर
६-	भय	भयानक
७-	जुगुप्सा	वीभत्स
८-	विस्मय	अद्भुत
९-	निर्वेद	शान्त
१०-	वत्सलता	वात्सल्य

आचार्यों ने उपर्युक्त भावों तथा रसों में परस्पर अन्योन्याश्रय संबंध माना है।[6]

१- काव्यप्रकाश - मम्मट - ४ । २७, २८

२- भावभेद रसभेद अपारा - रामचरितमानस - बाल० ९। ११

३- नाट्यशास्त्र - षष्ठ अध्याय - पृ० ७१ - अमरकोश १।७।१७

४-प्रतापरुद्रयशोभूषण- विश्वनाथ - पृ० १४८

५-साहित्यदर्पण- विश्वनाथ - ३। २५१-५४

६- नाट्यशास्त्र- भरतमुनि - षष्ठ अध्याय श्लोक ३५, ३७

रस के अवयव

१-विभाव - अपने स्पष्ट ज्ञान के द्वारा जो स्थायी भाव को परिपुष्ट करता है उसे विभाव कहते हैं। अन्य शब्दों में वे व्यक्ति या पदार्थ जो भावोत्तेजना के मूल कारण है, वे विभाव कहलाते है - ` विभावयन्ति इति विभावा: `। विभाव के भी दो भेद हैं - ।१। आलंबन तथा ।२। उद्दीपन। जिस पर रस प्रधानतया अवलंबित है, उसे आलंबन विभाव का अभिधान दिया गया है, यथा नायक-नायिका। आलंबन विभाव दो प्रकार के होते हैं - आश्रयालम्बन तथा विषयालम्बन। यदि नायक को देखकर नायिका के मन में रति की उत्पत्ति होती है तो नायक आलम्बन विभाव हुआ और नायिका आश्रय विभाव। जिससे रस की उद्दीप्ति होती है, उसे उद्दीपन विभाव कहते हैं। हृदयेश ने इसके भेदों को निम्न प्रकार गिनाया है :-

रित बसंत सुभ गंध अरू चंदन चंद अमंद।
प्रफुल्लित कुंजन कोकला भौंर गुंज रसछंद।।
पावस बोल पपीहरा केकी बरसत मेह।
ताल कंज दूती बचन पिय तिय बढ़त सनेह।।
मंजन अंजन दृगन में पहिरत सकल सिंगार।
पीत न ती तन होत है उद्दीपन बिस्तार।।[1]

२- अनुभाव - कर्मेन्द्रियों के सहारे जब आन्तरिक अथवा अन्त:करण में उत्पन्न भावों की चेष्टा, व्यापार आदि के रूप में स्थूल अभिव्यक्ति होती है तब उन्हें अनुभाव कहते हैं। हृदयेश ने इन्हें निम्न प्रकार स्पष्ट किया है :-

पिय तिय तिय पिय की लखत चित रस अनुभव होय।
सो बरनत बुध बत सकल सबि रसग्रंथ विलोय।।
नैन सैन रस बैन सुन ही तल बढ़त अनंद।
प्रगट होत लखा भाव वर कवि जन बरनत छंद।।[2]

इन्हें कायिक, वाचिक और सात्त्विकों में विभक्त किया गया है। हृदय की सत्त्व

१- शिरवनखकरन - हृदयेश - पद सं० ३१४-१६

२- वही- पद सं० ३४१-४२

वृत्ति से सम्भूत सात्त्विक भावों का रस से अधिक निकट का संबंध है, अतः आचार्यों ने इनकी संख्या आठ निर्धारित की है। परम्परा के अनुगमन में हृदयेश ने आठ सात्त्विक भावों – स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय – का स्वरूप निर्धारण निम्नप्रकार किया है –[1]

१-स्तम्भ – सकुच सुष्य भय दुष्य तें अचल अंग पर जात।
थंब कहत कवि मुदित मन जहं तहं प्रगट दिखात।।[2]

२-स्वेद – कोप हरष डर श्रम भये अंग अंग नीर उमंग।
कहत स्वेद तासों सकल बुध जन अकल अभंग।।[3]

३-रोमांच – सीत भीत हरष हरष तें उठत रोम तन जात।
रोम उमग बुध जन भनत जिनकी बुद्धि बिसात।।[4]

४-स्वरभंग – हरष अधिक अत भीत जह कोप अधिकि मद होय।
तहां होत सुर भंग है बरनत कवि सबि कोय।।[5]

५-कम्प– अति अनंद अति क्रोध तें अति भय जहरत देहि।
वेपु बखानत सकल कवि परपूरन गुन गेहि।।[6]

६-वैवर्ण्य – बहुत मोहु अति क्रोध तें अरु भय हीतल होय।
बुध जन पंडित कवि सकल कहत बैवरन सोय।।[7]

७-अश्रु – हरष होत दुख होत अरु भय लागत तब होत।
जल आवत भर भर द्रगन अश्रु कहत कवि गोत।।[8]

८-प्रलय – तन मन धन जन ना लखत जकि थकि अकि छकि जाय।
प्रलय कहत शृंगार में कवि बुध जन समुझाय।।[9]

१- विश्वप्रकाश – हृदयेश – पद सं० ३४५   २– वही पद सं० ३५० (346)
३– वही– पद सं० ३५३ (340)   ४– वही पद सं० ३५६ (342)
५– वही– पद सं० ३५९ (344)   ६– वही पद सं० ३६२ (345)
७– वही– पद सं० ३६५ (346)   ८– वही पद सं० ३६८ (345)
९– वही– पद सं० ३७१ (346)

कवि ने `जृम्भा` नामक नवम सात्त्विक भाव भी स्वीकार करते हुए इसे भी स्थान दिया है -

९- जृम्भा - अति आलस लिय उमगि तन पिय संग जगि जम्हुहात।
जृंभा तासौं कहत है कवि जन रसिकि बलात ।।[1]

३- व्यभिचारी भाव :- जिन भावों का किसी रस-विशेष से संबंध नहीं होता और जो स्थायी भाव के मध्य में संचरण या व्यभिचरण करते हुए उसे व्यापकता और उत्कर्ष प्रदान करते हैं और सागर में लहरों के समान उन्मग्न और निमग्न होते रहते हैं, वे व्यभिचारी अथवा संचारी भाव का अभिधान ग्रहण करते हैं।[2] इनकी संख्या ३३ है - निर्वेद, ग्लानि, शंका, श्रम, धृति, जड़ता, हर्ष, दैन्य, उग्रता, चिन्ता, त्रास, ईर्ष्या, अमर्ष, गर्व, स्मृति, मरण, मद, सुप्त, निद्रा, विबोध, व्रीड़ा, अपस्मार, मोह, सुमति, आलस्य, आवेग, तर्क, अवहित्थ, व्याधि, उन्माद, विषाद, उत्सुकता और चपलता। इस विशिष्ट रस के अवयव के भेदों की लक्षण तथा उदाहरणों सहित प्रस्तुति कवि हृदयेश ने नहीं की।

शृंगार रस

आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रंथ `साहित्यदर्पण` में `शृंगार` के स्वरूप को उद्घाटित करते हुए लिखा है कि कामदेव के उद्भेद को `शृंग` कहते हैं और उसके आगमन हेतु उत्तम-प्रकृतिप्राय रस को `शृंगार` कहा जाता है। परस्त्री तथा अनुरागशून्य वेश्या को छोड़कर अन्य नायिकाएं तथा दक्षिण आदि नायक इस रस के आलंबन विभाव, चन्द्रमा, चंदन, भ्रमर आदि इसके उद्दीपन विभाव, अनुरागपूर्ण भ्रुकुटिभंग और कटाक्ष इसके अनुभाव होते हैं। उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा को छोड़कर अन्य निर्वेदादि इसके संचारी भाव होते है।[3] यहां `मन्मथोद्भेद` का अभिप्राय `सामान्य कामोद्रेक` नहीं। नाट्यशास्त्र कर्ता भरतमुनि ने पूर्व ही शृंगार रस को अत्यन्त महत्वमयी दृष्टि से देखते हुए लिखा है - `यत्किंचिल्लोके शुचिमेध्यमुज्ज्वलं दर्शनीयं वा तच्छृंगारेणोपमीयते`।[4] इस प्रकार

१- विरक्तवलकरन - हृदयेश - पद सं० २७१ 2- दशरूपक- ४।७

३- देव और उनकी कविता- डा० नगेन्द्र - पृ० ८१

४- नाट्यशास्त्र- भरतमुनि - ६।४५ वृत्ति

कथित कामोद्रेक के मूल में उत्तमता, शुचिता तथा पवित्रता विद्यमान है। इस धारणा के मूल में भारतीय मान्यता है जिसमें धर्मप्राणता, सामाजिकता तथा विधि-निषेधता का व्यापक तत्त्व अनुस्यूत है। गीताकार ने सम्भवतः इसीलिए धर्माविरुद्ध काम को स्व-विभूति के रूप में मान्यता दी है।[1] इस मान्यता के परिणमन में परस्त्री तथा अनुरागशून्य वेश्या को शृंगार-रस का आलंबन न मानकर उसे मर्यादित बनाने का प्रयास किया गया है; परन्तु रीतिकालीन आचार्य-कवियों ने तद्युगीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में स्वकीया, परकीया, गणिका आदि की रति का भी वर्णन किया है। इसके मूल में सम्भवतः यही भावना रही है कि प्रेम के क्षेत्र में उक्त प्रकार का विधि-निषेध नहीं है क्योंकि मन का अनुकूल संवेदन ही रति है जो फ्रायड के ' लिबिडो ' अर्थात् काम का मूल प्रेरक तत्त्व है। प्रेम की एतादृशी व्यापक सीमा को स्वीकार करने पर निसर्गतः शृंगार का स्वरूप विस्तृत हो जाता है फिर भी इसमें उभयनिष्ठ प्रेम या रति की वरीयता बनी रहे इसलिए उभयपक्षविरहित रति, नायिका की पर-पुरुष में अनुरक्ति, मुनि-गुरुपत्नी रति, बहुनायकविषया रति, प्रतिनायकनिष्ठ रति, अधम पात्र और तिर्यग्योनिगतरति का अनौचित्य घोषित कर उसे रसाभास की कोटि में परिगणित किया गया है।

शृंगार-रसवर्णन

संयोग शृंगार - हृदयेश के काव्य में उक्त प्रकारक शृंगार के विविध वर्णमय, बहुरंगे, छन्दकिरों की योजना है, जिनमें कतिपय प्रस्तुत हैं :-

(1) छाटक बरन मृदु करन चरन कंज
अंचन द्रगन मन रंजन करत है।
सरुष सुवास कर फैलत सुगंध अंग
मंद कर चन्दन सुगंधन हरत है।
भनत हृदेस पिक बोलन मनोहरन
मंद मंद डोल तन आनंद भरत है।
उमकि झरोखा भृकुटि झाँकत मयंकमुखी
उछल-उछल छबि भूतल परत है।[2]

1- गीता - 7।11

2- चित्रवसकरन - हृदयेश 2 पद 8

नायिका की मनोहारिणी छबि का उपर्युक्त चित्र सर्वांगपूर्ण, गत्यात्मक तथा रमणीय बन पड़ा है। नायिका की कांचनवर्णाभा, कर-चरणों की मृदुता, दृगों में आकृष्टकारिणी अंजन-योजना, उसकी देहयष्टि से सहज सम्भूत सुवासिता, चन्द्रसौन्दर्य को पराभूत करने वाली सुषमा, पिकसदृश मधुर वाणी, सहज ही उसकी मुग्धकारिणी मूर्ति की परिचायिका हैं। इसके साथ ही उसके व्यापार उसके सौन्दर्य को द्विगुणित करने में समर्थ हैं। उसका उमक कर झरोखे के समीप आना और स्वाभाविक औत्सुक्यवशात् नीचे झुक कर लीलापूर्वक झांकना चित्र को हृद्य बनाता है। कायिक अनुभावों, औत्सुक्य, चापल्य तथा श्रम संचारियों से यहाँ शृंगार रस का पूर्ण परिपाक सम्भव हुआ है।

।२। रंच भर हिय में हुलास को विकास होत
मंद मंद भास रंच हास हरसत है।
सखिन के पास बैठ सुनत बिलास रंच,
उर में उरोजन उकास सरसत है।
भनत छबेस बेस गमन करी सो रंच,
देख देख बात तात मन तरसत है।
बढ़ि कि नितम्ब भये पीन दृग मीन रंच,
बचन प्रवीन कटि छीन दरसत है[१]।

नायिका-भेद के अन्तर्गत मुग्धा नायिका की स्थिति अत्यन्त रमणीय तथा आह्लाद-कारिणी होती है। उपर्युक्त चित्र में उसके बाह्य तथा अन्तः सौन्दर्य के साथ उसकी क्रियाओं तथा चेष्टाओं का प्रस्तुतीकरण है। उसकी विलक्षण व्यापा-कथा है। एक ओर तो उसमें ईषदुल्लास का विकास है तो दूसरी ओर उसके अधरोष्ठो पर किंचिद् हास का विलास। सखियों के समीप अवस्थित वह विचार चर्चा नहीं विलास-चर्चा श्रवण करती है, तन्मयता से नहीं चापल्य से सम्पृक्त होकर, उरोजो के विकासजन्य उच्छ्वासों से वह आश्चर्यचकित है। वयःसंधि की इस अवस्था में उसके नितम्बों की पीनता, मीनसदृश नेत्रों की सुदीर्घता, वचप्रवीणता तथा कटि-क्षीणता ने भी पर्याप्त योग दिया है। सूक्ष्म रेखाओं द्वारा निर्मित इस शृंगार-

---

१-विस्वम्भरन - पद १६

चित्र में कायिक, मानसिक तथा वाचिक अनुभावों के साथ हर्ष, औत्सुक्य, व्रीड़ा और जड़ता संचारियों के संचरण ने चित्र को प्रभावी बनाया है ।

।३। मुग्धा नायिका का सलज्जावरण उसकी हृदयस्थ-भावनाओं का प्रकाशन नहीं होने देता; पर अन्तःअवस्थित सत्वजन्य उद्भूत भावों पर उसका नियंत्रण नहीं हो पाता । अज्ञात यौवना इसीलिए सात्त्विकों के उद्रेक से आश्चर्यचकित है -

काल कुंज फूलत मैं दोनों संग भूलत मैं

गावत उमंग रंग छायौ मधु बन मैं ।

आज सीसफूल छूट कान्हर सम्हारो रंच

आंगुरी परस होत कहा भयौ छिन मैं ।

भनत कुदेस सखी जानियै न जात बात,

कौन उतपात उठे रोम रोम तन मैं ।

भर भर नैन आए गदगद बैन आए

थर थर कंप उठौ स्वेद भयौ तन मैं ।[1]

इस चित्र में स्मृति संचारी सहकृत नायक संस्पर्शजन्य स्वेद, कम्प, रोमांच, स्वर भंग आदि से नायिका का व्यक्तित्व मुखरित हो गया है । यहां रंगों की कृत्रिमता नहीं रेखाओं की स्वाभाविकता तथा सप्राणता है जो रमणी-रत्न का प्राणभूत तत्त्व बन सका है ।

।४। लाज रसराज के बिलास पुन हौसत मैं

चित चित चाख तिति दुर दुर जात हैं ।

बात मनमोहन के जुर जुर जात द्रग

मंद मुसिक्यात मुख मुर मुर जात है ।

भनत कुदेस वेस उर उर जात प्रीत

बचन विलास सुनै दुर दुर जात है ।

उमकत भांकत पिया की छबि पेख पेख,

गुरजन देख देख दुर दुर जात हैं ।[2]

---

१ - चित्रकाव्य - पद २० २- वही- पद ३२

उपर्युक्त के वर्णन से स्मर तथा संकोच के सद्भाव से युक्त नारी का जो चित्र उपस्थित किया गया है वह बिंबग्रहण क्षमता से पूर्ण है। यहां पर उक्त रस कायिक अनुभावों से अनुमाप्य तथा हर्ष, धृति, आवेग, उत्सुकता तथा सुमति आदि व्यभिचारियों से पुष्ट हुआ है। इस वर्णना में रंगों की पार्थिवता नहीं है अपितु स्थूल तथा सूक्ष्म रेखाओं की प्रभावी मादकता है।

।४।   होत प्रात आवत भ्रु्गत देखे नंदकिशोर।
            भान सामने बामने सिर नायौ कर जोर।।[1]

परकीया क्रियाविदग्धा नायिका के उपर्युक्त लक्ष्य में विभिन्न रसों का अद्भुत समावेश हुआ है जो वस्तु की सर्वांगीणता तथा रमणीय योजना संवलित है। परकीया नायिका उपपति के प्रति रतिभाव को रखकर भी लज्जा के आवरण से स्पष्टतया व्यक्त नहीं हो पा रही है। वह प्रातःकाल उपपति या नायक को आते तथा कर-बद्ध प्रणयनिवेदन करते हुए देखती है। नायक के प्रणाम का उत्तर देना अनिवार्य है; पर गुरुजन के सम्मुख ऐसा करना अनुचित है, यह विचार कर वह सूर्य को प्रणाम करने के बहाने नायक को तुष्ट करती है। घर के लोग समझते हैं कि नायिका सूर्यभगवान् के प्रति प्रणत है; पर नायिका की इस क्रिया में सर्वदर्शी सूर्य से क्षमा-याचना की भी व्यंजना है क्योंकि वह उपपति के अनुरागवश उसके प्रणयनिवेदन का अनुकूल उत्तर देने जैसा अनुचित और अनैतिक कर्म जो कर रही है। यहां शृंगार-रसाभास में अंगभूत अद्भुत, भक्ति तथा हास्य रस के समावेश ने चित्र को सहज मार्मिक तथा प्रेक्षणीय बना दिया है।

।६।   बैठी बाल आपै दरवाजै से सवार आजै
                        अंग अंग सोभित अनंग रंग भरी है।
            आनंद की खान,करै ताभन कौ मानपान
                        नैन बान तान बान तान गुन भरी है
            भनत छ्देस सारी सारी जरतार भरी
                        हरी कंचुकी पै कोर मोतिन की तरी है।
            हेम कैसी छरी है जवाहर सौं जरी भरी
                        झलाझल भरी है परी सी टूट परी है।[2]

1- विश्वविलास - पद सं० ८६   2- वही - १०९

हेम-यष्टिका सदृश गणिका नायिका संगीत के उपकरणों से सज्जित, रतिमान् पुरूषों की दैहिक दृप्ति हेतु द्वारावस्थित है। उसके नेत्रों की वक्रता, जरतार भरी साड़ी की झलमलाहट, जवाहरजटित अवयवसमष्टि तथा हरित कंचुकी की कोर पर ग्रथित मुक्तागण उसके विविध वर्णमय रूप को उत्कीर्ण करने में सक्षम है। यहाँ विविध रंगों की स्थूल योजना देखी जा सकती है। हरित, पीत, श्वेत वर्णों तथा जवाहरातों की धूपछाँहमयी आभा से रंजित इस चित्र में अन्तरंग भावों तथा बाह्य व्यापारों का अत्यन्ताभाव है पर बाह्य प्रसाधनों तथा साज-सज्जा ने इसे झलमलाहट से युक्त कर दिया है। यह अपूर्व चित्र यद्यपि बहुनायक रति-व्यंजना के कारण शृंगाराभास का प्रतिनिधित्व करता है तथापि रसादि ध्वनि के अन्तर्गत परिगणित होने के कारण भावाभिव्यक्ति में सक्षम है।

१७। निम्न चित्र में कृतापराध नायक के व्यापारों तथा उसकी शारीरिक दशा का यथातथ्य चित्रण कर कवि अपने वर्ण्य को किस सीमा तक बिंबग्राही बनाता है, इसका निर्णय सहृदय ही कर सकते हैं -

अलसात लोचन जभात झप झप जात

छलत भुकत पद सिथिलित गात है।

लटपट पेंच लट मंडित कपोलन पै

कुंडल कलित कान लटक प्रभात है।

भाल प्रदेस मनरंजन अधर छबि

अंजन ललित हित भंजन बतात है।

आए प्रातकाल लीक जावक की लाल भाल

देखा बाल लाल भर द्रग जलजात हैं।[१]

नायक के तन्द्रासम्पृक्त नेत्रों का आलस्यवशात् झप-झप जाना, पैरों का भुकना, अवयवों का शिथिल होना, पेंच का लटपटाना, कपोल पर बालों की लट का लटकना, कलित कुण्डलों का कर्ण पर अवलंबित होना, अधरों पर अंजन का मुद्रांकन तथा भाल-प्रदेश पर आलक्तक की पंक्ति की लालिमा में प्रच्छन्न कालुष्य ने नायिका के द्रगों को

१- चित्रचन्द्रकारन - पद १४७

रक्तिम बना दिया है। नायिका की अस्त-व्यस्त मूर्ति का सफल चित्रांकन करने में कवि सफल हुआ है। इस बिंब-योजना में ईर्ष्या, अमर्ष, विषाद आदि संचारियों की व्यंजना हुई है।

।८। गज मुक्तान मन गजरा भरे हैं गरे
बीच बीच हीरन की दीप दमकत है।
कंकन कलित मन किंकिन ललित छबि
श्रवन तरौना सीसफूल भमकत है।
भनत हृदेस बाल लाज भरे लोचन
बैठी सेज साज अंग धाम तमकत है।
लागी लाल लोट लखें घूंघट के लोटपोट
अंचला की ओट चंचला सी चमकत है।¹

कहा जाता है - प्रेम का वेग से बढ़ता हुआ प्रवाह लज्जा के भारी बाँध को धीरे-धीरे काटता हुआ अपने अनुकूल मार्ग का निर्माण स्वयं करता रहता है, यहाँ तक कि एक दिन यह बाँध उसमें बाधक नहीं रह पाता; परन्तु लज्जा अपनी ह्रासोन्मुखी स्थिति में भी निष्क्रिय नहीं रहती, सक्रिय होकर नायक के हृदयस्थ प्रेम-प्रवाह को तीव्रतर करने में योग देती है। नायिका का घूंघट की ओट से लोटकर नायक को लोटपोट कर देने की आह्लादक क्रिया सलज्ज नेत्रयुगल की सक्रियता का परिणमन ही तो है। यहाँ टकार की आवृत्ति यद्यपि भावानुकूल नहीं कही जा सकती पर रति-रण में घात-प्रतिघात करने वाली नायिका की एतादृशी वृत्यनुकूल विरोधी वर्ण-योजना खोत्कर्ष में बाधक न होकर साधक सिद्ध हुई है। यहाँ व्रीड़ा, गर्व, आवेग तथा उत्सुकता आदि भावों की व्यंजनावलोकनीय है।

।९। कवि हृदयेश ने बिहारी की तरह गौर-वर्ण-गौरव के स्वारस्य का अनुभव धवल चंद्रिका के साहचर्य में किया है। वस्तुतः नायिका की 'जगर-मगर द्युति' का प्रतिद्वन्द्वी स्थावरजगत् में कोई हो सकता है तो वह चन्द्रिका ही है जो रसिक कवि तथा स्नेह-सुधा से आप्लावित प्रेयसी की अन्तरात्मा में मनोरम स्वप्नों की सृष्टि कर देती है। चन्द्रिका के अभाव में 'नेह-नगर' के व्यवसायी प्रेमी-प्रेमिका की

१- विप्रलब्धकरन - पद सं० १९२

आनंद-सृष्टि अवश्य ही धूमिल हो जाती[1] -

सारी सेत बादला की हीरन किनारी भारी
कुंज कौं सिधारी प्रानप्यारी पति नागरी ।
जगर-मगर दुति जगर-मगर होत
डगर डगर चकि चौंधि रत आगरी ।
माँग भरी मोतिन सुहाग परपूर भरी
लागि भरी सीतल प्रदेस हित पाग री ।
सरद सुधाकर की भाकर मलीन सबि
कृष्ण चंद साकर दिवाकर उजागरी[2] ।।

—— नभोमण्डल से विकीर्ण होने वाली रजत-धवल ज्योत्स्ना की नयनाभिराम धारा अभिसारिका के मार्ग को आप्लावित किए है । श्वेत वस्त्र-धारिणी प्रेमिका मन्थर गति से प्रिय-साहचर्यजनित सुखात्मिका अनुभूति का उल्लास लिए संचरण कर रही है । वह युवती पार्थिव जगत् का एक अभिनव आश्चर्य घटित करती हुई चन्द्रिका में सदाकाराकारित हो जाती है; परन्तु उसकी श्वेत गौरवर्णाभा ज्योत्स्ना में एकमेक हुल भी नहीं सकती[3] । यही कारण है कि कवि ने शारदी ज्योत्स्ना की प्रभा को नायिका-तनद्युति के समक्ष मलिन होने का उल्लेख किया है । कविकुलगुरु कालिदास की इन्दुमती दीपशिखा की भाँति यदि स्वयम्वर में समागत राजन्य वर्ग के अवयवों को दीप्तिमान कर सकती है, प्रातःकालीन रवि के सुखद आतप में सहःस्नात जानकी सहचारिणी अप्सरियाँ यदि दीपशिखा सदृश दीप्तिमती जनकजा की आभा से प्रकाशित हो सकती हैं तो कवि की उपर्युक्त कल्पना में आश्चर्य कैसा ? कवि-कल्पनाप्रसूत जड़ स्थावर तथा जंगम का सम्मिलित प्रेमलोक में ही सम्भाव्य है[4] । यही तो कवि-भारती का नियतिकृतिनियमरहित्य है । यहाँ लौकिकता में अलौकिकता का रमणीय संगम है । उपर्युक्त चित्र में श्वेत वर्ण के प्राचुर्य से उत्कीर्ण है जिसमें भावों का अत्यन्ताभाव है पर गत्यात्मकता का अभाव नहीं ।

१- बिहारी का काव्यलालित्य - डा० रमाशंकर तिवारी - पृ० ८१
२- बिहारी रत्नाकर - पद सं० २२४
३- बिहारी का काव्य-लालित्य - डा० रमाशंकर तिवारी - पृ० ८२
४- काव्यप्रकाश - आचार्य मम्मट - १।१ मंगलाचरण
नियतिकृतनियमरहितां .... भारती कवेर्जयति ।

।१०।   पाइ लसैं ककंब वहा त्रवली दरसात मनौं तिरबैनी ।
कुंदन से कुचकुंभ झलाझल आनन चन्द लगो म्रगनैनी ।
होत जवाहर वाह हदैस मनोहर मूरत है सुखदैनी ।
अंगन रंग अनंग सरासर गंग सी मांग भुजंग सी बैनी ।।[1]

नायिका के उपर्युक्त रूपचित्र में कहीं हल्के कहीं गहरे स्पर्श की योजना है। त्रिवली के सूक्ष्म स्पर्श में श्वेत, श्याम, रतनार की कल्पना है। वक्ष-सौन्दर्य में कुन्दन-वर्णमयी आभा, आनन की चान्द्रमसी धवलिमा, जवाहरों की जगमगाहट तथा मांग की शुभ्रता में गंगा तथा वेणाी में भुजंग की अप्रस्तुति ने चित्र को बहुरंगा बना दिया है। यह रेखाओं में बद्ध नहीं है अपितु विविध रंगों के सम्मिश्रण से सौन्दर्य-संगम का नयनाभिराम दृश्य उपस्थित करने में कवि को पूर्ण सफलता मिली है, इसमें सन्देह के लिए अवकाश नहीं।

<u>वियोग-श्रृंगार</u> - संयोग में प्रेमी-प्रेमिका निरन्तर समीप रहकर प्रेम का भोग करते हैं जबकि वियोग में एक-दूसरे से पृथक् रहकर भी प्रेम का भोग करते हैं। पहली अवस्था में तन-मिलन का आस्वाद प्रमुख रहता है और दूसरी में मन-मिलन की निविड़ता सबक पहुंचाती रहती है। एक प्रेम का स्थूल पक्ष है तो दूसरा उसका सूक्ष्म पक्ष। एक प्रेमियों की चित्त-वृत्तियों को चारों ओर से समेट कर उन्हीं में केन्द्रित करता है तो दूसरा उनकी मनोवृत्तियों का केन्द्र - विधायक प्रसार करता है। संयोग अन्तःकरण का संकोचक है और वियोग उसका विस्तारक।[2] पुनः प्रेम की एकरसता दूर करने के लिए भी वियोग आवश्यक माना गया है, क्योंकि इससे प्रेमी और प्रेमिका एक-दूसरे के लिए पुनः नये हो जाते हैं।[3]

वियोग श्रृंगार के चार भेद हैं - पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करुण। पूर्व राग प्रेमी और प्रिय के प्राक् संयोग की स्थिति है। वास्तविक मिलन के अभाव में नायक अथवा नायिका में गुण-श्रवण या दर्शन द्वारा राग का प्रादुर्भाव होता है। कतिपय

१- विक्रमसतसई - पद सं० ४०३
२- बिहारी का काव्य-लालित्य - डा० रमाशंकर तिवारी - पृ० १३२
३- नैषध - श्रीहर्ष - १९।३४

दैवी या मानुषी बाधाओं के कारण ऐसी स्थिति में मिलन सम्भव नहीं हो पाता। इसके अन्तर्गत आचार्यों ने अभिलाषादि दस काम दशाओं का आख्यान किया है जिस पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह आपत्ति की है कि जब तक पूर्वराग आगे चल कर पूर्ण रति या प्रेम के रूप में परिणत नहीं होता तब तक उसे हम चित्त की कोई उदात्त या गम्भीर वृत्ति नहीं कह सकते।[1] परन्तु जब प्रेमी-प्रिय को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नरत होता है तो कथित उद्वेग, प्रलापादि अवस्थाओं से गुजर भी सकता है, अतः पूर्वराग को मात्र अभिलाषाजन्य न मानकर दृढ़ आकांक्षा से सम्पृक्त हुआ मानना समीचीन प्रतीत होता है।[2]

१- <u>पूर्वराग</u> - कवि हृदयेश द्वारा वर्णित पूर्वराग को निम्न प्रकार स्वरूपायित किया गया है -

लखत सुनत मन में हरख बढ़त मिलन की चाह।
दरस परस बिन विकल जिय कहत कविन के नाह।।[3]

२- <u>मान</u> - मिलन के बीच में जो मिलन का अभाव रहता है, उसे मान कहते हैं।[4] हृदयेश ने मतिराम के `रसराज` की परम्परा के अनुधावन में लघु, मध्यम तथा गुरुमान का उल्लेख किया है। परस्त्री के समीप अपने प्रिय को देखकर जो मान होता है, उसे अस्थायी होने के कारण `लघु मान` कहते हैं।[5] मध्यम मान तब होता है जब अन्य स्त्री का नाम नायिका स्वपति के मुख से सुन लेती है।[6] यह अपेक्षाकृत स्थायी होता है। परस्त्री के साथ हास, विलास, विनोद करते देख जो मान होता है वह गुरुमान कहलाता है।[7]

३-प्रवास - पति के प्रवासी होने के कारण विरह-विह्वलता प्रवास के अन्तर्गत आती है।[8]

१- जायसी - ग्रन्थावली - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - समा० पृ० ३१
२- रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना - डा० बच्चनसिंह - पृ० १९२
३- [illegible] - पद सं० ४१०
४- सिद्धान्त और अध्ययन-गुलाबराय-पृ० १३२-३३
५- [illegible] - पद सं० ४२०
६- वही- पद सं० ४१७
७- वही- पद सं० ४१४
८- वही- पद सं० ४२३

४- करुण- जब वियोग पराकाष्ठा तक पहुंच जाता है, तब उसे करुणात्मक कहा जाता है। पूर्वराग तथा प्रवास दोनों ही करुणात्मक हो सकते हैं। साधारण करुणा तथा करुणात्मक वियोग में भेद है। साधारण करुणा में चिर-वियोग होता है तथा मिलन की आशा रहती है जबकि करुण में इष्ट का आत्यन्तिक अभाव होने के कारण रति का अभाव हो जाता है। ह्रदयेश ने सम्भवत: करुण वियोग का वर्णन इसीलिए नहीं किया कि इसका अन्तर्भाव प्रवास में किया जा सकता है।[1] पुन: करुण विप्रलम्भ शाप आदि दैवी व्यापारों पर आश्रित होने के कारण तर्क प्रधान युग में उपेक्षास्पद ही समझा जाना चाहिए।[2]

वियोग की दशाएं

विप्रलम्भ की स्थिति में विरहिणी की नव दशाओं[3] का स्वरूपवर्णन भी ह्रदयेश द्वारा सोदाहरण किया गया है। यहाँ लक्ष्य पक्ष का प्रस्तुतीकरण ही समीचीन प्रतीत होता है -

१-अभिलाषा- जान दीजे लाज कुल कान पै न कान दीजे
ठान दीजे मन की जुनौती सास नंद की।
आठौं जाम नैनन में घर घर लीजे छवि
पीजे सुधा बैन कीजे अधिकि अनंद की।
भनत ह्रदेस तन मन मनभावन पै
कीजिये निछावर निहार मुखचंद की।
जैसी जोग कीजे रोम रोम भर लीजे पीजे
प्रान जान दीजै पै न दीजे नंदनंद की।[4]

२-चिन्ता - हे विधि असदिन कब करत हरत विरह की जास।
झपट दौड़ हिय सों लगै झपट बिहारी लाल।।[5]

३- स्मरण- बदन मदन तदवत लसत निकित रसवत बैन।
सुरत सुरत बिसिरत न कित लगि छिन परत न चैन।।[6]

१- बिहारी और उनका साहित्य - डा० हरवंशलाल शर्मा - पृ० १६१
२- वही- पृ० १६१ ३- चित्तचकोर - पद सं० ४२६-२७
४- वही- पद ४२८ ५- वही - पद सं० ४३३
६- वही- पद ४३६

४–गुण–वर्णन – सिर पैंच छ्देस छुटी अलकैं मुण दीपत दीप फनी की लगै ।
हित हास विलास करै जब ही मृदु बोल अमोल अमी की लगै ।
कहुं जात बजार घरीक सखी हिय कंटक मान अनीकौ लगै ।
घरबार सबै सुण फीकौ लगै पिय आंगिन ओट न नीकौ लगै ।[1]

५–उद्वेग– बिरह जगत नंदनंद बिन सखी जरै यह नेहि ।
तपत तवा सौं चंद यह दगत अवा सौं देहि ।।[2]

६–प्रलाप – कुंजन सौं कतरात निहार कहौंकित है वह नार तिहारी ।
चंद लखौं कहि भान प्रकासित धाम लखौं कहि चौंन निहारी ।
लाल छ्देस लखौ कत कै वृषभान सुता ध्रुव प्रानपियारी ।
पूछत लाल तमालन सौं सुणपाल कहां वृजराज बिहारी ।।[3]

७–उन्माद – मूंद रहे दृग कुंजन देखा कहुं मन बाकत नाद करै है ।
हास करै छिन ही छिन मैं छिन ही छिन बैठ समाद करै है ।
रूस रहै हिय माझ छ्देस कहूंलग लाल फिराद करै है ।
भंवत बात तमालन सौं वृषबालन सौं बकवाद करै है ।।[4]

८–व्याधि – वेग कत देखौ फेर मान है परेखौ लेखौ
हाल बालभयौ बात जगत की काल है ।
वाम काम ताप सौं दिखात पलात होत
सातहूं समद सूण सूणत पताल है ।
भनत छ्देस कौन जात वा अवास पास
स्वासन सौं बात उड़ परत उछाल है ।
बाल नैन वारि वात सूकत कुलधार
मेरे जान होत है अकाल प्रलै काल है ।[5]

१– विज्ञसाकरन – पद सं० ४३९ पद २– वही – पद सं० ४४३
३– वही– पद सं० ४४५ ४– वही– पद सं० ४४८
५– वही– पद सं० ४५१

१–जड़ता – लाल तुम्हैं लग बाल बिहाल खड़ी बन कुंजन प्रीत पगी है।
फैल रहे छबि जाल हृदेस बिसाल जवाहर जोत जगी है।
हैत करौं चित चेत करौं बह अंग अनंग सुरंग रंगी है।
डोलत ना मुख बोलत ना पल खोलत ना मन मूक लगी है।।[1]

विरह की उपर्युक्त दशाओं में विरहजन्य व्याधि तथा तापकृशता का ऊहात्मक वर्णन कवि ने किया है जिसमें तत्कालीन भद्दी रुचि का प्रतिफलन है। फिर भी अन्य स्थलों पर प्रेम की हृदयस्पर्शी अनुभूतियों का मार्मिक चित्रण हुआ है। हृदयेश की श्रृंगारविषयक वर्णनाओं से यही निष्कर्ष निकलता है कि उनका संयोग पक्ष वियोग की अपेक्षा अधिक प्रभावी, मार्मिक हृदयस्पर्शी तथा स्वाभाविक बन पड़ा है। इसका कारण बहुत कुछ उनकी वैयक्तिक तथा तत्कालीन परिस्थिति में अन्वेषित किया जा सकता है। उनके आश्रयदाता की रुचि-अरुचि भी इस प्रकार की प्रतिपादनाओं की कारणभूत हो सकती है।

२– हास्य रस

भरतमुनि के अनुसार इस रस की उत्पत्ति श्रृंगार रस से हुई है – अन्य शब्दों में हास्य श्रृंगार रस का अंगभूत रस है।[2] विकृत तथा विचित्र आकृति –वेश –भाषा वाला व्यक्ति इस रस का आलंबन विभाव है, उसकी चेष्टाएं उद्दीपन विभाव। हास का अर्थ है वाणी आदि की विकृति को देखकर चित्त का विकसित होना।[3] इस रस के दो अधिष्ठान हैं – भाव यह कि विकृत आकार, चेष्टा आदि हास के निमित्त कहीं तो आत्मस्थ अर्थात् हंसने वाले के अपने भीतर स्थित होते हैं तो कहीं परस्थ अर्थात् किसी अन्य जन में स्थित होते हैं।[4] इसके अनुभाव हैं – अनोखी रीति से हंसना, मुस्कराना आदि और संचारी भाव हैं – शंका, ग्लानि, निद्रा, आलस्य, श्रम, मूर्छा, नेत्र-संकोच तथा रोमांच। हास्य तथा अद्भुत रस में केवल आलंबन की

१– विरहविलास – पद सं० ४५४
२– नाट्यशास्त्र– ६।४८ वृत्ति
३– साहित्यदर्पण – ३।७५
४– दशरूपकम् – ४।७५ वृत्ति

चेष्टाओं, वेश, स्वरूपादि के चित्रण से भी काम चल जाता है, आश्रय के रुचि निबंधन की अनिवार्यता उसमें नहीं होती। संस्कृत के साहित्य में हास्य की योजना प्रायः रूढ़िबद्ध-सी रही है। नाटकों में तो विशेष रूप से विदूषक का वेदूषन, तथा ऊटपटांग कथनों द्वारा हास्य-सृष्टि का विधान किया गया है। नाट्यशास्त्र में हास्य के जो आलंबन गिनाए गए हैं वे दृश्यकाव्य के लिए ही अधिक उपयुक्त हैं। वैद्य, ज्योतिषी आदि को हास्य का आलम्बन बनाकर फुटकर उक्तियां संस्कृत के सूक्ति-संग्रहों में अवश्य मिलती हैं।[1] कवि हृदयेश ने इस परम्परा का यथा-वत् निर्वाह तो नहीं किया पर प्रसंगत: उनके काव्य में शृंगार के अंगभूत हास्य की योजना की गई है। नायक का चुरहेरिन का रूप धारण कर नायिका का सामीप्य-लाभ तथा संस्पर्श-लाभ इसी रस के अन्तर्गत परिगणित होगा -

> भेष धरौ चुरहेरिन कौ पग जावक अंजन नैन लगावत।
> षोडस अंग सिंगार लसै कर कंचुकि गैंद धरे मनभावत।
> बैठ जहां वृषभान लली मन मोद चुरीन कौं मोल करावत।
> राधका के तन कंचु उठौं करकंपत लाल चुरीं पहिरावत।।[2]

मान-मोचन के प्रसंग में नायक द्वारा स्वकीय आवास के समक्ष - नायिका के अन्तर में हास्यावतारणा हेतु विपरीत रति का चित्रांकन हास्य रस की सटीक अभिव्यंजना कराने में समर्थ हुआ है -

> भवन प्रदेस विपिरीत लिखा चित्र लाल
> स्यान सौं लगाय दियौ सामुहै सदन सौं।
> बासन के लगत उसासन भुलाय गई
> हांस हांस लागै मनभावन बदन सौं।[3]

3- करुण रस

प्रिय के वास्तविक विनाश या अभाव हो उसके विनाश की निश्चयात्मिका अनुभूति से हृदय की भावमयी दशा में करुण रस निष्पन्न होता है - इसमें पुनर्मिलन

1-बिहारी और उनका साहित्य - डा० हरवंशलालशर्मा व शास्त्री - पृ० १८०
2- विश्वविमल - पद सं० ३७९   3- वही-   पद सं० ३२१

की आशा नहीं रहती । इस प्रकार करुण रस नैराश्यमय होने से निरपेक्ष रस माना जाता है । संस्कृत नाटककार भवभूति ने 'तटस्थं नैराश्याद्'[1] कहकर करुण रस के इसी पक्ष को पुष्ट किया है । जब तक प्रिय के मिलने की आशा अथवा संभावना रहती है तब तक रतिभाव ही होता है और वहां विप्रलम्भ शृंगार माना जाता है। कवि हृदयेश ने विशुद्ध रूपेण करुण रस की प्रतिपादना नहीं की है । उनका प्रयोजन था – प्रमुखरूपेण शृंगार-वर्णन – शुद्ध करुण रस उनका विषय नहीं था । फिर भी कहीं-कहीं ऐसे कारुणिक प्रसंग कवि ने ग्रथित किए हैं, जहां उनके विभाव चित्रित हुए हैं । संकेतस्थली के विघटन के कारण उत्पन्न संक्षोभ में नायिका की दशा दृष्टव्य है –

> कुंज कदंब दमार लगी सुन टार भरोखन आपु निहारी ।
> भूल हुलास विलास गये सखि लेत उसास छिनौं छिन भारी ।
> साच हृदेस सबै सुखदान लखे मन मैं तन भौ दुख भारी ।[2]

स्थिति यहीं तक सीमित नहीं रह जाती है –

> गरज गरज गाजैं परीं गयौ कुंज सखि फूट ।
> बात बात हिय दुख भयौ मनौं प्रान गे छूट ।।[3]

यहां भी करुण रस की सम्भावना की जा सकती है ।

४- रौद्र रस

मात्सर्य तथा शत्रु द्वारा किए गए अपकार आदि विभावों से होने वाला क्रोध ही पुष्ट होकर रौद्र रस के रूप में परिणत होता है । इसके अनुभाव हैं – होठ चबाना, कांपना, भौंहें टेढ़ी करना, पसीना, आना, मुख लाल होना, शस्त्र उठाना, डींग मारना, प्रतिज्ञा करना आदि । अमर्ष, गर्व आदि संचारी भाव हैं । इस रस का वर्णन भी हृदयेश की प्रकृति के यद्यपि प्रतिकूल ही था तथापि ग्रीष्म-वर्णन की भयंकरता में इस रस की प्रतीति हो सकती है –

> बलन्त दिगान धुंध धूर बरसत मग
> पवन अखंडित प्रचंड फहरात है ।

1- उत्तररामचरितम् – भवभूति – ३।१३
2-विरहविलास – पद सं० ९७
3- वही- पद सं० ९९

भनत झ्देस उत वत से विकल तल

बार बार वारि उफनत थहरात है।

भ्रम तल तपत दहक बहकत अत

मारतंड मंडल तें झाँण झहरात है[1]।।

दशरथ-नंदन राघवेन्द्र का संभवतः दुष्टदलन हेतु प्रयाण एतादृशी भीषणता की सृष्टि करता है जिसके परिणामस्वरूप शक्तिमान् प्राकृतिक उपादान भी आतंकित हो जाते हैं-

सातहू समद थर थर थरकत जात

धरा धरकत गिर गिरत भड़ाक है।

भनत झ्देस मंड चंड मारतंड खंड

धुंध मत धूर परपूरित भड़ाक है[2]।

वीर रस

प्रताप, विनय आदिविभावों द्वारा विभावित होकर, दया, युद्ध, दान आदि अनुभावों के द्वारा अनुभावित होकर तथा गर्व, धृति,हर्ष, अमर्ष, स्मृति मति, वितर्क आदि व्यभिचारी भावों द्वारा भावित होकर उत्साह नामक स्थायी भाव का आस्वादन वीर रस के रूप में होता है। इसमें भी सहृदयों का चित्त विस्मृति को प्राप्त होकर आनंद की अनुभूति करता है।[3] अलौकिक अथवा लौकिक आलंबन की वीरता पंचविध,[4] चतुर्विध[4 अ] अथवा त्रिविध कही गई है। त्रिविध वीरता में दानवीरता, युद्धवीरता तथा दयावीरता[5] का परिगणन किया गया है। साहित्यदर्पणकार के अनुसार वीरता चतुर्विध है- दान वीरता, धर्मवीरता, युद्ध-वीरता और दयावीरता। कवि रुद्रेश के काव्य में यथास्थान वीर रस की व्यंजना हुई है। कवि के आश्रयदाता महाराजा गंगाधरराव की दानवीरता का प्रतिपादक अधोलिखित छन्द वीररस की ही पुष्टि कराता है-

---

१- विरुदप्रकरन - पद सं० ५२६   २- वही - पद सं० ४७०

३-दशरूपकम - ४।७२ वृत्ति   ४- मानस पीयूष -सु०कां० पृ०८० दो०७। ३,४।

४ अ- स च वीरो दानवीरो धर्मवीरो युद्धवीरो दयावीरश्चेति चतुर्विधः - सा० द० -पृ० २५८

जैसे राम राजा भए आनंद त्रिलोक भयो,

देवतान छोड़े भरना सीस पै सुमन के।

तैसे ही प्रजान के मनोरथ प्रसिद्ध भये

आप राज पाय भये दीपक अवन के।

भनत ध्रुदेस राव गंगाधर महाराज

दाता सिवराव सुत पालक सबन के।

जैसे दान दै के प्रान राखे गऊ गन के

तैसे दान दै के प्रान राखे व्दज्ञ गन के।[1]

यहां गुणीभूतव्यंग्य काव्य नहीं है क्योंकि राजप्रशंसा तथा गुणप्रशस्ति में प्रधानता दानवीरता की है जिसका ग्रन्द समाप्ति पर उल्लेख भी है, अतः आस्वाद का पर्यवसान दानवीरता में होने तथा उसी के प्रधानतया व्यंजित होने से यहां वीर-रस है।

कवि के आराध्य देवों के विशिष्ट धर्मों के विज्ञापन के सन्दर्भ में यत्र-तत्र वीररस की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है -

राम का वीरत्व - भुज बल छंडे छंडे निंदत विहुंडे रुंडे

सरधन मंडे छंडे खल पर बाज है।[2]

+ +

वीरता बला है उपमा है ते वृथा है चाहे

धंन धंन बाहें बलवीर रघुवीर की।[3]

हनुमत् का वीरत्व - भक्त उर धारबे कौ राम कौ उधारबे कौ

सीता सोध पारबे कौ अद्भुत गम्भीर है।

लंका उजारबे कौ अक्ष उजारबे कौ

जातुधान मारबे कौ महा रनधीर है।[4]

१- बेतवा-वाणी - ध्रुदेस और उनकी काव्य साधना - डा० सुधा गुप्ता - पृ० १०३

२-विश्वबसकरन - पद सं० ४६८ ३- वही - पद सं० ४७४

४- वही- पद सं० ४८२

भयानक रस

भय-परिपुष्ट समस्तेन्द्रिय को भयानक कहते हैं[1]। इसे वीभत्स रस से उत्पन्न माना गया है। इसके विभाव जड़ से लेकर चेतन तक फैले हुए हैं। व्यक्ति अथवा प्राणी - विशेष के साथ-साथ वस्तु-विशेष भी भयानक विभाव के रूप में उपस्थित की जा सकती है। किसी विकृत रव को सुनकर, किसी अपने से बलशाली व्यक्ति अथवा हिंस्र पशुओं को देखकर, अपशकुनी उलूक आदि को देखकर, शून्य आगार अथवा अरण्य में प्रवेश करके, अस्त्र-शस्त्रों की झनकार सुनकर तथा इसी प्रकार की अन्य परिस्थितियों में भय उत्पन्न हो जाता है। भयानक की अवस्थिति में कर-चरणादि का कम्प, नेत्र-विस्फार, वैवर्ण्य, स्वर-भेद, स्तम्भ, रोमांच, स्वेद, वेपथु आदि व्यभिचारी भाव उत्पन्न होते हैं।

भक्ति के अंगभूत भयानक रस की प्रतीति हेतु हृदयेश के निम्न अवतरण अवेक्षणीय हैं :-

१- भंग रंग लोचन सुरंग अहि अंग अंग

प्रेतगन संग संग सोह धरती की है।

मुंड जाल माल गरें दिपतविसाल भस्म -

भूषन रसाल विधु भाल पर नीकी है।[2]

२- बाँधें जटाजूटी अंग लाये चिता धूरी

छोड़े रहत सदैव सुधा भ्यानिक नहार की।[3]

३- साल है अभक्तन कौ पाल जनभक्तन कौ

नवर कराल जातधानन कौ काल है।

भनत हृदेस भुजदंड है प्रचंड मंड

लंक पै समक्ष सर्सज्ञ लंकपाल है।[4]

१- रस-सिद्धान्त - डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित - पृ० ३७७

२- विस्वसकल - पद सं० ३६४

३- वही- पद सं० ३६६

४- वही- पद सं० ४८३

वीभत्स रस

किसी अनभिमत, गर्हणीय अथवा उद्वेजक वस्तु को देखकर या सुनकर अथवा गन्ध, रस तथा स्पर्श दोष के कारण उत्पन्न जुगुप्सा ही वीभत्स रस की चर्वणा कराती है।[1] जिन-जिन वस्तुओं से घृणा उत्पन्न होती है, वे सब वीभत्स के विभाव है। किसी के दुष्टतापूर्ण कार्य, किसी की शारीरिक शक्ति, मानसिक कुरूपता, अश्लील वर्णन, जुगुप्साजनक होते हैं। इस रस में मुख तथा नेत्र का सिकुड़ना, उनको उस दृश्य की ओर से फिरा लेना, आँख, नाक आदि को ढक लेना आदि उद्वेगमय अनुभाव होते हैं और अपस्मार, आवेग, व्याधि, मोह तथा मरण जैसे व्यभिचारी भाव प्रकट होते हैं।

हृदयेश के काव्य में विभावादि से पूर्ण पुष्ट वीभत्स रसकी उपस्थिति नहीं है फिर भी अधोलिखित अंशों में जुगुप्सा भाव के संकेत मिल जाते हैं -

१- फनपति फोर फरन फरक फरक उठै

कमठ की पीठ टूट फूटत फड़ाक है[2]।

२- दसमुख रच्छनि प्रतच्छ मुन तच्छ भच्छ

जान के विलच्छ भयौ अवतार हर की।[3]

३- साँझहिं तैं उबिलात बधू कब आवत मोहन प्रीत नई है।[4]

प्रथम अंश में कमठ की पीठ के फूटने में तथा तज्जन्य रक्तस्राव की कल्पना में, द्वितीय में राक्षसों द्वारा भक्षित मुनियों के वर्णन में तथा अंतिम अंश में नायिका के वमन करने की क्रिया में उक्त रस की प्रतीति होती है।

अद्भुत रस

विलक्षण वस्तुओं के दर्शन, श्रवण आदि से जो चित्त का एक विकास-सा होता है वही विस्मय कहलाता है।[5] इसका आलंबन विलक्षण वस्तु है, उस वस्तु का गुण-वर्णन ही उद्दीपन है; स्वेद, रोमांच, नेत्र-विकास आदि अनुभाव है; वितर्क, आवेग, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव हैं। फाग-राग मे विविध वर्णमय

१- साहित्य-दर्पण - ३।१८०
२- विश्वप्रकाश - पद सं० ४७०
३- वही- पद सं० ४७२
४- वही- पद सं० १८० १ ५-रससिद्धान्त- डा० दीक्षित-पृ०३७२

प्रेममार्ग के पथिक-हृदय की विरलदृष्टरूप-योजना अद्भुत ही तो है। हृदयेश कवि वर्णन करते हैं -

> भाल छदेस रंग परस सुरंग अंग
>
> द्रगन कटाछन सौं करत निहार है।
>
> सोभित गुलाल भरी अद्भुत छटा सी जासी
>
> उमिड़त आवत घटा सी बास जात है।[1]

कवि की दृष्टि में आराध्य कृष्ण का विग्रह अद्भुत तथा अदृष्टपूर्व है। उनके आभरण, उनके व्यापार, उनके तन-बदन पर शोभित एवं मंडित अन्यान्य उपादान सभी अभूतपूर्व तथा रमणीय है। ऐसा आलम्बन स्वयमेव अद्भुत रस-स्रष्टा बन जाता है -

> सोहै क्रीट कुंडल कपोल बनमाल गोल
>
> झाष्ण द्रग लोल बोल सुधा सर ढार गौं।
>
> बाँकी बाँकी बाँसुरी छदेस दिव्य झाँगी बाँकी
>
> लटकि लटकि पग धरन पै धार गौं।
>
> \+ \+
>
> देखत कौं छौना ऐसौ भूतल लख्यौ ना भौं ना
>
> नंद कौं ढुटौना लौना टौना पढ़ डार गौ।[2]

<u>शान्त रस</u>

शान्त रस के स्थायी भाव निर्वेद को शम से भी अभिहित किया गया है। शम या निर्वेद का अभिप्राय है - वैराग्य-दशा में आत्मरति से होने वाला आनंद।[3] अपने आपको तुच्छ समझना या विषयों से वैराग्य ही निर्वेद है और इसीलिए वह सांसारिक जीवों के लिए तो असंगत रूप ही है।[4] आचार्य विश्वनाथ के अनुसार -शान्त रस का स्थायी भाव शम, आश्रय उत्तम पात्र, वर्ण कुन्द पुष्प तथा चन्द्रमा आदि के समान सुन्दर शुक्ल और देवता भगवान् लक्ष्मीनारायण है। अनित्यत्व दुःखमयत्व

१- विश्वव्यसकरन - पद सं० ४०२ 2- वही - पद सं० ४७७

३- साहित्य-दर्पण - ३।१८० ४- काव्यप्रकाश-मम्मट- ४।४७

आदि रूप से सम्पूर्ण संसार की असारता का ज्ञान अथवा परमात्मस्वरूप, इस रस में आलंबन होता है और ऋषि आदिकों के पवित्र आश्रम हरिद्वार आदि पवित्र तीर्थ रमणीय एकान्त वन तथा महात्माओं का संग आदि उद्दीपन विभाव होते हैं। रोमांच आदि इसके अनुभाव तथा निर्वेद, हर्ष स्मरण, मति, प्राणियों पर दया आदि इसके संचारी भाव होते हैं।[1] इस दृष्टि से हृदयेश के करुणार्द्रमिश्रित भक्ति-विषयक पद शान्त रस की कोटि में न आकर भाव[2] की ही श्रेणी में परिगणित होंगे। परन्तु अभिनवगुप्त ने इस प्रकार की रति को शान्त रस के ही अन्तर्गत माना है।[3] शान्त का[4] चरम लक्ष्य मोक्ष है और ज्ञान तथा कर्म की भाँति भक्ति भी मोक्ष का साधन है। इस प्रकार भक्ति को शान्त रस का अंगभूत माना गया है। कवि हृदयेश के निम्न अवतरणों में शान्त रस की अंगभूत विनयभावना व्यंजित होती है -

सेस मुख थाके गुन भनत अखंडता के
प्रभुता पताके कविता के मुख सत हौ।
देव मन ताके जन ताके वृज वनिता के
लोक लोक ताके राधका के प्रानपत हौ।
भनत हृदेस फन्द काटन पिता के मा के
कृपा कर ताके मनका के पारगत हौ।
ध्यान धर ताके थाके चरन प्रमोदता के
नाथ द्वारका के द्वार वाके पठवत हौ।[4अ]

\+ \+

दास जन तारबे कौं मुक्त सुधारबे कौं
विपत विदारबे कौं हनमत वीर है।[5]

1- साहित्य-दर्पण - 3।245-49

2- रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथा अंजित: भाव: प्रोक्त: का0प्र0 - 4।35

3- अभिनव भारती -भाग 1 - अभिनवगुप्त - पृ0 340

4- रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना - डा0 बच्चनसिंह - पृ0 41

4अ- विरहव्याकरन - पद सं0 480 5- वही- पद सं0 482

अनुभाव-योजना

भाव-विशेष के आविर्भूत होने पर ही अस्तित्व में आने तथा उस भाव के अनुभव कराने के कारण ही ये भाव - अनुभाव कहलाते हैं। अनुभाव की सत्ता अपने लिए नहीं होती उसके अस्तित्व की सार्थकता मनोभाव विशेष के अभिव्यंजन में ही प्रतिफलित होती है। अनुभाव तथा रस में अनुमापक-अनुमाप्य संबंध होता है। रस के रूप में विपरिणत होने वाले स्थायी भाव की प्रतीति सहृदयों को अनुभावों के द्वारा ही होती है। नायिका के हृद्गत स्थायी भाव के सूचक अनुभाव नायक के रतिभाव को उद्बुद्ध करने के कारण उद्दीपन हो जाते हैं। साहित्य-दर्पण कार ने नायिकाओं के शारीरिक लावण्य-विकास से लेकर छोटी-मोटी सभी चेष्टाओं को अनुभाव की सीमा में परिगणित किया है।[१]

जो कवि अनुभावों की योजना में जितना अधिक दक्ष होगा वह भाव-व्यंजना में उतना ही अधिक सफल होगा क्योंकि विभाव और अनुभाव ही भाव-व्यंजना के साधन है और साधन की श्रेष्ठता साध्य की उत्तमता का प्रमाण होती है।[२] हृदयेश ने प्रायः सभी अनुभावों - कायिक, वाचिक, सात्विक तथा आहार्य - की सशक्त योजना कर अपने कथ्य को प्रभावी और रस-सिक्त बनाया है -

१- <u>कायिक अनुभाव</u> - शारीरिक कृत्रिम चेष्टाएं, कटाक्षपात, भृकुटि-भंग आदि आंगिक क्रियाएं कायिक अनुभाव के अन्तर्गत आती हैं ; यथा -

।१। आयौ पी विदेस तैं रतेसकौं तरेस भैट

फरकत नैन दुरी करकत मन मैं।

छूट-छूट जात जूट बारन के बंध सवि

फूट-फूट जात वे वियोग भरे मन मैं।

भनत हृदेस बाजूबंध बंध टूट जात

टूट जात ताव कूट रात रतन मैं।

हुव न समात कत कंचुकि दरकि जात

हरजे समात ना उमंग सवि तन मैं।[३]

।२। घुरघुर जात है निसंक दुरिजात्वहूर उर जात नौक नैनन विसात की।

भृकुटि भृकुटि भाषि भाषि भभकि भभकि भापि उमकि उमकि झूमेलत झुलासकी।[४]

१- साहित्य-दर्पण ३।१४२

२-बिहारी और उनका साहित्य- डा० शर्मा व शास्त्री - पृ०१६२ ३व ४-विस्व०पद २४७, ४८७

| ३ | उभकि फरोखा भुगि भांगत मयंक मुखी[1] ....

२- मानसिक अनुभाव - अन्तःकरण की भावना के अनुरूप मन में हर्ष- विषाद आदि की झलक को मानसिक अनुभाव कहते हैं। यथा -

भरी लाज मदि बात वर कही बात पति हेत।
उमग धरत पग फिरि फिरत फिर फिर फिरकी लेत[2]।।

३- वाचिक अनुभाव - वाणी की उग्रता अथवा मृदुता वाचिक अनुभाव के अन्तर्गत आती हैं। नायक-नायिका के परस्पर प्रेम-संलाप तथा खण्डिता की वक्रोक्तियां इन्हीं अनुभावों में परिगणित होगीं -

झटकत पट तोरत हरा बनै फिरत अवनीस।
सोहत भूरत सामरी धरैं कामरी सीस[3]।।

+ +

अंजन अधर मनरंजन कपोल पीक
कंजन से नैन भरी आलस अतोव है।
जावक भुजान भाल लाल गरैं मुक्त माल
फाड़ दीनी गुंजमाल रंचक न सोच है।
भनलछदेस दुगभोजन दिपत छबि
भुगत मतंगवत अद्भुत रोष है।
फरकत ओठ बात कहत न बात बनै
ही तल मैं कोप भरो मुख मैं सकोच है[4]।

४- सात्विक अनुभाव - कवि के द्वारा रचित आठ सात्विकों के लक्षण पूर्व ही उद्धृत किए जा चुके हैं। यहां इनके लक्ष्य पक्ष का उद्घाटन ही अभीष्ट है। अब इन वर्णों में स्तम्भादि सात्विक भाव दृष्टव्य हैं -

स्तम्भ - राधका की छबि छाकी गुविंद गुविंदहू की छबि राधका छाकी।[5]

स्वेदाश्रु स्वरभंग तथा कम्प - भर भर नैन आए गदगद बैन आए
थर थर कंप उठी स्वेद भरी तन मैं।[6]

१- विस्वप्रकरन - पद सं० ८ २- वही - पद सं० २१८ ३- वही- पद ३०१
४- वही पद सं० १३९ ५- वही- पद सं० ३३८ ६- वही पद २०

पुलक – बाल प्रसून की माल छ्वै तनु लाल कदंब की माल भयौ है।[1]

प्रलय– परसत अंग कर दरस परत नाह

दरसत बाल मान प्रथमा पखान की।[2]

वैवर्ण्य – मदन जगत ज्वाल जाल सरसाई अत

दीन ह्वै दिखाई पियराई तन छ्वा रही।[3]

४– आहार्य– प्रियतम के पास सज्जित होकर जाना नायिका की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। जब नायिका प्रिय के समीप जाने के उद्देश्य से ही बनाव–श्रृंगार करती है, तब उसकी सज्जा 'आहार्य' अनुभाव के अन्तर्गत कही जाती है।[4] चन्द्राभिसारिका की विशिष्ट साज–सज्जा में इसे देखा जा सकता है –

सारी सेत बादला की हीरन किनारी भारी

कुंज कौं सिधारी प्रानप्यारी पति नागरी।

बगर बगर दुति जगर मगर होत

डगर डगर वकि वीथि रत आगरी।

माँग भरी मौतिन सुहाग भरपूर भरी

लागि भरी हीतल हुलेस हित पाग री।[5]

संचारी भावाभिव्यंजना

काव्यप्रकाशकार ने देव आदि विषयक रति से पृथक् प्रधानता से व्यंजित व्यभिचारी भावों को 'भाव' कहा है।[6] ऐसा काव्य 'भावध्वनि' का अभिधान ग्रहण करता है। इन व्यभिचारी भावों की प्रधानता ठीक उसी प्रकार होती है जैसे किसी राजभृत्य के विवाह में राजा की अपेक्षा भृत्य की प्रधानता हो जाती है। इच्छेश के अनेक पदों में संचारी अथवा व्यभिचारी भावों की मनोरम अभिव्यक्ति हुई है। यहां 'व्रीड़ा' संचारी भाव का स्वाभाविक स्फुरण दृष्टव्य है –

१– विस्वसकरन – पद सं० ५१   २– वही– पद सं० ३६१

३– वही– पद सं० १७४   ४– बिहारी और उनका साहित्य –डा०शर्मा पृ० १६१

५– विस्वसकरन – पद सं० २२४   ६– काव्यप्रकाश ३।३५

भरी लाज मदि बात वर चली जात पति हेत ।

उमग धरत पग फिर फिरत पलपल फिरकी लेत ।।[1]

यहाँ नायक-दर्शन-कामना विभाव है तथाउमंगवश पाद-प्रक्षेप, लौटना तथा पुनः गमन में प्रवृत्ति अनुभाव हैं ।

नायक के परदेश से आगमन के कारण नायिका के हृदय में जिन भावों की भावना होती है तथा वह जिन कायिक तथा मानसिक व्यापारोंसे आपूरित हो जाती हैं, उसका एक रमणीय तथा सर्वांगपूर्ण चित्र दृष्टव्य है -

आयौ पी विदेस तैं रतेस कौं कलेस मेट

फरकत नैन चुरीं करकत गन मैं ।

छूट छूट जात छूट बारन के बंध सबि

फूट फूट जात ते वियोग भरे मन मैं

भनत छ्देस बाजूबंध बंध टूट जात

लूट जात लाज छूट रात रत रन मैं ।

कुच न समात तत कंचुकि दरक जात

हरण समात ना उमंग सब तन मैं ।[2]

यहाँ नायक आलंबन, उसका विदेश या परदेश से आगमन उद्दीपन, नायिका आश्रय, हर्ष आवेग तथा औत्सुक्य संचारी भाव हैं, नेत्र-स्फुरण, चूड़ियों का करकना, बालों की वेणी का बारम्बार छूट-छूट जाना, बाजूबंद के बंधन का टूट जाना, कुचयुगल का उमंग के कारण औन्नत्य तथा तद्वश कंचुकी का विदीर्ण हो जाना - अनुभावों के रूप मे वर्णित हैं ।

कभी-कभी एक भाव के उठते-उठते हृदय में दूसरा भाव और उत्पन्न हो जाता है । कभी एक भाव की शान्ति में और दूसरे भाव की अनुभूति में चमत्कार का अनुभव होता है तो कभी अनेक भाव एकत्र स्थित रहकर विचित्रता की सृष्टि करते हैं । इस प्रकार काव्यशास्त्रियों तथा रीतिकवियों ने भाव के आस्वादन में

1- बिरहबागकरन - पद सं० २१८

2- वही- पद सं० २८७

चार अवस्थाएं हेतुभूत मानी है - भाव-सन्धि , भावोदय, भावशान्ति और भावशबलता । यहां क्रमशः चारों को प्रस्तुत किया जा रहा है -

१- भाव-सन्धि - जब दो भाव मिलकर समवेत रूप में आस्वाद्य बनते है तब भावसंधि नहीं कही जा सकती क्योंकि एक ही स्थान में एकाधिक संचारी तो प्रायः हुआ ही करते है । भावसंधि में विरोधी भावों का एकत्र वर्णन होता है; पर उनकी आस्वाद्यमानता में पृथक्-पृथक् अनुभूति होती है । दो भावों की स्थिति एक ही विभाव के प्रति रह सकती है और एकाधिक विभावों के प्रति भी । कवि हृदयेश कृत द्वितीय का उदाहरण प्रस्तुत है -

सखी मायके जान कौ है सुख री पिय के बिछुरे कौं महादुख री ।[१]

उपर्युक्त पंक्ति में मायकोपलब्धि आशाजन्य सुख तथा प्रियतम वियोगजनित दुःख दोनों ही भावों के विभाव पृथक्-पृथक् हैं, अतः यहां हर्ष तथा विषाद व्यभिचारियों की संधि है ।

२- भावोदय तथा भावशान्ति - वस्तुतः भावोदय तथा भावशान्ति दोनों ही साथ-साथ घटित होते है, अर्थात् एक भाव का उदय होता है अन्य की शान्ति होती है । जब भाव के उदय में चमत्कार हो तब भावोदय और जब भाव की शान्ति या समाप्ति या विलय में चमत्कार हो तब भावशान्ति मानी जाती है । यथा -

संग सखियान के उमंग चली कुंजन कौं
तहां परजंक रचौ आनंद के ख्याल कौं ।
सूनौ केत मंदिर दिखानी सेज संदर सौ
सुंदर हिये मैं भयौ खेद बरजाल कौं ।
भनत हृदेस भौंह बैठी करबैठी सेज
ठोर धरे अभूषन बेंदा भाल तास कौं ।
मानौ चंद मंद परौ राहु फन्दफंद जैसौ
मंद परौ बदन गुविंद बिन बाल कौ ।।[२]

१- विप्रलम्भकरन - पद सं० ११७

२- वही- पद सं० १६९

उपर्युक्त पद में हर्ष तथा दुःख -दोनों ही भावों के उदय का उल्लेख है। यतः चमत्कार दुःख में ही है, अतः यहाँ भावोदय ही माना जाएगा। भावशान्ति के उदाहरण-स्वरूप अधोलिखित छन्दांश अवेक्षणीय है -

पैठी मानमंदिर उमैठी भृकुटीन कर
मान कर बैठी ऐंठी नंद के नंदन सों।
\+ \+
आसन के लगत उआसन भुलाय गई
हांस हांस लागे मनभावन वदन सों।[1]

यहाँ हर्षित नायिका का नायक के वदन से लगना उसके अमर्ष की शान्ति पर ही आधारित है तथा उसी के आस्वादन-निमित्त होने से भावशान्ति है।

३- भावशबलता - जहाँ कई विरोधी परचमत्कारक भावों की एकत्र अवस्थिति हो वहाँ भावशबलता होती है। हृदयेश के काव्य में अनेकत्र एतादृशी योजना उपलब्ध होती है, यहाँ उनमें से एक उद्धृत है -

रुदन करत हँस हँस उठत भुगनत बकत सतरात।
हरि छबि छकि बौरी भई तरबर तकि अतरात।।[2]

मोह, विषाद, हर्ष, उन्माद, अमर्ष, शंका, व्याधि तथा जड़ता आदि भावों का समवेत तथा परस्पर विरोधिनी स्थिति होने के कारण यहाँ भावशबलता है।

भावनात्मक स्थल

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का अभिमत है कि प्रबंधकार कवि की भावुकता का सबसे अधिक पता यह देखने से चल सकता है कि वह किसी आख्यान के अधिक मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचान सका है या नहीं।[3] हृदयेश कवि प्रबंधकार न होकर शृंगारपरक मुक्तक रचना करने वाले कवि थे। उनके कृतित्व में मुक्तक की प्रायः सभी विशिष्टताएं उपलब्ध होती हैं। उनके सामान्यतया सभी मुक्तक सहृदय को रस-सिक्त करने में सक्षम हैं; फिर भी यत्र-तत्र मार्मिक स्थलों की उद्भावना करने कवि

१-विरहविलास - पद सं० ४२१ २- वही - पद सं० ३३९
३- त्रिवेणी - रामचन्द्र शुक्ल - पृ० १९८

ने सहृदयता, भावुकता तथा संवेदनशीलता का परिचय प्रस्तुत किया है। ऐसे स्थलों में से कुछ स्थल अवेक्षणीय हैं –

१–   कुंजन कुंजन गुंजत भौंर सपुंजन पुंजन कोकिल गावत।
       भूल रही लतका लहरैं सुण मारुत्त मंद सुगंध उड़ावत।
       देख बहार बसंत इदेस अनंदित डोलत लाल रिझावत।
       राधिका पाय धरै जित ही जित ही करौ ग्रामणी फूल बिछावत[1]।।

उपर्युक्त चित्र में नायक की नायिका के प्रति उदात्त भावना का निदर्शन हुआ है। नायक-नायिका-भेद साहित्य में जो गार्हस्थ्य जीवन की रम्यताओं का जो संकेत है उसका उद्गम पारस्परिकता में ही होता है। नायक–नायिका अथवा पति-पत्नी में से किसी की स्थिति अन्य की अपेक्षा हेय या न्यून नहीं है। यदि पत्नी पति की अपेक्षा रखती है तो पति को भी उसी मात्रा मे पत्नी की अपेक्षा का अनुभव करना चाहिए। परन्तु समाज में स्त्री का अपेक्षा-भाव सीमातीत हो गया है – वह पग-पग पर पति की सहायता की भिक्षा माँगती हुई जीती है। नारी की इस दुर्दशा तथा विडम्बना का समाधान पति की भी तुल्यपरिमाणात्मक सापेक्षता में सुकवि द्वारा खोजा गया है। प्रस्तुत नायक, नायिका के प्रति कितना विनीत, स्नेह-सिक्त, आर्द्र तथा उपकृत है। उसके हृदय की समग्र कोमल कल्पनाएं, भावनाएं तथा आशाएं पुष्प के रूप में नायिका के प्रति प्रस्तुत ही नहीं निवेदित हैं। यहाँ दाम्पत्य रति को ध्वस्त कर देने वाले अमर्ष, वैपरीत्य, एकपक्षीय करुण क्रन्दन तथा प्रति-कूलत्व का अत्यन्ताभाव है। गार्हस्थ्य जीवन की चिर रसात्मकता हेतु जिस अवलम्ब का निदर्शन पद में कराया गया है वह मात्र भावुकता-संवलित न होकर दाम्पत्य में विघटनकारिणी यथार्थ परिस्थितियों के पर्यवेक्षण से सहज प्रेरित है। तुलसी सदृश मर्यादावादी कवि भी राम द्वारा सीता का पुष्प-शृंगार 'सादर'[2] करने का कथन कर उक्त सापेक्षता का समर्थन करता है। नायक के उक्त अनुराग अथवा प्रणय-निवेदन में नायिका के दया, माया, ममतादि गुण ही कारणीभूत हैं यहाँ नायक के ऊपर स्त्रैणता का आरोपण करना उचित नहीं।

१– विरहवसफरन – पद सं० २७६

२– रामचरितमानस – अरण्यकाण्ड – दो० १।१

२– दिन चार कौं आए छबि लिवावन वीर करैं नित रार रहैं भ्रुण री।
तब तै पति प्रान अधार इदेस न जाउ न जाउ कहैं गुण री।
कहु कौन कौ राग रहौं रूखा री इत जात तौ क्रम उतै गुणरी।
सखि मायके जात कौ हैं सुख री पिय के बिछुरे कौ महा दुख री।।[1]

उपर्युक्त उद्धरण मे पति-प्रेमगर्विता नायिका की एक असमंजसपूर्ण पर भारमयी स्थिति का कवि द्वारा प्रकाशन किया गया है। नायिका का वीर उसे अल्पकालावधि हेतु मायके ले जाने के लिए आया है और तदर्थ वह अपना अनुरोध अधिकारपूर्वक व्यक्त कर चुका है। उधर नायिका का प्रणयी नायक नायिका से पुन:-पुन: मायके न जाने के लिए कहता है। अद्भुत द्विविधामयी स्थिति है। नायिका बेचारी करे भी तो क्या ? यदि वह मायके जाती है तो उसे सुख का अनुभव होगा पर यदि उसके प्राणों के आधार प्रियतम से वियुक्त हुई तो क्या तज्जन्य ' महादु:ख ' को वह सहन कर सकेगी ? विशेषत: उस प्रियतम का वियोग जो प्रिया के प्रति सर्वतोभावेन समर्पित है, जिसने स्वत: मायके जाने जैसा निर्णय स्वयं न करके प्रिया पर छोड़ दिया हो। यहां ' हठ ' और ' प्रेम ' का अन्तर्द्वन्द्व वर्णित है। नायिका का वीर हठ-परायण है जिसके स्नेहिल आग्रह में दृढ़ता है तो नायक के व्यवहार में प्रेम की मृदुता, प्रणय की विश्वस्तता, दाम्पत्य की सरसता तथा विलासहर्षचिन्ति जीविताशा की रमणीयता है। नायिका की उक्त द्विविधामयी स्थिति से भावितजन क्या ऐसी कल्पना करेंगे कि वह अपने प्रिय से वियुक्त हुई होगी ?

३– आई बात गौने बैठी लाज भरी कौने
ब्रजराज ललिचौने ताकिबे कौं तरसौ करै।
अंग-अंग सौने तें सरस झलकत छबि,
हास मृदु बोलन सुधा सौं बरसौ करै।
कोक कैसे छौने इत उसत इदेस लौने
ठूंक डग डोलत न दीठ परसौ करै।
छंद मदि ऊनी मन वारच कौं सूनौं रहै
छबि निसदिन दूनौं घर दूनौं दरसौ करै।[2]

१– विरवक्सहरन – पद सं० १९७ २– वही– पद सं० २०३

हृदय में अनन्त- अतृप्त लालसाओं का मधुर भारलिए लावण्यमयी नायिका द्विरागम पर नायक के साहचर्य लाभ हेतु आकुल है। गृह के कोण में स्थित वह लज्जा के सघन आवरण से बद्ध है। उधर नायक की ललचाई आंखे उसकी रूप-माधुरी का पान करने हेतु व्यग्र हैं। सम्भवत: गुरुजन का अवरोध ही इन अतृप्त प्रणयपथिकों की शारीरिक तृप्ति में बाधक सिद्ध हो रहा है। नायिका की स्मिति, उसका मृदु-बोलना, उसके शावक
कोक सदृश सुडौल तथा गोल गोढे उरोज, उसका ईषद् गमन नायक के हृदय में उत्कण्ठा उत्पन्न कर रहा है। इस प्रकार की सौन्दर्यमयी नारी का लावण्य गृह में सतत् पूर्णमासी की अवतारणा कराने में समर्थ है। यहां दो प्राणों की आकांक्षाओं का मर्यादा संवलित चित्र उपस्थित कर कवि नारी की मधुरिमा, महिमा तथा स्पृहणीय स्थिति को अभिव्यक्त करने में सफल हुआ है। गृहस्थ जीवनकी रमणीयता वस्तुत: ऐसी ही कामिनी की सापेक्षता में है। यहां उच्छृंखलता नहीं, प्रणय की गम्भीरता है, चंचलता नहीं चिरसाहचर्यजनित आशा की स्थिरता है, स्वच्छन्दविहारपरायणता नहीं, मर्यादा की मसृणता तथा स्निग्धता है।

४- जा दिन तें ब्रजराज गयौ तिय ता दिन तें घर ब्दार न भावत।
बूझत बात ब्देस सखीगन थाकि रही पर भेद न पावत।
नैनन बारि भरौ भलकै विरहानल सोगत भूमि न आवत।
नीर पियै नहि नीर पियै नहि पीर कही नहि पीर बतावत ।।[१]

नायक का प्रवास-गमन नायिका के लिए किस सीमा तक घातक होता है तथा ऐसी दु:खद स्थिति के परिणमन में नायिका को किन दैहिक तथा मानसिक आपत्तियों से होकर गुजरना पड़ता है उनका वेदना-विगलित तथा मार्मिक आकलन यहां किया गया है। लज्जातिशय के आवरण में बद्ध विरहिणी मुग्धा अपनी सम्मुग्धावस्था के कारण अपनी व्यथा-कथा को कथमपि व्यक्त नहीं करती। उसके अन्तर में अवस्थित दुर्दमनीया विप्रयोग-ज्वाला उसके पतनोन्मुख अंशुओं को शोषित करती हुई नियमित करती रहती है जिससे पृथ्वी गीली नहीं हो पाती। भवभूति ने तो प्रियानाश पर प्रिय के लिए समग्र जगत् को अरण्यवत् बताया है पर प्रिय-विप्रयोग कलण की अपेक्षा अधिक मर्मोत्पीड़क है। इष्टनाश से हृदय की वृत्तियों में उच्छलन नहीं रह जाता, वे सम्पूर्ण

१- विरहबसकरन - पद सं० १३४

प्रकार की रमणीयताओं तथा भविष्य की बहु आशाओं के प्रति भग्नभावमयी होकर नैराश्य-अन्धकार को जन्म देती हैं। यह निराशा अश्रु, हास, आमोद-प्रमोद, मति, चेष्टा आदि से विरहित कर देती है। यहाँ प्रसुप्त वेदना का वहन करते हुए जीवन जिया जाता है, पर विप्रयोग में वेदना देहधारिणी-सी बनकर सतत् वियोगिनी के समक्ष अवस्थित रहती है। प्रिय का वदन, उसकी चेष्टाएं, उसके क्रिया-कलाप प्रिया को निरन्तर व्यथित करते रहते हैं। उसे गृह भाता नहीं है, सखियां उसके वियोग की सघनता को सम्भवत: उसकी लज्जा के कारण न तो समझ पाती हैं और न उसे शमित करने में योग दे पाती हैं। उसकी ` पीर ` तो उसका हृदय ही समझता है - लौकिक पीर इस विप्रयोगजन्य रुग्णता का निदान प्रस्तुत करने मे असमर्थ है। कवि ने इस चित्र में नारी की जिस अनिर्वचनीय वेदना का अंकन किया है वह अपनी स्वाभाविकता, सघनता, गंभीरता तथा मार्मिकता के कारण अनुपम तथा व्यथा की यथार्थ व्यंजना के कारण स्पृहणीय बन गई है। यही भावमयता तो पति-वियुक्ता की सार-सर्वस्व है।

भाषा

हृदयेश की भाषा ब्रजभाषा है जिसमें बुन्देली या बुन्देलखण्डी की विशेषताएं भी परिलक्षित होती हैं। वस्तुत: कवि को जो भाषा परम्परा से मिली थी वह अत्यन्त समृद्ध थी। यदि भक्तिकाल के सूर ने उसे शक्तिमती तथा व्यापक बनाया था तो नंददास ने उसकी पद-योजना में संस्कृत की शब्दमणियां जड़ीं थीं। रीतिकाल में बिहारी ने यदि इसे परिमार्जित तथा इसके समासगुण को विकसित किया था तो मतिराम ने इसे स्वच्छ तथा परिष्कृत किया था। इन सभी का आभार ग्रहण करते हुए कवि ने अपनी भाषा में संस्कृत, व तद्भव, देशज तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है। समष्टि रूप में उन्होंने तीन प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है - १- विरल बुन्देलीयुक्त ब्रजभाषा, २-तत्सम शब्दमयी ब्रजभाषा ३-विरलविदेशी शब्दमयी ब्रजभाषा। तीनों के उदाहरण क्रमश: प्रस्तुत हैं :-

१- कैसी भांत कह कढ़ी आनंद प्रवाह बढ़ी

देर मैं नकार कढ़ी बदन मयंक तैं।[१]

१- विश्ववल्लकरन - पद सं० ३२७

यहाँ ' भांत ' । भांति । ' कहाँ ', ' कहौ ' में बुन्देली की विशेषताएं दृष्टव्य हैं ।

2- सुंडा दंड मंडित अखंडित वितुंड तुंड

एक रदद धार हिये हार फनपति कौं ।[1]

उपर्युक्त अंश में तत्समों का बाहुल्य सुस्पष्ट है ।

3- मलत फुलेल खूब तल तल भोल कर

अमल न रंच नीर तपत अन्हाये है ।

मगद अनेक षटरस पय पान कर

मेव अत अमल तमाल दल खाये है ।

गुलगुले गद्दल गदेलन छ्देस तूल

गरम गलेफन ओढ दाब सिर पाये हैं ।[2]

फुलेल, खूब, मगद, गुलगुले, गद्दल, गदेलन, गरम तथा गलेफ शब्दों के प्रयोग से कवि की विदेशी शब्दमयी भाषा का प्रभाव देखा जा सकता है ।

शब्द -भण्डार

छूदेश कवि के शब्दभण्डार में संस्कृत, अर्धतत्सम, तद्भव, अरबी-फारसी आदि के शब्दों का बाहुल्य है । इन भाषाओं तथा बोलियों के शब्दों को निम्न प्रकार देखा जा सकता है । कोष्ठक में शुद्ध या तत्सम रूप दिए गए हैं :-

1- संस्कृतगृहीत, तत्सम तथा संस्कृताभास शब्द-समूह - मंडन, खंडन, नमस्कार, सुंडा ।सुण्ड ।, दंड, रद, भाल, अमल, चंद ।चंद्र ।, गनपति ।गणपति ।, जुगल । युगल ।, धुनि । ध्वनि ।, सिंधु, विसेस । विशेष ।, विचित्र, दीप, धम्र मारतंड ।मारतण्ड ।, अखंड, पियूष । पीयूष ।, मयंक, वदन, दुति ।द्युति ।, दुतिय ।द्वितीय ।, त्रितिय ।तृतीय ।, ग्रंथ ।ग्रंथ ।, कुसुमसर । कुसुमशर ।, हाटक, अंब, पिक, तन । तनु ।, भूतल, सुकिया । स्वकीया ।, गनका । गणिका, सोभा । शोभा ।, पीन, मीन, सीसफूल । शीर्षफूल ।, कंप, स्वेद, सुमन, परजंक ।पर्यंक ।, जामिनी । यामिनी ।, वसन, केश तोरन, धाम, ललित, अगम ।अगम्य ।, तद्वत्, मारग । मार्ग ।, नित्य, भाल, नगर, जावद, अखंड, अमन्द जलध । जलधि ।, रत । रति ।, आलवाल, कथ

1- विश्ववाकरन - पद सं० 8

2- वही- पद सं० 440

अम्बु, वारि, कनक, कपोल, कलानिधि, कंज, कोक, जलजात, दम्पति, दुकूल, नागर, निकुंज, नीर, पट, बाधा, भाल, सिंधु, स्वाधीनपतिकादि, लखित, प्रदोस। प्रदोष।, चित्र, हृदय, धन, दिवस, अंबरीट, त्रिवेनी। त्रिवेणी।, सुधा, मरुत। मरुत्।, निसा। निशा।, पत्र, अमृत, उपमान, दिग्गज, कंचन, पट, नील, मेघ, प्रमोद आदि।

तद्भव शब्द – अनत, घर, छया, पिय, बतियां, भौन, भौर, मीत, सुंदरी, सारी, सिंगार, सेत, सौत, सौंह, हिय, ईसुर, पात, गात, काम, समद, दीठ, लोयन, बिज्जु, नाह, नेह, सपना, जोबन, कान्ह, तिरीछे, बैद, बैन, उजास, चित, गमार, सांझ, हुलास, पौन, गौन, भौन, अकास, औगुन, बैन, बैनी, जामिनी, सेज, उछाह, धौर, काजर आदि।

बुन्देली शब्द – कोद, बीधो, स्यौं, बैन, इतै, उतै, ताय, कहत, कहै, कहौं, इतै, लौनै, कौन कौ, नचै, सामन, पढ़ती, औगुन, धन, नार, नोने, गुदरी, रचक, लहुती, हरा, जानै, जामै, स्यान, सेलबी, मोय, चाहनै, पैरे, मामन, गामन आदि।

अरबी, फारसी, तुर्की अथवा इनसे प्रभावित शब्द – सिकार। शिकार।, हद्द, चिरक चिरकन चिराक। चिराग।, नजर। नज़र।, खुदा, जबर। ज़बर। तसवीर (तस्वीर), महताब। माहताब।, नौबत, खासी। ख़ासी।, खब, बजार। बाज़ार।, खत। ख़त।, जहर। ज़हर।, दुकान, तमासा। तमाशा।, मुजरा, मखमल। मख़मल।, दिल, तलास। तलाश।, मौज, फौज। फ़ौज।, अबीर, अतर, तखत। तख़्त।, बेदरद। बेदर्द।, बरफ। बर्फ़।, बिहद। बेहद।, बाजूबंद, आफताब। अफ़ताब।, चोबदार, मिजवानी। मेज़वानी।, दीन, दाखिल। दाख़िल।, दलगीर। दिलगीर।, माफ। मुआफ़।, सरताज। सिरताज। संस्कृत के शिर तथा ताज से निर्मित, हुरमत, बाज। बाज़। फजियत। फ़जीहत।, आला, गजब। ग़ज़ब।, जरद। ज़र्द।, गरद। गर्द।, फकर, नूर, काबिल, ख़ानदेह, आलम, जुलम। ज़ुल्म।, आफत। आफ़त।, दरवाजा। दरवाज़ा।, वखत। वक़्त।, हद्दर्द, बद, गुलजार, इजार, पीर, खिजाब। ख़िज़ाब।, खजानी। ख़ज़ानी।, बाग। बाग़।, मसाल। मशाल।, मकतूल। मक़तूल।, फिराद। फ़रियाद।, जहान, सिरोही, जालिम। ज़ालिम।, सार, गुलाब, कमान, दौलत, साक। शाक।, जानमाल, बदनाम। फारसी के बद तथा

संस्कृत के नाम से निर्मित ।, सलाय । सलाह ।, सरम । शर्म ।, हजार । हजार ।, सदर आदि ।

साधारण बोलचाल के शब्द – सिगरी, नैकु, भट्, लला, लली, काल । कालिह ।, गैल, छैल, माई, बीर आदि ।

ग्राम्य शब्द – हार, खरौट । खरौंट ।, पलंग, ढोर, चक्चूर, ढेर, फरफंद, निगोड़ी, जलजल, मचक-मचक आदि ।

शब्दध्वनि अथवा अनुरणनात्मक शब्द – ध्वन्यर्थ-व्यंजना के लिए कवि ने शब्द-ध्वनियों को भी काव्य में प्रयुक्त किया है । यथा –

> धुंधाधुंध, धाराधर, धौर धौर चारो दिस[1] ....
>
> झलाझल झार झार झिल्लीगन तरके ।[2]
>
> मचकि झकोर झूम झूलत डरात प्यारी[3]
>
> झुकत झपाक गरे लाग व्रजपति के ।[8]
>
> मचक मचक देखा अचकत लाल लंकु
>
> लचक लचक बात बच बच जात है ।[4]
>
> पौन सनसनात झंझनात झिली झाँझ कर[5]
>
> बगर बगर दुति जगर मगर होत[6]
>
> किंकिन की झनक झमाक पायजेब त्यौं –[7]

शैली

हृदयेश की शैली का सूक्ष्म अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वर्ण्य-विषय के अनुसार उन्होंने अपनी शैली का निर्माण किया है । यह शैली बहुविधा अभिव्यक्त होकर अनुकूल अभिव्यंजना में समर्थ हुई है –

१– व्यंजनाप्रधान अलंकृत शैली – प्रेम-वर्णन, रूप-वर्णन, क्रिया-विदग्धा अथवा वाग्विदग्धा के वर्णन तथा भावों की अभिव्यक्ति में कवि इस शैली से प्रभावित हुआ है । यही शैली कवि की प्रतिनिधि शैली के रूप में स्वीकार की जा सकती है ।

१– विश्वप्रकाश – पद सं० ५३३   २– वही पद सं० ५३२
३– वही– पद सं० ५३९   ४– वही– पद सं० ५४०
५– वही– पद सं० ५५२   ६– वही– पद सं० २२५   ७– वही– पद सं० २७०

इसमें काव्य के भाव पक्ष तथा कलापक्ष पूर्णतया समन्वित है। अन्यशब्दों में भावपक्ष की अपेक्षित व्यंजना के लिए ही कलापक्ष की योजना की गई है। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि साम्यमूलक तथा अन्य अलंकारों का यहां स्वाभाविक प्रयोग है। यह शैली प्रयत्नज या कृत्रिम शैली से सर्वथा पृथक है –

रतन जटित पिचिकारिन फुहारिन मैं

छलित रंग गंध कलित बखान कौं।

केसर के कुंभ भर केसर उलीचैं बाल

कलत अबीर मुण लाल गुणदान कौं।

फैकौं नंदलाल नै गुलाल ले ब्रदेस वेस

परौ कुच-कुंभ पर दिपत भलान कौ।

मानौ कलधौत गिर मंडित बनांहित पर

फैल गौ अकास तैं प्रकास बाल भान कौ॥[1]

+ +

भनत ब्रदेस नंदलाल हिंसि पालन कौं

राधका पधारी प्यारी परत न जान है।

दीप कौ निसान है कि चंपका कौ बान है

कि हीरन की खान है क कृसान है कि भान है।[2]

2– व्यंजनाप्रधान अनलंकृत शैली – कवि के कृतित्व में ऐसे अनेक मर्मस्पर्शी स्थल हैं जिनमें व्यंजना की गहराई अथवा रसानुभूति की तीव्रता है; परन्तु उनमें स्फुटालंकारों का तिरोभाव है। ऐसे प्रसंग अत्यन्त प्रभावी, मार्मिक, सजीव तथा बिम्बग्रहणक्षम हैं। काव्यशास्त्रियों को ऐसे स्थलों पर स्वभावोक्ति की छटा दिखाई पड़ सकती है; परन्तु इन सभी प्रसंगों में व्यंग्य अर्थ की रमणीयता ही दृष्टिगत होती है। काव्यप्रकाशकार की स्थापना 'अनलंकृती पुनः क्वापि'[3] का प्रतिफलन ऐसे प्रसंगों में ही हुआ है –

।१। कारा कुंज फूलत मैं दोनों संग भूलत मैं,

गावत उमंग रंग छायौ मधुवन मैं।

१– विरहवारन – पद सं० ५०० 2– वही – पद सं० 226

3–सर्वत्र सालंकारौ क्वचित्तु स्फुटालंकारविरहेऽपि न काव्यत्व हानिः

– काव्य प्रकाश– प्रथम उल्लास

आज सीसफूल छूट कान्हर सम्हारी रंच

आंगुरी परस होत कहा भयौ छन मैं।

भनत हृदेस सखी जानिये न जात बात

कौन उतपातउठै रोम छन छन मैं।

भर भर नैन आए गदगद बैन आए

थर थर कंप उठौ स्वेद भयौ तन मैं।[1]

।२। भ्रमर न सुहात मेघ तरु न सुहात छाह

घर न सुहात उठ आवत वगर मैं।

खान ना सुहात पान ना सुहात रंच

कान ना सुहात तान गावत नगर मैं।

भनत हृदेस बीर तीर सौ समीर लागै

भूल जात कांच भौन जगर मगर मैं।

बीधौ मन मेरौ रसराज लाज फंदन मैं

गया मन भाज बृजराज की डगर मैं।[2]

३- <u>व्यंजनास्फुट अलंकृत शैली</u> - आलंकारिकता रीतियुग की प्रिय प्रवृत्ति रही है। कवि हृदयेश भी इस प्रवृत्ति से अप्रभावित नहीं रह सके हैं। शब्दचित्र तथा अर्थचित्रमयी शैली, जिस शैली से युक्त काव्य को आचार्य मम्मट ने `अधम काव्य`[3] की श्रेणी में परिगणित किया है, हृदयेश के प्रकृतिचित्रण, तथा वाकवैदग्ध्य से युक्त चमत्कारात्मक प्रयोगों में देखी जा सकती है। यहां व्यंग्यार्थ या व्यंजना की अप्रधानता है तथा शब्दालंकारों की प्रमुखता —

सकल सराहै सुध्य सारंग सरद सार

सुर से सरस सर सरसत सांम के।

चौन जान बान कौं जरावत जुलम जोर

जुर सौं जगत जामै जहर तमाम के।

१- विरहवसकरन - पद सं० २० २- वही - पद सं० १३७

३- शब्दचित्रं वाच्यचित्रं व्यंग्यं स्वबरम् स्मृतम् - काव्य प्रकाश - प्रथम उल्लास

भनत द्विदेस बल व्याकुल विरह वर

वेदन वदन बधी वरकस काम के।

तारापति तपत तवा सौ तेज तैार कर

तारागन तरून अंगारा ज्वालाधाम के।।[1]

।२। द्रौपति पै तच्छक कियौ अच्छ कर पच्छ कियौ

दुसासन तुच्छ भौ अपच्छ किया वर कौ।

प्रह्लाद रच्छ रच्छ तात कियौ गच्छ गच्छ

है प्रतच्छ कीनौ बध गजराज वर कौ।

भनत द्विदेस स्वच्छ कीनौ काढ़ भूतल कौ

ध्रुव कौ समच्छ पद दीनौ है अमर कौ।

देवन सौलच्छ अच्छ तुरत तुलच्छ गच्छ

होत है सपच्छ तापै पच्छ रघुवर कौ।।[2]

शब्दचित्र की प्रधानता उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में देखी जा सकती है। अब अर्थचित्र का एक उदाहरण प्रस्तुत है :-

काम सुंदरी सी मुक्तमाल फुंदरी सी छबि

वारौं तरपनी सी हांसी सुधा बरसी सी है।

हीरन की कांत सी बलोसी दरसी सी मीसी

नैनन धंसी सी पैठ हीतल बसी सी है।

भनत द्विदेस रची सुंदर हरी सी बाल

मुक्त भरी सी विधि बनित असीसी है।

दीपत ससी सी अंक भरत परी सी दीपी

सी सी करै लागै आनंद बरसी सी है।[3]

४- कल्पनाप्रधान ऊहात्मक शैली - रीतिकालीन कवियों की इस शैली से द्विदेश भी अप्रभावित नहीं रह सके हैं। इसमें कल्पना की ऊंची उड़ानों के दर्शन होते हैं।

१- विरहवारीश - पद सं० १२९ २- वही पद सं० ४७२

३- वही- पद सं० ४४०।

अनुभूति-
को निरपेक्ष तथा भावोद्रेक विरहित। ऐसे वर्णनों से सहृदय का हृदय रससिक्त और चमत्कृत नहीं होता अपितु वह उनका उपहास-सा करने लगता है। इस शैली में भावों की उपेक्षा है, कला का तिरस्कार है; केवल दूर की कौड़ी लाकर पाठक की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करने की निरर्थक चेष्टा की गई है। हर्ष का विषय यह है कि ऐसे प्रसंग विरल हैं :-

।१। पिय न मिलन संकेत मैं तपत विरह भरपूर।
परत स्वास के साझी गिरत बाग तैं दूर।।[1]

।२। कहत सुनत द्रगजल बहत सकुचत सकुच तमाम।
लघु सरवर हरवर भरत सुनत लगत न धाम।।[2]

।३। डगमग होत मनमंदिर मैं डोल तन
लचकत लंकु वात स्वासन भरत है।
सीत रित धाम के लगत कुम्हिलात अंग
बदन मलिन होत दीपत हरत है।
+ +
तूल कौं डरत प्रड फूल कौं डरत बाल
मणमल छोड़ कहूँ पग न धरत है।।[3]

उक्ति-वैचित्र्य

कवि का मार्ग साधारण लोगों के मार्ग से कुछ भिन्न होता है। उसकी शब्दावली में कल्पना का पुट लगा रहता है। वह कमल को ' कमल ' न कहकर ' सखी के नेत्र ' कहेगा। उषा को ' उषा ' न कहकर ' भगवान के चरणों की लाली ' अभिहित करेगा। इसीलिए इस प्रकार की वक्रता को वक्रोक्तिजीवितकार कुन्तक ने ' वैचित्र्य ' तथा ' वैदग्ध्यभंगीभणिति ' अर्थात् विदग्ध लोगों के कहने का विशेष ढंग ' भी कहा है।[3] आचार्य कुन्तक ने उक्त वक्रता पर विस्तार से विचार करते हुए इसके छः भेद किए हैं :- ।१। वर्ण-विन्यास वक्रता, ।२। पद-पूर्वार्द्ध वक्रता ।३। पद परार्द्ध वक्रता, ।४। वाक्य वक्रता, ।५। प्रकरण वक्रता और ।६। प्रबन्ध-

---

१- विश्वबसकरन - पद सं० १९२ २- वही पद सं० २३५

३- सिद्धान्त और अध्ययन - डा० गुलाब राय - पृ० ११

वक्रता । कवि हृदयेश के उक्ति-वैचित्र्य के सन्दर्भ में इन्हीं शीर्षकों के अन्तर्गत आने वाले काव्यांशों को प्रस्तुत करना हमारा ध्येय है —

1- वर्ण-विन्यास वक्रता - इसके अन्तर्गत अनुप्रास तथा यमक अलंकारों की योजना, वर्णान्त्ययोगी स्पर्शों - त, ल, न आदि की आवृत्ति होती है तथा रेफादि वर्णों की बारम्बार योजना की जाती है। हृदयेश के काव्य में इन सभी उपादानों का उचित प्रयोग है। अनुप्रास तथा यमक के प्रति कवि का विशेष अनुराग रहा है। कतिपय एतादृश उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं :-

1- दामिनि दमक दीप दीपत दिसान दून

दादुल दडक दल दल दल धावै है।

कूल कुंज कोकला करत कल कोलाहल

किलकत केकी कुल काम सरसावैं है।।[1]

2- भूम भूम भीलन भलान भोला भोल जल

भूराभूर भोगन भपाक भप बरसत।[2]

—— अनुप्रासयोजना

3- नाय उदारता के उदार काके पठवत हौ।[3]

4- पीर वही नहि पीर बतावत।[4]

5- मार मार कीनी दसा देहि की गनत ना।[5]

—— यमक प्रयोग

2- पद-पूर्वार्द्ध वक्रता - शब्द के आरम्भ में उत्पन्न वक्रता, जिसे मूल धातु से संबंधित वक्रता भी कहा जा सकता है, को ही पद-पूर्वार्द्ध वक्रता कहते हैं। इसके आठ भेद हैं- (1) रूढ़ि-वैचित्र्य वक्रता, (2) पर्याय वक्रता, (3) उपचार-वक्रता, (4) विशेषण-वक्रता, (5) संवृत्ति वक्रता, (6) वृत्ति-वक्रता, (7) लिंग-वैचित्र्य वक्रता तथा (8) क्रिया-वैचित्र्य वक्रता। रूढ़ि-वैचित्र्य से आशय कोश तथा लोक व्यवहार में प्रसिद्ध अर्थ के अन्तर्गत लोकोत्तर चमत्कार उत्पन्न करने से है, जब कि पर्यायवक्रता की सफलता पर्याय-वाची शब्दों के उनकी आत्मा के अनुसार प्रयोग में मानी जाती है। उपचारवक्रता

1- विश्वप्रकाश - पद सं० 546 2- वही- पद सं० 545

3- वही- पद सं० 480 4- वही पद सं० 135

5- वही- पद सं० 671

जहां साम्यमूलक अलंकार व्यापार का पर्याय-मात्र है, वहां विशेषण का वैदग्ध्यपूर्ण प्रयोग विशेषण प्रधान अलंकारों की कोटि में रखा जा सकता है – वैसे अलंकार के अभाव में भी विशेषकर वस्तु-वर्णन को सुन्दर बना देते हैं। संवृत्ति वक्रता का संबंध क्रमश: संज्ञा आदि के गोपन तथा समस्त पदावली की योजना से उत्पन्न चमत्कार से है।[1] हृदयेश की रचना-समष्टि में ये भेद निम्न प्रकार देखे जा सकते हैं :-

रूढ़ि-वैचित्र्यवक्रता – नमस्कार सिर मोर।[2]

पर्याय-वक्रता – बिन नंदनंद बुंद परत करेजैं बेधैं –[3]

उपचार-वक्रता –नैन बान तान बान तान गुन भरी है।[4]

विशेषण-वक्रता –खण्डन के करतान कौं नमस्कार सिरमोर।[5]

संवृत्ति-वक्रता –राम कहा तुम सौंह करौं ...[6]

वृत्ति-वक्रता –चन्दनाद अतर गुलाल भर थार कर ....[7]

लिंगवैचित्र्यवक्रता –घर ही की चिराक सौं आग लगी ....[8]

क्रियावैचित्र्यवक्रता–भौंहैं मदि छककारी हैं।[9]

जित जित दाब चिरि तुर तुर जात हैं।[10]

3–पद-परार्द्ध वक्रता – इसका सम्बन्ध शब्द के उत्तरार्द्ध अंश या प्रत्यय आदि से है। इसे भी काल, कारक, वचन, पुरुष, उपग्रह। धातु पद। सूचक प्रत्ययों तथा निपातन आदि के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। ये भेद प्राय: संस्कृत के आधार पर है। अत: प्रकृति और प्रकृत्ति प्रत्यय की भिन्नता के कारण ब्रजभाषा में इनके अनेक उदाहरण भाषानुकूल विशेषताओं के साथ ही मिलेंगे।[11] हृदयेश का एक उदाहरण दृष्टव्य है।

आज सीसफूल छूट कान्हर सम्हारौं रैव –[12]

यहां ` कान्हर ` में पद-परार्द्धवक्रता है।

4–वाक्यवक्रता – यहां वक्रता का आधार पूरा वाक्य होता है। जहां किसी वस्तु या

1–मतिराम कवि और आचार्य – डा0 महेन्द्र कुमार – पृ0 241
2– विरवमाकरन – पद सं0 3 3– वही – पद सं0 431 4– वही– पद सं0101
5– वही– पद सं0 3 6– वही– पद सं0 42 7– वही– पद सं0410
8– वही– पद सं0114 9– वही– पद सं0491 10– वही– पद सं0 32
11–महाकवि ग्वाल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व– डा0 भगवान सहाय पचौरी – पृ0322
12– विरवमाकरन – पद सं0 20

विषय के स्वाभाविक रूप का ही ऐसा सहज वर्णन हो कि उसमें किसी प्रकार का अर्थ-गौरव या अर्थसौन्दर्य उत्पन्न हो गया है, उसे वाक्यवक्रता कहते हैं। इसके (१) स्वभावोक्ति और (२) अर्थालंकार - ये दो भेद हैं। दोनों के क्रमश: उदाहरण कवि हृदयेश के काव्य से - निम्नप्रकार हैं -

१- वेस मनभामिनी करी है वार जामनी की
कामिनी कौं भई सारी जामिनी छनक सी।[1]

२- चंद सौं बदन देहि दीपन कनक सी।[2]

३-प्रकरण-वक्रता - इसके भी अनेक भेद किए गए हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख ये हैं - भावपूर्ण स्थिति की उद्भावना, प्रसंग की मौलिकता, पूर्व प्रचलित प्रसंग में संशोधन, रोचक प्रसंगों का विस्तृत वर्णन, प्रधान उद्देश्य की सिद्धि के लिए सुन्दर अप्रधान प्रसंग की उद्भावना तथा प्रसंगों का पूर्वापर क्रम से अन्वय। विस्तार-भय से यहां कवि हृदयेश का वह प्रसंग मात्र प्रस्तुत किया जा सकता है, जहां उन्होंने अनुशयाना नायिका का एक भेद `कलत - ससुरार` निर्धारित किया है, जो पूर्णतया मौलिक है -

प्रथम भ्रष्ट अस्थान रत दुतिया कलत ससुरार।[3]

४-प्रबन्धवक्रता - इसके अन्तर्गत प्रबन्ध काव्य, महाकाव्य, नाटक (उपन्यास) आदि का सौन्दर्य आता है। इसके भी छ: भेद बताये गये हैं। हृदयेश का काव्य मुक्तक-परम्परा में परिगणित होता है, अत: इस वक्रता के उदाहरणों का (यहां) अभाव ही है।

शब्दशक्तियां

शब्द तथा अर्थ की समष्टिरूप काव्य में तीन प्रकार के शब्द,- वाचक, लक्षक और व्यंजक तथा तीन प्रकार के अर्थों - वाच्य, लक्ष्य, व्यंग्य - की योजना काव्यशास्त्रियों द्वारा की गई है। उक्त तीन प्रकार के शब्दों से तीनों प्रकार के अर्थों की प्रतीति के लिए उन शब्दों में अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना नामक तीन प्रकार की शब्दशक्तियां मानी गई हैं -

---

१ व २ - विरहवारहरन - पद सं० ३५

३- वही - पद सं० ९६

१- अभिधा - शब्द की जिस शक्ति के कारण किसी शब्द का साधारण तथा प्रचलित यश मुख्य अर्थ गृहीत होता है, उसे अभिधा शक्ति कहते हैं। व्यवहार में एक शब्द का कोई निश्चित अर्थ मान लिया जाता है। यह मान्यता ही संकेत है। ध्वनिवादियों ने यद्यपि अभिधावृत्ति प्रधान काव्य को विशेष महत्त्व नहीं दिया है[1] तथापि उत्तम काव्य (ध्वनिकाव्य) की अभिव्यंजना में सहायिका होने के कारण उसको अपेक्षित आदर प्रदान किया है।[2] हिन्दी-रीतिकवि देव ने तो अभिधा काव्य को ही उत्तम स्वीकार कर इस वृत्ति को शीर्ष पर प्रतिष्ठित किया है -

अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षना लीन,
अधम व्यंजन रस-कुटिल उलटी कहत नवीन।[3]

२- लक्षणा - शब्द की जिस शक्ति के कारण मुख्यार्थ में बाधा होने पर प्रधान या मुख्यार्थ को छोड़कर सामीप्यादि संबंधों के आधार पर रूढ़ि अथवा प्रयोजन से अन्य अर्थ की कल्पना करनी पड़ती है, उसे लक्षणा कहते हैं। आचार्य मम्मट ने षड्विधा लक्षणा- उपादान लक्षणा, लक्षण लक्षणा, शुद्धा सारोपा लक्षणा, शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा, गौणी सारोपा लक्षणा तथा गौणी साध्यवसाना लक्षणा - प्रतिपादित की है।

३- व्यंजना - शब्द की जिस शक्ति के कारण शब्द या शब्द-समूह के वाच्यार्थ अथवा लक्ष्यार्थ से भिन्न अर्थ की प्रतीति हो अर्थात् जिससे साधारण अर्थको छोड़कर किसी विशेष अर्थ का बोध हो उसे व्यंजना कहते हैं। यह शाब्दी तथा आर्थी भेद से दो प्रकार की होती है। शक्ति की कारणता से यह अभिधामूला तथा लक्षणामूलक कही गई है। अभिधामूला व्यंजना संयोगादिवैशिष्ट्य से तेरह प्रकार की वर्णित है तथा आर्थी व्यंजना वक्तृ आदि के वैशिष्ट्य से दस प्रकार की निरूपित है।

हृदयेश के काव्य में शब्दशक्तियाँ

अभिधा - हृदयेश की रचना-समष्टि में अनेकत्र अभिधा की सामर्थ्य का प्रकाशन है। ऐसे वर्णनों में कवि ने अपने कथ्य की अभिव्यक्ति हेतु निश्चित अर्थ देने वाले शब्दों का चयन किया है, फिर भी अर्थ में कल्पना आदि का चमत्कार देखा जा सकता है। यथा-

---

१- ध्वन्यालोक - आनंदवर्धन - १। कारिका ७ की वृत्ति
२- वही- १। कारिका२
३- शब्द-रसायन - कवि देव - उद्धृत देव और उनकी कविता -डा०नगेन्द्र - पृ० १७४

आई बाल गौने बैठी लाज भरी कौनें

ब्रजराज ललिचौनें ताकिबे कौं तरसौं करै।

अंग-अंग सौनै तैं सरस झलकत छबि

हास मृदु बोलन सुधा- सौं बरसौं करै।[1]

+ +

भनत हृदेस आए मारग सहज स्याम

चकित थकित भए तकि तकि लीन ये।

दृग पट झीन ओट दिपत नवीन मान

उछरत मीन गंग जल मैं प्रवीन ये।[2]।

लक्षणा- कवि हृदयेश ने अपनी भाषा को वैदग्ध्यमयी तथा समृद्धिशालिनी बनाने के लिए लक्षणा वृत्ति का प्रयोग किया है। एतद्विषयक कतिपय अंश दृष्टव्य हैं -

१- गयौ मन भाज रतराज की डगर मैं।[3]

२- छूटी लाज पुरजन की।[4]

३- मलय लपेटी पौन औन चहुं ओर[5] -

४- तुव जगत बढ़ाई गाई[6] -

५- भनत हृदेस लागैं प्रानहू तैं प्यारे ब्रज[7] -

६- जागत मनोज धाक लागत रहत ना।[8]

७- उर उर जात तौक नैनन बिसाल की।[9]

व्यंजना - अपने कथ्य में वक्रता तथा तीक्ष्णता लाने के लिए कवि ने व्यंजना वृत्ति का सुप्रयोग किया है। खण्डिता नायिका की उक्तियों में प्रायः इस वृत्ति के दर्शन होते हैं -

सुन्दर रूप बनौ मनमोहन झूमत आवत ज्यौं मतवारे।

देत हृदेस सबै जग मोहत जात नहीं सिर पैंच सम्हारे।

१- विरुदप्रकाश - पद सं० 203   २- वही - पद सं० १२०

३- वही- पद सं० १३७   ४- वही- पद सं० १५३

५- वही- पद सं० ५०८   ६- वही- पद सं० १२७

७- वही- पद सं० ३९   ८- वही- पद सं० ५५६

९- वही- पद सं० ४८७

छाकि रहे छबि के मदि सौं उहि ताकि रहे धरि ध्यान बिचारे।

जाग लगे हिय औरु तिया घर प्रात लखो बड़ भाग हमारे ।।[1]

यहाँ विपरीत लक्षणा के द्वारा गृहीत व्यंग्य बिल्कुल सीधा है जैसा संस्कृत के काकु में होता है। व्यंजना का अन्य रूप वहाँ देखा जा सकता है जहाँ वक्ता किसी अप्रिय बात को लक्ष्य कर अपने आशय को भंग्यन्तर से व्यक्त करता है -

लाल लाल लोचन भये मेरी मुठ गुलाल।

ऐसी फाग न खेलबी बड़े अठाई ग्वाल ।।[2]

यहाँ धीरा नायिका अपने मान को कल्पना से आवेष्ठित कर कितने मार्मिक रूप में कृतापराध नायक के प्रति प्रकट करती है।

व्यंजना का एक अन्य रूप वहाँ भी देखा जा सकता है जहाँ नायिका उपपति से प्रणयलाभ हेतु भंग्यन्तर का उपयोग करती है -

ससुरक मेरौ सास हार मै खोरौ कियौ

नाह सौंत घेरौं भयौं आवत अबेरौ है।

ननद निगोड़ी नित्य होत ही सबेरौ करै

घर घर फेरौ समुझाउ बुलेरौ है।

भनत ब्रदेस ब्रज ठाकुर सहाय तेरौ

बर तन ज्वाल साँझ नभ घन घेरौ है।

कृपा द्रग हेरौ जीव कंमत फेरौं मेरौ

दीपक उजेरौ परौ मंदिर अधेरौ है ।।[3]

रीति-वर्णना

'रीति' का शाब्दिक अर्थ है - मार्ग, पद्धति, प्रणाली, शैली आदि। काव्यशास्त्र के अन्तर्गत इस शब्द से दो अभिप्राय ग्रहण किए जाते हैं - (१) काव्यरचना की व सामान्य पद्धति - शैली आदि के अर्थ में, (२) संस्कृत काव्यशास्त्र के रीति - सम्प्रदाय विशेष के अर्थ में। यह सम्प्रदाय आचार्य वामन ने नवीं शताब्दी में प्रवर्तित

१- विरहविलास - पद सं० १६१   १- वही -   पद सं० ३०

२- वही-   पद सं० ७६

किया था । इस सम्प्रदाय के अनुसार विशिष्ट प्रकार की पद रचना `रीति` मानी गई है । यह रीति वामन के द्वारा काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकृत की गई है । पदरचना में गुणों का होना ही उसकी विशिष्टता है – विशेषो गुणात्मा । इस प्रकार आचार्य वामन काव्य का आधार रीति को तथा अर्थ रीति का आधार `गुण` मानते हैं । यतः काव्य शब्द तथा अर्थ पर आधारित है, अतः वामन ने दस शब्द तथा १० अर्थ गुणों की उद्भावना की है[1] । शब्दगुण निम्न प्रकार हैं :-

१– ओज, २– प्रसाद, ३– श्लेष, ४– समता, ५– समाधि

६– माधुर्य, ७– सौकुमार्य, ८– उदारता, ९ – अर्थव्यक्ति, १०–कान्ति

ये १० गुण अर्थगुण[2] भी हैं । अर्थगुणों की व्याख्या अवश्य अन्य प्रकार से की गई है ।

आचार्य वामन ने रीति के तीन भेद – वैदर्भी, गौड़ी तथा पांचाली – स्वीकार कर समग्र गुणों को इन्हीं में अन्तर्भुक्त कर दिया है । उदाहरणार्थ– वैदर्भी रीति में वामनोक्त सम्पूर्ण गुण होते हैं, इसीलिए वह काव्य की सर्वोत्तम रीति मानी गई है । वामन ने ही नहीं अपितु सभी काव्यशास्त्रियों ने वैदर्भी को ही काव्यरचना हेतु उत्कृष्ट स्वीकार किया है । यह रीति माधुर्य व्यंजक वर्णों से युक्त, समासरहित अथवा छोटे-छोटे समासवाली होती है । दूसरी रीति गौड़ी में केवल दो गुणों – ओज और कान्ति – की उपस्थिति मानी गई है । यह ओजपूर्ण शैली मानी जाती है जिसमें कठिन वर्णों का प्रयोग होने के साथ-साथ समासबहुलता होती है । वामन द्वारा स्वीकृत तीसरी रीति पांचाली है जिसका निर्माण माधुर्य तथा सुकुमारता से हुआ है । यह अगठित, भावशिथिल, कान्तिरहित, मधुर और सुकुमार गुणों से युक्त होती है । आगे चलकर आचार्य मम्मट ने वामनोक्त गुणों का सतर्क खण्डन कर त्रिगुणवाद की स्थापना की[3] । ये गुण हैं – माधुर्य, ओज तथा प्रसाद । ध्वनिवादी आचार्य आनंदवर्द्धन ने वृत्तियों तथा रीतियों को अलंकार तथा गुणों से अभिन्न माना है । इस प्रकार रीति आत्मा के रूप में नहीं अपितु अंगसंस्थान-मात्र के रूप में स्वीकार की गई । रस उसका एक तत्त्व नहीं रहा वह स्वयं रस की उपकर्त्री समझी गई । इसी प्रकार गुण भी उसके उपादान तत्त्व नहीं रहे । वह स्वयं उनका माध्यम बन गई । परवर्ती ध्वनिवादी तथा रसवादी आचार्यों के अनुसार रीति शब्द और अर्थ के आश्रित रचना-चमत्कार का नाम है जो माधुर्य, ओज तथा

१– ~~[illegible]~~ काव्यालंकार-सूत्र – वामन ३।१।४

२– वही– ३।२।१

३– काव्य प्रकाश – ८। सूत्र ८८

प्रसाद गुण के द्वारा चित्त को द्रवित, दीप्त और परिव्याप्त करती हुई रसदशा तक पहुंचाती है।[1] यतः उपर्युक्त तीनों रीतियां माधुर्य, ओज तथा प्रसाद समन्वित ही होती है तथा रीति को गुणों के आश्रित माना गया है,[2] अतः दृदयेश के काव्य से इनके पृथक् उदाहरण देना पिष्टपेषण-मात्र होगा। गुणों के विवेचन में ही कवि के रीति-विषयक उदाहरणों को देखना समीचीन होगा।

गुण-विवेचन

साहित्य-शास्त्र में काव्यगुणों को रस के अंगी धर्म मानकर उन्हें अलंकारों से भी शीर्षस्थान पर अधिष्ठित किया गया है।[3] मम्मटप्रतिपादित तीनगुणों – माधुर्य, ओज तथा प्रसाद के स्वरूप निम्नवत् हैं :-

१- माधुर्य गुण- काव्यप्रकाशकार के अनुसार हृदय को द्रवित करने वाली आह्लादकता ही माधुर्य है, वह (संयोग) शृंगार, करुण, विप्रलम्भ और शान्त रस में उत्तरोत्तर अधिक होना चाहिए।[4] इस गुण में ट, ठ, ड, ढ को छोड़कर क से म पर्यन्त चारों वर्गों के समस्त अक्षर शिर पर अपने वर्ग के अन्तिम वर्ण से युक्त, ह्रस्व से व्यवहित रेफ (र) तथा णकार का प्रयोग होता है। इसमें समास का अभाव अथवा छोटे-छोटे समास की योजना होती है।

२- ओज- गुण :- चित्त-विस्तार एवं दीप्तिजनक गुण ओज कहलाता है जो वीर, वीभत्स और रौद्र रस में क्रमशः अधिक होता है।[5] वर्ग के प्रथम तथा द्वितीय वर्ण के साथ उनके बाद के तृतीय और चतुर्थ वर्णों का, २- ऊपर, नीचे अथवा दोनों जगह विद्यमान रेफ के साथ जिस किसी वर्ण का, ३- दो तुल्य वर्णों का अर्थात् (वित्त, उद्दाम आदि के समान) उसका उसी वर्ण के साथ योग, ४- टवर्ग अर्थात् णकार को छोड़कर ट, ठ, ड, ढ का प्रयोग, ५- शकार तथा षकार का प्रयोग, ६-दीर्घ समास और

१- रीतिकाव्य की भूमिका – डा० नगेन्द्र – पृ० १०७

२-ध्वन्यालोक – आनंदवर्धन – ३।६ – गुणानाश्रित्य तिष्ठन्ती माधुर्यादीन् व्यनक्ति सा रसान् –

३- काव्यप्रकाश – मम्मट – ८।६६ कारिका   ४- वही – ८ ८।६८-६९ का०

५- वही- ८।६९-७० का०

७-विकट रचना-योग ओज गुण के व्यंजक होते हैं।[1]

३-प्रसाद गुण- जो सूखे इंधन में अग्नि के समान चित्त में व्याप्त हो जाता है, स्वच्छ जल के समान फैल जाता है तथा अन्य सब गुणों को अभिभूत कर लेता, वह प्रसाद गुण कहलाता है। यह सभी रसों में स्थित होता है।[2] यह समस्त रसों तथा रचनाओं का साधारण धर्म होता है।[3]

उपर्युक्त मतों के आलोचन से यह निष्कर्ष निसृत होता है कि श्रृंगार रस में माधुर्य गुणरचना तो होनी ही चाहिए, प्रसाद गुण का भी योग अपेक्षित है अन्यथा माधुर्य गुण सिद्ध नहीं होगा। अर्थ-व्यक्ति में जितना क्लिष्ट होगा रसास्वादन में उतना ही व्याघात होगा। `प्रसादस्तु प्रसन्नता` के अनुसार प्रसाद गुण प्रसन्नता का वाचक है। इसीलिए किसी देवता की प्रसन्नता के उपलक्ष में वितरित किया जाने वाला मधुर पदार्थ भी `प्रसाद` शब्द से अभिहित होता है और विचारणीय बात यह है कि वह प्रसाद प्राय: माधुर्यपूर्ण ही होता है। अतएव मधुर भावों की कविता में माधुर्यगुण के साथ प्रसाद गुण का भी समावेश मणिकांचन योग उपस्थित कर देता है। भावदुरूहता, शब्द-काठिन्य और वाक्यविन्यास की जटिलता से बचना कवि का काम है।[4]

हृदयेश के काव्य में उपर्युक्त तीनों गुणों की प्रसंग तथा विषयानुसार अवस्थिति दृष्टिगत होती है। आचार्यों की मान्यतानुसार ही विभिन्न रसों की अभिव्यंजना में गुणों का साहाय्य ग्रहण किया गया है। प्राय: श्रृंगार रस अथवा तदन्तर्गत नख-शिख-वर्णन में कवि ने माधुर्य तथा प्रसाद गुणों का प्रयोग किया तथा वीर- बीभत्स रौद्र में ओजोगुणमयी पदावली को व्यवहृत किया है। यथा -

माधुर्यगुण- कुंजन कुंजन गुंजत भौर सपुंजन पुंजन कोकिल गावत।
भूल रही लतिका लहरै सुभ मारुत मंद सुगंध उड़ावत।
देख बहार अति हृदेस अनंदित डोलत लाल रिझावत।
राधिका पाय धरै जित ही तित ही कौ सामरौ फूल बिछावत।।[5]

१- काव्यप्रकाश - ८।७४ की वृत्ति
२- वही ८।७०
३- वही ८।७६
४- बिहारी और उनका साहित्य- डा० हरवंशलाल शर्मा व अन्य पृ० २८२
५- विरवमरवन - पद सं० २७६

दीपत उदित बाल जाल अति ही बिसाल

गजकत वाल रतवत झलकै अमंद ।

कुंज कुंज गुंजत मलिंद पुंज पुंज जहँ

तौन वा सुगंध पौन औन परगत मंद ।

भनत छदेस राग बरसत रंग संग

रंग है कुमंवी अंग थिरकत छल छंद ।

सरस लतान दरसंत प्रफुले अनंत

खेलत बसंत आज वृंदावन नंदनंद ।।[1]

उपर्युक्त उदाहरणों में कर्णकटु शब्दावली का अभाव होने के साथ-साथ दीर्घ समासों का राहित्य, सानुस्वार तथा आनुनासिक वर्णों का आधिक्य है, अतः इनमें प्रसाद गुण है।

ओज गुण- दसरथनंद जब सहज सवार होत

धावत गयंद धुन करत दहाक दै ।

सातहू समद थर थर थरकत जात

धरा धरकत गिर गिरत भडाक दै ।

भनत छदेस मंड छंड मारतंड चंड

धुंधरत धूर परपूरित भहाक दै ।

फनपति फौर फन फडक फरक उठै

कमठ की पीठ टूट फुटत फडाक दै ।।[2]

\+ \+

जस के वपाटे हाटे सीत के सपाटे तापै

लपट दपाटे दै झपाटे मार जात है ।।[3]

कहीं-कहीं श्रृंगारवर्णन के सन्दर्भ में भी इस गुण का प्रयोग कवि ने किया है। ऐसे स्थलों पर कवि का ध्यान रस पर न रहकर व्यंजना या अभिव्यक्ति क्रिया की तीव्रता

१- बिलवासकरन - पद सं० ४१६ २- वही- पद सं० ४७०

३- वही- पद सं० ४२२

तथा तीक्ष्णता पर रहा है । यथा -

ऐसी परी खोट राधे घूंघट की ओट

लाल मारे नैन ओट ओट पोट कर डारो है[1] ।

\+ +

निकिस न पैये ना निकैये जहाँ पैये भद्र

मारग अमोटा नैन बोटा की वाय कौ[2] ।

\+ +

भनत इंदेस भाँको लल्न की झोटा मारे

मोहु मूक गोटा है लखोटा प्रान वाय कौ ।

बक्त क्योटा सदा गोरस को पोटा मोटा

गाँठी गाँठ खोटा छोटा ढोटा नंदराय कौ[3] ।।

प्रसाद गुण-

१- बानी बृह्मरानी विष्णुरानी संभुरानी तु ही

वेदन बखानी तू भवानी विंध्यवासिनी ।

पापभंजनी है भक्तरंजिनी इंदेस सदा

विस्वपरपूरित चराचर मै भासिनी ।

तप मैं प्रसिद्धि तु ही वृद्धि नव निद्धि तु ही

तू ही वरदायक तू आनंद हुलासिनी ।

रोगन विनासनी है दुष्टन कौं त्रासनी है

जगत प्रकासनी है दुरगति नासिनी[4] ।।

२- पाइ लखि आलंब कहा त्रिवली दरसात मनो तिरबेनी ।

कुंदन से कुच कुंभ भलाभल आनन चंद लगो प्रगनैनी ।

बोल जवाहर वाह इंदेस मनोहर मूरत है सुख दैनी ।

अंगन रंग अनंग सरासर गंग सी माँग भुजंग सी बैनी[5] ।।

१- विस्वकमलकरन - पद सं० ३२५   २- वही - पद सं० ४६३

३- वही - पद सं० ४६३   ४- वही- पद सं० ४७८

५- वही- पद सं० ४०३

ये उद्धरण यद्यपि भिन्न-भिन्न प्रसंगों के हैं पर इनमें प्रयुक्त वर्णसमष्टि सहः अर्थबोध कराने में समर्थ है ।

दोष-विवेचन

आचार्य मम्मट ने यद्यपि ` तददोषौ शब्दार्थौ ` कहकर सर्वप्रथम काव्यरचना में दोषों के परिहार की ओर संकेत किया है पर कोई काव्य सर्वप्रकार दोषविवर्जित हो, ऐसा असम्भाव्य है । आचार्य विश्वनाथ ने इसीलिए कहा है कि नितान्त दोष-रहित काव्य का संसार में मिलना ही कठिन है, अतः उन्होंने साधारण दोषों के रहते हुए भी काव्य में काव्यत्व स्वीकार किया है।[1] विद्वानों के अनुसार काव्यप्रकाश-कार के कथन का यह अभिप्राय है कि काव्यत्व के विघटनकारी जो ` श्रुतिसंस्कृति ` आदि प्रबल दोष हैं, उनसे रहित शब्दार्थयुक्तत्व काव्यत्व है ।[2] यही कारण है कि प्रायः सभी काल के कवियों के कृतित्व दोषों की अवस्थिति देखी जाती है । जहां तक रीति-कालीन कवियों के काव्य का सम्बन्ध है उनका ध्यान अधिकांशतः भाषा की अलंकृति और समृद्धि पर केन्द्रित था । व्याकरणसम्मत काव्य रचना करना उनका मूल ध्येय कदापि न था । ऐसी दशा में देव आदि कवियों तक की भाषा में व्याकरण के दोष आ गये थे ।[3] रीतिकालीन कवि सुदर्शन भी उक्त मान्यता तथा परम्परा के प्रवाह से नहीं बच पाए हैं - कतिपय दोष उनकी कविता में भी आ गए हैं फिर भी सामान्यतः उनकी भाषा शुद्ध तथा व्याकरणसम्मत रही है -

सरस सुगंधन सिंगार अंग अंग साज

अंग कलका तैं वर दीप दरसा रही ।

जात सखि कुंज प्रदेस मालती सी फूल

पाछें फेर फेर भौंर भीर बरसा रही ।

मृग द्रग हेर परजंक पैन कुचकंद

खिसर विलास द्रग वारि बरसा रही

मदन जगत ज्वाल जात सरसाई अब

दीन ह्यौं दिखाई पियराई तन छा रही ।।[4]

१-साहित्य-दर्पण - कीटानुविद्ध रत्नादि साधारण्येन काव्यता ।
५०८ दुष्टेष्वपि मता यत्र रसाद्यनुगमः स्फुटः ।। - विश्वनाथ

२- काव्यप्रकाश १। का० ४ पृ० १ आचार्य विश्वेश्वर पृ० २१

३- महाकवि ग्वाल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डा० भगवान सहाय पचौरी - पृ० ३१३

४- विरहवसकरन - पद सं० १७४

यहाँ प्रत्येक वाक्य अपने में पूर्ण लिंग, वचन, कारक क्रियादि दोषों से रहित है। यद्यपि कर्ता यहाँ प्रच्छन्न है तथापि प्रसंग से उसका सहज आक्षेप हो जाता है कि नायिका की विप्रलब्धा दशा का वर्णन उसकी सखी कर रही है।

१- वचन और लिंग के दोष- कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो एक से अधिक वस्तुओं का द्योतन करने के कारण, जबतक कि पार्थक्य के लिए उनमें से एक का विशेष रूप से प्रयोग न किया जाए साधारणतः सदैव ही बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं - 'केश', 'दंत', 'नख', 'नेत्र', 'कुच', 'नितम्ब', 'हाथ-पैर' आदि ऐसे ही शब्द हैं।[१] परन्तु हृदयेश ने सर्वत्र इस नियम का ध्यान नहीं रखा है। उनके काव्य में 'कुच', 'अधर', तथा 'दसन' के एकवचनान्त प्रयोग देखिए -

— नखरौंट कुच पर है।[२]
— खंडित दसन दाग -[३]
— अधरकपोल पर छवि लहरात है।[४]
— ओठ की बिलसनी।[५]
— द्रग ललताई पाई-[६]

इसी प्रकार लिंग दोष भी हृदयेश के काव्य में देखे जा सकते हैं -

घर ही की विपक सों आग लगी।[७]
बीधी देह मेरी[८] -
कहौ कौन विधि होयगी नंदनदन बिन चैन।[९]

२- कारक चिह्नों का अप्रयोग - सामान्यतः काव्यभाषा में कारक-चिह्नों का प्रयोग नियमिततया नहीं हो सकता है इसीलिए अन्य रीतिकाल के कवियों की भाँति हृदयेश ने भी इन्हें छोड़ दिया है। इस दृष्टि से कर्ता के चिह्न ' ने ' का प्रयोग प्रायः हृदयेश ने नहीं किया है, अपनी ओर से पाठक को इसका आक्षेप करना पड़ता है। यही

१- देव और उनकी कविता - डा० नगेन्द्र - पृ० २३०
२- विरवबसकरन - पद सं० ७२   ३- वही - पद सं० ८८
४- वही- पद सं० ८९   ५- वही- पद सं० १२३
६- वही- पद सं० १२७   ७- वही- पद सं० ११४
८- वही- पद सं० १३७   ९- वही- पद सं० १३८

अन्य अधिकरणादि विभक्तियों के लिए कहा जा सकता है। हृदयेश ने उनका भी त्याग यत्र-तत्र किया है —

१- आधी करी सांवरे न पाछे की निबाही प्रीति -[1]

२- दरस लालसा विसाल ता निहारी लखि -[2]

३- तन भौ दुण भारी।[3]

४- छबि निज मुण लखि -[4]

५-विरहानल सोणत भूमि न आवत।[5]

६- परत स्वास जो आसुँ गिरत बाग तै दूर।[6]

उपर्युक्त अंशों में क्रमशः ने, की, में, को, पर कारकचिह्नों का लोप है।

३- क्रिया-रूप - काव्यभाषा में समास-गुण के आग्रह के कारण कारक-चिह्नों की भांति क्रियारूपों का भी प्रयोग थोड़ी किफायत से किया जाता है।[7] हृदयेश द्वारा निम्न उदाहरणों में सहायक क्रिया `है` सभी वाक्यों में दृष्टि से ओझल कर दी गई है -

प्रफुलित मालिती के मुकिलित पुंज कुंज
गुंजरत भौंर भीर अमित प्रमोद वर।
परजंक राजत लड़ैती वृजराज संग
मंद गत मारुत प्रसीतल अतर तर।
भाव प्रदेस वेस पट चटकीलौ रंग
संदल प्रसून हार ललित सुही के कर।
चंदन सुगंध गार अगर गुलाब वारि
भरत फुहार बुंद परत दुहुन पर।।[8]

\+ \+

बतरात जात इतरात नित रात जात
बिरात जात बतरात चुकन की।[9]

१- विरहबारीशवरन - पद सं० १५३ २- वही - पद सं० २९
३- वही - पद सं० ९७ ४- वही- पद सं० १२२
५- वही- पद सं० १३५ ६- वही- पद सं० १७२
७- देव और उनकी कविता - डा० नगेन्द्र - पृ० २२३ ८-विरहबारीशवरन - पद सं०५१८ अ
९- वही - पद सं० ९०

४- अन्वय-दोष- काव्यशास्त्रियों के अनुसार आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि से युक्त पदसमूह ही वाक्य का अभिधान ग्रहण करता है। वाक्यार्थ की पूर्ति के लिए किसी पदार्थ की जिज्ञासा बना रहना आकांक्षा है; एक पदार्थ का दूसरे के साथ सम्बन्ध करने में बाधा न होना योग्यता है और जिन पदार्थों का प्रकरण में सम्बन्ध है, उनके बीच में व्यवधान न होना सन्निधि है। इन तीनों के योग को समन्वय कहते हैं। उक्त तीनों के असमन्वय मेंअन्वय दोष उत्पन्न होता है। कवि हृदयेश ने इस दिशा में सावधानी नहीं बरती है। अधोलिखित अंशों में यह दोष देखा जा सकता है -

१- अद्भुति ललान मैं मयूर कूक दरसत।[1]

यहाँ `कूक` की अन्विति `दरसत` के साथ सम्भव नहीं है।

२- गरज गरज गाजै परी गयौ कुंज सवि फटूट।[2]

`कुंज` संज्ञा का क्रिया `फटना` के साथ अन्वय होना असंभव है।

३- जैसी मूक मालो यारे बाग कौं विगारी है।[3]

इस वाक्य में भी अन्वय कठिन प्रतीत होता है।

५- न्यून पदत्व दोष - यह दोष वहाँ होता है जहाँ अभीष्ट अर्थ के वाचक शब्द को छोड़ दिया जाता है --

१- लिय रत श्रम सौं स्वेद कन जुग जुग दिपत महेस।[4]
यहाँ `भगवान` शब्द की न्यूनता है।
२- भनत हृदेस ज्यौं ज्यौं धारा धर तरपत

विरह वधून के तलफन तन तरसत।।[5]

ज्यौं-ज्यौं के साथ त्यौं-त्यौं का प्रयोग अत्यन्त अपेक्षित था। ऐसे दोष न्यून नहीं है -

देखा छपट घन छहरन दपट छैसी

भाभक भपट बास लाल हिय लागै है।[6]

६-अधिक पदत्व दोष - जहाँ काव्य में अनावश्यक शब्दों का प्रयोग किया जाय, वहाँ

१- विश्वप्रकरन - पद सं० ५५५   २- वही - पद सं० ११
३- वही- पद सं० ९८   ४- वही- पद सं० ३१
५- वही- पद सं० ५५५   ६- वही- पद सं० ५५०

यह दोष होता है। ऐसे दोष भी हृदयेश के काव्य में उपलब्ध हैं -

१- सुखिया त्रिविधि प्रकार की -[1]

यहां ` प्रकार ` शब्द अधिक है।

२- बीनत फूल सहेलिन मैं मन फूल भरी मृदु फूल सी लाकी।[2]

इस अंश में ` लाकी ` शब्द निष्प्रयोजन है।

३- भनत हृदेस वेस लाल मति मोहि लीनी

मैन विथा सोय लीनी तकि तकि अंक तैं।[3]

उपर्युक्त चरण में ` वेस ` का प्रयोग सार्थकता से रहित है। कवि ने ऐसे प्रयोग बहुशः किए हैं जो क्षम्य नहीं हो सकते।

७- समाप्त पुनरात्त दोष - वक्तव्य विषय के समाप्त होने पर भी पुनः तत्संबंधी कथन की योजना होने पर यह दोष घटित होता है। यथा -

मलय समीर सीर मधुप हृदेस भीर

लागै फैल फैल मकरंद सरसन से।

कोकलान वर मान सर पै प्रसर कर

छनन अमर पंचसर दूत गन से।

रंचक न रहै डर जैहै जौ गुमान बाल

प्रगट बसंत दिग दिव्य दरसन से।

मुदित लतान पुंज गुंजन सुमन दीप

डोल डोल डालन मैं वृंद उडगन से।[4]

यहां तृतीय चरण के पश्चात जिस बसंत-वर्णन का समापन हुआ था वह चतुर्थ चरण की योजना से पुनः प्रारम्भ कर दिया गया है, अतः यहां समाप्त पुनरात्त दोष है। चतुर्थ चरण को तृतीय के स्थान पर रखने से यहदोष दूर हो सकता था।

८- ग्राम्यत्व दोष - यह दोष वहां पाया जाता है जहां काव्य मे असंस्कृत समाज द्वारा प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया जाता है। यथा -

छमक छमक देख अछत लाल लंहु

तमक तमक बीस बढ़ बढ़ जात है।[5]

१- शिखनखकरन - पद सं० १४ | २- वही- पद सं० ११८
३- वही- पद सं० ३५७ | ४- वही- पद सं० ४०९
५- वही- पद सं० ४४०

` मचक – मचक ` में उपर्युक्त दोष है। अधोलिखित रेखांकित शब्दों में भी यही दोष पाया गया है –

१– लंदन के करतान कौं नमस्कार सिर ढार[1]।

२– मलत फुलेल खूब तर तर भोल कर[2] –

३– सछ्य समिट गठरी भई[3] –

४– गरौट छ्य पर है[4]।

९– अश्लीलत्व दोष – ब्रीड़ा, जुगुप्सा तथा अमंगल व्यंजक शब्दों के प्रयोग मे यह दोष माना गया है। कवि हृदयेश इस दोष से मुक्त नहीं रह सके हैं –

१– सांभहि ते उबिलात वधु[5] –

२– वारवधू पिय पंथ लखि बार बार उबिलात[6]।

` उबिलात ` शब्द का प्रचलित अर्थ ` वमन करना ` है अतः यहां दोष है भले ही कोश में इस शब्द का अन्य अर्थ भी पाया जाता है। इसी प्रकार ` मौत ` का प्रयोग अमंगलत्व की प्रतीति कराता है अतः इस का प्रयोग दुष्टत्व से युक्त है –

सब सौतन कौ मुग मौत कियौ है[7]।

१०– छन्दोभंग दोष – इसी को यतिभंग दोष भी कहा गया है –

१– झिल्लिन की भनक तैसी किंकिन ठनक विप-
रीत की बनक बतरस मान पागे हैं[8]।

२– वर तरुनानैं मैं विचित्रिक छ्देस पान-
दान गसवानै धरे सरस नगीने हैं[9]।।

उपर्युक्त अंशो में ` विपरीत ` तथा ` पानदान ` शब्दों को छन्द की गति अथवा लय के साथ नहीं पढ़ा जा सकता है अपितु छन्द के अनुरोध से इन्हें तोड़कर ही पढ़ा जायगा अतः यहां उक्त दोष संभव हुआ है।

१– विश्वप्रकाशन – पद सं० ३   २– वही – पद सं० ४४७   ३– वही– पद सं० ३७
४– वही – पद सं० ७२   ५– वही– पद सं० १८०   ६– वही– पद सं० १८९
७– वही– पद सं० ३८४   ८– वही– पद सं० ४५०   ९– वही– पद सं० ४१८

११- यतिभंग दोष - कवि की रचना में यह दोष भी उपलब्ध होता है। उदाहरणार्थ- `प्रिया पति रत विहरत लहरत अत -` में १७ मात्राएं है जब कि इसी छन्द के चरणार्द्ध - `क्रोटन कलान जुग भुव ललकान कर -`[1] में १९ मात्राएं - इस प्रकार यहां दोष है।

१२- प्रतिकूलवर्णता दोष - जहां रसानुकूल वर्णयोजना नहीं की जाती, वहां यह दोष संभव होता है। शृंगार रस में टवर्ग के वर्णों की योजना रसानुभूति में बाधा उपस्थित करती है। हृदयेश का कवि इस दोष से भी विनिर्मुक्त नहीं रह सका है -

जैसी परी चोट राधे घूंघट की ओट
लाल मारे नैन ओट लोट पोट कर डारों है।[2]
+ +
सुंदर कपाट दैन डाट दीनी सांकर की
आंगुरी छुयें तैं खुल आवत भपाट दै।[3]

अलंकार -योजना

`अलं करोतीति अलंकार:` अथवा `अलंक्रियते नेनेति अलंकार:` के अनुसार अलंकार कविता के शोभाधायक धर्म हैं।[4] जैसे कुरूप स्त्री भी सुन्दर वस्त्राभूषण धारण करके आकर्षक बन जाती है, उसी प्रकार हीन कोटि की कविता भी अलंकारों की जगमगाहट में चमत्कार उत्पन्न कर देती है। पर जैसे निसर्ग सुन्दरी रमणी को आभूषणों की अपेक्षा नहीं होती, वैसे ही स्वभाव-भव्या भगवती भारती भी अलंकारों के बिना ही अपनी आभा में आप आलोकित होती है।[5] इस प्रकार काव्यगत भाव और वस्तु में सौंदर्य की प्रतिष्ठा करने के निमित्त अलंकारों की योजना की जाती है। आचार्य भामह ने इसी अर्थ काव्य की ग्राह्यता अलंकारों के कारण मानी है तथा अलंकारों को सौन्दर्य अथवा लालित्य का पर्याय-सा माना है।[6] भामह के पश्चात् दण्डी, वामन आदि ने अलंकारों का व्यापक अर्थ लेते हुए उनकी प्रधानता सिद्ध की है। ये आचार्य काव्य के

१- विश्वविलक्षण - पद सं० ३७५ २- वही - पद सं० ३२५
३- वही - पद सं० १९८ ४- काव्यादर्श- दण्डी - २।१
५- सूर-संख्यन - डा० मुंशी राम शर्मा `सोम` - पृ० ४९
६- काव्यं ग्राह्यमलंकारात् - सौन्दर्यमलंकार: - काव्यालंकार सूत्र - १।१।१-२

सौन्दर्य-विधायक सभी उपादानों को अलंकारों के अन्तर्गत मानते थे। रस को इन आचार्यों ने गौण स्थान दिया है और रसवत् अलंकार के अन्तर्गत उसे सन्निविष्ट किया है। आठवीं-नवीं शताब्दी में उद्भट तथा रुद्रट ने भी अलंकारों के महत्त्व का मण्डन किया। इसी अवधि में आचार्य अभिनव गुप्त ने ध्वनि-सिद्धान्त तथा रस का विवेचन किया, रस को ध्वनि के अन्तर्गत मानकर रसध्वनि को प्रधानता दी और काव्य में अलंकारों को गौण स्थान पर अधिष्ठित किया। ११वीं शताब्दी में मम्मटाचार्य ने सभी उपर्युक्त मतों का समन्वय करते हुए काव्य में अलंकारों की अनिवार्यता तथा कहीं-कहीं गौणता का प्रतिपादन किया।[१] परवर्ती अलंकारवादी आचार्य जयदेव ने अलंकारों की काव्य में अपरिहार्यता का समुद्घोषण किया[२] पर साहित्यदर्पणकार ने `वाक्यं रसात्मकं काव्यम्` कहकर अलंकारवाद पर प्रबल आघात किया तथा काव्य में रस की प्रधानता सिद्ध की।

रीतिकाल के कवि-आचार्य उपर्युक्त अलंकारवादियों से प्रभावित रहे हैं तथा उन्होंने अपने विभिन्न काव्यग्रन्थों में अलंकारप्रियता का प्रमाण प्रस्तुत किया है। अलंकार-वाद के उक्त प्रभावातिशय्य के कारण रीतिकाल की कविता बड़ी सजधज के साथ सामने आई। कभी-कभी तो यह सजधज इतनी अधिक हो जाती थी कि इसके भार से कविता-कामिनी के पैर तो सीधे पड़ते ही न थे, उसका स्वाभाविक रूप भी अलंकारों की चमक-दमक में ही खो जाता। फिर भी अलंकारों का साधन के रूप में महत्त्व बना ही रहा।

हृदयेश रीतिकाल की उपर्युक्त आलंकारिक रचना-सरणि से अप्रभावित नहीं रह सके परन्तु उनकी रचना में अलंकारों को साधन रूप में ही ग्रहण है, साध्य के रूप में नहीं। उनके अलंकार प्राय: भावों को तीव्रता अथवा उत्कर्ष प्रदान करने के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं।

शब्दालंकार

अनुप्रास – कवि हृदयेश ने अनुप्रास अलंकार का भूरिश: प्रयोग किया है। शायद ही उनका कोई भी पद ऐसा नहीं है जिसमें यह अलंकार न हो। यथा –

१– दीप लियौ पौन भौन हौन कौं न गौन

मो पुकार सुनी कौन तौन पौन दीप हर गा"।[३]

२– कैसौ जोर तोर मोर कोरन करत सोर

तैसौ घोर घोर घनघोर सोर भर गौ।[४]

१– काव्यप्रकाश– प्रथम उल्लास – सर्वत्र सालंकारौ क्वचित्तु स्फुटालंकारविरहेऽपि न काव्यत्व हानिः

२–चन्द्रालोक – जयदेव – ५।१ ३– विरहविनोदन – पद सं० ७७ व ४–

३- झूम झूम झीलन झलान झेला झेल जट
झूराझूर झीषन झपाक झप बरसत ।[१]

कहीं-कहीं तो पूरा पद ही अनुक्रमात अनुप्रास-योजना से झंकृत है -

सकल सराहैं सुष्य सारंग सरद सार
सूर से सरस सर सरसत साम के ।
जौन जान जान कौं जरावत जुलम जोर
जुर सौं जगत जामै जहर तमाम के ।
भान ब्रदेस बस व्याकुल विरह वर
वेदन वदन वधी बरवस काम के ।
तारापति तपत तवा सौं तेज तोर कर
तारागन तपन अँगारा ज्वालधाम के ।।[२]

यमक - १- नाथ उदारता के उदार का के पलवत हौ ।[३]
२- पीर कही नहिं पीर बतावत ।।[४]
३- लाल लाल द्रुम लाल के लगत बाल द्रुम लाल ।[५]

रेखांकित मे यमक सुस्पष्ट है ।

श्लेष - इस अलंकार के प्रति कवि का उपेक्षाभाव-सा रहा है । इसके प्रयोग विरलतया ही उपलब्ध होते हैं । यथा -

लंदन के वरतान कौं नमस्कार सिर ढोर ।[६]

`ढोर` का अर्थ `जानवर` तथा `झुकाना` दोनों ही है । सत्परितोष या भर्त्सना दोनों के लिए ही शब्द का वैदग्ध्यपूर्ण प्रयोग हुआ है ।

अर्थालंकार

इस वर्ग मे आने वाले अलंकारों को आधार के अनुसार चार श्रेणियों मे रखा गया

१- विरचमुकरन - पद सं० ४४४ २- वही - पद सं० १३९ ३- वही- पद सं०४८१
४- वही - पद सं० १३४ ५- वही- पद सं० ५० ६- वही - पद सं०३

है – साम्यमूलक, वैषम्यमूलक, शृंखलामूलक और न्यायमूलक।

साम्यमूलक अलंकार – जब प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत के रूप, गुण, धर्म आदि के साम्य के आधार पर उनमें अभेद मान लिया जाता है तब अभेद प्रधान साम्यमूलक अलंकारों की सृष्टि होती है। रूपक, अपह्नुति, सन्देह, उल्लेख आदि की गणना इसी कोटि में होती है परन्तु जब उपमान और उपमेय में साम्य स्थापना करने पर भी उन्हें स्पष्टतः पृथक् किया जाता है तो भेद प्रधान साम्यमूलक अलंकारों का आविर्भाव होता है। प्रतीप, प्रतिवस्तूपमा, दीपक, दृष्टान्त, निदर्शना, सहोक्ति, विनोक्ति और व्यतिरेक इसी वर्ग में रखे जाते हैं। उपमा, अनन्वय और स्मरण अलंकारों की परि-गणना भी इसी श्रेणी में की जा सकती है। जिस अलंकार में उपमान और उपमेय के साम्य का कथन न होकर केवल प्रतीति होती है, उसे प्रतीति प्रधान कहा जा सकता है। अतिशयोक्ति और उत्प्रेक्षा ऐसे ही अलंकार हैं। कुछ अलंकारों का प्रयोजन व्यंजित साम्य का प्रस्तुतीकरण करना होता है, सामान्य अर्थावबोध नहीं। इस वर्ग में अप्रस्तुतप्रशंसा, व्याजस्तुति, पर्यायोक्ति आदि आते हैं।[1]

वैषम्यमूलक अलंकार – कार्य-कारण के विच्छेद के आधार पर या गुणों के आधार पर पदार्थों के पारस्परिक वैषम्य के कारण जब अर्थ में चमत्कृति आती है, तब वैषम्यमूलक अलंकारों की अवतारणा होती है। विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति, असंगति विषम और व्याघात इसी जाति के अलंकार हैं।

शृंखलामूलक अलंकार – जब एक से अधिक पदार्थों का वर्णन इस ढंग से होता है कि वे एक-दूसरे से सम्बद्ध रहते हुए एक शृंखला स में आबद्ध हो जाते हैं और अर्थ में चमत्कार लाते हैं तब वे शृंखलामूलक अलंकारत्वा अभिहित किए जाते हैं। कारणमाला, एकावली, सार और मालादीपक इसी श्रेणी में आते हैं।

न्यायमूलक अलंकार – जब किसी युक्ति, तर्क, नियम, लोक-व्यवहार आदि से अनुप्राणित वाक्य द्वारा अर्थ में चमत्कार उत्पन्न होता है तब परिसंख्या, समुच्चय, काव्यलिंग, अर्थान्तर-न्यास, अर्थापत्ति आदि अलंकार सम्पन्न होते हैं।

कवि हृदयेश ने प्रायः उपर्युक्त श्रेणियों के अधिकांश अलंकारों का प्रयोग किया है

१– बिहारी और उनका साहित्य – डा० हरवंशलाल शर्मा व अन्य – पृ० २११-१२

पर उनकी रुचि साम्यमूलक अलंकारों के प्रयोग में अधिक प्रतिफलित हुई है। इस अलंकारों में से उपमा, सन्देह, उत्प्रेक्षा, रूपक तथा अतिशयोक्ति उन्हें अधिक प्रिय है –

1– उपमा –

पूर्णोपमा – अब भनत ब्रदेस वेस गमन करी सौं रंच

देख देख बाल लाल मन तरसत है।[1]

यहाँ बाला उपमेय है और करी उपमान। ` सौं ` वाचक शब्द है तथा ` गमन ` समान धर्म है।

धर्मलुप्ता – तान भौंहें भ्रुकुटि कमान सम कामिनी।[2]

वाचकलुप्ता– हाट–क बरन मृदु कदन चरन केंज –[3]

उपमेयलुप्ता– भनत ब्रदेस बृजनंदन की बान सुन

दोइज कौ चंद लख लख हरसत है।[4]

2– उत्प्रेक्षा – ठोडी तिल राजत गुलाब के प्रसून मानौ

परौ छबि सिंधु मैं मलिंद मद धाकौ है।[5]

+ +

भनत ब्रदेस छबि सागर मयंक मुख

ताछिति हुलास भरी बदिप जम्हात है।

मानौ ग्रहपति कौ प्रकास होत जात प्रात

तात जलजात कौ विकास होत जात है।[6]

3–सांगरूपक – सुधा समद छबि तन लिया अद्भुत वहत सुवास।

पैरत प्रिय द्रग अहर निसि भर भर हिये हुलास।[7]

4– रूपक – चंचल घट बिन हिय कपट सो सठ वहत बनै न।[8]

+ +

बदन सुधाकर तै सुधा बरसत जात।[9]

+ +

तेरो मुख चंद कौ चकोर लखी बावरे।[10]

+ +

बदन सुधाकर झापाक ताक धुमै है।[11]

1– विरहबारीशकरन – पद सं० 16 2– वही – पद सं० 44 3– वही – पद सं० 8
4– वही– पद सं० 89 5– वही– पद सं० 248 6– वही– पद सं० 372
7– वही– पद सं० 208 8– वही– पद सं० 288 9– वही– पद सं० 281
10– वही– पद सं० 280 11– वही – पद सं० 57

५–रूपकातिशयोक्ति – बर तन ज्वाल साँझ नभ घन घेरो है।[१]

\+ +

दीपक उजेरो परो मंदिर अँधेरो है।

\+ +

सरिता बहै बाल करन पनार तै।[२]

६– प्रतीप– सरद सुधाकर की भाकर मलीन सचि

मुखचंद ताकर दिसाकर उजागरी।[३]

नायिका की मुख-छवि रूप उपमेय द्वारा प्रसिद्ध उपमान रूप शारदी ज्योत्स्ना की मलिनता वर्णित होने से प्रतीप अलंकार सम्पन्न हुआ है।

७–व्यतिरेक – द्रगन समेट लीनी खंजन की रीत वाँ।[४]

\+ +

अंग अंग सोने से सरस झलकत छबि –[५]

८– वीप्सा – हरी हरी कह करत अब परी परी पछितात।[६]

९–पुनरुक्तिप्रकाश– धन धन धन हित हित करत जन जन जन छित लाय।[७]

१०–विरोधाभास – लगत सुखेन पै न चैन दिन रैन सैन –[८]

\+ +

दरद करन वारे दरद हरन वारे –[९]

११–विशेषोक्ति– मनमोहन पग पर परी हमैं ममावन काज।

झपट हियैं पर ना लयौ अती बरै यह लाज।।[१०]

१२– विभावना – बिन दुरगुन द्रग जल भरत –[११]

बिना दुर्गुण रूप कारण के अश्रुपात रूप कार्य होने से विभावना अलंकार है।

१– विरहविलहरन – पद सं० ७६ २– वही – पद सं० १३१ ३– वही– पद सं० २२८

४– वही– पद सं० २१६ ५– वही– पद सं० २०३ ६– वही– पद सं० १६३

७– वही– पद सं० १०८ ८– वही– पद सं० २६७ ९– वही– पद सं० २६६

१०– वही– पद सं० १६१ ११– वही– पद सं० २९०

१३- सन्देह - कैधौं चंद सरद पै मंद ग्रह छंद कैधौं

कंब पर दिपत मलिंद छितकारी के।

भाल इंदेस के प्रभानहं के कंद पर

नील मन जटित वसत छितधारी के।

कैधौं कामधाम से कपोल पर टौना जान

पिय कौ दिठौना छवि देत द्युत भारी के।[१]

+ +

दीप कौ निसान है कि चंपका कौ बान है

कि हीरन की खान है कृसान है कि भान है।[२]

१४- असंगति - हास भयौ वृज में बिलास भयौ कुंजन में -[३]

यहाँ हास की कारणता तथा विलास की कार्यता के भिन्न-भिन्न स्थल वर्णित हैं, अतः असंगति अलंकार है।

१५-विनोक्ति- रूस रही अपराध बिना तुव कौ यह बान परी कित धाई।[४]

१६-सहोक्ति- राधका के तन मंडन सौं सब सौतन कौ मुख खण्डन कीनौ।[५]

+ +

मानौ ग्रहपति कौ प्रकास होत जात प्रात

सात जलजात कौ विकास होत जात है।[६]

१७- समुच्चय- लाज तज दीनौं ग्रेहि काज तज दीनौं सबै

साज तज सखिन समाज तज दीनौ है।[७]

यहाँ नायक को रिझाने वाले बहुत से साधनों - साजसज्जा त्याग, गृहकार्य-त्याग, लज्जा त्याग, सखी समाज-त्याग का वर्णन है। इनमें से एक-एक नायक को रिझाने के लिए पर्याप्त है परन्तु इस कार्य के लिए अनेक साधन वर्णित हैं। इसी प्रकार -

---

१-विस्वप्रकाश - पद सं० ४५८ २- वही- पद सं० २२६ ३- वही- पद सं० १६४

४- वही- पद सं० २६० ५- वही- पद सं० ३२१ ६- वही- पद सं० ३७२

७- वही- पद सं० १६४

गुणसागर नंदनंद है रससागर नंदनंद ।

गुनसागर नदनंद है छबिसागर नदनंद ।।[1]

मैं नायिका को रिझानेवाले बहुगुणों का समुच्चय उपस्थित हुआ है।

१८-मीलित - गजमुक्तन के आभरन बसन सुभ्र गुण वृंद ।

ब मिली जात अल चौन मैं समभ्र परत छलछंद ।।[2]

१९- उल्लेख - सौते बलकान है सिंगार रसवान है जे

पिय सुखदान है निसान मनमथ के ।[3]

उरोजों का अनेकविध वर्णन होने से यहां उल्लेख अलंकार है ।

२०- अतिशयोक्ति- अँखियां उमिड़ी घन सी भार लावत ।[4]

आंखों के उमड़ने के वर्णन में अयोग्यता में भी योग्यता प्रदर्शित की गई है, अत: संबंधातिशयोक्ति है । कुछ अन्य उदाहरण भी दृष्टव्य हैं -

२- ललित सिंगार हार लागत अंगार है ।[5]

३- भनत छदेस जिते हेरत मयंकमुखी

रात मिट जात दीस परत प्रभात है ।[6]

२१-दृष्टान्त - लाल लखि छलत लली के द्रग लाल लाल

जैसे लाल लागे लाल कंज कुमाने से ।[7]

नायक के प्रवास-गमन पर नायिका के मुख का लाल होना प्रथम उपमेय वाक्य है तथा रक्त कमलों का कुसुमित होना उपमान वाक्य - दोनों में औपम्येन सादृश्य संस्थापन से दृष्टान्त अलंकार है ।

२२-व्याजस्तुति - भली दूतपन सु करी अधर लाल अनमोल ।

कुच कठोर नख छत लगे रद छत दिपत कपोल ।।[8]

यहां दूती की प्रशंसा से उसकी निन्दा की प्रतीति होती है, अत: व्याजस्तुति है ।

१- विलासप्रकरन - पद सं० २७४ २- वही- पद सं०२२५ ३- वही- पद सं०२४३

४- वही- पद सं० २५७ ५- वही- पद सं०२३१ ६-वही- पद सं०२२८

७- वही- पद सं० २२६ ८- वही- पद सं०११५

२३- पर्यायोक्ति- १- बाल कौ छिपाकर छपाकर दिखाय इत
बदन छपाकर भःपाक ताक चूमै है।[१]

२-भान सामने वाम ने सिर नायौ कर जोर।[२]

यहाँ ज्येष्ठा के प्रति प्रेम-प्रकाशन तथा नायक के प्रति प्रणय-निवेदन हेतु क्रमशः चन्द्रदर्शन तथा सूर्यनमन के व्याज से इच्छित कार्य साधने के कारण पर्यायोक्ति है।

२४- सम अलंकार- सारंग अँधेरी तैसी वारि नभ घन की।
+ +
पीछै परी मोर बीर भौर मधुपन की।[३]

रात्रि तथा भ्रमरगण दोनों के ही समान वर्ण का कथन होने से सम अलंकार है।

२५- काव्यलिंग - नैनन वारि भरौ भलकौ विरहानल सोखत भूमि न आवत।[४]

नेत्रों से जल-वर्षण न होने का कारण यह है कि विरहाग्नि उसे सोख लेती है। यहाँ काव्यलिंग अलंकार है।

२६- कारकदीपक- लख लख छिपि चक चक रहत छकि छकि छबि भःप जात।
भरत छिन द्रग लाल कौ थर थर थर कम जात।।[५]

नायक के छिन को नायिका द्वारा देखना, स्तंभित हो जाना, भःप जाना, थर-थर काँपना आदि अनेक क्रियाओं के कथन से यहाँ कारक दीपक हुआ।

२७- व्याजोक्ति- भन पछितान लागी खान लागी पान कौ।[६]

नायक के रूठ कर जाने के कारण नायिका अपने पश्चाताप को गोपन पान खाने के व्याज से करती है, अतः व्याजोक्ति है।

२८- लोकोक्ति- छूवै छिगुनी छिन मैं छतियाँ वतियाँ कहिं कै छलावा वडौ है।[७]

रेखांकित में।परिच्छृत। लोकोक्ति अलंकार है।

निष्कर्षतः हृदयेश ने प्रायः सभीशब्दार्थालंकारों का समीचीन प्रयोग अपने काव्य में किया है जो अधिकांशतः रस के अंग या साधन के रूप में प्रयुक्त हुए हैं और रसानुभूति को तीव्र करने में समर्थ हुए हैं।

१-विरहवारहरन - पद सं०५७ २- वही- पद सं० ८६ ३- वही- पद सं०२२२
४- वही- पद सं०१२५७ ५- वही- पद सं०१३५ ६- वही- पद सं०१४८ ७-वही-पद सं०२०३

छन्द-योजना

रीतिकवियों ने अधिकांशत: दोहा, कवित्त और सवैया - इन तीन छन्दों का ही प्रयोग अपनी रचनाओं मे किया है। लक्षण ग्रन्थों में भी प्राय: ये ही छन्द प्रयुक्त हुए हैं। कवि हृदयेश ने अपनी पूर्ववर्ती रीति-कवियों की परम्परा का अनुगमन करते हुए अपने रीतिनिरूपण तथा रीतिबद्ध शृंगारिक रचनाओं में उपर्युक्त छन्दों को ही अपनाया है। नायक-नायिका भेद निरूपण मे कवि ने लक्षण दोहों में तथा लक्ष्य या उदाहरण सवैया अथवा कवित्तों मे प्रस्तुत किया है। कवि द्वारा प्रयुक्त प्रमुख छन्दों पर हम यहां विचार करेंगे -

१- दोहा - सामान्यत: इसमें २४ मात्राओं पर यति होती है। इसके अनेक भेद-प्रभेद रीति-ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। कवि के निम्न दोहे में उक्त विधान स्पष्ट है -

मनभामन आमन सुनत मिटी विरह की सेत।[१]
लहलहाय सखि तन उठी ज्यौं जलधर जलखेत।।

२- कवित्त- रीतिकाल के इस प्रसिद्ध छन्द का प्रयोग कवि ने भूरिश: किया है। इसमें अनियमित गण होते हैं पर ३१-३२ मात्राओं पर यति होती है। साधारणत: ८, ८, ८, ७ या ८, ८, ८, ८ अक्षरों पर यति होती है परन्तु कहीं-कहीं ८ के स्थान पर ७ अथवा ९ पर भी यति पड़ जाती है। कवित्त के भी कई भेद हैं; परन्तु उनमे मनहर, जिसमें ३१ मात्रायें होती है और रूप घनाक्षरी जिसमें ३२ अक्षर और अन्त में लघु होता है, मुख्य है। कवि ने ३१ अक्षर वाले कवित्त - मनहर का प्रयोग अधिक किया है -

जुर जुर जात है निसंग दुरि दुरि जात
उर उर जात नौंक नैनन विसाल की — ३१
झुकि झुकि झांपि झांपि झमकि झमकि झपि[2]
उझकि उझकि मूठ मेलत गुलाल की।।
——३१

अन्य प्रकार के कवित्त - घनाक्षरी में ८, ८, ८, ८, पर यति होकर ३२ वर्ण होते है। इसका प्रयोग कवि ने अधिक नहीं किया है। यथा -

---

१- विस्वबसकरन - पद सं० २२८
२- वही- पद सं० ४८७

भनत ह्रदेस घन कलित दिसान दाब
सघन धुकार प्रत भूत प्रथम फुंद ।
——— ३२

सोभित हिंडोरे साथ कंचन की डोरे
घोर मोर करै सोरै भकिभौरे मनसूत फुंद[1] ।
———३२

३-सवैया – रीतिकालीन कविता मे कवित के पश्चात् इस छन्द का अपना विशिष्ट स्थान है । विद्वानों ने इसके ४८ भेद किए हैं । इसमें २२ से लेकर २६ तक वर्ण होते है । सम्पूर्ण छन्द एक गण पर आधृत होता है, जिसके कारण संगीतात्मकता आ जाती है । कवि हृदयेश द्वारा प्रयुक्त सवैया के कुछ भेद निम्नप्रकार हैं –

क- मत्त गयंद – यह २३ वर्णों का होता है । आदि में ७ भगण और अन्त में दो गुरु आते हैं । इसका उदाहरण –

हेरि अचानक घेरि लियौ पत्नार विहार रसाल भयौ है ।
——— २३ वर्ण
डार गरे भुज लाय घरे तिय के हिय मै दुग जाल भयौ है ।
———२३ वर्ण
जावक रंग ह्रदेस प्रदीपत लाल सरासर भाल भयौ है ।
२ ———२३ वर्ण
बाल प्रसून की माल हनी तन लाल कदंब की माल भयौ है ।
———२३ वर्ण

ख-किरीट- यह २४ वर्णो वाला होता है । इसमें ८ भगण तथा अन्त में दो लघु होते हैं । उदाहरणार्थ-

साज सिंगारन सेज परी सिगिरी सखियां दुलही पग दाबत ।
——— २४ वर्ण
आय गयौ बृजराज ह्रदेस गही अंगुरी रस बात सुनावत ।
———२४ वर्ण
दाब लई हिय सौं मनभामन लाज भरी भय भाव न पावत ।
३ ———२४ वर्ण
नैनन तैं बरसात करै नहि बात करै पिय हात न आवत ।।
———२४ वर्ण

ग- दुर्मिल- यह २४ वर्णों से निर्मित आठ सगण का छन्द है – १२, १२ पर यति होती है । आरम्भ में दो लघु और अन्त में एक गुरु का नियम है –

१- विश्वबसकरन – पद सं० ४४२ 2- वही- पद सं० ४१

३- वही- पद सं० २६

हिति सौं पठई मनभामन पै इत आमन की छिन लाग लगी ।
———— २४ वर्ण
रत मानी हृदेस प्रमानी ठई पिय के हिय सौं निस जाग लगी ।
————२४ वर्ण
हम जानी सबै सुख मानौ तु हीं अम्रु पीठै मलिंद पराग लगी ।
१ ————२४ वर्ण
छतिया छत ना नख दाग लगी घर ही की चिराक सौं आग लगी ।
————२४ वर्ण

कवि ने २२ तथा २६ वर्णों वाले सवैया छन्दों का प्रयोग सम्भवत: इसलिए नहीं किया कि उनमें गेयता की रक्षा नहीं हो पाती है। हृदयेश का सर्वाधिक प्रिय छन्द मत्त गयंद सवैया है, जो प्राय: सभी रीतिकवियों द्वारा प्रायः प्राथमिकता के आधार पर वरण किया जाता रहा है।

४- पद्धरी - यह अपभ्रंश का प्रसिद्ध छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में चार चतुष्कल गणों का विधान होता है पर अन्त में जगण (।ऽ।) अनिवार्य माना गया है -

लीली विलास अरु विछित भास ।
विभ्रम किलकिंचित कर प्रकास ।
मोटाइत वरनत कुट्टमित ।
विव्वोक ललित अरु विहित चित ।
यह विधि वणानियत लखहु हाव ।
तिन सुन मनमोहन कर प्रभाव ।।[२]

५- कुण्डलिया - यह विषम मात्रिक छन्द है। इसमें छ: चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में २४ मात्राएं होती है। आदि में एक दोहा और बाद में एक रोला जोड़कर कुण्डलिया छन्द बनता है। ये दोनो छन्द मानों कुण्डली रूप में एक-दूसरे से गुथे रहते है इसीलिए इसे कुण्डलिया छन्द कहा गया है। जिस शब्द से इस छन्द का प्रारम्भ होता है उसी से इसका अन्त भी होता है। दोहे का चौथा चरण रोला के प्रथम चरण का भाग होकर आता है -

दीजै वर सियराम जी जग तारन तुअ नाम ।
अधम उधारन दुखहरन विबुधि भक्त सुखधाम ।।
विबुधि भक्त सुखधाम आप मरजाद करी ।
बामन कौ नहि देहि दंड बिरदावलि गाई ।

१- विरजबलकरन - पद सं० ११४ २- वही- पद सं० २७७

जन ह्रदेस प्रभु चरन सरन विनती सुन लीजे ।

दूर कीजिए दुस्टि देहि निर्मल कर दीजे ।।[1]

६- छप्पय - विषम मात्राओं से निर्मित यह छन्द रोला तथा उल्लाला छन्दों के योग से सम्पन्न होता है। इसके प्रथम चार चरणों में से प्रत्येक में २४ मात्राएं होती है - ११-१३ पर यति होती है । शेष दो चरणों में २८-२८ मात्राएं होती हैं। इसके प्रत्येक चरण में १५ और १३ पर यति होती है -

रुच रुच रच परजंक जलज दल मृदुलित सीतल ।

तरुनानिन घनस्यान सजत अतरन कर सीतल ।

अष्टगंध करपूर धूर लावत सब अंगन ।

विहरत हरन ह्रदेस प्रिया प्रीतम मिल संगन ।

क्षन गमन करत क्षन भवन तब पवन अवन तप तप बहत ।

वर संदल पट चंदन दपट लपट लपट भपटत रहत ।।[2]

ह्रदयेश ने उक्त छन्दों के ही माध्यम से काव्यरचना नहीं की है अपितु फुटकर विषयों में विभिन्न राग-रागनियों - कांगड़ा, खम्माच, धनाश्री, ध्रुपद । राग पूरबी । हिंडोरा । पूरबी । पर्व, चर्चरी तथा पूर्वी ताल, कव्वाली आदि - का उपयोग किया है। यही नहीं उन्होंने विभिन्न ताल-सुरों का भी निर्देश किया है। ऐसे कुछ छन्द, जो सीता-जन्म के सन्दर्भ में है, निम्नवत् दृष्टव्य हैं :-

राग कांगड़ा

सुनैना गोद सिरानी प्रगटी सिय महरानी ।

जगमगात पलना दुति अद्भुत मोतिन भालर तानी ।

कंचन थार रतनन भर भर करत निछावर रानी ।

जन ह्रदेस जत जनकनंदिनी गावत सब जग जानी ।।[3]

राग खम्माच

अवत मधुरता जनिक के द्वार गावैं सम्पसुर तार ।

नाचत नार रंग बरसावत मंगल कर उपचार

१- बेतवा-वाणी - अगस्त-अक्टूबर १९७९ - पृ० ९९

2- विस्वकलकरन - पद सं० ५२७

3- बेतवा-वाणी - अगस्त-अक्टूबर - पृ० १०९

घूम घूम घमघम ठमक ठमक कर भमक भमक पग धार ।

थिरक थिरक फिरकत फिरकी है जन हृदेस सुखकार ।।[1]

धनाश्री

आज आली सीता जू जनम लियौ

मिथिला पुर जनिक के उर में आनंद छाये ।

बजत बधाये और मन भाये फल पाये

गृह गृह सांतिये धराये गाये ।

नवल नवेली बाल बजत मृदंग ताल झनन

झनकार सुर उपजाये ।

जन हृदेस बंदी जन पट पहराये तरन कमल सिया सिर नाये ।[2]

उपर्युक्त विवरण एवं उदाहरणों से सिद्ध है कि हृदयेश कवि ने रीति परम्परागत प्रायः सभी छन्दों का प्रयोग अपने काव्य में सफलतापूर्वक किया है। इस नाते वे रीति-काल का प्रतिनिधित्व करते दृष्टिगत होते है। इसके अतिरिक्त उनका विभिन्न रागों एवं रागनियों पर भी अधिकार प्रतीत होता है।

१- बेतवा-वाणी - अगस्त-अक्टूबर -१९७१ - पृ० १०९

२- वही- पृ० १०९

पंचम अध्याय

हृदयेश के काव्य में प्रकृति-चित्रण

सर्जनात्मक विश्व की अभिव्यक्ति प्रकृति है। भारतीय दर्शन (सांख्य) में प्रकृति पुरुष के आकर्षण से सर्जन-विस्तार कर रही है और यह प्रतीक ऐसा सजीव है कि इसका प्रचार दर्शन के तत्ववाद की सीमा से बाहर भी रहा है। प्रकृति की इस व्याख्या मे विश्व का सारा विस्तार आ जाता है। परम्परा जिस अर्थ में प्रकृति को ग्रहण करती है, उसमें समस्त बाह्य जगत् को, उसके इन्द्रिय प्रत्यक्ष की रूपात्मकता तथा उसमें अधिष्ठित चेतना के साथ प्रकृति माना जाता है। परन्तु इस व्यापक सीमा के अन्तर्गत कितने ही स्तरों को अलग-अलग प्रकृति के नाम से कहा जाता है।[१]

इस दृश्यमान अखिल चराचर जगत् को जीव और प्रकृति- इन दो भागों में विभक्त किया जाता है। स्रष्टा तथा नियन्ता के रूप मे ईश्वर या ब्रह्म समस्त संसार में व्याप्त है। जीव उस विराट् चेतन सत्ता का अंश और दृश्य प्रकृति उसका पार्थिव प्रसार है। तात्त्विक दृष्टि से प्रकृति सत् है, जीव सत् और चित् है तथा ईश्वर सत्-चित् आनन्द-स्वरूप है।[2] चिद्रूप की अभिव्यक्ति मानव, प्रकृति तथा परमेश्वर - ये तीनों सम्मिलित रूप मे विराट् या ब्रह्म के रूप में कथित किए जाते हैं। प्रकृति चेतना की विस्मृत या जड़ स्थिति है और ब्रह्म पूर्ण चेतना की स्थिति है तथा मानव या जीव इन दोनों के बीच की स्थितिमें है।[३] उक्त तात्पर्य का ही बोध वेदान्त के विभिन्न वाक्यों- 'अयमात्मा ब्रह्म' 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'- से होता है। इस प्रकार प्रकृति को मानव-प्रकृति तथा दृश्य जड़ मानवेतर प्रकृति से पृथक्-पृथक् विशिष्टरूपेण कथित किया जाता है। मानव भी अपने सत् रूप मे प्रकृति का ही एक रूप है; किन्तु वह अपने को प्रकृति से पृथक् करके देखता है। इस बाह्य भेद-बुद्धि को स्वीकार करने पर भी मानव प्रकृति से सर्वथा पृथक् या असम्पृक्त नहीं है।

प्रकृति मानव की चिर सहचरी है। अन्य शब्दों में प्रकृति और मानव का संबंध उतना ही पुराना है जितना कि सृष्टि के उद्भव और विकास का इतिहास प्राचीन है।[४]

१-प्रकृति और काव्य - डा० रघुवंश - पृष्ठ- ३-४
२-कविता में प्रकृति-चित्रण- भूमिका -डा०रामेश्वर लाल खण्डेलवाल- पृ०१
३- प्रकृति और काव्य- डा० रघुवंश- पृ०१३
४-कविता में प्रकृति-चित्रण- डा० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल - पृष्ठ-४ भूमिका

प्रकृति माँ की गोद में ही प्रथम मानव-शिशु ने आँखें खोली थीं, उसी के क्रोड़ में खेलकर वह बड़ा हुआ और अन्त में उसी के आलिंगन-पाश में बद्ध होकर वह चिर-निद्रा में सोता रहा। प्रकृति के अद्भुत क्रिया-कलापों से उसकी हृदयस्थ भावनाओं - भय, विस्मय, प्रेम आदि- का स्फुरण हुआ; उसकी नियमितता कण देखकर उसके मस्तिष्क में ज्ञान-विज्ञान की बुद्धि का विकास हुआ।[1] इसीलिए तो मानव-हृदय में प्रकृति के प्रति नैसर्गिक आकर्षण है। एक तरफ तो प्रकृति से उसकी विभिन्न वासनाओं की पूर्ति होती है तो दूसरी ओर प्रकृति के चित्र में मानव अपने दुःखात्मक भावों को सिक्त कर विभिन्न कलाओं की अभिव्यक्ति करता है।[2] वास्तव में प्रकृति यदि मानव की माता नहीं तो उसकी धात्री अवश्य है जिससे मनुष्य का धारण और पोषण ही नहीं होता अपितु वह साहचर्य-जनित सुख तथा प्रेम का भी अनुभव करता है।[3] इस प्रकार प्रकृति का व्यापक परिवेश मानव-मात्र के लिए उपयोगी, आह्लादकारी तथा उत्प्रेरक रहा है।

प्रकृति हमें बिना मूल्य कितना मधु और अमृत लुटा रही है - अनादि काल से हमें राशि-राशि जल मिल रहा है जिससे वसुन्धरा रस के मोती उगल रही है। काया का ताप शान्त करने के लिए स्निग्ध-शीतल चंद्रिका का प्रलेप बरस रहा है। नदियां खेत-कुंओं को हरियाली देकर हमें तरोताजा रखने दौड़ रही हैं। मलय के शीतल झकोरे काया को स्वर्गीय पुलकों से लाद कर हमें बेसुध बना जाते हैं।[4] इस प्रकार प्रकृति मानव के जीवन की बाह्य आवश्यकताओं की पूर्ति करती हुई अन्तरंग अनुभूतियों को भी अपने रूप-सौंदर्य से प्रभावित और चमत्कृत करने की अद्भुत क्षमता रखती है। यही कारण है कि मानव और प्रकृति का सम्बन्ध स्पन्दनशील तथा संवेदनशील सत्ता के रूप में ही प्रतिफलित हुआ।[5] मानव की स्वाभाविक रागात्मक प्रकृति बाह्य प्रकृति से प्रेरित, उल्लसित तथा आन्दोलित होती रही है।

१- साहित्यिक निबंध- डा० गणपतिचन्द्र गुप्त - पृ० ५५७
२- साहित्यालोचन- डा० श्याम सुन्दर दास - पृ० ७
३- हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण- डा० किरणकुमारी गुप्त- पृ० ११
४- कविता में प्रकृतिचित्रण- डा० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल - पृ० १९६
५- वही- भूमिका - पृ० ३

उपर्युक्त पक्ष प्रकृति का वह पक्ष है जो मानव के लिए उपयोगी, प्रेरणाप्रद तथा आह्लादक है। इसके विपरीत मानव ने प्रकृति को विरोधी तत्व के रूप में साक्षात्कृत किया है जब प्रकृति के उपादान भयानक और वीभत्स रूप में मानव जाति को त्रस्त कवलित करने के लिए सन्नद्ध हो उठे हैं। ऐसी स्थिति में प्रकृति और मानव का परस्पर युद्ध या संघर्ष भी हुआ परन्तु अन्ततोगत्वा वे मिलकर एक हो गए हैं। मानव की सदसदविवेकिनी प्रज्ञा ने अपनी जययात्रा में प्राकृतिक तादृश अवरोधों को दूर कर अपना भावी पथ प्रशस्त किया है।

प्राकृतिक उपादानों -प्रमुखत: देश, नगर, वन, बाग, गिरि, आश्रम, सरिता, सरोवर, रवि, शशि, सिंधु, भूमि ऋतु आदि- द्वारा जहाँ जीवन का भरण-पोषण है वहाँ सृष्टि की श्रेष्ठतम रचना मानव को अपने भावजगत् के निर्माण की अमूल्य सामग्री तथा कल्पना और चिन्ता की विविध दशाओं का नूतन संकेत भी मिलता है। महादेवी वर्मा के शब्दों - इस प्रकार दृश्य प्रकृति मानव जीवन को अथ से इति तक कवाल की तरह घेरे रही है। प्रकृति के विविध कोमल-परुष, सुन्दर-विरूप, व्यक्त-रहस्यमय रूपों के आकर्षण ने मानव की बुद्धि और हृदय को कितना परिष्कार और विस्तार दिया है, इसका लेखा-जोखा करने पर मनुष्य प्रकृति का सबसे अधिक ऋणी ठहरेगा। वस्तुत: संस्कार-क्रम में मानव जाति का भाव-जगत् ही नहीं, उसके चिन्तन की दिशाएं भी प्रकृति के विविध रूपात्मक परिचय द्वारा तथा उससे उत्पन्न अनुभूतियों से प्रभावित हैं।[1]

हृदय पर नित्य प्रभाव रखने वाले रूपों और व्यापारों को भावना के सामने लाकर कविता बाह्य प्रकृति के साथ मनुष्य की अंत:प्रकृति का सामंजस्य घटित करती हुई उसकी भावात्मक सत्ता के प्रसार का प्रयास करती है। यदि अपने भावों को समेट कर मनुष्य अपने हृदय को शेष से किनारे कर ले या स्वार्थ की पशु-वृत्ति में ही लिप्त रखे तो उसकी मनुष्यता कहाँ रहेगी ? यदि वह लहलहाते हुए खेतों और जंगलों, हरी घास के बीच घूम-घूम कर बहने वाले नालों, काली चट्टानों पर चाँदी की तरह ढलते हुए झरनों, मंजरियों से लदी हुई अमराइयों और पटपर के बीच खड़ी झाड़ियों को देख क्षणभर भी लीन न हुआ, यदि खिले हुए फूलों को देख वह न खिला...... तो उसके जीवन में रह क्या गया।[2]

1- साहित्यिक निबंध - राजनाथ शर्मा - पृ० ४३३

2- रस-मीमांसा - रामचन्द्र शुक्ल - पृ० ७

अनन्त रूपों में प्रकृति हमारे सामने आती है – कहीं मधुर, सुसज्जित या सुन्दर रूप में; कहीं रूखे, बेडौल या कर्कश रूप में; कहीं भव्य विशाल या विचित्र रूप में; कहीं उग्र, कराल या भयंकर रूप में। सच्चे कवि का हृदय इन सब रूपों में लीन होता है क्योंकि उसके अनुराग का कारण अपना खास सुख-भोग नहीं बल्कि चिर-साहचर्य द्वारा प्रतिष्ठित वासना है।[1] मनुष्य शेष प्रकृति के साथ अपने रागात्मक संबंध का विच्छेद करने से अपने आनन्द की व्यापकता को नष्ट करता है। बुद्धि की व्याप्ति के लिए मनुष्य को जिस प्रकार विस्तृत और अनेक रूपात्मक क्षेत्र मिला है उसी प्रकार भावों (मन के वेगों) की व्याप्ति के लिए भी। अब यदि आलस्य या प्रमाद के कारण मनुष्य इस द्वितीय क्षेत्र को संकुचित कर लेगा तो उसका आनंद पशुओं के आनंद से विशाल किसी प्रकार नहीं कहा जा सकेगा। प्रकृति के प्रति हमारा प्रेम स्वाभाविक है, या कम से कम वासना के रूप में अंत:करण में निहित है।[2]

मानव और प्रकृति के उक्त अटूट संबंध की अभिव्यक्ति धर्म, दर्शन, साहित्य और कला में चिरकाल से होती रही है। साहित्य मानव जीवन का प्रतिबिंब है, अत: उस प्रतिबिंब मे उसकी सहचरी प्रकृति का प्रतिबिंबित होना स्वाभाविक है। इतना ही नहीं प्रकृति मानव-हृदय और काव्य के बीच संयोजक का कार्य भी करती रही है। न जाने हमारे कितने ही कवियों को अब तक प्रकृति से काव्यरचना की प्रेरणा मिलती रही है। आदि कवि ने प्रकृति के दो सजीव प्राणियों में से एक का वध देखकर इतने आंसू बहाए कि उनसे कितने ही भूर्जपत्र गीले हो गए और वे आज भी गीले हैं। आषाढ़ के प्रथम बादलों को देखकर कविकुल शिरोमणि कालिदास तो इतने भावाभिभूत हो गए कि उनकी अनुभूतियां ' मेघदूत ' का रूप धारण करके बरस पड़ीं। हमारे मध्यकालीन कवियों ने अपनी विरह-गाथा सुनाने के लिए प्रकृति की ओर बार-बार ली है। आधुनिक कवियों में भी अनेक को काव्यरचना की प्रेरणा प्रकृति से मिली है। प्रकृति हमारे कवियों के लिए प्रेरणा-स्रोत ही नहीं, सौन्दर्य का अक्षय भण्डार, कल्पना का अद्भुत लोक, अनुभूति का अगाध सागर और विचारों की अटूट शृंखला भी रही है।[3] आदि कवि से लेकर आजतक

१-रस-मीमांसा – रामचंद्र शुक्ल – पृ० १७

२-चिन्तामणि- रामचंद्र शुक्ल- पृ० ४-५
भाग-२

३- साहित्यिक निबंध – डा० गणपतिचंद्र गुप्त – पृ० ५५६

ऐसा कोई कवि नहीं हुआ जिसकी आँखों में न्यूनाधिक रूप में प्रकृति का सौंदर्य न झलता हो, जिसके कंठ से फूटने वाले गीतों की कड़ियों को प्रकृति ने न सजाया हो, जिसके कान ने प्रकृति की वीणा पर निरन्तर गूँजने वाली स्वर-लहरी का आनंद न लिया हो, जिसके रोम-रोम प्रकृति की दूती वायु और किरण ने पुलकित न किए हों, जिसके नासिका-रन्ध्र को फूलों की आत्मा का सुवास न भाया हो और जिसके मन-प्राण प्रकृति की दिव्य विभूति से समग्र न हो गए हों।[1] संक्षेप में काव्य का संबंध यदि रह सकता है और हो सकता है तो प्रकृति से। काव्य में या तो बाह्य प्रकृति का चित्रण रहेगा अथवा मानव-प्रकृति का।[2]

अ- प्रकृति चित्रण के विविध रूप

हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में प्रकृति-चित्रण के जो विविध नामकरण किए गए हैं, उनसे हम अधिक परिचित हैं, अतः सुविधा की दृष्टि से हम उसी ढाँचे को लेकर विषय का विवेचन करेंगे। प्रकृति-चित्रण की ये विधाएँ एक-दूसरी से सर्वथा पृथक् नहीं हैं। विधाओं का विभाजन व्यावहारिक सुविधा या सुबोधता की दृष्टि से ही किया गया है। प्रकृति-चित्रण या निरूपण की ये विधाएँ कहीं जा सकती हैं :-

१- आलम्बन रूप	२- उद्दीपन रूप
३- अलंकार रूप	४- मानवीकरण रूप
५-उपदेशात्मक रूप	६-प्रकृति में परम तत्त्व का आभास

इनमें से किसी एक रूप में किये जाने वाले प्रकृति-चित्रण में दूसरे रूप या रूपों से भी सहायता ली जा सकती है। उदाहरणार्थ, प्रकृति का अलंकार रूप प्रायः सभी प्रकार की विधाओं में भाषा को अलंकृत करने या अर्थ को चमत्कारपूर्ण बनाने में प्रयुक्त हो सकता है। आलंबन रूप में किसी पदार्थ पर दृष्टि गड़ा कर देखते हुए उसके साथ एकाकार हो जाते हुए - काल्पनिक संवाद की स्थिति उत्पन्न होने पर मानवीकरण का रूप प्रतिष्ठित हो जायगा क्योंकि भावना में हम उस पदार्थ को मानव-सुलभ आचरण करते हुए देखने लगेंगे। इसी प्रकार उद्दीपन और उपदेशात्मक रूप भी सर्वथा भिन्न नहीं हो सकते। विरहावस्था में जो प्रकृति उद्दीपन का कार्य करती है वही कालान्तर में उपदेशक का कार्य करने लगती है।

१- आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प-विधान-डा० श्याम नंदन किशोर - पृ० ४०८
२- भोजराज खण्डकाव्य की भूमिका - डा० रमाशंकर शुक्ल रसाल- पृ० १

इस प्रकार प्रकृति-चित्रण की उपर्युक्त विधाएं परस्पर एक दूसरे से गुंथी हुई हैं; उनका पूर्ण निरपेक्ष अस्तित्व प्रायः कम ही दिखाई देता है।[1]

१- <u>आलम्बन रूप</u>- जब प्रकृति के सभी प्रकार के पदार्थ या स्तर कवि के रतिभाव के स्वतंत्र आलंबन या आधार हो जाते हैं और वे अपनी अन्तः सत्ता पर व्यापक व गम्भीर प्रभाव स्थापित कर लेते हैं तभी यह रूप पूर्णतया प्रतिष्ठित होता है। यहीं कवि की प्रकृति-संबंधी चेतना की सप्राणता परखी जाती है। यदि कवि ने आंख खोलकर, कान खोलकर, हृदय खोल कर अनेक रूप, रंग व ध्वनियों वाली प्रकृति का दर्शन न किया, उसके साथ उसका तादात्म्य स्थापित नहीं हुआ तो अन्य विधाओं या प्रकारों में भी उसका दौर्बल्य झलक जाएगा - न तो उसका अप्रस्तुत विधान मौलिक पर्यवेक्षण जन्य होगा और न प्रकृति की चेतन सत्ता में सप्राणता का आरोप हो सकेगा। पर हम यह कैसे जानें कि कवि प्रकृति के सौन्दर्य में डूब गया है, उसकी अन्तःसत्ता प्रकृति की चेतना से सहःस्फूर्त हो चुका है और उसके प्राणों में प्रकृति का सारा उल्लास, मुक्ति का आनंद व उन्माद उच्छ्वसित हो उठा है। उसकी पहचान यह है कि कवि जहां प्रकृति के पदार्थों, रंगों, ध्वनियों, गंधों व स्पर्शों में पूर्ण तल्लीन होकर अनुभव करें वहां प्रस्तुत दृश्य तथा अपने प्रकृति-प्रेम को समर्थ भाषा द्वारा पाठक या श्रोता के हृदय में सम्प्रेषित भी करें। सच्चे तथा सहृदय कवि वस्तु-व्यापार-वर्णन के अन्तर्गत प्रकृति के सन्दर्भ में शब्द, रूप, रस, स्पर्श तथा गंध का वर्णन करते हैं। फूलों तथा पक्षियों के मनोहर आकार के साथ उनके रंगों, सुगन्धि कोमलता तथा मधुर स्वर का भी सन्निवेश उनके काव्य में होता है। घ्राण-ग्रहण में प्रवीण कवि या लेखक सस्तियानों, या रेलवे स्टेशन से अनुभूत गन्ध के प्रस्तुतीकरण के साथ-साथ सहः जोती हुई भूमि से उठी सोंधी हमक का, हिरनों के द्वारा चरी हुई दूब की ताजी गमक का भी साग्रह उल्लेख करता है। सिद्ध लेखक नगरों तथा स्थानों की गंध ग्रहण करने में पटु होते हैं। वर्षा की रात्रि में झींगुरों और झिल्ली की झनकार कलियों के चटकने तथा भृंग की गुंजार का संगीत कवियों को प्रभावित करता आया है।[2] पाश्चात्य कवि शेली का हृदय प्राकृतिक वस्तुओं के रंगों से पूर्ण सम्पृक्त था। प्रकृति की दुरवस्था में भी मुरझाए पत्तों के रंगों का वर्णन उसकी सौन्दर्य चेतना का पुष्ट प्रमाण है।[3]

१- कविता में प्रकृति-चित्रण - डा० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल - पृ० १२१

२- चिन्तामणि- प्रथम भाग- रामचंद्र शुक्ल - पृ० १९६-९७

३- इंगलिश वर्स वाल्यूम - चार - पृ० २९२ पी०बी० शेली की ओड टु वेस्ट विण्ड कविता

डा० रघुवंश का कथन है – प्रकृति-सौन्दर्य की अनुभूति के लिए कवि और कलाकार की दृष्टि अपेक्षित होती है। यही सौन्दर्य कवि की अनुभूति के साथ अभिव्यक्ति का रूप ग्रहण करता है। अपने पूर्व संस्कारों मे कवि प्रकृति के सामने अनुभूतिशील हो उठता है और अपनी कल्पना से इस सौन्दर्य को व्यंजित करता है। इस काव्य में प्रकृति आलंबन होती है और कवि भावों का आश्रय।[1] ऐसे काव्य के अनुशीलन से जहां हमारा हृदय पूर्णतया रसमग्न होता हुआ जान पड़ेगा, वहीं यह प्रमाणित हो जायगा कि कवि प्रकृति का सच्चा प्रेमी है। जिस अनुपात में हम कवि को प्रकृति में निमज्जित पाएगें, उसी अनुपात मे हम उसके प्रति आकृष्ट होंगे।

प्रकृति के आलंबन रूप के अन्तर्गत भी द्विविध वर्णन-पद्धतियां हिन्दी काव्य मे उपलब्ध होती है :-

१- संश्लिष्ट शैली – इस शैली के अन्तर्गत प्रकृति का शुद्ध सांगोपांग चित्र – रस, गन्ध, स्पर्श आदि प्रत्यक्षों के आधार पर उपस्थित किया जाता है।

२- नाम परिगणनात्मक शैली – इसमें प्राकृतिक उपादानों का मात्र नामोल्लेख करके इति कर्तव्यता मानी जाती है। इस शैली में वस्तु के रूप, गुण, स्पर्शादि से किंचित् भी प्रयोजन नहीं रहता।

कवि हृदयेश के काव्यग्रन्थ ` विश्वबसकरन ` में प्रकृति के आलंबन-वर्णन के विरल चित्र हैं। बसन्त-वर्णन के अन्तर्गत एक प्राकृतिक चित्र, जिसमे संश्लिष्ट चित्रण पद्धति दृष्टिगत होती है, प्रस्तुत है :-

> सुमन समूहन समाज लग जात चिते
>
> गुंजत मलिंद पुंज पुंज दिन रात वे।
>
> कंदरप कलित दिगंतन दरस जत
>
> भ्रर मकरंद कुंज वृंदन दिगात वे।
>
> भनत हृदेस वेस वेस रित वेस देस
>
> देसन प्रदीपत सुगंध सरसात वे।
>
> कोकिल बरात सो रसालन के पात पात
>
> बोलैं अधरात जात करैं उतपात वे।[2]

१- प्रकृति और काव्य। संस्कृत खण्ड। डा० रघुवंश – पृ० ३०

२- विश्वबसकरन – हृदयेश – पद –४०७

ऋतुराज वसन्त के आगमन तथा प्रसार पर प्रकृति के विभिन्न उपादानों - समुद्र, नदियों, तमालवृक्षों, भ्रमरों, रतिमती बालाओं आदि पर कैसा प्रभाव पड़ता है, इसका एक हृदयावर्जक चित्र दृष्टव्य है -

> सिंधु सललानन मैं प्रफुल्ल तमालन मैं भृंग रस व्यालन मैं कलित पर्यंत की ।
> पुंज नव बालन मैं मदचूर्ण चालन मैं वल्लरन विलासन मैं गंध सरसंत की ।
> भनत ह्रदेस मृदु बेलन चमेलिन मैं कामकृत बेलन मैं खेलन अनंत की ।
> गेहि उदार म्हैलन मैं छैल बाग सैलन मैं दीपै कुंज गैलन मैं फैलन वसंत की ।[1]

कवि ने उक्त प्रकार संश्लिष्ट वर्णन पद्धति से ही विराम नहीं लिया है अपितु वस्तुपरिगणनात्मक शैली पर आधृत चित्रों की भी अवतारणा की है। एक ऐसा ही स्वाभाविक चित्र यहाँ प्रस्तुत है -

> मोद वन बागन अनार कनार जाल सरस रसाल डारैं सुमन समाज की ।
> फूले बेल वल्लका गुलाब आबदार फूले फूलीं वनितान फूलीं कुंजे ब्रजराज की ।[2]

2- <u>उद्दीपन रूप -</u> उद्दीपन का सीधा अर्थ है - उद्दीप्त करना, अभिवृद्धि करना, जागृत करना आदि। जब लौकिक अनुभाव विशेषत: मानव के प्रति जगे हुए रतिभाव को प्रकृति के द्वारा और अधिक बढ़ाकर आश्रय या भाव के अनुभवकर्ता को अनेक मार्मिक स्थितियों के बीच दिखाया जाता है, वहाँ प्रकृति का चित्रण उद्दीपन रूप में हुआ कहा जाता है।[3] आलंबन विभाग के अन्तर्गत कवि के समक्ष प्रकृति का शुद्ध तथा संश्लिष्ट स्वरूप अवस्थित रहता है; परन्तु उद्दीपन विभाग में प्रकृति कवि के शुद्ध एवं स्वतंत्र भावों की आलम्बन न होकर लौकिक विभावों - नायक-नायिका - के हृदयगत भावों को उद्दीप्त करने में सहायक होती है। लौकिक विभावों की सुखद स्थिति में प्रकृति उत्फुल्ल, रमणीय तथा आनंदिनी प्रतीत होती है तो वहीं उनके अवसाद, पीड़ा या विषाद के क्षणों में हतप्रभ, म्लान, क्षुभित, क्लान्त और परिशान्त दिखाई पड़ती है। विभावों के भावों का चितेरा कवि साधारणीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत आलंबन विभावों से तादात्म्य स्थापित कर उनकी भावनाओं का अन्त: साक्षात्कार करता है और प्रकृति

1- चिन्तामणि - हृदयेश - पद सं0 ॥१५॥
2- वही - पद सं0 ॥१३॥
3- कविता में प्रकृति-चित्रण - डा0 रामेश्वर लाल - पृ0 १५५

के आरोपित बिंबों की अवतारणा करता है। इस प्रक्रिया में कवि का तादात्म्य आलंबन तथा उद्दीपन विभावों से समवेत होता है तथापि प्रधानता लौकिक आलंबन विभावों की ही होती है।

सुख और दुःख, इष्ट-संयोग तथा इष्ट-विप्रयोग-ये समग्र मानव जीवन को वेदनात्मक परिणति प्रदान करने वाले दो पहलू हैं। समाज के अवयव या अंगभूत नायक-नायिका के प्रणय-संबंधों को उक्त पहलू प्रभावित करते रहते हैं। प्रकृति इस दृष्टि से अपना महत्वपूर्ण योगदान करती है। प्रिय-संयोग में नायिका प्रकृति के साहाय्य से ही अपनी रति-भावना की सुखात्मक परिणति का आत्यन्तिक अनुभव करती है। ऐसी स्थिति में प्रकृति की रूक्षता, कठोरता, विपन्नता तथा वैभवहीनता भी उसके लिए उत्तेजक या चित्ताकर्षक बन जाती है। इस प्रकार प्रकृति की प्रतिकूलता भी अनुकूलता में परिवर्तित हो जाती है। प्रिय वियोग में प्रकृति का रमणीय स्वरूप, शीतल मंद-सुगंधित वायु, भ्रमरों के गुंजार द्वारा झंकृत उपवन, मत्त कोकिल की काकली से उच्छ्वसित वनस्थली तथा शीतलोपचार नायिका के समग्र अवयवों को विदीर्ण तथा दग्ध करता-सा प्रतीत होता है। संयोगावस्था की सुखात्मिका तथा वियोगावस्था की अवसादमयी स्थिति में अनुभूति की तीव्रता प्राकृतिक उपादानों के साहाय्य पर अवलंबित है। मात्र आन्तरिक उद्दीपन - नायकनायिका का रूप, यौवन, सरलता, मुग्धता, चेष्टाएं, हाव-भाव, कटाक्ष आदि - उद्बुद्ध रति को उद्दीप्त नहीं कर सकते। शारदी चंद्रिका, कल-कल निनाद करती हुई सरिता का तट, सघन कुंजों की अवस्थिति, षड्ऋतुओं की रमणीयता में वृद्धि का आधान करने वाले पक्षियों का मधुर रव, त्रिधर्मयुक्त वायु का संस्पर्श, इन सबने मिलकर यदि आलम्बन विभावों की शृंगारात्मक भावनाओं को उद्दीप्त कर उन्हें स्वर्गोपम लोक में प्रतिष्ठित न कराया तो प्रकृति की मानव के लिए उपादेयता ही व्यर्थ हो गई। दार्शनिक स्तर पर भले ही प्रकृति-पुरुष का द्वैत[1] हो पर रति-भावना की स्थिति में तो लौकिक दृष्ट्या प्रकृति तथा पुरुष का अद्वैत ही सिद्ध होता है। उक्त प्रकार यद्यपि प्रकृति उद्दीपन के रूप में संयोग तथा वियोग दोनों में गृहीत होती है पर विप्रलम्भ शृंगार के सन्दर्भ में कृत प्रकृति के उद्दीपनात्मक चित्रण से जो

1- सांख्यकारिका - ईश्वरकृष्ण - कारिका-21

अनुभूति की तीव्रता का आवेश मानव-हृदय में होता है वह संयोगावस्था में सम्भव नहीं। यही कारण है कि हिन्दी-साहित्य में नायक-नायिका के अवसादात्मक क्षणों में प्रकृति को उद्दीपन के रूप में गृहीत किया गया है। विप्रलम्भ शृंगार के तीन रूपों- मान, प्रवास, मृत्यु- में से हिन्दी-साहित्य में विशेषतः प्रवासजन्य विरह के अन्तर्गत ही प्रकृति प्रयुक्त हुई है।

साहित्य के आचार्यों ने प्रकृति को आलम्बन विभाव के रूप में न स्वीकृत कर उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत ग्रहण किया है।[1] इसका कारण डा० रघुवंश के अनुसार यह है कि भारतीय दर्शन की एक परम्परा में प्रकृति को पुरुष के प्रतिबिंब के साथ गतिशील होना पड़ता है, उसी प्रकार मानव अपने दृष्टिकोण से प्रकृति को सदा मानसिक चेतना से प्रभावित स्वीकार करता है। मानव की रूपचेतना सामाजिक चेतना के साथ संबंधित है, वह उसका एक अंग है। इसी कारण उसके जीवन में प्रकृति-भावों के उद्दीपन के रूप में लगती है। अधिकतर हम किसी भावशून्य स्थिति में प्रकृति के सम्पर्क में नहीं आते। इस विचारशैली के अनुसार जब हम प्रकृति को आलंबन के रूप में ग्रहण करते है उस समय भी हमारी मनःस्थिति सूक्ष्म रूप से किसी न किसी भाव से संबंधित रहती है। यह भाव-स्थिति हमारे अन्तःकरण में सौन्दर्य और शान्त के स्थायी भाव के रूप में स्थिर हो सकती है; पर इधर आचार्यों ने सौन्दर्य को रति के साथ इतना अधिक संबंधित कर दिया है कि शृंगार रसराज बन गया। परिणामस्वरूप प्रकृति की समस्त सौन्दर्य भावना रति-भाव के उद्दीपन विभाव में समा गई। सामाजिक विकास की स्थिति में हमारा वातावरण मानवीय सम्पर्क से इतना सघन हो उठा है कि इसमें भावों के आलंबन के लिए मानवीय संबंध ही अधिक प्रत्यक्ष हो उठता है, अतः उद्दीपन रूप में ही प्रकृति समादृत हुई।[2] प्राकृतिक शुद्ध सौन्दर्य के प्रति काव्यशास्त्रियों का यह उपेक्षाभाव आचार्य रामचंद्र शुक्ल को सह्य नहीं हुआ और इसी कारण उन्होंने- ' जो प्राकृतिक दृश्यों में केवल कामोद्दीपन की सामग्री समझते है, उनकी रुचि भ्रष्ट हो गई है और वे संस्कार-सापेक्ष है[3] '- कहकर तथोक्त आचार्यों या काव्यशास्त्रियों पर तीव्र प्रहार किया है।

रीतिकालीन कवियों की कविता का क्षेत्र प्रायः जनसाधारण से संबद्ध न होकर राजदरबारों तक ही सीमित था। दरबारी वातावरण में आबद्धता ने उन्हें प्रकृति से जीवन्त सम्पर्क या साक्षात्कार न करने के लिए बाध्य-सा कर दिया। यही कारण था

१-चिन्तामणि- भाग-२। रामचंद्र शुक्ल - पृ० २-३
२-प्रकृति और काव्य - डा० रघुवंश - पृ० ५२
३-चिन्तामणि- भाग-२ - रामचंद्र शुक्ल- पृ० ३

कि रीतिकाल में प्रकृति को मुख्यतः भावों के उद्दीपनार्थ ही प्रस्तुत किया गया। इसी वर्णन-प्रणाली का अनुकरण करते हुए कवि हृदयेश ने प्रकृति के विभिन्न चित्र उत्कीर्ण किए हैं। बसंतागमन पर प्रकृति की सम्पन्नता तथा विरहिणियों पर उसके प्रभाव का प्रस्तुतीकरण द्रष्टव्य है -

मलय लपेटी पौन औन चहुं ओर सोर
कोकिल चकोर सर प्रथक लगत से।
मुकिलित ललित निकुंजन मलिंद पुंज
गुंजरत ललन करत भिल गत से।
भनत हृदेस साज राज रितराज गाज
बिन नंदनंद तन ज्वालन लगत से।
वन सर सार भरे सुमन विसाल जाल
किंसुकन दिपत अंगार सिलगत से।[1]

कवि की परकीया वचन विदग्धा नायिका उपपति का सामीप्य- सुख पावस ऋतु पर पाकर प्रमुदित है। वह वैदग्ध्यपूर्ण वचनों के माध्यम से रतिलाभ करना चाहती है। प्रकृति के विभिन्न स्तर मेघ, चातक का उद्दीपक नाद उसे रति भाव की चरमावस्था तक पहुंचा देता है। उसकी याचना में रतिभाव द्वारा कृत सघन पीड़ा की अभिव्यक्ति है -

आए घन घुमंड प्रचंड वर भूर ताप चात्रकन चौवद चिचिन्निकि विचर है।
धरा पर धीर धीर धुम धुरवाजे करैं मन मुरवाजे कूक गरव अधर है।
भनत हृदेस रहौ पथिकि निवार निसि आगे सलिता मै जल तामें जोरतर है।
नगर प्रदूर लखि जात लखा जात जात जौ लौं जात जात छपौ जात दिनकर है।[2]

प्रकृति के उन्मादकारी क्रियाकलापों से उद्दीप्त अनुशयाना नायिका उपपति से रमण हेतु संकेत स्थल पर जाना चाहती है पर ससुराल से पति आकर उसके भावी सुख में बाधा उपस्थित कर देता है। नायिका के नेत्र बरस पड़ते हैं -

गरजत आवैं धावैं चारौं ओर दावैं भावैं घेर नभ मंडल कौं मंडित करत जात।
छूट दीप संका कदंब की लतानन पै देखत संजोगिन कौं आनंद भरत जात।

1- विश्वविमोहन - हृदयेश - पद सं० ४०८
2- वही - पद सं० ७८

भरत इदेस पिय आय गौ लिवावन कौ सुनत न वात वात व्याकुल परत जात।
जैसे जैसे जलध अर्खंड बरसत तैसे नैनन ते नीर मेघ भर सौं भरत जात।[1]

शारदी चंद्रिका की रमणीयता तथा सुखात्मकता वियोगिनी बाला के लिए मार्तण्ड के प्रतापानल जन्य संताप की दात्री बन जाती है-

लगत सरद रित चाँदिनी भवत छिपत धन गेह।
सुकत लता सौं प्रान सखि धुकत जवा सौ देह।[2]

3- अलंकार रूप-

विभावों का रूप या सौंदर्य-वर्णन करते समय सादृश्य स्थापना के लिए प्रकृति ही हमारी सहायिका सिद्ध हुई है। प्रकृति के विपुल भण्डार में अनेक ऐसे उपादान है जिनमे विशिष्ट गुण-धर्मो के सन्निवेश ने उन्हें उपमानों के रूप में प्रतिष्ठित करा दिया है। काव्यरचना मे कवि के लिए इन प्राकृतिक उपादानों का साहाय्य ग्रहण ही करना पड़ता है;[3] क्योंकि अप्रस्तुत विधान की योजना के बिना काव्य में सौंदर्योद्भावना नहीं हो सकती है। यद्यपि यह पद्धति आलंबन रूप में प्रकृतिचित्रण की अपेक्षा हीन होती है तथापि इसका पुष्कल प्रयोग प्राचीन काल से लेकर आज तक होता चला आया है। चन्द्र, कमल, मीन, चक्रवाक, मेघ, खंजन, मृग, दाड़िम आदि प्राकृतिक अवयवों का प्रयोग विभावों के विभिन्न अंगों के उपमान के रूप में ग्रहण किया जाता रहा है। यद्यपि प्रकृति और मानव के इस प्रकार के संयोग में प्रकृति का स्थान गौण हो जाता है तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि कवि मानवीय सौंदर्य को द्युति, तीव्रता, अतिशयता प्रदान करने वाले प्राकृतिक उपादानों के प्रयोग से केवल जड़ प्रकृति तथा चेतन मानव में साम्य ही नहीं स्थापित कर देता है अपितु प्रकृति के प्रति अपने अनुराग और उल्लास को भी प्रकट करता है। काव्य में मानव और जड़ मानवेतर प्रकृति का ही प्रयोग होता है, अत: अप्रस्तुत विधान के लिए मानव-सौंदर्य की सफल अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति का अवलम्ब अनिवार्य-सा हो गया है। इस प्रकार अन्य प्रकृति-वर्णन के रूपों या प्रकारों को चाहे काव्य में स्थान न भी दिया जाय; परन्तु प्रकृति का आलंकारिक रूप मे ग्रहण अपरिहार्य है। मानवीय अधरों के सौंदर्य की अभिव्यक्ति के लिए कहीं सुकोमल पादप के नवोदित किसलय-राग को उपमान बनाया गया है तो कहीं बाहुओं को विटपानुकारिणी कहकर प्रस्तुत

1- वही - पद सं० १००
2- वही - पद सं० १२०
3-कविता मे प्रकृति चित्रण-रामेश्वरलाल-पृ० १७८

किया गया है। कहीं सूर्य प्रतापी नरश्रेष्ठ के लिए उपमान बनता है तो कहीं सम्मुग्ध मुखमंडल की कांतिमत्ता के लिए शरद मयंक का आश्रय लिया जाता है। अभिप्राय यह है कि काव्य का काव्यत्व उपमानों की योजना के बिना अवलंब-विहीन-सा प्रतीत होता है।

प्रकृति के उपर्युक्त उपदानों में से गृहीत कवियों के ऐसे प्रयोगों को देखकर काव्य-शास्त्रियों द्वारा कुछ उपमानों को रूढ़ कर दिया गया है। संस्कृत काव्य में गृहीत कतिपय विशिष्ट उपमानों का प्रयोग हिन्दी-साहित्य के विभिन्न कालों के कवियों ने ज्यों का त्यों स्वीकार किया है। ऐसे रूढ़ उपमानों या उच्छिष्ट उपमानों के प्रयोग से ही व्यथित होकर गोस्वामी तुलसीदास को सीता-सौंदर्य के लिए झूठे उपमानों या परम्पराग्रहीत उपमाओं का प्रयोग अरुचिकर लगा।[1] वे उपमा देकर ` कुकवि ` कहलाने का साहस नहीं एकत्रित कर सके।[2] इस कथन का अभिप्राय यह नहीं है कि हिन्दीसाहित्य में मात्र रूढ़ उपमानों का ही प्रयोग हुआ है; कतिपय कवि ऐसे भी है जिन्होंने अपनी प्रतिभा, मनीषा, पर्यवेक्षण-कौशल के आधार पर नवीन उपमानों की सृष्टि की है। कुछ ऐसे भी कविगण है जिन्होंने प्रसिद्ध उपमानों को नवीन पद्धति से ग्रहण किया है।

राजकवि हृदयेश का काव्य प्रकृति-चित्रण की इस विशिष्ट विधा से पूर्णतया मंडित है। प्रकृति के प्रसिद्ध उपादानों - चन्द्र, कमल, मयूर, चातक, मीन, मराल, गज, विद्युत् आदि की योजना ने उनके काव्य को सार्वग्राही, रमणीय तथा सशक्त बनाया है। यद्यपि इन उपादानों के प्रयोग में अधिकांशतः परम्परायुक्तता ही है तथापि ऐसे स्थल भी है जहां रूढ़ उपमानों को सर्वथा नवीन पद्धति से काव्य में प्रयुक्त किया गया है।

कवि की नायिका के सर्वांगीण सौन्दर्य-वर्णना में प्रकृति के विभिन्न स्तरों का एकत्र ग्रहण दृष्टव्य है —

> कंप कलका सी पट ओट चंचला सी भासी ताकन तरोधी ताकी मानौं तीर गांसी है।
> बचन सुधा सी रस रूप के भ्रमा सी छवि लचकि चलत कट छिगुनी छला सी है।
>
> \+ \+
>
> अद्भुति रमा सी मुख दीप चन्द्रमा सी भासी मोहनी कला सी सांसी हासी मैनफांसी है।[3]

1- रामचरितमानस- तुलसी - सब उपमा कवि रहे जुठारी-केहि पटतरौं विदेहकुमारी-बालकांड - 230/8

2- वही- सिय बरनइ तेइ उपमा देई -कुकवि कहाइ अजसु को लेई - बालकाण्ड-246/3

3- विश्वप्रकरन - हृदयेश - पद सं० १२

लावण्यमयी बाला के नखशिख-वर्णन की परम्परा में कवि प्रकृति के कतिपय स्तरों का स्पर्श करता हुआ भी तृप्त नहीं होता। इहलोक तथा परलोक के प्रसिद्ध उपमान कवि को तुष्ट नहीं कर पाते, उपमा - आनन्त्य का यही कारण प्रतीत होता है -

कामसुंदरी सी मुकतमाल फुंदरी सी छवि वारौं तरफी सी हाँसी सुधा वरसी सी है।
हीरन की काँति सी वतीसी दरसी सी मीसी नैनन धंसी सी पैठ हीतल बसी सी है।
भाल बृदेस रवी सुंदर छरी सी वाल मुकत भरी सी विधि अमित असी सी है।
दीपन सीसी सी अंक भरत परी सी दीसी सी सी करै लागै कलाकंद वरफी सी है।[1]

मानव-सौंदर्य की रमणीयता, मधुरता तथा मादकता अथवा उसके अवयवों के गुण-धर्मो की अभिनवता, अनुपमेयता के समक्ष कवि को कभी -कभी प्राकृतिक उपादान भी नीरस, हीन तथा निष्प्रभ प्रतीत होते हैं। ऐसी स्थिति में कवि सुन्दरतम मानव के रूप रंग को निम्न प्रकार अभिव्यक्ति देता है -

द्रग ललिताई पाई मीन चंचलाई कहा वदन भलाई कहा चंद की निकाई है।[2]

+ +

कवि के द्वारा प्राकृतिक क्षेत्र से आकृष्ट कतिपय प्रसिद्ध उपमानों के प्रयोग निम्न प्रकार देखे जा सकते हैं -

भामिनी सकल मन गामिनी मरालवत कामिनी की दीप दामिनी सी दरसात है।[3]

+ +

भुज पीत पट नील पट ओढ़े लसे गुविंद।
भए वाल के लाल द्रग मनौं लाल अरविंद।।[4]

+ +

रावरे के बैनन तै रैन जगे नैनन तै उमगि उमगि नेहि मेह सौं ढरी परत।[5]

+ +

मानौं चंद मंद परौ राहु फरफंद जैसे मंद परौ वदन गुविंद विना वाल कौ।[6]

+ +

नवल वाल मुख ढ्यौं लसौ मनौ संपुटित कंज।[7]

१- वही - पद सं० ४६०
२- वही - पद सं० १२७
३- वही- पद सं० ९४
४- वही- पद सं० १४८
५- वही- पद सं० ४६१
६- वही- पद सं० १६९
७- वही- पद सं० १७०

अंग अंग जटित जवाहरन के आभरन

जगमग होत मग अद्‌भुत परी सी है ।

प्रीत प्रतपात की उताल गजवत चाल

बेंदा भाल लाल दीपै मैन मंवरी सी है ।

भनत ब्रदेस सोहै मोतिन की माल गरे

वदन मयंक दुति भासत छरी सी है ।

देखौ ना बिसाल नंदलाल कुंज तिहि काल

बाल कुम्हिलानी जाल सुमन छरी सी है[1] ।

४- मानवीकरण रूप-

' मानवीकरण ' का अर्थ है - प्रकृति या उसके पदार्थों को चेतन मानव की तरह व्यवहार करते - हंसते, बोलते, चलते, गाते, रुदन आदि करते दिखाया जाय[2] । अन्य शब्दों में जब प्रकृति पर चेतन व्यक्तित्व का आरोपण होता है तो मानवीकरण की क्रिया निष्पन्न होती है । यद्यपि प्रकृति को सामान्यतया जड़ सत्ता के रूप में स्वीकार किया जाता है तथापि कवि की अनुभूति तथा प्रकृति के साथ उसके साहचर्य के कारण वह उसे चेतन की तरह आचरण करती दीख पड़ती है । पशु-पक्षीजगत् तो मानवीय संबंधों में व्यवहार करते प्रकट ही होते हैं, वनस्पति तथा जड़ जगत् भी व्यक्ति-विशेष के समान उपस्थित होता है । कवि की भावना में वृक्ष पुरुष के रूप में और लता स्त्री के रूप में एक-दूसरे का आलिंगन करते हुए जान पड़ते हैं । सरिता प्रियतमा के रूप में नीर-निधि से मिलने को आकुल दौड़ रही है । पुष्प उत्सुक नेत्रों से किसी की प्रतीक्षा करते हैं । साहचर्य के आधार पर व्यापक प्रतिबिंब के रूप में प्रकृति का सौन्दर्य रूप तो आलंबन है ; परन्तु आकार के आरोप के साथ श्रृंगारिक भावना अधिक प्रबल होती गई और इस सीमा पर यह प्रकृति का मानवीकरण रूप श्रृंगार का उद्दीपन विभाव समझा जा सकता है[3] ।

प्रायः हिन्दी साहित्य के आधुनिक आलोचकों के विचारों के अनुसार प्रकृति की मानवीकरण की शैली आधुनिक हिन्दी काव्य या छायावादी काव्य की देन मानी जाती

१- विश्वव्यसरन - पद सं० १७३

२-काव्य में प्रकृति -चित्रण- डा० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल पृ० १७०

३- प्रकृति और काव्य - भाग-१ - डा० रघुवंश - पृ० ११२

है । इन आलोचकों का कहना है कि अकेले इस मानवीकरण के तत्त्व ने आधुनिक हिन्दी काव्य को प्राचीन काव्य से पृथक् कर दिया । उनका तर्क यह भी है कि आधुनिक कवि तथा प्राचीन कवि के व्यक्तित्व में प्रभूत अन्तर है । मानवीकरण की प्रकृति वास्तव में व्यक्तीकरण की द्योतक है । इसी प्रवृत्ति का प्रतिफलन है कि पंत ने प्रकृति की कल्पना प्रेयसी के रूप में की तो ` निराला ` ने उसे संवाहिका शक्ति के रूप में देखा । प्राचीन तथा छायावादी काव्य में अंतिम विभाजक रेखा खींचते हुए यह तर्क दिया जाता है कि आधुनिक कवियों पर अंग्रेजी रोमांटिक काव्य के व्यक्तिवाद का गहरा प्रभाव पड़ा था जिसके कारण प्रकृति के चित्रों में एक रागात्मक संबंध की प्रतिष्ठा हुई । ये तर्क आंशिक रूप में ही स्वीकारे जा सकते हैं । यह सत्य है कि अँग्रेजी की व्यक्तिवादी रोमांटिक काव्य धारा ने प्रथमत: बंगला-साहित्य पर प्रभाव डाला तदनन्तर इसकी विशिष्ट प्रवृत्ति मानवीकरण हिन्दी साहित्य में आई, परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि प्राचीन काव्य में यह प्रवृत्ति नहीं मिलती । प्रकृति या उसके विभिन्न उपादान दृश्य तथा जड़ हैं अत: आत्यन्तिक रागात्मक तादात्म्य होना एवं तदन्तर्गत मानवीकरण की प्रवृत्ति के अनुकूल प्राकृतिक चित्रों की अवतारणा सहृदय या सच्चे कवि के लिए अनिवार्य है । यही कारण है कि प्राचीन काव्य ही क्या सम्पूर्ण वैदिक-साहित्य, परवर्ती लौकिक संस्कृत साहित्य - सर्वत्र ही मानवीकरण की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है जिसका बहुश: उल्लेख तत्तयुगीन कवियों द्वारा किया गया है । मध्यकालीन कवियों ने प्रकृति का ही नहीं अपितु मन तथा विभिन्न सूक्ष्म मनोविकारों का हृदयस्पर्शी मानवीकरण कर अपने कथ्य को मार्मिक, प्रभावी तथा सहृदय-संवेद्य बनाया है । व्यक्तिवादी काव्य में ही मानवीकरण संभव हो - ऐसी ऐकान्तिक अनिवार्यता नहीं सिद्ध होती । आग्रह के कारण या परिस्थिति विशेष से आबद्ध कवि मानवीकरण की पद्धति से वियुक्त हो जाय ऐसा सम्भव है, पर सच्चा कवि जिसने प्रकृति से रागात्मिका वर्ण वृत्ति का ग्रहण किया है, मानवीकरण की प्रक्रिया से असम्पृक्त नहीं रह सकता ।

उपर्युक्त प्रकार के मानवीकरण और प्रकृति पर मानवीय भावों के आरोपण को रस्किन जैसे आलोचकों ने हेत्वाभास । पैथेटिक फलेसी । कहा है । उनका कहना है कि प्रकृति जड़ है; उसके सब कार्य निर्बाध गति से होते जाते हैं । मानव की वेदना अथवा उसके हर्षातिरेक का निर्जीव प्रकृति पर को प्रभाव नहीं पड़ता । प्रकृति में इस प्रकार का आरोपण प्रकृति का हेत्वाभास -मात्र है । कालिदास ने भी इसका अनुभव किया है

कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु `अर्थात् कामीजन प्रकृति में चेतन-अचेतन का भेद भूल जाते है; परन्तु हम स ब प्रकार के प्रकृति-वर्णन को हेत्वाभास कहकर नहीं टाल सकते; क्योंकि अनादि काल से ही प्रकृति से सहचार रहने के कारण मानव कष्ट-निवेदन और भावाभिव्यंजन प्रकृति से करता रहा है और अपने उत्कट प्रेमस्वरूप प्रकृति में प्रति-स्पन्दन का अनुभव करता रहा है ।[1]

यहां पर ` मानवीकरण ` तथा ` मानवीभवन ` में पार्थक्य समझना आवश्यक प्रतीत होता है । कवि जब अपनी भावनाओं अथवा आश्रय-विशेष की भावनाओं के आधार पर प्रकृति को चेतनवत् व्यवहार करते दिखाता है तब मानवीकरण सम्पादित होता है । यदि इस प्रकार की क्रिया की प्रतिक्रिया में प्रकृति की ओर से कथन, सम्भाषण या स्पष्टीकरण व्यक्त किया जाय तो मानवीभवन सम्पन्न होता है । यह मानवीभवन काव्य को अस्वाभाविक बना देता है,[2] अत: इसकी योजना काव्य में समीचीन नहीं । जायसी, सूर तथा तुलसी आदि कवियों के काव्यग्रन्थों में ऐसे ` मानवीभवन ` के उदाहरण उपलब्ध होते है ।

रीति-काव्य उपर्युक्त वर्णन-पद्धति से अलंकृत तथा मंडित है । प्रकृति के मानव रूप का अंकन प्राय: सभी कवियों द्वारा किया गया है । अत: परम्परा के अनुगामी हृदयेश भी इस प्रकार के वर्णन से विरहित नहीं रह सके है ।

रसराज श्रृंगार के अधिष्ठातृ देव मदन के साहाय्य के लिए वसंतको कवियों ने काव्य का आश्रय बनाया है । वसंत ऋतु का आगमन सामान्य या परिहार्य घटना न होकर योगी-वियोगी दोनों के ही लिए महत्वपूर्ण है । ऐसे वसंत नृपति को मानवीकृत करते हुए हृदयेश लिखते हैं :-

गंध युत मारूत समल गत चौगिरद

कोकला अलापत कलापी उत्पात से ।

भनत हृदेस महाराज रितराज आयौ

बागन तमाल जाल दिपत बरात से ।[3]

\+ \+ \+

मोद बन बागन अनार कनार जाल

सरस रसाल डारैं सुमन समाज की ।

1-हिन्दीकाव्य में प्रकृतिचित्रण- डा० किरणकुमारी गुप्त - पृ० ६२

2-सूर का श्रृंगार-वर्णन -डा० रमाशंकर तिवारी - पृ० १३४-३६

3- विलासशंकर- पद सं० ४११

भौरन की औंवे कोकलान गन मौवे करै

फैली देण फावै रितराज रतराज की ।[1]

\+ + +

गुंजरत भौर कंज पुंज कुंज कुंजन मैं

कीर पढ़ै मंत्र मैन पीर उपराज कौं ।

लपट छुटेस रही ललका खाल जाल

आपु ही मिलाप कीवे लाल सिरताज कौं ।

कोकला अवाज करा कोक कौं जिहाज आज

फैल गौ समाज साज राज रितराज कौं ।[2]

पावस-ऋतु का भी शृंगार के उद्दीपन की दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान है। घने तथा काले-काले मेघखण्डों के मध्य दामिनी का अपनी चंचलता, प्रभा,सौन्दर्य दिखला-कर विलीन हो जाना विरही जनों के हृदय में एक टीस-सी उत्पन्न कर देता है। कवि उसे नृत्यांगना का रूप देता है —

उठत विचित्र घन सघन तरापन सौं

दिगन प्रछोर छम प्रत छहती सी हैं।

ललित छुटीं सीं फिरैं वलित छुटी सी नचै

चंचला नटी सी लपटी सी लहती सी है।[3]

\+ + +

लहलहे लपट कदंब ललकान जाल

केकी सेकी शोर बाद कर कोकलान सौं।

भनत छुटेस होत अध रंगराज साज

तैसियै प्रमोद नचै चंचला कलान सौं।[4]

ग्रीष्म की भीषणता में यद्यपि प्रेमालाप या रतिलाभ प्रतिकूल ही पड़ता है पर प्रणयीजन प्रतिकूलता को भी कृत्रिम शीतलोपचारों से अपने अनुकूल बनाकर प्रयुक्त करते हैं। तापित प्रकृति भी इन उपचारों के संस्पर्श से अपना शमन ही करती नहीं प्रतीत

१–विरुदप्रकाश – पद सं० ५१३

२– वही– पद सं० ५१४

३– वही– पद सं० ५३१

४– वही– पद सं० ५३४

होती अपितु उन्मत्त-सी होकर प्रेमीजनों को पुष्ट-तुष्ट करती है। ऐसी ही योजना से मुग्ध पवन की मत्तता अवेक्षणीय है -

> बंगलन छिरकि गुलाब अतरन कर
>
> खुस खिस रस रस हर फन है।
>
> परजंक तर वर सजल जलज कर
>
> लहरत सीतल फुहार बरफन है।
>
> भनत द्विजदेस प्रिया प्रीतम बिहार तहँ
>
> बहै मतवारी पौन चारौं तरफन है।[१]

५- उपदेशात्मक रूप-

कवि प्रकृति के आलंबन-उद्दीपनादि प्रमुख रूपों की अवतारणा करके ही अपने कर्तव्य की इति-श्री नहीं समझता अपितु वह प्रकृति के विभिन्न व्यापारों से समाज के लिए नीतियों, आदर्शों, उपदेशों, प्रेरणाओं आदि का संचयन कर उन्हें अपनी कृति के माध्यम से सुव्यक्त करता है। प्रकृति को इस प्रकार मुखरित किया जाता है कि वह समाज का मार्गदर्शन करती-सी प्रतीत होती है। इस रूप में प्रकृति हमारी गुरु या शिक्षिका बन कर उपस्थित होती है। प्रकृति के विशिष्ट उपादानों के विशिष्ट धर्मों के कारण उनमें विशिष्ट गुणों का आधान करके आदर्श के रूप में प्रस्तुत किए जाने की परम्परा लोक-विश्रुत है। उदाहरणार्थ - पृथ्वी की क्षमाशीलता, सागर का गाम्भीर्य तथा मर्यादावादिता, लताओं की नम्रता, पर्वतों की चारित्रिक दृढ़ता, पवन की सेवा-वृत्ति सरिता तथा वृक्षों की परोपकारप्रियता - मुक्तहस्तदानशीलता तथा समदर्शिता - इसी कोटि में परिगणित हैं।

रीतिकालीन कवियों में रहीम, वृन्द, गिरिधर कविराय तथा दीनदयाल ने नीतिपरक दोहे तथा कुण्डलियां रचकर प्रकृति के उक्त नैतिक पक्ष का यथेष्ट उद्घाटन किया है। अन्य कवियों ने प्रायः प्रकृति का यह रूप नहीं ग्रहण किया है। प्रकृति के इस रूप की अभिव्यक्ति के लिए व्यक्तित्व की विशालता, अनुभूति की तीव्रता, लोक-संग्रहपरायणता, गहन अनुभव तथा गम्भीर अध्ययन की अपेक्षा है। संकीर्ण क्षेत्र में आबद्ध लोकपराङ्मुख रीतिकाव्य में प्रकृति के इस रूप को प्रश्रय न मिलना स्वाभाविक ही था। यही कारण है कि तुलसी के अनन्तर कोई भी मध्यकालीन कवि इस दृष्टि से अपना

१- विलवक्सकरन - पद सं० ११20

कीर्तिमान् नहीं स्थापित कर सका ।

६-रहस्यभावनात्मक रूप-

प्रकृति की शक्ति-सम्पन्नता, दुराधर्षक्षमता, नियमपरायणता, सतत मानवहित-साधकता, उपादेयता से प्रभावित बुद्धिसम्पन्न मानव इसकी नियामिका शक्ति के संबंध में प्रश्नशील हो उठता है। वह सोचता है - इस प्रकृतिरूपका शक्ति के पृष्ठभाग में कौन-सी ऐसी शक्ति है जो इसका संचालन या नियमन कर रही है ? पुनः जिसने मरणधर्मा प्रभातकालीन भुवनभास्कर, त्रिवर्णयुक्त इन्द्रधनुष, ज्योतिर्मान् उज्ज्वलकान्तियुक्त तारागण, शीतल-नेत्ररंजक पीयूषवर्णी सुधांशु स्वर्गिक मुस्कराहट से प्रस्फुटित किंजल्कवर्णी पुष्पराशि, पुलकाकुल मंजुभाषी विहगकुल, मधुमास में स्फुरित रक्तकिसलय-कुसुमत, हरिताभ दूर्वादल, नीलधर्मी गगन आदि की रचना की है - वह कौन है ? कवि इस सन्दर्भ में सक्रिय होता है; परन्तु वह भी वेदवाङ्मय की परम्परा में ` नेति-नेति ` के आदर्श पर ही उस अलौकिक शक्तिसम्पन्न विभुत के प्रति मात्र जिज्ञासु बनकर रह जाता है। पर इस अनिर्वचनीयता से पूर्व वह उपर्युक्त शक्ति के संबंध में पर्याप्त भावसमष्टि उत्कीर्ण कर चुका है। चाहे वैदिक काल का ऋषि रहा है अथवा आधुनिक हिन्दी साहित्य का छायावादी कवि - दोनों ही ने उक्त अप्राकृत शक्ति की अभ्यर्थना में रहस्यभावना से भावित होकर कुछ-न-कुछ गाया अवश्य है।

प्रकृति को स्थूल दृष्टि से देखने वालों को उक्त जिज्ञासामूलक रहस्यभावना की अनुभूति नहीं होती। इस अनुभूति के लिए प्रकृति का सामीप्य, प्रकृति में चेतना की प्रतीति, होने के साथ-साथ प्रकृति की नियमित क्रियाओं के प्रति हार्दिक जिज्ञासा भाव का होना आवश्यक है। यह वृत्ति सम्वेदनशील या सहृदय में ही पाई जाती है। अनन्तलोकविहारी तथा कल्पना जगत् के प्राणी कवि के लिए तो यह वृत्ति सर्वस्व है। यह रहस्यभावना सभी कवियों में समानरूप से उपलब्ध हो, ऐसा आवश्यक नहीं। यह उसी कवि में मिलती है जिसने उसके सभी रूपों तथा विविधताओं को एकाग्रचित्त होकर देखा हो और प्रकृति-सौन्दर्य-सुरा का आकण्ठ पान किया हो। जिसने प्रकृति के शान्त, सौम्य, मधुर, उदात्त तथा भीषण सभी रूपों को रोमांच व पुलक के साथ हृदयंगम न किया हो उसकी रहस्यभावना में स्वाभाविकता व सप्राणता नहीं आ सकती।

जिस रीतिकालीन संकीर्णकाव्य धारा में ` राधिका-कन्हाई ` सु मिरन के बहाने ` हो चुके हों, इनकी सगुण-साकारोपासना भक्तिमत्ता में ही आस्था-अपने विकृत रूप में - न व्यक्त

की गई हो वहां इनसे भी सूक्ष्म पर अनुभूतियाँ आध्यात्मिकता पर आधृत रहस्यभावना अथवा कल्पना की स्थिति कैसे संभव हो सकती थी । यही कारण था कि रीतिकाल में प्राय: इस रूप में प्रकृति का चित्रण नहीं हो सका; कृष्णेश इसके अपवाद नहीं हो सकते थे।

षड्ऋतु-वर्णन

सृष्टि के आदिकाल से ही मानव-समुदाय प्रकृति-पूजा करता आ रहा है। उसने प्रकृति के विविध रूपों की कल्पना कर उनके प्रति अपनी श्रद्धामयी भावना व्यक्त करने मे आनंद का अनुभव किया है। सूर्य, चंद्र, आकाश, उषा, अग्नि, जल आदि को देवता मानकर उनकी उपासना करना प्रकृति-पूजा से ही संबंधित है। इस पूजनीय प्रकृति के सामयिक परिवर्तनों की अनुभूति ने मानव समाज में ऋतुओं तथा महीनों की कल्पना को जन्म दिया है।[१] विभिन्न वेदना-पदायिनी इन ऋतुओं की पृथक्-पृथक् कल्पना ने मानव-मात्र को विभिन्न वेदनाओं से सम्पृक्त किया है परिणामत: वह कभी इनके साहचर्य से प्रभावित होकर हर्ष से उत्फुल्ल हुआ है तो कभी शोक से क्षुभित।

रसराज शृंगार को उद्दीप्त करने वाले उपादानों में षड्ऋतु-वर्णन का विशिष्ट स्थान है। इन ऋतुओं मे विशेषत: बसन्त, वर्षा, शरद, हेमन्त तथा शिशिर प्रणयी-जनों के लिए उपादेय, वरेण्य तथा आह्लादक है; केवल ग्रीष्म ऋतु उनके लिए क्षोभ-कारिणी है। इस प्रतिकूल या कठिन ऋतु को भी शीतलोपचारों के माध्यम से अपने अनुकूल बनाकर उपयोग करने का विधान काव्य के आलंबनों द्वारा किया जाता है। संभवत: इसी अभिप्राय से समस्त ऋतुओं की उद्दीपकता का कथन किया जाता है। नायक-नायिका को बसन्तादि षड्ऋतुओं का माधुर्य, मादकत्व, शैत्य, आह्लादकत्व प्रभावित करता है जिससे उनकी संयोग या वियोगावस्था की अनुभूतियों में अनन्तगुनी तीव्रता तथा हृदयस्पर्शिता आ जाती है। वियोग मे जहां प्रकृति विरहिणी या विरही को झकझोर डालती है वहां संयोग में वह स्वर्गोपम लोक में ही प्रतिष्ठित करा देती है। यथार्थत: यदि प्राकृतिक वैभव षड्ऋतुओं के रूप में न अवस्थित हो तो आलंबनादि के विभिन्न भावों को अपेक्षित परिणति ही न प्राप्त हो सके। आन्तरिक उद्दीपनों में वह सामर्थ्य कहां जो प्रकृति रूप बाह्य उद्दीपन मे समुपलब्ध है। हिन्दी-साहित्य के आदि काल से षड्ऋतु-वर्णन-परम्परा प्रवर्तित रही है। रीतिकाल इस दृष्टि से

१- ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास- प्रथम खण्ड- प्रभुदयाल मीतल - पृ० २२९

अत्यन्त समृद्ध है। कवि हृदयेश इस परम्परा से अछूते नहीं रह सके हैं।

बसन्त-वर्णन

इस ऋतु को षड्ऋतु में प्रथम स्थान दिया गया है। इसके अन्तर्गत चैत्र तथा वैशाख के महीने आते हैं। इसके महत्त्व में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि इसे 'कामदेव का सखा' कहा गया है। उद्दीपन की दृष्टि से ही नहीं अपितु रमणीयता के आधार पर भी यह ऋतु सर्वश्रेष्ठ है।[1] इस ऋतु में चेतन मानव ही नहीं अपितु जड़ प्रकृति भी अपनी युवावस्था का अनुभव करती हुई अंगड़ाई लेकर किसी के आवाहन में तत्पर हो जाती है।

प्रकृति-नटी का नर्तन लताओं की रस-पेशलता, पुष्पों की फुल्लता तथा तदन्तर्गत मकरंद की सम्पन्नता, भ्रमरों की रसमत्तता, कोकिल-रव की मधुरता, मदन की तत्परता के रूप में दृष्टिगोचर या इन्द्रियगोचर होता है। पवन भी अपनी गतिमानता के द्वारा इस मादक वातावरण को समृद्ध करता है। ऐसे आनंददायी वातावरण में कामिनियों की मदनपरवशता या अधीनता, विरहीजनों की विपन्नता अपना उत्कंठित या क्षुभित रूप दिखलाती है। हृदयेश का निम्नांकित उपर्युक्त अवस्था का सुष्ठु ज्ञापक है —

> भलत हृदेस रित एस कौ प्रवेस भयौ
>
> सरस लतानन पै दिपत अमंद सौं।
>
> धार बर धनुष सुधार कर धायौ सर
>
> कोकलान बैन सुधा भरत सुछंद सौं।
>
> दर विरहीन भये मदन अधीन पर-
>
> बीन कामिनीन कौं फिरत फरफंद सौं।
>
> पवन झकोर भौंर फूल भराभरी परी
>
> भौंर तराभरी धरा भरी मकरंद सौं।[2]

बसंत ऋतु में मलयानिल की मादकता तथा सुखद-स्पर्शिता के साथ कोकिल तथा चकोरों की सक्रियता और भ्रमरों का गुंजन विरहीजनों के लिए ज्वाल-सदृश हो जाता है।

1-ऋतूनां कुसुमाकरः - गीता

2- शिवव्याकरन - पद सं० ४०६

नायक के विश्लेषण से पीड़ित बाला की व्यथा मर्मान्तक है -

मलय लपेटी पौन औन चहुं ओर छोर

कोकिल चकोर सर प्रयक लगत से ।

मुकिलित ललित निकुंजन मलिंद पुंज

गुंजरत ललन करत भिल गत से ।

भनत छ्देस साज राज रितुराज गाज

बिन नंदनंद तन ज्वालन जगत से ।

वन सरसार भरे सुमन विसाल जाल

किंसुक दिपत अंगार सिलगत से ।[१]

कुसुमाकर का आगमन संयोगिनी नायिका के लिए वरदान-सदृश बन जाता है । प्रकृति का वैभव उसमें अदभ्या रति-सक्रियता का आवेश करता है । नायिका ऐसे वरदान के कारण हर्ष-पुलक से युक्त है —

सकल तमालन कौं नव दल माल जाल

यौवन विलास कल मुकिलित अलरल ।

मारुत चलत मंद मकरंद फैल बूंद

अमित सुगंध के प्रबंध मधुकर लेत ।

भनत छ्देस कोकलान गन कूंदे चोख

मदमत्त वृंद कुक मूंदें ना हरण लेत ।

कामिनी असीसें गोद पति की चूमी सें दीसें

आयौ सखी है रितुराज बखसीसें देत ।[२]

ऋतुराज का प्रभाव मानवशरीर पर कैसा पड़ता है, इसका एक चित्र कवि के शब्दों में - अवेक्षणीय है —

दिन सखान लागे आलस दिखान लागे भान लागे उदित प्रतापिक दिसन मै ।

भनत छ्देस रितुराज दरसान लागे बाल कुच यान लागे लागैं पिय तन मै ।[३]

१-विश्ववशकरन - पद सं० ५०८

२- वही- पद सं० ५१०

३- वही- पद सं० ५१२

ऋतुराज के स्वागत में अन्य प्राकृतिक उपादानों - अनार, कचनार, बेल, बल्लिका गुलाब आदि का पल्लवित या प्रफुल्लित होना वन-बागों के सौंदर्य में वृद्धि कर देता है —

मोद वन बागन अनार कचनार जाल सरस रसाल डारैं सुमन समाज की ।
फूले बेल बल्लका गुलाब आबदार फूले फूलीं बनितान फूलीं कुंजें ब्रजराज की ।[1]

सरिता-सिंधु के अवदेश में, तमाल पादपों की रसमिलता में, भ्रमरों की मकरंद-अनुरक्तता में, बालाओं की मद-मुद्रित गत्यात्मकता में, बेलों-चमेलियों की मुखरता में, काम-केलियों की अनन्तता में, गृह-वदार, मैलों, उपवनों, कुंज-वीथियों में सर्वत्र ही बसंत का प्रसाद दृष्टिगत हो रहा है —

सिंधु सलतानन मैं प्रफुल्ल तमालन मैं भृंग रस ब्यालन मैं कलित पगंत की ।
पुंज नव बालन मैं मदमुद्र चालन मैं बकत्रन बिसालन मैं गंध सरसंत की ।
भनत इदेस मृदु बेलन चमेलिन मैं काम कृत केलन मैं फौलन अनंत की ।
गेहि वदार भैलन मैं छैल बाग सैलन मैं दीपै कुंज गैलन मैं फैलन बसंत की ।[2]

बसंतोत्सव प्रकृति को ही आह्लादित एवं सौन्दर्य से आपूरित नहीं करता अपितु मानवी प्रकृति भी इसकी जीवन्तता से परिचालित होकर पूर्ण गतिमती हो जाती है । नायिकाएं आनन्दातिरेक में संगीत का आश्रय लेते हैं साथ ही स्वर्ण-थालों में गुलाल तथा इत्र की यथेच्छ योजना कर अपने उल्लास तथा उत्साह को अभिव्यक्ति देती हैं —

पुर ब्रजबाला एक ह्व एकन तैं आला दीपै मोद वैसी माला औ सिंगार सब साज कौ।
बाजत मृदंग धुन तार झनकार गावै तान कर सकल अलापै रितराज कौ ।
भनत इदेस हेमथारन गुलाल जाल अतर बिसाल भरें नगर समाज कौ T
मोरे भोर ललित प्रसून झलकत जात लैकर बधावन बसंत ब्रजराज कौ ।[3]

ग्रीष्म-वर्णन

बसंत की मादकता तथा रमणीयता ग्रीष्म में पराभव को प्राप्त हो जाती है । प्रचण्ड मार्तण्ड की तप्त किरणें हरिततया मुखरित प्रकृति के लिए अभिशाप के रूप में उपस्थित होकर उसके समग्र सौन्दर्य को श्री-हत कर डालती है । बसन्त ऋतु में उद्दीप्त नायक -

---

१- विश्वव्यापकरन- पद सं०॥१३
२- वही- पद सं०॥१५॥
३- वही- पद सं०॥१७

नायिका की प्रणयलीलाएं इस ऋतु में अवरुद्ध-सी होने लगती हैं। इस ऋतु की कठोरता तीक्ष्णता तथा भीषणता को कृत्रिम शीतलोपचारों के माध्यम से ही अनुकूलता में परिवर्तित किया जाता है। वैभव-सम्पन्न प्रेमीजन ही ऐसे उपचारों के प्रयोग द्वारा इस ऋतु का उपयोग करते हैं। हिन्दी के आचार्य-कवियों ने चन्दन, भीने वस्त्र, सुमन-शैया, खसखस, तमाल की डाल, तहखानों का सेवन, इत्र, कर्पूर, गुलाब जल आदि को उक्त उपचारों में परिगणित किया है।

कृष्णेश की नायिकाएं उपर्युक्त शीतलोपचारों के माध्यम से शैत्यलाभ करना चाहती हैं; पर भुवनभास्कर का प्रताप शमित अथवा पराभूत नहीं होता —

गोल गोल प्रथक गजाने खुसबोहिन के नीचै परजंक के गुलाब जल भीनैं हैं।
ललित लड़ैती गलबांह नाह कर डोल मंद मंद बीजन प्रमोद पाल मीचै हैं।
बर तरुनाने मै विचित्रिकि कृदेस पान दान खुसवाने धरे सरस नगीचैं हैं।
अतर उसीचैं जसछानिन कौं सींचै मारतंड की मरीचैं धरा करत दरीचैं हैं।[1]

उत्फुल्ल माली-लता पर भ्रमरों का गुंजन शीतल तथा मंद मारुत का संचरण यद्यपि रतिभाव को उद्दीप्त करता है तथापि बाह्य ग्रीष्म जन्य ता तप्त करने से विरत नहीं होता परिणामतः ललित जुही के पुष्पों के हारों को धारण कर, चंदन की सुगंध तथा गुलाबजल के सीकरों से सिक्त होकर प्रेमीयुगल उक्त ताप को निवारित करने में संलग्न हैं —

प्रफुलित मालिती के मुकिलित पुंज कुंज गुंजरत भौंर भार अमित प्रमोद वर।
परजंक राजत लड़ैती वृजराज सौं मंद गत मारुत प्रसीतल अतर सर।
भनत कृदेस वेस पट लटकीलो रंग संदल प्रसून हार ललित जुही के कर।
चंदन सुगंध गार अगर गुलाब वारि झरत फुहार बुंद परत दुहन पर।[2]

ग्रीष्म की तपन को शीतलता में परिवर्तित करने के लिए प्रणयी जन द्वारा सैया पर इत्र, गुलाबजल तथा गुलाबजल का छिड़काव, फर्श पर चन्दन अंकित फुहारों की योजना तथा खस निर्मित कपाटों की निबन्धना की गई है तो भी ग्रीष्म की लपटें दग्ध करने में तत्पर हैं —

1- विलक्षकरन - पद सं० ५१८
2- वही- पद सं० ५१८ ब

तरकर अतर गुलाव की सतर भर मखमल सेज पै बिछायौ वारिजात है।
अंदर फर्स पर सन्दल फुहारा धार नाह गल बांह बार छांह पारिजात है।
भनत छ्रदेस सुखदायक चलत कल आतप तपत गय मद डार जात है।
घास के कमाटे डाटे सीत के सपाटे ताये लपट दपाटे दै झपाटे मार जात है।[1]

ऐश्वर्यसंपन्न नायक तथा नायिका का विहार इस प्रतिकूल ऋतु में भी विरम्भित नहीं होता। शीतलीकृत प्रासादों में उनकी प्रणय-केलि सम्पादित होती रहती है -

कंदन कलस चित्र महल छ्रदेस सोहै रस बतियान सों प्रमोद सखियान मैं।
छूव घास फरस फुहार फुही फैल फैल फैल भरे सीतर समीर छतियान मैं।
गोरे गात सोहैं गरें गजरा चमेलिन के गोहे वर सुघर सहेली लखियान ह मैं।
गोद लै उरोज कर पकस गुलाव जल छिरकत लाडिली लली की अखियान मैं।[2]

प्रणयलीला मात्र उरोजों को गोद में लेकर ही शान्त नहीं होती, अपितु कृत्रिम शीतलपरिवेश की सुखात्मिका परिणति कुच-मर्दन से होती है -

झरफ फुहार चारौं तरफ गुलाव सींच बरफ समान पौन लालित बहैती के।
सज पलका पै तापै सुमन गुही के ताये राजत मजा पै सेज छिन पै चढ़ैती के।
। + +
सुचि कर कंदनाद उचित कपूर गार रुचि कर प्यारौ कुच मलत लड़ैती के।[3]

कवि ने ग्रीष्म-वर्णन में स्वाभाविकता का भी पूर्ण ध्यान रखा है। ग्रीष्म की भयंकरता, जनजीवन की संकटापन्नता, दिशाओं की धुंधलता, पवन की प्रचंड वेगमानता, धरा की तप्तता तथा रविमण्डल की दाहकता - सभी कुछ कष्टप्रद है -

ग्रीषम असेष पेष पीषम सुदेस यह रैव तन तैन अैन निस पहरात है।
अलख दिसान धुंध धूर बरसत मग पवन अखंडित प्रचण्ड फहरात है।
भनत छ्रदेस जल थल ते विकल तल वार वार वारि उफनत थहरात है।
भूम तल तपत दहक बहकत अत मारतंड मंडल तै झांप झहरात है।[4]

१- विस्ववचकल - पद सं० ॥२२

२- वही- पद सं०॥२३

३- वही- पद सं०॥२४

४- वही- पद सं०॥२६

अन्ततः कवि ग्रीष्मजन्य विभीषिका से त्राण के साधनों का भी उल्लेख करता है —

रूच रूच रच परजंक जलज दल मृदुलित सीतल ।
तरुणानिन षसखान सजल अतरन कर जीतल ।
अष्टगंध कप्पूर धूर लावत सब अंगन ।
विहरत हरषा ह्रदेस प्रिया प्रीतम मिल संगन ।
अस गमन करत अस भवन तज पवन अवन तप तप वहत ।
वर संदल पट छंदत दपट तदप लपट भपटत रहत ।[1]

वर्षा-वर्णन

इस ऋतु में ग्रीष्म की प्रचण्डता का शमन हो जाता है, मानव तथा मानवेतर प्रकृति में नवजीवन, हरीतिमा तथा शीतलता की सम्मिल प्रतीति होती है। कृष्ण-वर्णा मेघों का गर्व, मयूरों का नर्तन, विद्युत का लोलन, मेघों द्वारा धरित्री का आलिंगन, सरिताओं का समुद्र के प्रति अभिसरण, दादुर-गण का संयुक्त गायन, विटपों में नव-पल्लवों का स्फुरण, गहनान्धकार में खद्योत का प्रकाशन सभी कुछ अभिनव तथा रमणीय प्रतीत होता है। प्रेमी-युगल के लिए यह ऋतु बसन्त के समान ही उद्दीपक कही गई है। संयोगी प्रणयी अम्बर की छाया में आह्लादित होकर इस ऋतु के स्वागतार्थ सन्नद्ध होते हैं; पर वियोगी जनों के लिए इस ऋतु का उत्सव अभिशाप बन जाता है। श्रृंगार के दोनों पक्षों - संयोग तथा विप्रलम्भ - के पोषण तथा वर्धन में इस ऋतु का योगदान है। ह्रदेश ने इस ऋतु के चित्रण में भी विशेष विशदता, सहृदयता, संश्लिष्टता तथा सार-ग्राहिता का परिचय प्रस्तुत किया है।

प्राकृतिक परिवेश गत कुंज-लताओं की रमणीयता में वृद्धि के साथ उन पर भ्रमरों का गुंजन, विद्युत की चपलता, मारुत का विहरण, मेघों का गर्जन-तर्जन विरही जनों को पीड़ित करने वाला बन जाता है -

गुंजरत प्रथम मलिंद कल कुंजन में कुंजत ललित लतानन पै लरजैं ।
प्रत प्रत तड़फत ह्रदेस तड़िता की तब तैसे विरहीन मन तलफत दरजैं ।
भांभ कर भपत भकोरत मरुत घन बरसत बुंद भलाधर धर तरजैं
बधर उमंद बंदाधुंध जलधर वर मदन प्रमत्त धाय धरा पर गरजैं ।[2]

1- विश्वविमकरन - पद सं० ३२७ 2- वही- पद सं० ३२९

वियोगिनी बाला के हृदय में बादलों की घोर गर्जना धड़कन का आविर्भाव करती है —

भनत द्विदेस वृजमोहन प्रदेस सखि वलित कलेस जाल विमल फरी रहै ।
अधर धरा तैं फिरै बादर बरातैं धुर वारध धरा तैं धाती धरकं धरी रहैं ।[1]

चपला की चमक, झिल्लीगण की झनकार, मयूरों का आह्लादक नाद, चातकों का संवाद, कोकिल का विवाद, मनुष्यों की कौन कहे, मुनीश्वरों के मनों को भी काम-विवश कर देता है —

भनत द्विदेस चपलान के झलाये छला झलाझल झार झार झिल्लीगन तरके ।
मोर कर सोर चाहु चातकन घोर देखा बटन के कोरन मुनीस मन फरके ।
हीतल मिलापी मैट मकर मिलापी फिरै कोकिला मिलापी जे मिलापी पंखार को ।[2]

बादलों के घनघोर वर्षण से मोर, दादुर, झिल्लीगण को जिस आनंद की अनुभूति होती है, उसका एक संश्लिष्ट चित्र अवेक्षणीय है -

घोरैं देत धरन झकोरैं पौन सोरैं कुल कूकत कलित लखैं मोरैं वहं घोरैं ये ।
तोरैं तरु कुंवर वियोरै बाघ गुंजरत धकरात धावैं धुरा अटन के छोरैं ये ।
भनत द्विदेस सुणा पावस प्रबल तोरैं चोरैं चोरैं दादुल झिलीन मन कोरैं ये ।
तरन कौं घोरैं जलधरन सौं कोरैं मान धरन सौं रारैं जलधरन की घोरैं ये ।[3]

चंचला की चमक से चौंकने का नाट्य करती हुई वियोगिनी नायिका नायक का आश्लेष कर पावस का यथार्थ आनंदलाभ करती है —

चैसौं चित चंचला चमक चकचौंधे चौंधे चौंक अली दंपत पिया के तन परसे ।[4]

शरद-वर्णन

इस परिवर्तनशील जगत् में मानव-मन तथा प्रकृति दोनों ही परिवर्तनशील हैं । मानव यदि प्रकृति की एकरसता के सातत्य से विषण्ण हो जाता है तो प्रकृति भी अपना पूर्व रूप परिवर्तित कर नवीन रूप में अवतरित होती है । ग्रीष्म की प्रचण्ड उष्मा तथा लुओं से संतप्त मानवमन को पावस के आगमन पर फुहारों के सुखद-शीतल संस्पर्शों से

१- विद्वद्वल्लभ - पद सं० ३३०
२- वही- पद सं० ५३२
३- वही- पद सं० ५३४
४- वही- पद सं० ५३६

आह्लादित हुआ था वही अब शारदी माधुरी की तरलता में डूब गया। शरद् ऋतु वस्तुतः पर्वों की ऋतु है। इसके आगमन के साथ ही वर्षा के धौतप्राय वन-उपवन अपनी निराली एवं परिवर्तनशील छटा से मानव-मन को अपनी ओर आकृष्ट करने लगते हैं। निरभ्र गगन में छिटकी शारदी ज्योत्स्ना बड़ी ही सुहावनी तथा रंजक प्रतीत होती है। तालाबों में कमलों का सौन्दर्य नए निखार के साथ मानव को आकर्षित करता है। प्रकृति-नटी के रमणीय नर्तन के कारण सर्वत्र मंगल-मोद का वातावरण दृष्टिगत होता है। मन-भावन एवं गुलाबी ठंड हृदय में विविध भावों को उद्रिक्त ही नहीं करती अपितु प्रेमीयुगल के मनों का मंथन कर उन्हें कन्दर्पक्रीड़ा की ओर उन्मुख करती है।[1] इन्हीं सब विशिष्टताओं को हृदयंगम कर सम्भवतः वैदिक ऋषि ने `जीवेम शरदः शतम्` की जीवन्त आकांक्षा व्यक्त की होगी।

शरदकालीन ज्योत्स्ना से लिपटी हुई यामिनी कवि हृदयेश की दृष्टि में नेत्रों का उत्सव है। यह कुमुदिनियों के लिए ही जीवनदायिनी नहीं अपितु चकोरों को भी आह्लादित करने वाली है। रसिकजनों के लिए रस-प्रसारिणी चन्द्रिका प्राण-सदृश है ही —

दरस छपाकर की परम प्रकास होत सरस कुमुदगन सदर दरद की।
भनत हृदेस दिस धवल जावत तम अवल करन मान सकल गरद की।
श्रवत अमृत प्रत वदल कपूर पूर समद सपूर कर समदु तमद की।
जगद हरग देन चखन चकोर चैन रसिकि खाल रैनि चाँदिनी सरद की।[2]

कोक-कला प्रवीण प्रणयीजनों के रमण की सुखात्मक परिसमाप्ति अटा के सेवन से होती है अन्यथा शारदी निशा की समोदता का स्वारस्य ही क्या —

अमट अटा पै सुभ्र चाँदिनी विचित्र तान फैच परजंक तन कदर सरस सोद।
सुक्रमल जलव प्रभाकर दुकूल अंग हीर पन्न जटि दीप हँसन करै विरोद।
भनत हृदेस बस काम की कमान कर द्रग सकुचान मैं लहैती नदनंद गोद।
धवल दिसा मैं चन्द सुधा वरसा मैं वर विहरत साँमे भरे सरद निसा मै मोद।[3]

1- रसराज श्रृंगार – डा० राम लाल वर्मा – पृ० १९७

2- विरवबसकरन– पद सं० ४४४

3- वही– पद सं० ४४५

हेमन्त-वर्णन

शरद के व्यतीत हो जाने पर हेमन्त का आगमन अपने साथ शीत के आधिक्य को भी लाता है। दिवसों की लघुता तथा रात्रियों की दीर्घता प्रेमीजनों के लिए वरदान के रूप में उपस्थित होती है। नायक-नायिका के लिए हेमन्त-ऋतु की यामिनी संयोग-यामिनी बनकर आई और उन्हें कन्दर्प-साधना का शुभावसर मिला। बसन्त में यदि मादकता थी तो ग्रीष्म में शीतलोपचारों के बिना संयोग कहा ? वर्षा में मत्तता होने पर भी शरीर का स्वेद सत्वास मे बाधक था। शरद आई, मिलन के दिन आए; पर हेमन्त ने तो मानो प्रेमियों को उपकृत ही कर दिया। मन्मथ देव की अर्चना इस ऋतु की प्रशस्त अर्चना है। कवियों ने भी इस ऋतु से संबंधित काम-क्रीड़ा के विविध चित्र प्रस्तुत किए है। उनकी दृष्टि विशेष रूप से इस ऋतु के विभिन्न मसालों की ओर गई है। रीतिकालीन कवि पद्माकर हेमन्त से त्राण पाने का निदान पंच तकारोपासना में शोध करते हैं तो कवि नन्दराम इस तकार की प्रतियोगिता मे उनसे भी आगे बढ़ जाते है —

तान की तरंग तरुनापन तरनि तेज तेल तूल तरुनी तमोल तखितु है।

—— जगद्विनोद

तपन तूल तरुनी तरनि तिल तमोल तुक तार।

रितु हेमन्त हरत नहीं बिन ये आठ तकार।।

— शृंगार दर्पण

उक्त परम्परा से यह तो स्पष्ट ही है कि मानवेतर प्रकृति का सौन्दर्य इस ऋतु में श्रीहत ही हो जाता है। मात्र तकारों का परिगणन प्रेमी जनों को मानवी सौन्दर्य के मांसल उपभोग मे लिप्त कर सकता है; परन्तु इससे प्रकृति का पक्ष तो अस्पृष्ट ही रह जाता है। यदि यह कहा जाय कि यह ऋतु प्रकृति के लिए घातक है तो अनुचित न होगा। महाकवि सूरदास ने कुमुदिनी का हेमन्त के द्वारा हनन कथित किया ही है[1]।

कवि हृदयेश ऋतु-वर्णन का पोषण वहीं तक संगत समझते थे जहाँ तक उन्हें प्रकृति का न्यूनाधिक परिवर्तित स्वरूप दृष्टिगत हो। एतादृशी रमणीयता अथवा

१- निरमोही नहि नेह कुमुदिनी अंतहि हेम हई- सूरसागर

नवीनता के अभाव के ही कारण उन्होंने सम्भवतः इसका परम्पराप्रथित वर्णन नहीं किया। पुनः एक सम्भावना यह भी की जाती है कि हेमन्त तथा शिशिर में प्रभावात्मकता की दृष्टि से न्यूनाधिक साम्य ही रहता है, अतः शिशिर-वर्णन में किसी सीमा तक हेमन्त-वर्णन भी अन्तर्भुक्त समझा जा सकता है जैसा कि आगे सिद्ध हो जायगा।

शिशिर-वर्णन

शरद यदि शीत का बालपन है तो हेमन्त किशोरावस्था तथा शिशिर उसका यौवन। शिशिर में शीत के साथ पवन का साहाय्य उसे अत्यन्त प्रभावी बना देता है। शिशिर का प्राकृतिक वैभव धान तथा ईख के खेतों की रमणीयता, सारसों की वाणी की तीक्ष्णता तथा सरसता के रूप में देखा जा सकता है। घने पाले से कड़कड़ाती शीतवाली तथा चन्द्रमा की किरणों से और भी ठंडी बनी हुई पीले-पीले तारकमंडल वाली रात्रि उन्मुक्त वातावरण में विहरण के लिए आवाहन न कर प्रेमी-जनों को केलि-भवनों की संकीर्णता में ही आबद्ध रहने के लिए विवश कर देती है। हिन्दी काव्य में शिशिर-ऋतु का वर्णन प्राकृतिक सौन्दर्य की सीमितता के कारण अन्य ऋतुओं की अपेक्षा नगण्य-सा है।[1] कवियों के लिए मात्र यही कथ्य बनकर रह गया कि शीत के प्रकोप से किन उपायों द्वारा छुटकारा पाया जाय। कवि पद्माकर शिशिर के कतिपय मसालों का उल्लेख मात्र करके विरमित हो जाते हैं -

> शिशिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्हैं जिनके अधीन एते उदित मसाला हैं।
> तान तुकताला है विनोद के रसाला हैं सुबाला हैं दुसाला है विसाला चित्रसाला हैं।
>
> —— जगद्-विनोद

कवि नन्ददास परिगणना पद्धति को प्रोत्साहित न करती भित साधन प्रयोग के आग्रही प्रतीत होते हैं —

> होतो कहाँ निबाह जग शिशिर शीत के त्रास।
> जो विरंचि विरचत नहीं तिय कुच अगिनि अवास।
>
> —— शृंगार-दर्पण

प्रणयीजनों के लिए प्रणय-केलि-सम्पादन की दृष्टि से यह ऋतु आह्लादकारिणी है। प्राकृत अग्नि से यदि सामान्य जन शीत-मुक्त होता है तो नायक को शीत के निवारण

१- प्रकृति और काव्य - डा० रघुवंश - पृ० ३१९

रमणी के कुच-कलशों में प्रच्छन्न ऊष्मा द्वारा होती है। आलम्बनरूप में तो यह ऋतु विषकन्या सदृश कही गई है —

हजारों बाहों वाली शिशिर विषकन्या
उतरी लेकर सांसों में प्रलय की कन्या
हिमदग्ध होठों के प्राणशोधी चुम्बन
तन मन पर लेप गए ज्वालामय चन्दन।[1]

कवि हृदयेश के प्रणयी-युगल के समक्ष समस्या के रूप शैत्य-त्राण ही अवस्थित है। उनके रसिक दम्पति इस ऋतु के आगमन से किस प्रकार आनंदित होते हैं, यहाँ दृष्टव्य है —

चिपिट परे हैं जुग लिपट दुसालन में लिपट विथिन तहाँ मारुत बहत ना।
प्रज्वलत ज्वाल तूल सरस दुकूलन बिछाय मखतूल फूल कहत बनत ना।
भनत हृदेस जाल दीपक प्रकास दास पास ते बिलास तास त्रास की मलत ना।
लागत प्रिया के हिय जागत मनोज सीत भागत उरोज धाक लागत रहत ना।[2]

कवि मसालों की प्रस्तुतीकरण-सरणि में भी बड़ी प्रौढ़ता हुआ मिलता है --

मलत फुलेल चूव ललतत भेस कर केसर न रंच नीर लपत अन्हाये तै।
सब मगद अनेक षटरस पय पान कर मेव अस अमल तमाल दल खाये तै।
गुलगुले गल्ब गदेलन हृदेस तूल गरभ गलेफा ओढ़ दाब सिर पाये तैं।
डार गलबायें प्रिया अंक लपटायें पायें सीत बात उन्नित उरोज उर लायें तैं।[3]

निष्कर्ष- उपर्युक्त वर्णन से यह सिद्ध हो जाता है कि कवि हृदयेश ने लगभग प्रकृति के सभी प्रचलित रूपों का ग्रहण अपने काव्य में किया है। प्रकृति के आलंबन, उद्दीपन, आलंकारिक तथा मानवीकरण आदि रूपों के साथ उनका ऋतु-वर्णन प्रकृतिचित्रण की परम्परा में एक कड़ी प्रमाणित होता है। उनके प्रकृति-वर्णन की विशदता, विविधता तथा पर्यवेक्षणकुशलता से प्रकृति के प्रति उनका रागातिशय अभिव्यंजित हुआ है।

१-आधुनिक प्रतिनिधि कवि- डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना - पृ० ४०२
२-विश्वप्रकाश- पद सं० ४४६ ३- वही- पृ० पद सं० ४४७

षष्ठ अध्याय

हृदयेश के काव्य में दर्शन, भक्ति एवं समाज-चित्रण

।अ। भारतीय मनीषियों के उर्वर मस्तिष्क से जिस कर्म, ज्ञान और भक्तिमय त्रिपथगा का प्रवाह उद्भूत हुआ, उसने दूर-दूर के मानवों के आध्यात्मिक कल्मष को धोकर उन्हें पवित्र नित्य शुद्ध-बुद्ध और सर्वथा स्वच्छ बनाकर मानवता के विकास में योगदान दिया है। इसी पतितपावनी धारा को लोग `दर्शन` के नाम से पुकारते हैं। यह दर्शन शब्द पाणिनीय व्याकरणानुसार दृशिरप्रेक्षणे धातु से ल्युट् प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है अतएव `दर्शन` शब्द का अर्थ है - दृष्टि या देखना - जिसके द्वारा देखा जाय या जिसमें देखा जाय। परन्तु इस शब्द का अर्थ मात्र सामान्य देखना ही नहीं है अपितु प्रकृष्ट ईक्षण जिसमें अन्तश्चक्षुओं द्वारा देखना या मनन करके सोपपत्तिक निष्कर्ष निकालना ही `दर्शन` शब्द का अभिप्रेय है। इस प्रकार के प्रकृष्ट ईक्षण के साधन और फल दोनों का नाम दर्शन है।[1] दर्शन संज्ञा उन्हीं तत्वों की है जिनका प्रत्यक्षीकरण मन्त्रदृष्टा ऋषियों ने किया था।[2] इस प्रत्यक्षीकृत तत्वों के रूप अपने मूल में अखण्ड होते हुए भी कई मुख्य चिन्तनधाराओं में प्रवाहित हुए है[3] जिन्हें न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त अथवा षड्दर्शन के नाम से अभिहित किया जाता है।[4]

दर्शन और काव्य में अन्योन्याश्रय संबंध है। काव्य अथवा काव्यशास्त्र दर्शन के सिद्धान्तों का आश्रय पाकर ही खड़ा होता है; काव्य-दर्शन के कारण ही चमक-दमक से युक्त होकर अपनी प्राणप्रतिष्ठा ही नहीं कराता अपने कलेवर को कमनीयता से सम्पृक्त करता है।[5] इसी संबंध के कारण प्रायः प्रत्येक काल के कवि के कृतित्व मे दर्शन के सूक्ष्म तत्व प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप मे प्रतिध्वनित रहते हैं। युगीन परिस्थितियों, अपेक्षाओं, संवेदनों और अनुभूतियों के मानदंडों के सन्दर्भ मे दर्शन का उक्त तत्व आविर्भूत अथवा तिरोभूत हुआ करता है। इस प्रकार यह

1- भारतीय दर्शन -शास्त्र का इतिहास -डा०नरेन्द्र देव शास्त्री - पृ० १

2- वही- - पृ० २

3- वही- - पृ० १६

4- वही- - पृ० १७

5- वही- - पृ० २३

षष्ठ अध्याय

हृदयेश के काव्य में दर्शन, भक्ति एवं समाज-चित्रण

।अ। भारतीय मनीषियों के उर्वर मस्तिष्क से जिस कर्म, ज्ञान और भक्तिमय त्रिपथगा का प्रवाह उद्भूत हुआ, उसने दूर-दूर के मानवों के आध्यात्मिक कल्मष को धोकर उन्हें पवित्र नित्य शुद्ध-बुद्ध और सर्वथा स्वच्छ बनाकर मानवता के विकास में योगदान दिया है। इसी पतितपावनी धारा को लोग 'दर्शन' के नाम से पुकारते हैं। यह दर्शन शब्द पाणिनीय व्याकरणानुसार दृशिरप्रेक्षणे धातु से ल्युट् प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है अतएव 'दर्शन' शब्द का अर्थ है - दृष्टि या देखना - जिसके द्वारा देखा जाय या जिसमें देखा जाय। परन्तु इस शब्द का अर्थ मात्र सामान्य देखना ही नहीं है अपितु प्रकृष्ट ईक्षण जिसमें अन्तश्चक्षुओं द्वारा देखना या मनन करके सोपपत्तिक निष्कर्ष निकालना ही 'दर्शन' शब्द का अभिप्रेय है। इस प्रकार के प्रकृष्ट ईक्षण के साधन और फल दोनों का नाम दर्शन है।[1] दर्शन संज्ञा उन्हीं तत्वों की है जिनका प्रत्यक्षीकरण मन्त्रदृष्टा ऋषियों ने किया था।[2] इस प्रत्यक्षीकृत तत्वों के रूप अपने रूप में सण्ड होते हुए भी कई मुख्य चिन्तनधाराओं में प्रवाहित हुए हैं[3] जिन्हें न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त अथवा षड्दर्शन के नाम से अभिहित किया जाता है।[3]

दर्शन और काव्य में अन्योन्याश्रय संबंध है। काव्य अथवा काव्यशास्त्र दर्शन के सिद्धान्तों का आश्रय पाकर ही खड़ा होता है; काव्य-दर्शन के कारण ही चमक-दमक से युक्त होकर अपनी प्राणप्रतिष्ठा ही नहीं कराता अपने कलेवर को कमनीयता से सम्पृक्त करता है।[4] इसी संबंध के कारण प्रायः प्रत्येक काल के कवि के कृतित्व में दर्शन के सूक्ष्म तत्व प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप में प्रतिध्वनित रहते हैं। युगीन परिस्थितियों, अपेक्षाओं, संवेदनों और अनुभूतियों के मानदंडों के सन्दर्भ में दर्शन का उक्त तत्व आविर्भूत अथवा तिरोभूत हुआ करता है। इस प्रकार यह

१- भारतीय दर्शन-शास्त्र का इतिहास -डा०नरेन्द्र देव शास्त्री - पृ० १

२- वही- - पृ० २

३- वही- - पृ० १६

४- वही- - पृ० १७

५- वही- - पृ० २३

आवश्यक नहीं कि प्रत्येक युग के कवि के काव्य में दर्शन का तत्त्व अपने सम्पूर्ण अस्थूल वैभव के साथ मुक्ताफल की छायावत् तरलत्व को अभिव्यक्ति देता ही रहे। रीतिकाल के काव्य के दार्शनिक सन्दर्भ में कुछ ऐसा ही कहा जा सकता है।

वस्तुतः जिस ऐहिकतापरक युग में हृदयेश कवि ने काव्यरचना की उसमें दर्शन की उच्च भूमियों की प्रतिष्ठापना नहीं हो सकी। दर्शन का स्पर्श तक उनके युग मे नहीं हो सका था अतः उसके खण्डन-मण्डन की चर्चा ही व्यर्थ है। पूर्ववर्ती कृष्ण-भक्ति-साहित्य में दर्शन तथा वर्ण्यविषय इतने घुलमिल गये थे कि उस पर किसी दर्शन का आरोपण आवश्यक नहीं था। राधा-कृष्ण और गोपियों का प्रेम-शृंगार स्वयमेव एक दर्शन था। कवि का व्यक्तित्व और शृंगार के प्रति उसका दृष्टिकोण किसी न किसी प्रकार अलौकिकता का संकेत दे देता था; परन्तु इन सम्प्रदायों का परवर्ती साहित्य पूर्णतः लौकिक शृंगार से संकुल हो गया[1]।

भक्तिकालीन राधा-कृष्ण-काव्य की उपर्युक्त पृष्ठभूमि तथा प्रथम अध्याय में प्रस्तुत रीतियुगीन शृंगारिकता, आचार्यत्व, आलंकारिकता की सुस्फीत परम्परा के क्रम मे अपने आश्रयदाता की इंगित अथवा अपेक्षाओं के अनुसार काव्य-रचना करने वाले कवि हृदयेश से किसी पुष्ट दर्शन की आशा नहीं की जा सकती थी। इस युग मे सराग शृंगार की पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाने के अनन्तर इसके आलंबन ` सुमिरन के बहाने ` राधा-कृष्ण रूप प्रतीकों पर आधृत नायक-नायिका-भेद, उद्दीपन रूप मे कृत प्रकृतिचित्रण आदि विषयों का जो परम्परानुविद्ध प्रस्तुतीकरण हुआ, वही स्थूल या भौतिक रूप कवि का मार्मिक प्रतिपाद्य था। कवि न तो प्रेमगाथायुगीन स्थूल की वर्णना करके अस्थूल की व्यंजना करना चाहता था और न भक्तिकालीन तुलसी की तरह महाकाव्य रामचरितमानव की तरह यत्र-तत्र दर्शनों की गुत्थियों को प्रस्तुत कर उन्हे सर्वसिद्धान्तसमन्वित पद्धति से सुलझाना चाहता था। पुनः रीतिकालीन राजाओं अथवा शासकों को भी न दार्शनिक ऊहापोह में तुष्टिलाभ होता था और न ही किसी पूर्वप्रतिपादित सिद्धान्त के खण्डन-मण्डन अथवा व्याख्या में उनकी रुचि थी। यतः तद्युगीन जनसामान्य कवि की शृंगारिक रचनाओं मे व्यापक रूप से तुष्टिलाभ करने लगा था, अतः कवि का लक्ष्य था - शृंगारिक रुचि के आश्रयदाता की पुष्टि-तुष्टि अथवा प्रसादन। कवि हृदयेश ही क्या कोई भी रीतियुगीन कवि किसी प्रौढ़ा दार्शनिक

१- रीतिकाव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - डा० वेंकटरमण राव- पृ० १६१

परम्परा का प्रवर्तन नहीं कर सका । षट् दर्शन जैसे दुस्तर क्षेत्र में प्रवेश करने का तत्कालीन प्रतिभा के न अवकाश था और न उसकी आवश्यकता ।[1]

परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि दर्शन के सभी रूपों का तिरोभाव रीतिकाल में हो गया था । षट्दर्शन से पृथक् भक्ति-दर्शन विभिन्न रीतियुगीन सम्प्रदायों में प्रचलित था पर उसमें मौलिक उद्भावना कम और भावपरक व्याख्या अधिक हो गई थी । कवि हृदयेश के काव्य में भक्ति-दर्शन का जो स्फुट प्रस्तुतीकरण हुआ है वह आगे अवेक्षणीय है । इस दार्शनिक तिरोभाव का कारण यह प्रतीत होता है कि तत्कालीन भक्ति के विविध सम्प्रदाय और उनके दर्शन रीतिकालीन शृंगारिक भावना को ही गति और तीव्रता प्रदान करने लग गये थे । पुनः कवि की अन्तश्चेतना, उसकी व्यक्तिगत परिस्थितियां, पूर्व से प्रचलित विघटित होती हुई दार्शनिक चेतना सम्मिलित रूप में इस ह्रास के लिए उत्तरदायी रही है । कवि इनको दृष्टि से ओझल नहीं कर सकता था ।

निष्कर्ष -

रीतिकाल के दार्शनिक तिरोभाव के सन्दर्भ में कवि हृदयेश किसी विशिष्ट दर्शन की न तो तात्त्विक विवेचना कर सके और न ही षट्दर्शन के दुस्तर क्षेत्र में प्रवेश कर उन्होंने पूर्व प्रतिपादित दार्शनिक सिद्धान्तों का खण्डन-मण्डन ही किया । उनके काव्य में आत्मा की अन्तरतमता तथा सूक्ष्मता नहीं, शृंगार की प्रचुरता तथा मांसलता है; आध्यात्मिकता नहीं संकीर्ण भौतिकता है, न उसमें आत्मोत्कर्ष है और न शरीर का ही पूर्ण प्रकर्ष है ।

।ब। हृदयेश की भक्ति-भावना

शृंगारिक वर्णन के अन्तर्गत नायिकाओं की भाव-भंगियों, उनकी कामाश्रित चेष्टाओं के चितेरे हृदयेश कवि को विशुद्ध भक्त कवि कहना कदापि समीचीन नहीं हो सकता; परन्तु उनकी काव्यसृष्टि में उपलब्ध भक्ति या विनय-भावनापरक पदों का अवगाहन कर यह तो कहा ही जा सकता है कि उनमें भी आस्था का तत्त्व प्रतिष्ठित था । भक्तिपरक गीतों की यह परम्परा भक्तिकालीन राधाकृष्ण की उपासना से संबद्ध है जिसमें माधुर्यभाव का सम्मिश्रण हो गया है । भक्तिकालीन राधाकृष्ण उपासना का पूर्वास्वाद विद्यापति के

१- रीतिकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - डा० वेंकट रमण राव - पृ० १९९

रसपेशल गीतों में मिल चुका था;[१] परन्तु इससे भी पूर्व पीयूषवर्षी जयदेव अपने 'गीत-गोविंद' में मधुर कोमलकान्त पदावली में सरस हरिस्मरण कर चुके थे। परन्तु भक्तिकालीन राधा-कृष्ण का विशुद्ध माधुर्ययुक्त रूप रीतिकालीन कवियों की रचनाओं में सुरक्षित नहीं रह गया था - वहां तो आराध्य युगल प्राय: नायक-नायिका का प्रतिनिधित्व करने लग गए थे। जिस उज्ज्वल रस की प्रतिष्ठापना उज्ज्वलनीलमणिकार द्वारा अत्यन्त उदात्त रूप में की गई थी उसका विकृत रूप रीतिकालीन कवि की राधाकृष्ण अथवा कृष्ण-राधा की पृथक्-पृथक् कविता में उपलब्ध होता है। फिर भी यह मानने का कोई समर्थ आधार नहीं है कि रीतिकालीन कवियों की भक्तिभावना में सच्चाई नहीं है।[2] कवि हृदयेश इसके अपवाद नहीं कहे जा सकते। उनके राधा-कृष्ण नायिका नायक अवश्य है पर कृष्ण के प्रति विनय भावना से युक्त होकर उन्होंने जो पद लिखे हैं उनमें कृष्ण के विशुद्ध आराध्य रूप तथा ऐश्वर्यपरकता का प्रकाशन है। बिहारी की तरह वे वृन्दावन की माधुर्य भक्तिवाले वातावरण से प्रभावित नहीं थे। यही कारण है कि पृथक्त: राधा अथवा सम्मिलित रूपेण राधाकृष्ण के प्रति भक्तिभावनासम्पृक्त होकर गीत वे नहीं गा सके हैं। उनके भक्त्यात्मक गीत जहां आराध्य कृष्ण के श्रीचरणों में समर्पित होते हैं वहां वे जगदम्बा शंभुरानी, शंकर, राम तथा हनुमान के प्रति भी श्रद्धावनत होकर अपनी आस्था का प्रकाशन करते हैं। इस प्रकार वे राधाकृष्ण के प्रति ही आस्थावान् नहीं अपितु पंचदेवतावाद - गणेश, गौरी अथवा अष्टभुजी दुर्गा, शंकर, राम तथा हनुमान - के प्रति प्रपन्नता उनके कृतित्व में प्रतिफलित हुई है जैसा कि आगे अवेक्षणीय है।

गणेश-भक्ति

किसी शुभ कार्य के आरम्भ में पूर्व से मंगलाचरण की सांस्कृतिक परम्परा अनादि-काल से चली आ रही है। साहित्य के क्षेत्र में भी इसकी अविच्छिन्न परम्परा मिलती है। आधुनिक युग में आकर इसकी परम्परा समाप्त-प्राय हो गई है। रीतिकालीन कवियों ने अपने लक्षण या लक्ष्य साहित्य के आरम्भ में अनिवार्य रूप से मंगलाचरण किया है। मंगला-चरण के रूप में जिन देवों की स्तुति की गई है उससे तत्कालीन कवियों की धार्मिक भावना

१-बिहारी का काव्य-लालित्य - डा० रमाशंकर तिवारी - पृ० 208

2- वही- पृ० 208

व्यक्त होती है।[1] मंगलाचरण की इसी परम्परा का अनुपालन करते हुए कवि हृदयेश ने अपने ग्रन्थ के आरम्भ में गणेश-वन्दना की है। इससे प्रतीत होता है कि वे अपने ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति चाहते थे। ` श्री गणेशाय नमः ` लिखकर अपने ग्रन्थका आरम्भ उन्होंने इस दोहे से किया है -

गवरनंद पद वंद कर करौं सकल सुख वृद्धि।
बिरहवारीश ग्रंथ यह कीजै जगत प्रसिद्धि।।[2]

इस दोहे के अवगाहन से स्पष्ट है कि कवि की दृष्टि मूलतः ऐहिकतापरक है। वह विघ्न-विनाशक गणेश के चरणों की वन्दना इसी निमित्त करता है कि उसके सम्पूर्ण सुखों में वृद्धि हो साथ ही उसका ग्रन्थ संसार में प्रसिद्धि-लाभ करे। कवि की यह आकांक्षा अद्भुत सी प्रतीत होती है अन्यथा उसकी इच्छा या कामना यह होनी चाहिए कि ग्रन्थ का समापन सर्वबाधाविवर्जित हो जाय। इस प्रकार ` सकल सुख वृद्धि ` विशेषतः गणेश के सन्दर्भ में लिखना असंगत-सा लगता है; पर विषय के अभ्यन्तर में जाने पर यह ज्ञापित होता है कि कवि के सुख में वृद्धि तभी होगी जब उसका ग्रन्थ विघ्नबाधारहित समाप्त हो जाय, अतः यहाँ विरोध नहीं। ` निज कवित्त केहि लाग न नीका ` के अनुसार कवि का प्रयोजन मात्र ग्रन्थ निर्माण न होकर ग्रन्थ प्रचार-प्रसार भी है। इससे कवि की लोकैषणा का परिचय प्राप्त होता है। कवि मात्र एक दोहे में गणेश-वन्दना कर स्वधर्म से विरत नहीं होता अपितु गणपति के स्वरूप का प्रस्तुतीकरण करते हुए वह आगे उनके दीनदुःखहरत्व, बाधनविदारकत्व, अनन्य सिद्धिदायकत्व, मुक्तिप्रदायकत्व, पाप विनाशकत्व आदि का भी वर्णन करता है -

सुंडादंड मंडित अखंडित विघुंड झुंड
पद रद धार दियो हार फनपति को।
वारौं भुज चार बान दीन दुख दल मल
छल मल भाजत दर्शाया जगपति की।

१-रीतिकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - डा० वेंकट रमण राव- पृ० ९७।
२- बिरहवारीश - पद सं०१

भनत हृदेस सिद्धिदायक वसित नर

पावत छलत फल ध्याय गनपति कौ ।

दरस अमंद कंद भात सुण्ड कंद बंद

रहत न फंद पद बंद गनपति कौ ।।[१]

उपर्युक्त आर्येतर देवता[२] हस्तिमुखधारी होने के कारण पूर्व मे शुभ कार्यों में बाधा डालते थे इसलिए उन्हें प्रत्येक शुभ कर्म के प्रारम्भ में मनाना पड़ता था । यह देवता जब आर्यों द्वारा संस्कृति के आदान-प्रदान के क्रम में ग्रहण किए गए तब ये विघ्नेश से विघ्न-हर हो गये ।[३] इनके विशाल स्वरूप तथा भयानक आकृति के कारण ही कवि ने परुषवर्ण-मयी शैली अपनाई है -

भनत हृदेस भुजदंड अचंड तेज

चंड चंड करन अरिष्टन धरी कौ है ।[४]

। २ । जगदम्बा की भक्ति

आदिशक्ति की पूजा लोकजीवन के सभी स्तरों पर मिलती है । साहित्य में वीरता और युद्ध के प्रसंगों मे कालिका और उसके परिवार की चर्चा आती है । गुरु गोविन्दसिंह ने ` चण्डी-चरित्र ` लिखकर वीरता के आदर्श की स्थापना की है । शिवा जी और छत्रसाल दोनों ही शक्ति के उपासक कहे जाते हैं । भूषण ने आदिशक्ति-वंदना शिवराज की विजय-कामना के लिए की थी ।[५] कवि हृदयेश ने भी आठ पदों में आद्या शक्ति जगदम्बा या दुर्गा देवी का स्तवन किया है । आठ पदों में ही भक्ति-प्रकाशन का कारण यह हो सकता है कि दुर्गा का एक रूप अष्टभुजा वाला भी है । वैष्णवी शक्ति दुर्गा के भक्त्यात्मक पदों मे हृदयेश की आस्था का अपेक्षाकृत गंभीर रूप देखा जा सकता है । इन पदों में मात्र परम्परा के अनुपालन अथवा अनुकरण के लिए ही दुर्गा की स्तुति नहीं की गई है, अपितु इनमें कवि की वात्सल्य, दीनता, विह्वलता, करुणभावापन्नता तथा समर्पण की जिस संश्लिष्ट भावना की अभिव्यक्ति, अनुभूति की सच्चाई से सम्पृक्त होकर, हुई है वह अन्यतम है । क्यों न हो, जगदम्बा सामान्य देवता न होकर उनकी ` मातृ ` था हैं । माता

१- विरुदप्रकरन - पद सं० ४

२- संस्कृति के चार अध्याय - रामधारीसिंह दिनकर - पृ० ५८

३- वही- पृ० ५७ ४- विरुदप्रकरन - पद सं० ५

५-रीतिकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि -डा० वेंकटरमण राव- पृ० सं०१७४

के प्रति जिस आत्यन्तिक राग का प्रकाशन अबोध-असहाय और निराश्रय शिशु करता है वैसी ही अभिव्यक्ति हृदयेश के पदों द्वारा हुई है। ये पद कवि की भक्ति-भावना के चरम सोपान के रूप में स्वीकृत किए जा सकते हैं।

कवि का हृदय जगदम्बा से आन्तरिकतया सम्पृक्त है। मातु के मनःप्रसादन हेतु उनके प्रभाव का अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रण कर शुम्भ-निशुम्भ की प्रख्यात परिणति का स्मरण दिलाता हुआ कवि स्वकीय दुःख-निवारणार्थ किस प्रकार प्रणत होता है, द्रष्टव्य है-

सुन विसरावै का दुरावै क्या संभुरानी

आपु की प्रताप कोट कल्पतरु वर है।

देव काज गाज गाज दानव पछार मार

मेरी लाज काज साज कौन सौ समर है।

भनत ह्रदेस मातु भेरा कौन काम याम

भक्त प्रतपालबे की यही अवसर है।

जाधी भांत लछ्य कर दीन दुल्ल्ण गछ्य कर

तो बिना अपछिन की पछ्य कौन कर है।।[1]

माँ जगदम्बा की महत्वमयी गरिमा पर जब कवि दृष्टिपात करता है तब उसे लोक-लोकान्तर में आराध्या का ही प्रभाव दृष्टिगत होता है। चाहे समग्रप्राणिधारिणी धरित्री हो अथवा अनन्त विस्तीर्ण गगन - सभी उसके प्रकाश से प्रकाशित है। इस विषय में प्रमाण कवि की भावुकता नहीं, यह श्रुति-समर्थित विषय है -

लेखिये विभूत है अकूत लोक लोकन में

धरन अकास लौं प्रकास तेरौ दाखिले।

जीवत ह्रदेस तेरी सक्ति कर जन्त सबै

बुध वत भनत अनेक श्रुति साग्य लै।

आपुनै की आपु ही सम्हारबौ सवाय देवि

और को सम्हा है विचार भांत लाग्य लै।

उर मत कंदरा मैं दुरमत दूर कर

सुर मत मातु दीन दुरमत राग्य लै।[2]

1- चित्रवसलरन - पद सं० 8ᴥ6 2- वही- पद सं० 8ᴥ7

कवि का आर्त हृदय विपत्ति-पुंज से ग्रस्त है। करुण चीत्कार करता हुआ वह सद्यः विपत्ति-नाश हेतु मातु का आवाहन तथा उसके वरदहस्त की सत्वर अपेक्षा करता है -

कौन कौन आत की पुकार करौं सिवि सक्ति
आपत अनेक रीत मैंद हरवर है।
फेर कवि की है कृपा औसर किलौं जात
सरन गहे की लाज पाल कर वर दे।
भगत हृदेस हेरौ पच्छ कौ धरम तेरौ
फंद निरबेरौ मेरौ सीस कर धर दे।
दास दलगीर अब काहे तू धरत धीर
मातु हर पीर तकसीर माफ कर दे।।[1]

आराध्या की ओर से अपेक्षित अनुग्रह से क्षुभित आर्त कवि का हृदय पुनः माँ के प्रति प्रपन्न होकर निवेदन करता है कि दुःख-भंजन में उनकी उदासीनता से उसका कुछ बिगड़ने वाला नहीं। इससे तो मातु विनायक अनन्त काल से प्रसिद्ध बिरदावली समाप्त हो जायगी जिसका परिणाम यह होगा कि माँ की शक्ति तथा प्रभाव के प्रति आस्था तथा विश्वास संसार से उठ जायेगा। स्वधर्मपरायण आराधक तो प्रशंसा का ही पात्र होगा पर यदि आराध्या ने कृपावारिवृष्टि न की तो उनकी विडंबना अवश्य ही होगी।[2]

कवि यद्यपि स्वकीय पंचदेवोपासना से संबद्ध है तथापि प्राधान्येन वह मातु जगदंबा से ही अपना आन्तरिक सम्बन्ध रखता है। आराध्या के प्रति उसकी नैष्ठिक तथा नियमित आस्था गुणगान के रूप में प्रतिदिन निःसृत होती है, जिसका निर्वहण करने हेतु वह आजीवन कृत संकल्प है; परन्तु विपद्ग्रस्त होने पर वह माँ से सहायता हेतु पुकार करता है तथा विपद्-निवारण की आशा करता है -

आपु कौ कहायवौ है नित गुन गायवौ है
जौ लगि जियायवौ है सरन निभायवौ।
तेरौ मातु ध्यायवौ है वेदन मैं न्यायवौ है
नीके फल पायवौ है दुःख तें बचायवौ।

१- विश्वविख्यात - पद सं० ४४७

भक्त इदेस सिवा सरन गहायवौ है

फेर का बहायवौ है नाहक दहायवौ ।

दया उर लायवौ पुकार सुनै धायवौ है

तुमकौ तुमकौ नचायवौ है सुधि बिसरायवौ ।[1]

स्वकीय विपत्ति-विदारण के क्रम में जगदम्बा की विभूति का प्रकाशन करता हुआ कवि उनकी विराट्रूपता तथा परत्व का उद्घाटन करता है -

।१। सातौ दीप तू ही दीप दीपन मैं दीप तू ही

राण दीन नूर कर पालन चहर है ।

तू ही करतार है दया कौ पारावार तु ही

लोकन के भार कौ उतारबे कौ सूर है ।

भक्त इदेस मेरे और ना उपाय माय

ध्याय तेरे पाय सुखदायक प्रचुर है ।

मेरे वैदराज तु ही देहि लाज राण तु ही

तू ही औसधीन मैं सजीवन की मूर है ।[2]

।२। बानी ब्रह्मरानी विष्नुरानी संभुरानी तु ही

वेदन बखानी तू भवानी विन्ध्यवासिनी ।

पापभंजनी है भक्तरंजिनी इदेस सदा

विस्व परपूरित चराचर मै भासिनी ।

तप मैं प्रसिद्धि तु ही बुद्धि नव निद्धि तु ही,

तू ही वरदायक तू आनंद हुलासिनी ।

रोगन विनासनी है दुष्टन की सासनी है

जगत प्रकासनी है दुरगति नासिनी ।।[3]

इस प्रकार अष्टभुजाधारिणी दुर्गा देवी की भक्ति से पुष्ट कवि आशान्वित है कि उनका पुरुषार्थ - चतुष्टय - धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष - उनके प्रसाद से ही संपादित

१- विष्वक्सकरन - पद सं० ३६०

२- वही- पद सं० ३६२

३- वही- पद सं० ३६३

होगा। उनकी दृष्टि में जगदम्बा सामान्य देवी या शक्ति नहीं अपितु वे परात्पर तत्त्व हैं तथा औपनिषादिक मन्त्र ` तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ` में व्यक्त तात्पर्य की प्रकाशिका हैं।

। ३ । महादेव की भक्ति

कवि की उदारमना तथा समन्वय-भावना से भावित व्यक्तित्व परमात्मा, वैष्णवी शक्ति जगदम्बा की भक्ति या स्तुति करके ही विरत नहीं हो जाता, अपितु वह महादेव या शंकर के प्रति भी प्रणत है। कवि के अनुसार यह शंकर या शिव तत्त्व त्रिलोक में व्याप्त है। उसकी तपश्चर्या, उसका कालकूट-भक्षण सभी कुछ तो अद्भुत, अभिनव तथा अपूर्व है। कवि की दृष्टि में इस देवता का ध्यान सकलकाम दायक कल्पतरु-सदृश है —

हर बर जाकी होत बर बर जाकी भक्त
अर बर जाकी जात बर बर जाकी है।
भनत हृदेस दिल सरवर जाकी सुर -
सरवर जाकी ध्यान धर धर ताकी है।
भाल पर जाकी दया धर ब दर जाकी
है त्रिलोक बर जाकी कालकूट कर छाकी है।
तप थिर जाकी प्रभु ध्यान थिर जाकी देव
बर गिरिजा की हर बर गिरिजा की है।[1]

कवि के हृदय को महादेव के विचित्र व्यक्तित्व ने भी कम प्रभावित नहीं किया है। तुलसी सदृश कवि भी उनके विलक्षण व्यक्तित्व का चित्रण पूर्व में कर चुका है। इसी परम्परा में शिव के भंग, सर्प, प्रेतगण, गंग, मुण्डमाल, भस्म-धारण, चन्द्र आदि तत्त्वों के प्रति प्रेम की वर्णना करते हुए कवि महादेव को ही ` सब-कुछ ` मानकर उनकी आराधना करने लगता है। तुलसी ने तो ` मेरे माय बाप गुरु संकर भवानियै ` ही कहा था, हृदयेश तो उनसे भी आगे बढ़कर शिव को ` विधाता ` का अभिधान तक दे डालते हैं-

---

1- विश्वव्याहरन - पद सं0 २६४

भंग रंग लोचन सुरंग अति अंग अंग

प्रेतगन संग गंग सीस धर ली की है।

मुंड माल जाल गरै दिपत विसाल भस्म

भूखन रसाल विधु भाल पर नीकी है।

भनत हृदेस देव सरस न दूजो राम

कर धर पूजो तीनो लोक पर टीको है।

यही है विधाता यही ग्याता पिता माता यही

भक्त वर भ्राता दाता नायक सती को है।[1]

महादेव का गुणात्मक तथा स्वरूपात्मक चित्रण यहीं से समाप्त नहीं होता, कवि उनके औघड़वरदानी व्यक्तित्व का भी दर्शन कराता हुआ तदनन्तर वाणी को विरमित करता है -

ध्यावत रहत देव गावत रहत गुन

पावत हृदेस सिद्धि सकल अहार की।

नाम पर पूरो बर देत है पढ़रो

चिंधे रहत धतूरो माल मदुर अहार की।

बांधे जटा पूरो अंग लाये चिता धूरो

वोढ़े रहत सदैव दुशा ध्यानिक नहार की।

मंदिर धुरंधर इकंदर रहत ताके

अंदर मगन सिव कंदर पहार की।।[2]

राम की भक्ति

त्रिलोचन तथा त्रिलोकशिरोमणि शिव तत्व का स्तवन पदत्रय में करने के उपरान्त कवि हृदयेश राम-महत्ता-वर्णन अथवा वंदन में प्रवृत्त होता है। राम कवि की दृष्टि में शौर्य तथा पौरुष की सीमा है, उनका धनुर्धारी रूप प्रधान तथा अधम-उधारन रूप अपेक्षाकृत गौण है। सौन्दर्य की दृष्टि से भी वे काम के रूप को भी आकृष्ट करने वाले है -

---

१- विश्वविकरन - पद सं० ३६१

२- वही- पद सं० ३६६

भुज बल वंडै छंडै निंदत वितुंडै सुंडै

घर धर मंडै छंडै नल पर बाज है।

क्रीट वर धारै हारै रवि कर वारै डारै

पापिन उधारै तारै भक्तर काज है।

भनत छ्देस वर मुकुतन माला आला

दिपत दुसाला आला जन सिरताज है।

काम छबि पोहै कोहै जगत विलोहै कोहै

गज पर सोहै मोहै रघुपति राज है।।[१]

राम के वीरत्व व्यंजक रूप में सन्निहित धनुर्धर-व्यक्तित्व सम्पूर्ण प्रकृति को आच्छादित कर विश्व को भयाक्रान्त कर देने में सक्षम है -

कैधौं काल दंड कै घटान की घमंड कैधौं

उमंड कर धाए धुरा धरा नील वार के।

धारै मारतंग जाकि डारै कल्पतरू की

निहारै कित धीरत किधौं है बान मार के।

भनत छ्देस नील वारज प्रनाल कै

त्रिलोक रक्षपाल छबिलपक सुकार के।

अमित अर्खंडित वितुंड सुंड दंड नत

जंड भुजदंड मंड कौसिल कुमार के।।[२]

तुलसीकृत रामचरितमानस के अन्तर्गत शिव के कठोर धनु-भंजन के उपरान्त प्रकृति की ऐसी अदृष्टपूर्व स्थिति निर्मित हो गई थी, कुछ उसी प्रकार की परिस्थिति राम के गजारूढ़ होने पर हो जाती है। ध्वन्यर्थ-व्यंजना के आश्रित ऐसा शब्दचित्र अवेक्षणीय है -

दसरथनंद जब सहज सवार होत

धावत मयंद धुन करत दहाक दै।

सातहू समद घर घर घरकत जात

धरा धरकत गिर गिरत भड़ाक दै।

१- विश्वबलकरन - पद सं० ३६८

२- वही- पद सं० ३६९

भनत ब्रदेस मंड चंड मारतंड फांड

धुंधकत धुर परपुरित भडाक दै ।

फनपति फोर फार फरक फरक उठै

कमठ की पीठ दूट फूटत फडाक दै ।।[1]

कवि की तत्वाभिनिवेशी दृष्टि में राम ही आदि, अन्त, ज्ञानस्वरूप तथा जगत्-प्रकाशक हैं। वे ही गंग, चन्द्र, सूर्य, राधाकृष्ण, भोलानाथ, शक्ति आदि के रूप में पृथक्-पृथक् व्यक्तरूपेण गोचर होते हैं — वे सर्वपर तथा अद्वितीय है -

तु ही आद तु ही अंत तु ही ग्यान तु ही संत

तु ही दीप दीपन ह में भलाभलत तुही है ।

तु ही आसमान तु ही चंद भासमान भान

तु ही जीवदान तु ही सिरी बाच तुही है ।

भनत ब्रदेस राधा कृश्न राम विश्नु तु ही

तु ही भोलानाथ तु ही सक्ति जतन गुही है ।

तु ही गुरू चेला तु ही मरजाद वेला सदा

तु ही भीत मेला और अकेला एक तु ही है ।।[2]

रामावतार के कारण का उद्घाटन करता हुआ कवि कहता है कि प्रणतपाल रघुवीर सदा से ही निर्बल तथा असहायों की रक्षा करते आये हैं, जो उनकी शरण में आ जाता है वह परम बलवान और पराक्रमी के रूप में परिवर्तित हो जाता है -

दसमुख रच्छने प्रतच्छ मुन तच्छ भच्छ

जान के विलच्छ भयौ अवतार हर कौ ।

देव दीन लच्छ के त्रिलोक कौं अपच्छ जान

दसरथ दच्छ के उदोत कियौ घर कौ ।

भनत ब्रदेस दुष्ट भच्छ कियौ भक्तन कौ

मच्छ कच्छ आप रच्छपाल भवसर कौ ।

देवन सौं तच्छ बच्छ तुरत कुलच्छ गच्छ

होत है सपच्छ ताये पच्छ रघुबर कौ ।।[3]

१- विस्वप्रकरन - पद सं० ४७० २- वही- पद सं० ४७१

३- वही- पद सं० ४७२

विभिन्न अवतारों में कवि भेद-दृष्टि न रखकर अभेद-दर्शन करता है। राम ही कृष्ण हैं और कृष्ण ही राम तथा राम ही विष्णु है - यह भावना उसमें प्रतिफलित हुई है। इस अनेकत्व में एकत्व की भावना के वशीभूत होकर यदि कवि राम द्वारा द्रौपदी-त्राण, प्रह्लाद-रक्षण, गजराजमोक्ष, उर्वि-उद्धार, ध्रुव के ध्रुवीकरण करने का प्रतिपादन करता है तो आश्चर्य कैसा —

द्रोपति पै लच्छ कियौ अच्छ कर पच्छ कियौ

दुसासन तुच्छ भी अपच्छ कियौ बर कौ।

प्रह्लाद रच्छ रच्छ तात कियौ गच्छ गच्छ

है प्रतच्छ कीनौ वध गजराज अर कौ।

भगत इदेश स्वच्छ कीनौ काढ भूतल कौं

ध्रुव कौं समच्छ पद दीनौ है अमर कौ।

देवन सौ लच्छ अच्छ तुरत कुलच्छ गच्छ

होत है सपच्छ तापै पच्छ रघुवर कौ[1]।।

पंचवीरतासम्पन्न रघुवर कीगुणात्मकता से भक्त उनका यशोगान करते हैं, सहस्र फनवाले शेष भी उनके अखण्ड बल तथा सुयश की सतत सराहना करते हैं - समग्र देवसृष्टि उनका ध्यान करती है, ऐसे रघुवीर की बाहें धन्य हैं - वे अनुपमेय हैं —

भक्त वदाहैं जनपाल पर दाहैं भाहैं

धरम ध्रुवा है सुणदाहैं हर पीर की।

सेस से सराहैं बल अमित बर्णताहैं

सुजस अथाहैं दुग दाहैं भव भीर की।

भगत इदेस चित चाहैं ध्यान देवताहैं

दास शिर छाहैं महा सीतल गम्भीर की।

वीरता बला है उपमा है ते वृथा हैं याहैं

धंन धंन बाहैं बलवीर रघुवीर की[2]।।

1- विल्वकरन - पद सं० २७३

2- वही- पद सं० २७४

इतिहास-पुराण-प्रसिद्ध `गज-ग्राह-प्रकरण` के समासतः कवि छन्द बद्ध बद्ध करता हुआ रघुवरलीलागान परम्परा को समाप्त करता है -

आय गज गांस लीनौ मुख मैं वरन दीनौ
ताये भीत कीनौ घोर नीर बीच हर गौ ।
हद भर हारौ तब घोर सौं पुकारौ नाम
त्राह त्राह राम सब्द प्रभु के नगर गौ ।
भनत छ्देस भक्त पालक सुनत टेर
तनक न कीनी देर धावत डगर गौ ।
चक्र की अगर तेज जगर मगर तासौं
मगर की देह धार धार ह्यौं अगर गौ ।।[1]

कृष्ण की भक्ति

कृष्ण के लीला पुरुषोत्तम रूप ने कवि को अधिक प्रभावित किया है। आराध्य के समग्र विग्रह की भाव-भंगी कवि के लिए आह्लाद का विषय है। कृष्ण के मुखचन्द्र का हास, दन्तद्युति, नासिका-सौन्दर्य,मुरली-वादन, नेत्रों की वक्रता - सभी कुछ कवि के क लिए आकर्षण का केन्द्र है -

भावन सुधा की ताकी हासन प्रमोदता की
रदन छटा की नासका की छवि जाल की ।
मुख सुखमा की फांगी झलकि झला की
ताकौ ललित लता की छांह अद्भुति तमाल की ।
भनत छ्देस ताकी भुव ललवा की बीन
महल प्रवीनता की कहल रसाल की ।
द्रगन कटाकी बाँकी वरनत भाकी याकी
मैन मद छाकी ताकी मूरत गुपाल की ।।[2]

1- विष्णुप्रकरन - पद सं० ४७५

2- वही- पद सं०४७६

आनन्दकंद श्रीकृष्ण का आभूषणजटित बदन, उनके चंचल नैत्र, अमृतसिक्त वचन सहृदय मानव-मात्र के लिए अदृष्टाश्रुतपूर्व हैं। उनका माधुर्यपूर्ण विग्रह सहज ही दर्शक को मंत्रमुग्ध या वशीभूत करने में समर्थ है –

सोहै क्रीट कुंडल कपोल बनमोल गोल
 भीषण द्रग लोल बोल सुधा सर डार गौ।
बांकी बांकी बांसुरी ब्रदेस दिव्य भांगी बांकी
 लटकि लटकि पग धरन पै धार गौ।
फोर का निहारबौ कहां लौ देहि मारबौ है
 मारबौ भलौ तौ वो सबी की राह पार गौ।
देखत की छौना ऐसौ भूतल लग्यौ ना भौना
 नंद का छुटौना लौना टौना पढ़ डार गौ।।[१]

कृष्ण के रसिकशिरोमणि रूप से भी कवि कम प्रभावित नहीं है। गोपांगनाओं को मार्ग में घेर कर ` नयन-सर ` से विदीर्ण करना, माधुर्यसिक्त हास विकीर्ण कर वशीभूत करना, लताओं की ओट से वक्र-दृष्टिपात तथा गोरसदान की अभिलाषा करना आदि उनके दैनंदिन कार्य-कलाप हैं। उनकी समग्र क्रियाएं चपलता तथा छेड़छाड़ बालाओं के लिए मुग्धकारिणी बन गई है –

निकिस न पैये ना निवैये कहां वैये भट
 मारग अमोटा नैन षोटा करै घाय की।
छल कर हेर मंत्र वस कर गेर फोर
 गस कर लेत नहीं कसक सुभाय की।
भाल ब्रदेस भ्रांग्नी ललन की ओटा मारै
 मोहु मूठ गोटा है लबोटा प्रान वाय की।
वचन चपोटा सदा गोरस की पोटा मोटा
 गांठौ गांठ कोटा छोटा ढोटा नंदराय की।।[२]

१– विस्ववसरन – पद सं० ४७७

२– वही– पद सं०४७८

बिहारी की तरह कवि को `युगलकिशोर` की शारीरिक प्रभा के प्रति विशेष अनुराग है। परन्तु ये युगल किशोर - राधा-कृष्ण- अपनी सम्पूर्ण वस्त्राभूषण-जन्य साज-सज्जा सहित ही कवि की अन्तःसम्पत्ति बन सके हैं। राधा के पादपद्मों पर पायजेब विभूषित है तो श्याम अपने पैरों पर नूपुर धारण किए हुए हैं; मोहन यदि वनमाली बने हैं तो राधिका के कण्ठ-प्रदेश पर मोतियों की माला अवस्थित है; राधे नीलाम्बरधारिणी हैं तो कृष्ण का समग्र विग्रह पीताम्बर से लिपटा हुआ है; नन्द के नन्दन यदि मुकुटधारी हैं तो वृषभानुजा के भाल पर बेंदा की रक्ताभ द्युति शोभित है। प्रेमाबद्ध युगलकिशोर एक-दूसरे के कण्ठ-प्रदेश पर भुजाओं को रखे हुए प्रेमसुधामद से परितृप्त होकर कालिन्दी के तट पर विहरण कर रहे हैं जिनके प्रति पादक्षेप से पग-पग पर ज्योति जगमगा रही है :-

राधे पायजेब उत नूपुर मधुर स्याम

उत बनमाल इत मोतिन की माल है।

नील पट सोहै वष्टिकीलौं उत पीत पट

मंडित मुकुट इत बेंदा लाल भाल है।

भनत ब्रदेस भानजा के तीर विहरत

भुज लतकान गरैं मजबत बाल है।

दोही प्रेम पग पग उमग उमग छवि

पग पग मग होत जगमग जाल है।।[१]

कवि को उपर्युक्त राधा-कृष्ण-संयोग-वर्णन अत्यधिक भाया है। कवि की तन्मयता, उसका राग, तादात्म्य, आस्था और द्रवणशीलता सभी कुछ यहाँ पर अनुपम है। शक्ति और शक्तिमान् के इस स्थूल तथा सूक्ष्म संयोग ने कवि को किस सीमा तक सम्मुग्ध, संतुष्ट और पुष्ट किया होगा, यह मात्र कल्पना का विषय नहीं आन्तरिक रागोन्मेष का विषय है।

१- विश्ववसहरन - पद सं० ४७१

कविप्रयुक्त 'इत' तथा 'उत' के प्रयोग से ऐसा प्रतीत होता है कि उसका राग विशेषतः राधा की ओर उन्मुख हुआ है । राधा कवि के सन्निकट है जब कि कृष्ण दूरस्थ हैं । कहा जा सकता है कि कवि युगलमूर्ति की आराधना में राधा तत्व के प्रति अपनी आस्था के समर्पण में विशेष सक्रिय है । तुलसी ने राम-सीता के वसन्त-विहार-वर्णन में यह क्रम-विपर्यय किया है - उनके समीप राम हैं तो सीता दूरस्थ --

सोहैं सखा अनुज रघुनाथ साथ - झोरिन्ह अबीर पिचकारि हाथ ।

\+ \+

उत जुवति जूथ जानकी संग - पहिरे पट भूषन सरस अंग ।[1]

पुनश्च-

सरवर दीपत की दीप वहु ओरी ओरी
सुन बलिहारी मुरली की घोर मोर की ।
विधि गाँठ जोरी वार वार कर त्रन तोरी
लागी प्रीत डोरी द्रग कांचन मरोर की ।
भनत प्रदेस गल बाँह परी गोरी भोरी
मुदित सतान वान सुन सुन मोर की ।
मैन छबि थोरी थोरी मोहि मति भोरी भोरी
धंन चित चोरी चोरी जुगल किशोर की ।।[2]

कृष्ण के माधुर्यव्यंजक रूप तथा तदनन्तर युगलकिशोर की आह्लादिनी वृत्ति का हृदयावर्जक वर्णन करते हुए कवि को स्वकीय कार्पण्य का स्मरण हो आता है । वह तत्काल ही कृष्ण के ऐश्वर्यपरक स्वरूप से अपना तादात्म्य स्थापित करता हुआ स्व-परित्राण हेतु कातरता का वरण कर लेता है -

सेस गुण गाके गुन भनत अखंडता के
प्रभुता पताके कविता के गुण सत हौ ।
देव मन ताके जन ताके वृजवनिता के
लोक लोक ताके राधका के प्रानपत हौ ।

1- गीतावली - तुलसीदास - उत्तरकांड- पद सं0 22

2- विरवावतरन - पद सं0२८०

भक्त हृदेस फँद काटन पिता के मा के
कृपा कर ताके गनका के पार गत हौं ।
ध्यान धर ताके याके चरन प्रमोदता के
नाथ उदारता के उदार ताके पठवत हौं[1] ।।

हनुमान की भक्ति

रीतिकालीन कवियों ने ग्रन्थारम्भ में मंगलाचरण के रूप में अथवा अन्यत्र गणेश, शिव, कालिका और देवी, सरस्वती, विष्णु, राम, कृष्ण, राधा, ब्रह्मा, दशावतार आदि का स्तवन किया है; पर हृदयेश द्वारा कृत हनुमत-वन्दना अपने में अभिनव, अभूतपूर्व तथा अप्रतिम है। रामभक्त हनुमान् की वि वीरत्वव्यंजक मूर्ति के प्रति कवि की यद्यपि विशेष आस्था प्रतीत होती है तथापि अन्य देवों के सदृश उनका भक्तजनत्राता, मुक्ति-प्रदाता तथा राम-कार्यसिद्धियोगदाता का रूप भी दृष्टि से ओझल नहीं हो पाया है -

भक्त उर धारबे कौं राम कौं उबारबे कौं
सीता सोध पारबे कौं अद्भुति गम्भीर है ।
लंक गढ जारबे कौं अक्ष उपारबे कौं
जातुधान मारबे कौं महा रनधीर है ।
भक्त हृदेस अक्षकुमार पछारबे कौं
रामानुज प्रान कौं रखैया सुधा छीर है ।
दास जन तारबे कौं मुक्त सुधारबे कौं
विपत विदारबे कौं हनुमत वीर है[2] ।।

प्रभंजन-तनय के सिन्दूरमंडित समग्र मंगलमय विग्रह के कटि-प्रदेश पर लँगोटा अवस्थित है; उनके चरण-कर ही उनके आयुध हैं; भुजदण्ड अत्यन्त प्रचण्ड हैं; पर उनका आराध्य रूप भक्तरंजन तथा शत्रुगंजन होने के साथ-साथ दुःखभंजन भी है -

---

१- विश्वप्रकाश - पद सं० ४८१

२- वही- पद सं० ४८२

आयुध बरन कर उन्नित लगूट छूट

सोभित सिंदूर भरपूर छबिजाल है।

साल है अभंजन को पाल जनकुंजन को

नबर कराल जातुधानन को काल है।

भनत हृदेस भुजदंड है प्रचंड मेंड

लंक पै समंक सब संग लंक पाल है।

राम भक्त रंजन है सत्रु सिरगंजन है

दास दुख भंजन प्रभंजन को लाल है।।[1]

पवनपुत्र की ओजमयी मूर्ति की समग्र क्रियाएं उनके आराध्य राघवेन्द्र के चरम प्रयोजन के सम्पादनार्थ ही सम्भव हुई है। कवि को लगता है जैसे राम के समस्त पुरुषार्थ की पृष्ठभूमि में हनुमान् का व्यक्तित्व प्रतिबिंबित हो रहा है, इसीलिए तो पवनकिशोर के प्रति प्रणत कवि का अन्तरतम सम्मुख विद्यमान विपत्ति के शमन के प्रति आश्वस्त है --

पवनकिशोर जोर सोरन छबीलौ वर

जगत जलीलौ है प्रतापिक बलंका को।

भनत हृदेस राम नाम को मुकाम कर

काट दे कलेस लेस राखौ नहीं संका कौ।

फाँद कर समद दसानन की मान मेंट

मान मेंट सकल उठायौ धुआँ लंका कौ।

भन मत आन को न गन मत बिपिताहि

मन मत भूल ध्यान हनमत बंका कौ।।[2]

निष्कर्ष -

हृदयेश की भक्तिभावना में किसी सम्प्रदाय अथवा देव-विशेष का आग्रह नहीं है। समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए उन्होंने एक साथ अपने आराध्यों में आर्य

१- विश्ववसकरन - पद सं० ४८३

२- वही- पद सं० ४८४

तथा आर्येतर तत्वों को समाविष्ट किया है। शैव तथा वैष्णव पार्थक्य-भावना का लेश भी उनकी विनय-पद्धति में नहीं है। शैव-साधना के प्रतिनिधि – शिव, शक्ति तथा गणेश एक ओर उनके वन्दनीयों के रूप में अवस्थित हैं तो अन्य ओर राम, कृष्ण तथा राधाकृष्ण-युगलतत्व वैष्णव-साधना के प्रतीक बनकर आए हैं। युगलोपासना में उनका आग्रह राधा तत्व के प्रति विशेषतया अभिव्यक्त हुआ है। प्रायः सभी देवों में कवि की परत्व-बुद्धि प्रतिफलित हुई है। भक्ति या विनय की सप्त भूमिकाओं में कवि दीनता, मानमर्षता तथा आश्वासन की बाह्य सीमाओं का स्पर्श करता हुआ प्रतीत होता है। भक्ति-भाव की वह तीव्रता, मार्मिकता तथा संवेदनशीलता जो तुलसी तथा सूर सदृश कवियों की उक्तियों में उपलब्ध होती है वह हृदयेश की अन्तः सम्पत्ति नहीं बन सकी है। लोकेषणा, सुखोपलब्धि तथा दैहिक बाधा-निवारण वे कारण हैं जिनके वशीभूत होकर कवि अपने वन्द्यों के प्रति विनयावनत हुआ है। मुक्ति की मात्र चर्चा ही कवि ने की है तन्निमित्त याचना, अपेक्षा, आवश्यकता अथवा आकांक्षा की अभिव्यक्ति तक नहीं हुई है। अतः कहा जा सकता है कि हृदयेश अन्य रीतिकालीन कवियों की तरह न तो शुद्ध वैष्णव हैं और न शैव। यदि दूरारूढ़ कल्पना करते हुए उन्हें इन दोनों में से किसी से सम्बद्ध मान भी लिया जाय तब भी यह सिद्ध होगा कि इन तत्वों में विरोध नहीं मानते थे।

(स) समाज-चित्रण

'साहित्य समाज का दर्पण है' यह उक्ति सामान्यतया प्रत्येक काल या युग के साहित्य के सन्दर्भ में चरितार्थ होती है। रीतिकालीन साहित्य के विषय में भी यही कहा जा सकता है परन्तु प्रत्येक युग का साहित्य समान रूप से समाज-चित्रण में सचेष्ट रहे, ऐसा सर्वथा अनिवार्य नहीं है। यही कारण है कि कवियों के सामाजिक दायित्व के निर्वहण में न्यूनाधिक्य पाया जाता है। हृदयेश रीतिकालीन काव्यधारा के कवि रहे हैं। वे अपने समाज के चित्रण में पूर्णतया सचेष्ट थे, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता फिर भी कवि की अपनी रचनाओं में ऐसे तथ्यों तथा कथ्यों का प्रस्तुतीकरण हुआ

है जिनके आधार पर तत्कालीन समाज के विभिन्न स्तरों पर प्रत्यक्ष या परोक्षरूपेण प्रकाश पड़ता है। अध्ययन-सौकर्य हेतु उक्त चित्रण अधोलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जाता है -

।१। नैतिक स्थिति -

कवि ने अपने युग की नैतिक स्थिति का संकेत करते हुए लिखा है कि कलियुग के आगमन के कारण महत्वमयी प्रतिभाओं की सर्वथा अधोगति हो गई है। कलिकाल के प्रभाव के कारण लोगों का नैतिक स्तर इस प्रकार गिर गया है कि वे उचित-अनुचित, कर्तव्याकर्तव्य, संग्रह-त्याग के विवेक से पूर्णतयारहित हो गए थे। सुविज्ञ पंडितगण मृगछाला धारण कर संन्यास-ग्रहण करते दृष्टिगत हो रहे थे तो अन्य ओर चरित्र-भ्रष्ट तथा व्यभिचारी लोग उत्कृष्ट मुक्तामालाओं से अलंकृत हो रहे थे। संगीतविद्या की अन्ध-प्रतिष्ठा के करण गायकों तथा वादकों की ऐश्वर्यमयी स्थिति थी -

बड़े बड़े असराफ गरद कर ऐसो कलजुग भ्राता।
बिभचारिन विस्वन के उर में वर मुक्तन की माला।
भग्र दुदेस पंडित गुनमंडित ते धारे मृगछाला।
गान तान वारे धनवारे ओढ़े फिरे दुसाला।।[1]

समाज इस सीमा तक पतित हो चुका था कि उस समय वीर पुरुषों का उचित आदर नहीं होता अपितु चारित्रिक दृष्टि से भ्रष्ट लोग उच्च स्थिति में थे। जो व्यक्ति पूर्व काल में ऐश्वर्यमयी स्थिति में थे वे अब हतप्रभ हो चुके थे, जो पशु-सेवा रत थे वे अब राजसी जीवनयापन कर रहे थे -

महावीर वीरन के बेटा बैठे गहे किनाला।
सखिया भडुवा राड़ मिलावे बांधे फिरें सिपाला।
कीमखाब के परन वारे भोगे अन्न अमाला।
घोड़िन की खिजमत कर तिनके परे कान में बाला।।[2]

पातिव्रतधर्मपरायण नारियां सन्तान-सुख नहीं देख पा रहीं थी जब कि

१- झांसी की रानी लक्ष्मीबाई - डा० वृन्दावनलाल वर्मा - पृ० ४०२

२- वही- पृ० सं० वही

व्यभिचारी व्यक्ति पुत्र-जन्म-सुख की उपलब्धि कर रहे थे; असत्यभाषी प्रशंसित हो रहे थे तो धर्मपरायण अथवा सत्याभिनिवेशी व्यक्ति समाज में तिरस्कृत तथा निरादृत हो रहे थे। ये सत्यनिष्ठ जन पुन: दुष्टों के षड्यंत्रों में फंसते देखे जा रहे थे। चुगलखोर चोर तथा मसखरे सम्पन्नता-लाभ कर रहे थे —

पतिव्रता तरसत को तखोंं विभचारिन बर लाला।
झूठे के सुख लाखौं देखौ साँचे के मुख लाला।
सत्य वचन परमान जन को परे दुस्ट के लाला।
चुगलखोर धनचोर मसखरा परे सेज सुख लाला।।[1]

समाज में अन्ध विश्वास व्याप्त था। सम्भवत: अन्य व्यक्तियों की कुदृष्टि के प्रभाव से बचने के ही लिए स्त्रियां अपने कपोल पर काजल की बिंदी लगाती थीं। जादू-टोने पर भी स्त्रियों का विश्वास था।[2] वेश्याओं की अत्यन्त सम्मानजनक स्थिति थी। भोजनादिक की व्यवस्था के अनन्तर उन्हें ताम्बूलादि दिए जाते थे -

रंडिन को भोजन कौं सिन्नी ऊपर पान मसाला।[3]

विवाह-सम्बन्धों में अद्भुत असामंजस्य देखने में आता था। योग्य तथा अधिकारीजन जहाँ कुरूप नारि-सेवनरत थे, वहीं क्रूर तथा दुष्ट व्यक्तियों के गृहों में सुन्दरी बालाओं की उपस्थिति थी -

चतुर लरन को बदसूरत की सूरन के घर लाला।[4]

समाज में भ्रष्टाचार अपनी सीमा का स्पर्श कर रहा था। ऐसे तत्त्व समाज के सम्मानित व्यक्तियों को भी नहीं मुक्त करते थे। कवि हृदयेश को भी अपने आत्म की पीड़ा को महाराज गंगाधर राव से इस प्रकार व्यक्त करना पड़ा था -

परमानंद दिनकरा बबुआ जानीगोह।
पुन्यारथ सिरकार को लाभे पे बदि वोह।।
लाभे पे बदि वोह दूर सायर तै कीजै।
नाक काट कर कान सुरत मदहा धर दीजै।

1- झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई - डा० वृन्दावनलाल वर्मा - पृ० ४०२
2- 3-4- वही- पृ० वही

गंगाधर सिवराबनंद काटौ दुख फंदा ।

पापिन कौ सिरमौर वौतरा परमानंदा ।।[1]

।2। धार्मिक चित्रण

धर्म की दशा भी ह्रासमयी हो गई थी । देवमंदिरों में नियमित आराधना अथवा षोडशोपचार की चर्चा क्या की जाय इनमें विद्यमान अन्धकार दूर करने हेतु समाज सक्रिय न था । दूसरी ओर पशुओं के निवास प्रकाशित होते थे । जिन ब्राह्मणों को `भूदेव` कहकर तुलसी के युग में मूर्धाभिषिक्त किया गया था, उन्हें कौड़ी या अत्यन्त क्षुद्र दान करते हुए भी दाताओं को कष्ट होता था । साधुजन जीविका-विहीन थे तो देव दिवालिए हो चुके थे —

देवमंदिरन दिया न बाती गोरन पै उजियाला ।

भूमिदेव विप्रन को देतो कौड़ी देत कसाला ।

\+ \+

साधुन को नहि चून चनन को सेयें देव दिवाला ।[2]

मोक्षदात्री सप्तपुरियाँ - अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवंतिका तथा द्वारिका - के प्रति व्यापक अनास्था थी पर अन्धविश्वास परायण जनसमुदाय प्रेतादिसेवन करने में धर्म की उत्कृष्ट उपलब्धि समझता था —

कासी पुरी अजुध्या, मथुरा इनको बात कसाला ।

दोम दोम कर जात मदारन दाब कांख में लाला ।

पूजन प्रेत गुरैया बाबा छोड़े देव सिवाला ।।[3]

पति का संयोग प्राप्त करने के लिए अन्तः गुणात्मकता के उन्मेष में विश्वास न रख कर बहिरंग जपादि साधनों का अवलम्ब नारियों के द्वारा ग्रहण किया जाता था।[4] रोग की सम्भावना होने पर वैद्य को अस्वीकार कर `पीर` से बिना निदान कराया जाता था ।[5] अनुकूल पति-प्राप्ति के लिए रुद्रयामल जाप कराने तथा भवानी-पूजा की[6]

1- बेतवा-वाणी - वर्ष 2 अंक 2 - पृ० 92

2- झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई - डा० वृन्दावनलाल वर्मा - पृ० 402

3- वही-   4- विरुवकाकरन - पद सं० 294

5- वही-   पद सं० 66   6- वही-   पद सं० 65

परम्परा प्रवर्तित थी[1]। प्रदोष-व्रत के दिन शिवपूजन सम्पन्न होता था।[2] स्त्रियां स्वपति का परित्याग कर उपपति-सेवनपरायणा थीं। वे वस्त्राभूषण धारण कर अधर्मरत रहने में स्वार्थ-लाभ समझती थीं —

> निजपति मुक्ख तुक्ख कर जारत उपपति हित प्रतिपाला।
> बिछिया दृगन कोर भर काजर अंग आभरन जाला।
> मुरकट कंचुक कसत कुचन पै उर धारे बनमाला।[3]

देवी-देवताओं में जगदंबा अथवा अष्टभुजाधारिणी दुर्गा की स्थिति श्रेष्ठ समझी जाती थी। उनकी आराधना या स्तुति से दुर्गतिका नाश, रोग-नाश[4] आदि सम्भव होते थे। गणेश की आराधना विघ्न-निवारण के साथ-साथ मुक्ति के निमित्त भी की जाती थी। शिव, कृष्ण, राम तथा हनुमान की भक्ति भी समाज में प्रवर्तित थी पर इसमें अनुभूति की भक्तिकालीन सच्चाई अथवा गहराई नहीं लक्षित होती थी। कार्पण्य, दैन्य, मानमर्षण तथा आत्मनिवेदन आदि भूमिकाओं में आन्तरिकता का दर्शन नहीं होता था। भक्ति के क्षेत्र से जिज्ञासा और ज्ञान का तिरोभाव हो चुका था मात्र अर्थोपलब्धि तथा आपत्ति-निवारण हेतु ही इसका वरण किया जाता था। प्रदोष पर शिवपूजन का विधान समाज में प्रचलित था।[5] रुद्रयामल जप करने से मनोरथ की सिद्धि होती है, यह मान्यता समाज में व्याप्त थी।[6] राधा-कृष्ण रूप युगल तत्त्व की स्तुति विशेषतया माधुर्य की दृष्टि से की जाती थी।[7] हिन्दू तथा मुसलमानों की अभिवादन-शीलता के सन्दर्भ में एक-दूसरे को सम्बोधन करते समय विरोध देखने में आता था। मुसलमान ` राम ` स्मरण करने लग गए थे तो हिन्दू ` अल्लाह ` पद का उच्चारण करते थे। पारिवारिक क्षेत्र में यदि मुसलमान ` मौसी ` कहते थे तो हिन्दू ` खाला ` कहने में अपने को धन्य समझते थे। धर्म की मूल भित्ति – सत्यानुराग एवं सत्याचरण से लोग विमुख हो गये थे। नीति के अस्तित्व से पृथ्वी पर अधर्म का पूर्ण प्राबल्य तथा धर्म का तिरोभाव हो गया था —

१– विश्वव्यसकरन – पद सं० ७७ ६६ २– वही – पद सं० ७२
३– झांसी की रानी लक्ष्मीबाई – डा० वृन्दावन लाल वर्मा – पृ० ४०२
४– विश्वव्यसकरन – पद सं० ४६३ ५– वही– पद सं० ७२
६– वही– पद सं० ६६ ७– वही– पद सं० ४८०

मुसलमान सीतापति सुमिरैं हिन्दू सुत एक ताला ।

मुसलमान मौसी कर टेरैं हिन्दू टेरैं शाला ।

सांची कहै रूचै को विनती भयो नीच बलवाला ।

अधरम प्रकट भयौ भूतल पै धस गौ धरम पताला ।।[1]

वैश्यवर्ग के गृहस्थ जगद्गुरु ब्राह्मणों की निंदा ही नहीं करते थे अपितु अनधिकारी तथा असंस्कारी व्यक्तियों से दीक्षा लेकर जप-साधना में संलग्न थे —

जगतगुरु विप्रन को निन्दत बनिक पुत्र घरवाला ।

मुग्ध मुंडन की दच्छा लै लै फेरैं तुलसी माला ।।[2]

धार्मिक क्षेत्र में किस सीमा तक मिथ्याचार अथवा आडम्बर व्याप्त था इसका एक चित्र अवेक्षणीय है —

अधरम नाम जपत सीतापत डार गोमुखी माला ।

दीसें भाल कहे ठाकुर के तिलक सवारे भाला ।

जाचत देव विप्र साधुन को होत क्रोध को जाला[3] ।

।2। शासन-चित्रण

कोई भी कवि समाज अथवा समकालीन सामाजिक परिस्थितियों से सर्वथा असम्पृक्त रहकर काव्यरचना नहीं कर सकता क्योंकि कवि सामाजिक प्राणी है और कविता समाज की वेदनाओं तथा अपेक्षाओं की अभिव्यक्ति । रीतिकालीन कवि प्राय: किसी न किसी राज्याश्रय में रहे हैं, अत: प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में उनकी रचना समष्टि में यत्र-तत्र सामयिक शासन की अभिव्यक्ति सम्भव हुई है । झांसी राज्याश्रित कवि हृदयेश ने अपने आश्रयदाताओं की शासन-सरणि का सांगोपांग चित्र तो नहीं उपस्थित किया पर उनके काव्य में तत्कालीन शासन-व्यवस्था के सांकेतिक चित्र अवश्य उत्कीर्ण हुए हैं जिनसे तदनुसार निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं ।

कवि के अन्त:साक्ष्य से सुप्रमाणित है कि शासन धर्म में महती आस्था रखता था । इसी आस्था के व्यावहारिक कार्यान्वयन में गो-द्विज के प्रति झांसी के महाराष्ट्रीयन शासक आसक्ति रखते थे । कवि ने झांसी के पूर्व शासक नारायण राव एवं रघुनाथ राव

1- 2 -3 - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई - डा० वृन्दावनलाल वर्मा - पृ० ४०२

की भक्ति तथा नामभजनपरायणता का सोल्लास वर्णन किया है —

आठौ जाम ध्यान रहै रस नैन और काम

हीतल मैं भक्ति रामनाम ही सौं साची है।

मंत्र के प्रभाव की अखंड छबि छलकत

झलकत भाल जैसो कुन्दन में कांची है।

भनत छ्देस नरदेव राव नारायन

धन्य वह स्यात प्रमान्न विधि रांची है।

सोभा नरनाह की बखान वेद वांचौ तैसी

बीर सुभ सांची दान कीरत मैं साची है।।[1]

उपर्युक्त शासक महाराजा नारायणराव राम के भक्त थे, वे राम जो वेदों द्वारा प्रशंसित है और जिनका सतत् यशोगान सुरेश – शेषादि के द्वारा किया जाता है —

जाकौ वेद नारद बखानत सुरेस सेस

सकल मुनीस जन चित मन धरी है।

+ +

नृपति नाराइनं जू जाकी भक्ति करी ऐसी

राम पग तरी सुभ घरी सीस धरी है।।[2]

नारायण राव के अनन्तर झांसी राज्य के शासक के रूप में रघुनाथ राव प्रतिष्ठित हुए वे मात्र तीन वर्ष तक ही राज्यभार वहन कर सके। इनकी मृत्यु के पश्चात् महाराजा गंगाधर राव झांसी राज्य के अधिकारी हुए। इनकी धार्मिकता तथा शासन की कठोरता के अनेक प्रमाण साहित्यिकों तथा साहित्येतिहासकारों ने प्रस्तुत किए हैं, जिन्हें इसी शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में उपस्थित किया गया है। कवि ने महाराजा गंगाधरराव की जो प्रशस्ति की है उससे भी उनका धर्मपरायण होना सिद्ध होता है —

जैसे राम राजा भए आनंद त्रिलोक भयौ

देवतान छोड़े भरना सीस पै सुमन के।

तैसे ही प्रमान के मनोरथ प्रसिद्ध भये

आप राज पाय भए दीपक वतन के।

---

1 व 2 – बेतवा-वाणी – वर्ष 2 अंक 2 – पृ० 102-3

भनत इदेस राव गंगाधर महाराज

दाता सिवराव सुत पालक सवन के।

जैसे दान दै के प्रान राखे गऊ जन मन के

तैसे दान दै के प्रान राखो दुजगन के।।[1]

महाराजा गंगाधर राव की ओर से पुत्र-जन्म हेतु कृत भजन-पूजन आदि से भी उनकी धार्मिकता की पुष्टि होती है। इस भजन-पूजनादि में कवि का योगदान भी हुआ था। इस तथ्य को ही कवि ने `थोरी भाँत सेवा` के अन्तर्गत अभिव्यंजित किया है —

भनत इदेस देव पुत्र देय चिरजीव

आनन्द उमग ग्रेह मंगलन धावै सो।

सेवा करी थोरी भाँत आप सब जानहार

ऐसी कृपा कीजे उदार और के न धावै सो।।[2]

शास्त्रोक्त धर्म के चार पादों – सत्य, शौ, दया, दान – की प्रतिष्ठा गंगाधरराव के व्यक्तित्व मे दृष्टिगत होती है —

दानी है प्रमानी है मनुष्य पहिचानी ध्यानी

सुधावत बानी धर्मनीति पहिचानी है।।[3]

कवि के अपने साक्ष्य से ऐसा प्रमाणित होता है कि उसकी आस्था दो सन्त-महात्माओं पर थी। ऐसी सम्भावना की जा सकती है झाँसी राज्य के अन्तर्गत ही इनकी प्रतिष्ठा रही होगी। इनमें से प्रथम राजगुरु रामराव थे और द्वितीय गुरु साधुसिंह थे। इन दोनों महानुभावों को सम्मानित करने तथा प्रश्रय देने की संभावना से भी शासन की आस्थावादिता सुप्रमाणित है —

आठौं जाम ही मैं धरै ध्यान ब्रहमज्ञान

तप के निधान हुत बान नाम जाप है।

गुरु ब्रहम गुरु विष्णु गुरु रुद्र गुरु शक्ति

गुरु के प्रताप कर होत सब काज है।

1- बेतवा-वाणी – वर्ष 2 अंक 2 – पृ0 103-4

2- वही- पृ0 98 3- वही – पृ0 104

सेवक हृदेस जैसे गुरुपद राम राव

भवसिंधु तारन रखैया राव लाज है।

भूतल पै प्रगट प्रसिद्ध नवनाथ भए

वाही रूप सर भंगनाथ महाराज है।।[1]

यही राम राव कवि के गुरु थे जिनकी चरण-सेवा करके कवि अपने स्व को गौरवान्वित समझता था। कवि अपने अन्य आराध्य के गुरुत्व के संबंध में भी प्रकाश डालता है जो राज्य के अन्तर्गत ऐश्वर्यमय जीवन-यापन करते थे -

भनत हृदेस देवराज कौ विमानकिधौं

गुरु साधुसिंह जू के वरन पखा है।[2]

कवि हृदयेश के अन्त:साक्ष्य से शासकों के ऐश्वर्य तथा विलासमयी गतिविधियों का परिचय प्राप्त हो जाता है। चाहे तत्कालीन शासक हों अथवा राज्य द्वारा सम्मान प्राप्त राजगुरु - सभी ऐश्वर्यमय जीवन जीते थे। महाराज नारायणराव का ऐश्वर्य अवेक्षणीय है -

बीच बीच हरी जरी केसर जरतार भरी

मुढुलित सरी लाल मखमल नरी है।

घटित नवीन चूट अद्भुत हृदेस दीप

उमग उमग भग जगमग भरी है।[3]

महाराजा रघुनाथ राव के द्वारा मनाये जाने वाले होलिकोत्सव का जो आँखों देखा चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है वह तत्कालीन शासन की विलासप्रियता तथा ऐश्वर्य का प्रतिनिधित्व करता है -

केसर अतर तर भर पिचकारिन मे

कुसुमित तार भिरौ कंचन अतम मे।

भनत हृदेस तहाँ अमित हजारन तैं

छूटत फुहार दृग सींचत सलिल मैं।

1- बेतवा-वाणी - वर्ष 2 अंक 2 - पृ0102

2- वही- पृ0 106

3- वही- पृ0 102

महाराज राव रघुनाथ श्री सिवा की नंद

नंद कुल चंदवत अद्‌भुत दरस में ।

रंग भरे बसन गुलाल अंग अंग भरे

बिहरत रंग भरे मोद मजलस में ।।[1]

राज्यान्तर्गत अथवा राज्याश्रित गुरु भी ऐश्वर्यमय क्रिया-कलापों से युक्त थे । उनका वैभव किसी भी स्थिति में मराठा शासकों की अपेक्षा न्यून नहीं कहा जा सकता । कवि स्वयं भी अपने गुरु महाराज के ऐश्वर्य से आश्चर्यचकित हो गया था -

कुन्दन कलित कर पन्नन खचित पाटी

मोहे मुक्तमाल जाल देखत हरस है ।

भान की मरीच परै झलक झलान होत

भान होत मान प्रभा पुंज को दरस है ।

भनत इदेस देवराज को विमान किधौं

गुरु साधुसिंह जू के चरन परस है ।

देव को चरित्र मनमोहन को छद्म किधौं

अद्‌भुत विचित्र दिव्य पींजरा सरस है ।।[2]

धर्मप्रवणता तथा नैतिकता से सहज प्रेरित और ऐश्वर्यमय जीवन-यापन के अनन्तर भी शासन के कर्मचारी सत्यनिष्ठ न होकर भ्रष्टाचार की चरम सीमा पर अवस्थित थे । इसके परिणामस्वरूप मानवता का ऐकान्तिक हनन-सा हो रहा था तथा प्रदेश सर्वोच्च शासक के आदेश का यथोचित पालन अधीनस्थ राजकर्मचारियों द्वारा नहीं किया जा रहा था । जिस शासन के अन्तर्गत सुप्रसिद्ध तथा सम्मानप्राप्त कवि को भी राजपुरुषों की कुदृष्टि का भाजन बनना पड़ गया हो, उसकी दुरवस्था का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है । कवि की यह करुण गाथा उसके शब्दों में ही प्रस्तुतीकरणीय है -

---

1- बेतवा-वाणी - वर्ष 3 अंक 2 - पृ० 103

2- वही- पृ० 105

परमानन्द दिनकरा कनुआ कानीगोह।
पुन्यारय सिरकार के ताभै जे बदि बोह ।।
+ +
गंगाधर सिवरावनन्द काटौ दुख फंदा ।
पापिन कौ सिरमौर दौतरा परमानन्दा ।।[1]

शासन द्वारा विपद्ग्रस्त कवि के जो भूमि दानस्वरूप दी गई थी उसकी प्राप्ति में अवरोध उपस्थित करने वाले शासन के कानूनगो - परमानन्द दिनकर - का भ्रष्ट आचरण शासन में व्याप्त अनीति का सुष्ठु परिचायक है। कवि का भग्न हृदय इस अप्रत्याशित अत्याचार के सहन नहीं कर सका और उसे महाराज गंगाधरराव से आपत्ति- निवारणार्थ निवेदन करना ही पड़ा।

इतिहासकारों ने एक तरफ तो महाराज गंगाधरराव के शासन की कटु आलोचना की है तो दूसरी ओर अन्य विद्वानों ने उनकी प्रजावत्सलता, दया-दानशीलता आदि का वर्णन किया है। उक्त आलोचना का आधार था - महाराज की अतिशय कठोरता जो दण्ड-विधान के समय अभिव्यक्ति ग्रहण करती थी। इस बाह्य साक्ष्य से ही नहीं अपितु कवि के स्वकीय चित्रण से भी शासन की कठोरता के संकेत प्राप्त हो जाते हैं; परन्तु इससे यह भी निष्कर्ष सहज ही निसृत होता है कि शासन न्यायप्रिय था -

ताभैं जे बदि बोह दूर सायर तै कीजै।
नाक काट कर कान तुरत गदहा धर दीजै ।।[2]

कठोर शासन के होते हुए भी झाँसी राज्य के शासक प्रजावत्सल, दया तथा दानवीर थे। हृदयेश ने समय-समय पर अपनी याचना के सन्दर्भ में जो कुछ लिखा है उससे शासन की कथित विशेषता सिद्ध होती है -

जैसे राम राजा भए आनंद त्रिलोक भयौ
देवतान छोड़े भला सीस पै सुमन के।
तैसें ही प्रजान के मनोरथ प्रसिद्ध भये
आप राज पाय भए दीपक अवन के।

---

1 व 2 - बेतवा-वाणी - अंक 2 वर्ष 2 - पृ0 94

भनत कुदेस राव गंगाधर महाराज

दाता सिवराव कुलपालक सवन के।

जैसे दान दै के प्रान राखे गजथन गन के

तैसे दान दै के प्रान राखो कदज गन के।।[1]

+ +

जीजौ लाख बरख गुपाल नन्द नाना साव

रावरे कौ सुजस मुलक भर गावै सो।

+ +

सेवा करी थारी भौत आप सब जानकार

ऐसी कृपा कीजे कदार और के न धावै सो।

मैं तो तुमैं जांचौर वार आदमी की लाग फेर

आपके अधीन कर दीवै मनै आवै सो।।[2]

कवि कदारा कृत इसी 'लाग हेतु याचना' के सुखद परिणाम में सम्भवत: उपर्युक्त भूमि की स्वीकृति उपलब्ध हुई थी जिसमें अवरोध उपस्थित करने वाले परमानन्द दिनकर के विरुद्ध कवि कदारा महाराज गंगाधरराव से शिकायत की गई थी।

।३। क्षेत्रीय - चित्रण

कवि ने झांसी के अन्तर्गत आने वाले अथवा पार्श्ववर्ती क्षेत्रों की परिस्थितियों का सांगोपांग चित्र तो नहीं उपस्थित किया है फिर भी उसकी स्फुट रचनाओं में यत्र-तत्र क्षेत्रीय संकेत उपलब्ध हो जाते हैं। ओरछा की रानी लड़ई सरकार की प्रजापालकता आदि के वर्णन से यह सुप्रमाणित हो जाता है। ओरछा उस समय झांसी का पड़ोसी तथा स्वतंत्र राज्य था। वर्तमान में यह क्षेत्र मध्य प्रदेश के अन्तर्गत आता है —

कर कर तीनै वे प्रवीन राम काज कीन्है

नृपति महेन्द्र पर उचित बहाल की।

देखत की आली है अडिग प्रताप वाली

पाली प्रजा भली भांत सान गुनजाल की।

१- बेतवा-वाणी - वर्ष २ अंक २ - पृ० १०३ २- वही- पृ० ९४

भनत हृदेस राज लाज की जिहाज भो

लहई भुपाल सिरताज शुभ चाल की ।

रानी राजधानी बुध बलित प्रमानी जानी

जगत बखानी स्यानी रानी धर्मपाल की ।।[1]

परन्तु कवि द्वारा प्रशंसित उक्त लहई सरकार ने झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के समय में झांसी पर आक्रमण कर दिया था यद्यपि वह झांसी को अपने अधीन करने में सफल नहीं हो सकी थी । इस युद्ध का ओजपूर्ण वर्णन कवि मदनेश कृत `लक्ष्मीबाई रासो`[2] में उपलब्ध होता है ।

सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार डा० वृन्दावनलाल वर्मा के परदादा आनंद-राय जो झांसी क्षेत्र के अन्तर्गत पड़ने वाले मउ के जागीरदार थे, की प्रशस्ति भी कवि द्वारा की गई है । ये महानुभाव अपने क्षेत्र मउ में ही रानी लक्ष्मीबाई की ओर से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुये थे ।[3] सम्भवत: आनंदराय की वीरता ही इस प्रशस्ति में कारणीभूता थी -

जदिप भुमि तल पै उदित रहत भान अरु चंद ।

तुम तब लगि आनंद सहित जीवौ राव अनंद ।।[4]

हृदयेश कवि का विशाल हृदय मात्र अपने आश्रयदाता अथवा अन्य गुणग्राही व्यक्तित्व की प्रशस्ति करने में ही तुष्टिलाभ नहीं करता था अपितु वे जिसे भी सुन्दर तथा वर्णनीय समझते थे, उसका वर्णन करके अपनी लेखनी अथवा वाणी को पुनीत करते थे । सम्भवत: झांसी क्षेत्र के ही अन्तर्गत बांका के प्रबल प्रतापी पुत्र की वर्णना कवि की क्षेत्रीय सजगता की सूचिका है -

जस करवै कौं सही बल मजबूत राज

बस करबे कौं मोहिनी सो मंत्र छायौ है ।

भनत हृदेस भोलानाथ सौं दयाल भोला

नाथ जू को गुनगन पुन पुन गायौ है ।

१-बेतवा-वाणी - वर्ष २ अंक २ - पृ० १०४
२- देखिए डा० भगवान दास माहौर द्वारा सम्पादित `लक्ष्मीबाई रासो` प्रकाशिका यमुना माहौर ६९।१ टौरिया नरसिंहराव, झांसी
३- झांसी की रानी लक्ष्मीबाई - डा० वृन्दावनलाल वर्मा -परिचय - पृ० १
४- बेतवा-वाणी - वर्ष २ अंक २ - पृ० १०४

दरस पुनीत कवि हृदय को मीत बाल
कास पुनीत सब ही के मन भायौ है।
आंखन में सील भयौ लाखन में नाम जैसो
ठाकुर ने प्रबल प्रतापी पूत पायौ है।।[1]

क्षेत्रीय चित्रण की ही आंशिक दृष्टि में किसी 'कर्म सींग' की बारात का अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन भी प्रस्तुतीकरणीय है —

दीपत बरात बना राजै गजराज पर
वर सिरमौर नग छवि छहकारे हैं।
बाजत मृदंग और उपंग सहनाई संग
हरस उमंग अंग अंग सखा निहारे हैं।
भनत हृदेस कर्मसींग सुत ल्यायौ बूब
भाव आव ताव महताब भाव बारे हैं।
छूटे कुल्बान छूटी झलकै दिसानमान
टूटे आसमान से बजारें बांध तारे हैं।[2]

।४। लोक – चित्रण

तत्कालीन उपर्युक्त नैतिक तथा धार्मिक अवस्था की अनेक बातें जैसे वर्तमान समय में मिलती हैं वैसे ही हृदयेश के 'चित्रकलाकरन' में चित्रित लोकरीति में हमें तत्कालीन समाज का प्रतिबिम्ब दृष्टिगत होता है। हृदयेश की नायिकाएं प्रदोष पर शिवपूजन के निमित्त मंदिरों में जाती थीं।[3] नव-बालाएं शील-संकोच के कारण पतियों से प्रत्यक्ष साक्षात्कार नहीं करती थीं।[4] कवि की नायिकाएं महावर लगाने से पूर्व एड़ियों को पूर्णतः स्वच्छ करने के लिए झांवे का प्रयोग करती थीं – यह लोकरीति आज भी ग्रामीण अंचलों में प्रचलित है। नव-परिणीता नवोढ़ा के प्रति रागातिशय के कारण नायक स्वयं भी झांवे से उसकी एड़ियों को स्वच्छ कर महावर-योजना करता था।[5] स्त्रियां श्रावण शुक्ला की तीज को मढ़ूे का उत्सव सानंद मनाती थीं। कवि ने इस सांस्कृतिक

१–बेतवा-वाणी – वर्ष 2 अंक 2 – पृ० १०५   २– वही– पृ० वही
३– चित्रकलाकरन – पद सं० ७२   ४– वही– पद सं० २५
५– वही– पद सं० २०५

पर्व का विस्तरशः वर्णन किया है जो [illegible] में उपनिबद्ध है। इस पर्व पर पारस्परिक आक्रोश अथवा खीझ का पूर्ण परिहार करने की आनंदिनी परम्परा प्रवर्तित है।[1]

।४। फाग-वर्णन

फाल्गुन मास संसार की समस्त वस्तुओं में विकार उत्पन्न कर देता है। प्राणहीन वस्तुएं भी इसमें नवजीवन से युक्त हो जाती हैं। प्रकृति भी किसी नवयुवती की तरह अंगड़ाई लेकर मानों विलासपूर्वक मुस्कराने लगती है। समस्त धरा के ऊपर विकीर्ण भिन्न-भिन्न प्रकार के पुष्पों की सौरभ सभी प्राणियों के हृदयों में आह्लाद भर देती है। तरुण और तरुणियां एक-दूसरे पर गुलाल और रंग की वर्षा कर अपना-अपना प्रेम प्रदर्शित करते हैं।[2] इस आह्लादक पर्व के आगमन का सूचक ऋतुराज वसन्त है। यही कारण है कि फाग या होली के वर्णन को कतिपय कवियों ने वसन्तोत्सव[3] से अभिधानित किया है। डा० कृष्ण दिवाकर होली के विषय में अपना अभिमत देते हैं —` ऋतुराज वसन्त की आहट से प्रकृति के साथ-साथ मानव भी उत्तेजित हो उठता है। फागुन के चार दिनों का यह होली-उत्सव मानों उसके आगमन की वार्ता ही दे देता है।[4]

इसउत्सव की परिधि इतनी विशद और व्यापक होती है कि साधारण झोपड़ी में रहने वाले कृषक और श्रमिक से लेकर ऊंची अट्टालिकाओं के निवासी नागर तक उससे समान रूप से प्रभावित होते हैं। इस अवसर पर हास्य-विनोद, गायन-वादन और नृत्य-नाट्य के विविध आयोजनों की सर्वत्र बड़ी धूम मच जाती है। इस अवसर पर अबीर, गुलाल और पिचकारी द्वारा रंग-वर्षण अथवा हंसी-मजाक और गाली-गलौज का जो प्रयोग किया जाता है, उसकी प्राचीन परम्परा है। पुराणों ने तो इस प्रकार के भद्दे प्रदर्शनों को भी शास्त्रीय व्यवस्था द्वारा वैध बना दिया है। ` भविष्योत्तर पुराण ` में लिखा गया है कि ` ढुंढा ` नामक राक्षसी के उपद्रव को

१-विनयपत्रिका - पद सं० ४४४
२- रीतिकालीन काव्य पर संस्कृत काव्य का प्रभाव - डा० दयानन्द शर्मा- पृ० ८५-८६
३- गीतावली- तुलसी -उत्तर काण्ड- पद सं० २२
४- होली का साहित्यिक उपहार - राष्ट्रवाणी पत्रिका - फरवरी अंक १९६४
५-

शान्त करने के लिए शीतकाल की समाप्ति पर फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा के प्रदोष काल में सब लोग निर्भय और निश्शंक होकर हँसें-खेलें; रंग-बिरंगे वस्त्र पहिन कर चन्दन, गुलाल, अबीर लगाकर और पान खाकर सब एक-दूसरे पर पिचकारियों से रंग छिड़कें; परस्पर गाली देते हुए सब लोग हास्य-विनोद करें तथा स्त्रियां नृत्य करें। फिर स्वच्छन्द और निश्शंक रूप से सब हो-हल्ला मचावें। इस प्रकार शब्द करने से उस राक्षसी के भय का निराकरण होता है तथा सब पाप नष्ट हो जाते हैं।[1]

संस्कृत साहित्य में वात्स्यायन कृत ' कामसूत्र ' हर्षकृत ' रत्नावली ' और भवभूति कृत ' मालती-माधव ' में भी होली मनाये जाने का प्रमाण मिलता है। इसके पश्चात् मुगल शासन से लेकर आज तक होली मनाने की सुदीर्घ परम्परा उपलब्ध होती है।

रीतियुगीन कवियों का होली, फाग अथवा वसन्तोत्सव अपनी मौलिकता की स्थापना कर चुका है। डा० बच्चनसिंह का एतद्विषयक मन्तव्य है - ' फाल्गुनोत्सव का जितना जीवन्त और काव्यात्मक वर्णन इस काल के कवियों ने किया उतना कदाचित अन्यत्र नहीं मिलेगा। फाग की मस्ती, रंग-गुलाल से लथपथ स्त्री-पुरुषों की भावात्मक तन्मयता और भागदौड़ के घरेलू वातावरण को मूर्त रूप देने में कुछ कवियों ने अपनी विशिष्ट काव्य-क्षमता का परिचय दिया है।[2] यहां यह उल्लेखनीय है कि रीतियुगीन कवियों के होली के समस्त वर्णन पूर्णरूपेण मौलिक है। उनके पूर्व संस्कृत काव्यों में होली-वर्णन नहीं के बराबर है। यदि कहीं कोई प्रसंग मिलता भी है तो वह प्रथम तो गुलाल-वर्षा का न होकर रंग-वर्षा का ही है।[3] दामोदर गुप्त प्रणीत ' कुट्टनीमत ' में एतद्विषयक एकाध उदाहरण उपलब्ध होते हैं;[4] परन्तु रीतियुगीन लावण्य वहां कहां।

रीतियुग की उपर्युक्त परम्परा पर कविश्रेष्ठ हृदयेश ने वसन्तोत्सव अथवा फाग-वर्णन अत्यन्त तल्लीनता के साथ किया है। यद्यपि इस संयोग-शृंगार की लीला में राधा-कृष्ण को ही नायक-नायिका के रूप में अवतरित किया गया है तथापि एतद्द्वारा तात्कालिक संस्कृति भी स्फुरित हुई है, ऐसा हमारा मन्तव्य है।

।क। गुलाल-वर्षा -

नायक-नायिका की यह संयोग-क्रीड़ा मात्र पृथ्वी को ही कुसुम्भी रंग की नहीं

१- ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास - प्रभुदयाल मीतल - पृ० २३२
२- रीतिकालीन कवियों की प्रेम-व्यंजना - डा० बच्चन सिंह - पृ० ३४४
३- रीतिकालीन काव्य पर संस्कृत काव्य का प्रभाव- डा० दयानंद शर्मा -पृ०८४
४- कुट्टनीमत - श्लोक ८९२

नहीं बनाती अपितु आसमान भी गुलाल की धूल से धूसरित हो जाता है। कवि की नागरिक संस्कृति का वाकवैचित्र्य इस सन्दर्भ में दर्शनीय है —

चंदन अतर गंध अगर कपूर धूर
मलत बदन नंदनंदन ख्याल सौं।
हेम के हवारन गुलाबजल बरसत
केसर गरक रंग छिरक विसाल सौं।
दरस इदेस होली खेलत सखा अंग
परस किसोरी हरषत बाल जाल सौं।
अरुन दिसान भू झुलिता समान
भासमान आसमान भरौ गरद गुलाल सौं॥[1]

यहाँ गुलाल की रज से आकाश तथा धरा का कुंकुम्मी वर्णसम्पृक्त हो जाने का वर्णन किया गया। परन्तु फाग के उत्सव की मादकता से आपूरित युवति-यूथयुक्ता राधे तथा सगोप-जनसंयुत श्याम सुन्दर इसी स्थिति से कैसे संतुष्ट रह सकते थे। राधिका की ओर से पहल होती है, वे अपने कंचन थाल में अवस्थित गुलाल को भर कर ऐसी मूठ श्यामसुन्दर को लक्ष्य कर मारती हैं कि उनका कपोल लाल हो जाता है —

इत वृषभान की कुमार बनितान साथ
उत हिरदेस भीर ग्वालन गुपाल की।
मेलत अबीर बरजोरी हेम थार भर
कर पिचकारी भार मानौ मेघमाल की।
धाल तक मूठ लाल परत प्रकास भाल
लागी लाल चर्द गाल गरद गुलाल की।[2]

प्रणयी-युग्म के अनुभावों ने गुलाल-वर्षा की आनन्दात्मिका लीला को किस सीमा तक तीव्रता प्रदान की है, यहाँ अवेक्षणीय है —

झुपि झुपि झपि झपि झमकि झमकि झपि
उझकि उझकि मूठ मेलत गुलाल की।[3]

१- विलासकल्पद्रुम — पद सं० ४६०
२- वही- पद सं० ४८६
३- वही- पद सं० ४८७

गुलाल—वर्षण के क्रम में प्रणयीजनों का झुकना, झाँकना कहीं गुरुजन इस लीला का अवलोकन न कर रहे हों, इस आशंका से झिझकना तदनन्तर आश्वस्त होकर गुलाल की मूठ का प्रक्षेप करना सभी कुछ रमणीय बन पड़ा है।

किशोर तथा किशोरी का आनन्दोल्लास मात्र गुलाल की मूठ के प्रक्षेप तक ही सीमित नहीं रहता। किशोरी आनंदातिरेक में किशोर को आलिंगनपाश में बद्ध कर लेती है- मुख से 'होरी-होरी' का उच्चारण करती हुई उमंगवश गाने लग जाती है -

मुर मुर जातीं लाल फैंकत गुलाल मूठ

छल बल जातीं लपटातीं उर अंग सौं।

थोरी-थोरी बैनन कहत मुख होरी-होरी

कीरत किशोरी संग गावत उमंग सौं।[1]

नायक, नायिका तथा फाग-रागरंजित उपनायिकाओं के साथ गुलाल-वर्षण अथवा प्रक्षेप से संतुष्ट नहीं होता अपितु वह अवशिष्ट उपनायिकाओं के गृहों में भी प्रवेश कर गुलाल का प्रक्षेप उनके मुखों पर करता है। इस छीना-झपटी में उसके राग की वृत्तियां परिशमित नहीं होती, सम्भवतः इसीलिए वह माधुर्यमयी गालियां दे बैठता है -

भनत कुदेस कुधाम धंस जात मुख

मलत गुलाल बल बकत कुबात है।[2]

फाग की इस आनंदात्मिका परम्परा में लज्जा का वेग भी कम हो जाता है। गुरुजन के प्रति सौशील्य-सम्पृक्त नायिकाएं भी अपने अवगुंठन का निवारण करके गुलाल-मूठ का प्रक्षेप नायक पर करती है और इस क्रिया की सुखात्मिका परिणति में नायक का सौन्दर्य द्विगुणित हो जाता है -

झाँपी टार घूघट कुदेस मुख लूट मूठ

छूटत विसाल लाल सरस हुलासौ है।

गरद गुलाल भाल परत न भासौ तासौ

जावक लाल पै प्रकासौ चन्द्रमा सौ है।[3]

१- चित्रवसकरन - पद सं० ४८८

२- वही- पद सं० ४९४

३- वही- पद सं० ४९६

गुलाल तथा रंग-वर्षण की माधुर्यमयी लीला में सभी विभोर हैं, रससिक्त हैं। यहाँ सात्त्विकेतर रजस् तथा तमस् की अवस्थिति नहीं -

ग्वाल बाल भाल पै अबीर गाल माल पै

सुरंग जाल बाल पै गुलाल नंदलाल पै।[1]

मात्र ग्वाल-बाल, ब्रजबाल तथा नंदलाल की उपर्युक्त त्रिपुटी शृंगार की संयोग पक्ष के अन्तर्गत तादात्म्यापत्ति नहीं करती अपितु उनके सम्पूर्ण अंगव आभरण, पर्यावरण, गुलाल तथा रंग के कारण ही नहीं, आत्यन्तिक राग में अरुण हो उठते हैं -

दीपत विचित्र रासमंडल अखंड छवि

लाल लाल ह्वै रही तमालन की माल है।

द्रग प्रत कोर लाल अधर त मोर लाल

चोर चोर लाल कुंज अधिकि बिसाल है।

भनत ब्रदेस लाल रंग सौं दुकूल लाल

आभरन लाल लाल लाल बाल जाल है।

मंडित गुलाल सौं वितान लाल लाल भयौ

ग्वाल बाल लाल औ गुपाल लाल लाल है।।[2]

।2। पिचकारी द्वारा रंग-वर्षा -

पारस्परिक अनुराग में रंजित नायक और नायिका होली अथवा फाग के अवसर पर एक-दूसरे पर रंग-वर्षण कर आनन्दोल्लास की अनुभूति करते हैं। नायक की पिचकारी से निसृत सुगंधमिश्रित रंग नायिका के कच-कुचों पर तो पड़ता ही है - इसी मध्य उन दोनों के विशाल नेत्रों की कोरें उनके वक्षस्थलों को भेदकर हृदयों तक प्रविष्ट हो जाती है -

ललित ब्रदेस रंग अमित सुगंध जुत

छकि पिचकारि कच कुच पर लाल की।

चुर चुर जात है निसंग दुरि दुरि जात

उर उर जात नोक नैनन बिसाल की।[3]

1- विस्वसकरन - पद सं० ४९७
2- वही- पद सं० ५०४
3- वही- पद सं० ४८७

नैनन सौं नैन बोर बोर मन तोर तोर

कीनै तरबोर श्री किशोर रंग रंग सौं।[1]

होली के हुड़दंग तथा नायक के गुलाल-रंगवर्षण से कृत्रिमरूपेण परिश्रान्त नायिका भागी पर वह नायक की पहुंच से बाहर न जा सकी। फिर क्या था, रंग की बरसात ने उसे आप्लावित कर दिया। वह रंग की कीच में लाल होई पर वह आह्लादित है क्योंकि उसे इसी व्याज से नायक का सुखद स्पर्श प्राप्त जो हो गया-

भागी जब हेली कान्ह रंग भर मेली

गड़ब हदूद भर भेली जो अकेली भयो हाल है।

भागी कीच राती मैं हुलेस उतपाती धाती

आय परी छाती पर बृजपति लाल है।[2]

रंग-बिरंगी चूनरधारिणी तथा हर्ष और उमंगयुक्त बालाएं यद्यपि नायक के साथ एकाकार हो चुकी हैं पर इस स्नेहवश वे होली के सन्दर्भ में नायक पर कृपा करते हुए उसे मुक्त नहीं करतीं अपितु केसरिया रंग में नायक को आपादमस्तक सराबोर कर देती हैं-

कुसुम कुरंग रंग चूनर अनंग अंग

अंगन मैं सरस प्रदीपत अमंद कौं।

हरख उमंग सौं जुरी है बाल संग सौं

सुकेसर के रंग सौं भरे है नदनंद कौं।[3]

फाग-राग में आनंदित नायक, नायिका-समुदाय पर रंग वर्षा करने में विभिन्न प्रकारों की योजना करता है। कभी तो वह रंगयुक्त कुंकुमा उनके भाल पर मारता है तो कभी उनके उतुंग वक्षस्थल पर पिचकारी द्वारा लक्ष्य कर रंग-वर्षा करता है। इस लीला में वर्जनाओं की अवस्थिति नहीं -यहां निषेध नहीं, विधि ही विधि दृष्टिगत होती है-

मेलैं मूठ भेलैं रंग सखिन पठेलैं ठेलैं

पैठ पैठ मेलैं भरे आनंद उछाल मैं।

भाल हुलेस भर कुंकुमा सुभाल मारै

ताकि पिचकार मारैं जोबन विसाल मैं।

1- विश्वप्रकरन - पद सं० ४८८ 2- वही- पद सं० ४८९

3- वही- पद सं० ४९२

एकैं भरैं गाल एकै देत करताल चाड़ी

आसपास बाल लाल मंडित गुलाल मैं ।।[1]

रसखान का काव्यनायक ' छछिया भरि छाछ ' के निमित्त अहीर की छोहरियों के समक्ष केवल नाचता ही था पर फाग की माधुर्यमयी लीला में नायिका के प्रति रागोद्रेक तथा विशुद्ध अन्तरतम के अनुरोध से नायक नाचता ही नहीं है अपितु इससे और आगे बढ़कर गाते हुए नायिका को रिझाना भी पड़ता है -

साज ब्रजपाल वृषभानजा उताल ग्वाल

फौकत उछाल पिचिकारिन के जाल कौं ।

लाल कौं नचावत मचावत धमार धूम

गाल गुलचावत लगावैं कर ताल कौं ।

भनत कृदेस उड़ावत अबीर धूर

धूर करपूर लावैं परपूर भाल कौं ।

नेहि कौं रचावत बचावत गुलाल कुछ

द्रगन नचावत लचावत गुपाल कौं ।।[2]

प्रणयीजनों के इस आनन्दोल्लास की पूर्णता मृदंग, डप, झाँझ आदि वाद्ययंत्रों के साथ गायनादि में देखी जा सकती है -

बजत मृदंग डप झाँझ झनकारन सौं

गावैं फाग धावत बजावैं गोप तात हैं ।

मलत अबीर धूर राधका गुबिंद मुख

राधे मुख मलत गुबिंद सुखपात हैं ।

भनत कृदेस रंग परत सुरंग अंग

द्रगन कटाछन सौं करत निहाल हैं ।

सोभित गुलाल भरीं बदुखि छटा सी भासी

उमड़त आवत घटा सी बालजाल हैं ।[3]

१- विरुदावलकरन - पद सं० ४९८

२- वही- पद सं० ५०३

३- वही- पद सं० ५०२

होली के इस समग्र प्रकरण में स्वैर-विहार नहीं हार्दिकता है; परवशता नहीं स्नेहजन्य पावनता है; ऐहिकता की निकृष्टता नहीं उदात्तता है; वैयक्तिक सुखाभपरायणता नहीं लोक तथा संस्कृति की चिरापेक्षित प्रतिक्रियाओं की रमणीयता है। इन प्रसंगों पर दृष्टि-निक्षेप करने पर यह सहज ही प्रमाणित हो जाता है कि हृदयेश ने रीतिकालीन कवियों की परम्परा पर नर-नारियों का चारों ओर व्याप्त फाल्गुनोत्सवजनित हुड़दंग, नृत्य, वाद्य-यंत्र-वादन, अबीर-प्रक्षेप, व रंग की फुहार आदि का वर्णन किया है। अतएव यदि यह कहा जाय कि रीतिकालीन कवियों की तरह उन्होंने फागुन की मस्ती का पूर्ण तृप्ति के सहित आनंद लेकर उसी अनुभूति को अपने काव्य में अनुस्यूत कर युग-विशेष की रंगीनी का परिचय दिया, तो यह सत्य ही है। इसीलिए संक्षिप्त रूप में यह कहा जा सकता है कि फागुन का रसीला मौसम जैसा रीतिकालीन कविता में होली-क्रीड़ा के रूप में चित्रित हुआ वैसा चित्रण सम्भवतया भारतीय साहित्य के अन्तर्गत किसी भी युग की कविता में नहीं हो सका है। यदि कहीं है भी तो इतना रुचिपूर्ण और विशद नहीं है।[1]

।६। विविध

।क। आर्थिक एवं राजनीतिक चित्रण -

हृदयेश के काव्य में तत्कालीन आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालने वाले संकेत अथवा स्पष्ट कथन उपलब्ध होते हैं। उनके समय का राजन्य वर्ग सामान्यतया अनीतिपरायण था जिसकी छत्रछाया में नीच तथा मूर्खों को संरक्षण मिल रहा था। राजनीतिक संरक्षण में गुणात्मकता का आधार समाप्त हो गया था परिणामस्वरूप प्रवीण मनीषी जीविका अथवा उपार्जन के लिए दर-दर की ठोकरें खा रहे थे -

> मूरख बैठे मौज उड़ावें परवीनन पग छाला।
> भूपत कृपा करत नीचन पै कर अनीत प्रतिपाला।
> जबर घोर कलिकार को गुन को कौ न वाला।[2]

उपर्युक्त विवरण से यह ध्वनित होता है कि हृदयेश के समय का समाज चार वर्गों - राजन्य, सामन्त अथवा जागीरदार, मध्यम तथा निम्न - में विभाजित था। सामान्यतया राजन्य तथा सामन्त वर्ग के लोग उच्चस्थिति में थे। तृतीय या मध्यमवर्ग की स्थिति

१- रीतिकालीन काव्य पर संस्कृत काव्य का प्रभाव - डा० दयानंद शर्मा - पृ०९२

थी तो निम्नवर्ग के लोग जीविका के अभाव से त्रस्त थे। कवि ने राजन्य तथा सामन्तीय वर्ग के वैभव तथा विलासों की चर्चा प्रभूतरूपेण अपने काव्य में की है। इस कोटि के लोग षट्रसयुक्त भोजन, पय-पान, मेवा भक्षण करके शीतापनयन करते थे।[1] साधारण परिवारों के व्यक्ति सम्भवतः आर्थिक कारणों से परदेश या विदेश जाते थे तथा वहाँ से सामान्यतया एक वर्ष व्यतीत करके वापस आते थे।[2] दिन डूबने के अनन्तर अन्य दूरस्थ स्थान की ओर न जाने की परम्परा सम्भवतः आर्थिक तथा शारीरिक सुरक्षा के कारण रही थी।[3] कवि स्वयं भी आर्थिक विडम्बना से त्रस्त था। पौरोहित्य कर्माश्रित तथा काव्यरचना निरत कवि को भी महाराजा गंगाधरराव से चार आदमियों की लाग हेतु जो याचना करनी पड़ी थी, उससे तत्कालीन आर्थिक स्थिति तथा राजनीतिक अनुदारता अथवा उदासीनता की एक झलक दृष्टिगोचर हो जाती है।[4]

।ख। <u>गुण-ग्राहकता -</u>

कवि के अन्तःसाक्ष्य में उपलब्ध विवरणों से ज्ञात होता है कि वह समाज अथवा उसके विशिष्ट वर्ग की गुण-ग्राहकता के सन्दर्भ में असन्तुष्ट था। उसने दानियों की कृपणता तथा पात्र-कुपात्रविचारहीनता का उल्लेख किया है। कवि के क्षोभ के अन्य कारण थे - मूर्खों का समादर, असामाजिक तत्वों का समाज में सम्मान, साधुस्वभावसम्पन्न सज्जनों की उपेक्षा। इस सन्दर्भ में ऊपर दत्त संकेतों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि उनके युग में कवियों एवं कलाकारों का अपेक्षित सम्मान नहीं होता था। बिहारी जहाँ स्व-युगीन अगुणग्राहकता से त्रस्त होकर 'गुलाब के इत्र को हाथ में लेकर सूंघने-सराहने वाले ग्रामीणों के प्रति क्षुब्ध हो जाते हैं'[5] तो कविहृदयेश भी 'या सखि ग्राम गमार कौं अब कौन कौ राग धमार सुनावै'[6] कहकर स्थिति की अपरिवर्तनशीलता की पुष्टि करते हैं। कवि के विभिन्न पदों में उपलब्ध 'गाँव' तथा 'नागर' के संकेतों के आधार पर यह ध्वनित होता है कि उस युग में भी नगरीय तथा ग्रामीण पार्थक्यजनित भेद-दृष्टि अनुदित चौड़ी होती जा रही थी।[7] उनकी नायिका का उपनायक तक नगर से ही संबद्ध है ग्राम से नहीं। ग्रामों

१- विश्वकसकरन - पद सं० ५५७   २- वही- पद सं० २४८

३- वही- पद सं० ८३   ४- वेत्रवा-वाणी - वर्ष २ अंक २ पृ० १४

५- बिहारी-रत्नाकर - पद सं० २५५   ६- विश्वकसकरन - पद सं० १४४

७- वही - पद सं० ७८

और नगरों में संबंध अवश्य दृष्टिगत होता है जिससे ग्रामीणों का नगरों की ओर और नागरिकों का ग्रामों की ओर प्रयाण करते थे[1] पर कवि की नायिका ऐसी स्थिति में भी नगर में ही रहती थी।[2] नायिकाएँ "नागर नगर नर" की ही अपेक्षा करती थीं। उनकी नायिका राधा, बिहारी की नायिका की तरह "नागरी" है।[3]

।ग। आमोद-प्रमोद एवं विलास-सजावट -

कवि के युग की विलासिता एवं वैभवप्रियता के सन्दर्भ में बहिःसाक्ष्य को आधार मानकर पूर्व में विवेचन किया जा चुका है, यहाँ अन्तःसाक्ष्य के आधार पर ही तत्कालिक अवस्था का चित्रण हमारा प्रतिपाद्य है। कवि ने नायिकाओं, उनकी सखियों, दूतियों तथा सपत्नियों के जो चित्र उत्कीर्ण किए हैं, उनमें ऐसे व्यापारों की संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट झाँकी देखने को उपलब्ध हो जाती है। इन विलास-व्यापारों में मदिरा-पान का कहीं भी संकेत नहीं मिलता जब कि बिहारी ने ऐसे उल्लेख किए हैं।[4] राज-प्रासाद और धनिकों के कांचनिर्मित गृह दीपकों की धवल ज्योति से जगमगाते रहते थे।[5] इस जगमगाहट से ही प्रेरणा लेकर सम्भवतः कवि ने अपने काव्यग्रन्थ में नायिका की ज्योतिष्मानता का उल्लेख किया है।[6] श्रीमन्तों के यहाँ पर खस के कपाटों का प्रयोग होता था जिनमें ग्रीष्म के उत्ताप का शमन किया जाता था।[7] ताप निवारणार्थ बरफ, खस तथा पर्यंक के नीचे गुलाबजल की कीच का प्रयोग होता था। इन साधनों के अतिरिक्त तापजन्य स्वेदबिंदुओं के परिशमन के लिए रत्ननिर्मित पंखों का मंद-मंद चालन सम्पादित किया जाता था।[8] पुनः तहखानों की शरण ली जाती थी जिनमें विलास-लीलाएँ होती थीं।[9] ऐश्वर्यमान् व्यक्ति खस की टट्टियों पर जलकी जगह अतर। इत्र। उलीचते थे। इस वर्णना में अति-शयोक्ति प्रतीत होती है। ऐसा सम्भव है कि जल में सुगंधि हेतु थोड़ी मात्रा में इत्र मिला दिया जाता रहा हो। ग्रीष्मापनयनार्थ चन्दन के प्रयोग के अतिरिक्त जुही तथा माधवी के पुष्प तथा उनके द्वारा निर्मित हार प्रयोग होते थे। अगर-गंध तथा गुलाब मिश्रित जल को फव्वारे के रूप में प्रयुक्त कर नायक-नायिका शीतोपलब्धि करते थे। मनोरंजनार्थ अति

१-विरुववसकरन - पद सं० ७८ २- वही- पद सं० ८१ ३- वही- पद सं०१२९

४-बिहारी का काव्य-लालित्य -डा० रमाशंकर तिवारी - पृ० १९०

५-विरुववसकरन - पद सं० १३७ ६- वही - पद सं० २२१ ७-वही- पद सं०४२२

८-वही- पद सं० ४९८ ९- वही- पद सं० २९८

विचित्र चित्रों की योजना मिलती है। श्रीमन्तों की सेवा में अनेक परिचारिकाओं की उपस्थिति रहती थी जो विभिन्न आरामदायक तथा विलास के उपादानों के द्वारा उनकी पुष्टि-तुष्टि करती थीं।[1] खसनिर्मित फर्श, मखमली सेज पर पुष्पों का उपयोग,[2] चमेली के पुष्पों के गजरे अन्य ग्रीष्मशमनोपचार थे। कवि का नायक तो इसी सन्दर्भ में नायिका की आँख में गुलाब छिड़क देता है।[3] कर्पूर तथा अष्टगंध का योग[4] भी विलास के क्रम में पाया जाता है। ताम्बूल-भक्षण भी ग्रीष्मोत्तापशमन में अपना विशिष्ट स्थान बनाये हुए था।[5] रत्न-जटित पर्यंक पर भी पुष्प-शैया की सरस योजना भी युग की विलासवृत्ति की सुष्ठु परिचायिका है।[6] नृत्य तथा संगीत का भी इस क्रम में महत्त्वपूर्ण स्थान था। जल-केलि तथा तदन्तर्गत विलासलीला युग की रसिकता की परिचायिका है। क्रीड़ा-तड़ाग उस युग की रंगीनी एवं वैभवप्रियता की स्पष्ट व्यंजना करते हैं।[7] विभिन्न राग-रागिनियों का[8] आश्रय लेकर गीत गाना तथा झूला झूलना नारियों के प्रमुख मनोरंजन के साधन थे। वाद्ययंत्रों में प्रमुखतया सितार,[9] मृदंग, डफ तथा झाँझ[10] का उल्लेख मिलता है। हिंडोरे में कंचन की डोरें लगी होने का संकेत उपलब्ध होता है जिसमें अतिशयोक्ति ही समझनी चाहिए। शीत-निवारणार्थ दुशालों गुलगुले गद्दों, गलोपलों का प्रयोग होता था तथा अनेक 'मगद' षट्रसयुक्त भोजन, दुग्धपान, मेवा तथा तमालपत्र उदर-तृप्ति अथवा पूर्ति के साधन थे।[11] मधुर भोज्य पदार्थ और मिष्ठान्न के रूप में खीर,[12] कलाकंद तथा बरफी का विवरण प्राप्त होता है।[13]

।घ। परिधान, प्रसाधन तथा अलंकार -

कवि वृन्दयेश की रचना में बिहारी की सतसई की परम्परा के अनुधावन पर नवल नागरियों का ही साम्राज्य है।[14] यहाँ उच्चवर्गीय नारियों की शृंगार-सज्जा के बहुमूल्य उपादान उपलब्ध होते हैं। ये नारियाँ प्रायः श्वेत बादला की साड़िया धारण

1- विरहविलास - पद सं० ४१९ 2- वही- पद सं० ४२२
3- वही- पद सं० ४२३ 4- वही- पद सं० ४२७
5- वही- पद सं० ४१९ 6- वही- पद सं० १९२
7- वही- पद सं० ३८० 8- वही- पद सं० ४३१, ४०३, ३४४
9- वही- पद सं० १०९ 10- वही- पद सं० ४०२
11- वही- पद सं० ४३७ 12- वही- पद सं० १३४
13- वही- पद सं० ९।४५० 14- वही- पद सं० १२९

करती हैं जिनकी किनारियों पर हीरे जड़े होते थे।[१] कुछ नारियां जरतार भी साड़ियां भी पहनती थीं। बादला की ओढ़नी भी वे धारण करती थीं।[2] कुसुम्भी रंग की इजार[३] तथा हरी अथवा कुसुम्भी रंग की[४] लाल[५] तथा कंचुकी[६] का भी प्रयोग उनके द्वारा किया जाता था। नैनों में तथा कपोल पर वे अंजन[७] लगाती थीं जो आकर्षक होने तथा अलंकरण की वस्तु होने के साथ-साथ कुदृष्टि का बाधक भी है। बेंदी[८] अथवा बेंदा[९] का प्रचलन भी उस युग में किया था। भाल पर बिंदुली अथवा सेन्दुर की सुरकी,[१०] कान में तरौना तथा शीशफूल[११], नाक में नथ अथवा नथुनी,[१२] और मांग के प्रसाधन में ये रमणियां मोतियों का प्रयुक्त करती थीं।[१३]

वक्षोदेश अथवा हृदय को सुशोभित करने का प्रमुख आभरण हार था जो मालती के फूलों का,[१४] गुंजा का,[१५] हीरों का,[१६] मोतियों का[१७] अथवा गजमुक्ताओं[१८] का होता था। मानवती नायिका अपने आक्रोश के प्रकटीकरण हेतु गुंजाहार धारण करती थी। मणियों तथा गजमुक्ताओं का हार पहनने वाली नारियां उच्चवर्गीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती थी; पुनः गुंजा का हार पहनने वाली नायिकाएं सम्भवतः ग्रामीण क्षेत्र से संबद्ध थी; मालती के पुष्पों के हार धारण करने वाली नायिकाएं वे हैं जिनकी आर्थिक दशा अच्छी नहीं है अथवा जो नायक-साहचर्य से अपनी स्थिति अनुकूल अथवा संतोषजनक बनाना चाहती है। अगर का प्रयोग सम्भवतः केशों को सुगंधित रखने हेतु होता था, अंगराग तथा कपूर-पराग[१९] शारीरिक सुगंधि की अभिव्यक्ति के साधन थे। चन्दन तथा इत्र का प्रयोग समग्र शरीर को सुगंधित रखने हेतु होता था।[20] हाथ की कलाई के लिए हीरों से जटित हेम-कंगन,[21] गजरे[22] कटि में किंकिनी,[23] पैरों पर पायल, नूपुर,[24] पायजेब तथा बिछुआ,[25] करांगुलियों के लिए हीरे

१– बिरहबसकरन – पद सं० 228　　2– वही– पद सं० 226 व २९४
3– वही– पद सं० ५७　　४– वही– पद सं० १०९
५– वही– पद सं० ८　　६– वही – पद सं० ५५८　　७– वही– पद सं० 23
८– वही– पद सं० ११५　　९– वही– पद सं० ४३　　१०– वही– पद सं० ३८५
११– वही– पद सं० ११३　　१२– वही– पद सं० ३८९　　१३– वही– पद सं० 228
१४– वही– पद सं० ८४　　१५– वही– पद सं० १४१　　१६– वही– पद सं० १५८
१७– वही– पद सं० ९०　　१८– वही– पद सं० ११३　　१९– वही– पद सं० ३११
20– वही– पद सं० १९०　　२१– वही– पद सं० १८८　　२२– वही– पद सं० १८८
२३– वही– पद सं० ११३　　२४– वही– पद सं० १८८　　२५– वही– पद सं० ५६१

की अंगूठी[1] का प्रयोग दृष्टिगत होता है।

शृंगार-प्रसाधनों में अंजन[2], चन्दन, महावर तथा जावक का[3] प्रयोग होता था। मुख के लिए पान, दाँतों के लिए मंजन तथा मीसी[4], समग्र शरीर के लिए फुलेल[5], गुलाब जल[6] अष्टगंध तथा कपूर[7], अंगराग[8], चन्दन[9], अतर[10] आदि प्रयुक्त होते थे। धनिक परिवारों की रमणियाँ कपूर, अंगराग, चन्दन तथा गुलाब जल का प्रयोग करती हुई चित्रित हुई हैं। `विस्वबसकरन` काव्यग्रन्थ में षोडश-शृंगारों के सन्दर्भ में किसी विशेष शृंगार-विधि का विशिष्ट निरूपण नहीं हुआ है।

पुरुष-वेशभूषा का कोई उल्लेखनीय वर्णन उक्त ग्रन्थ में नहीं उपलब्ध होता। यत्र-तत्र `बृजराज`, `नंदनंद`, `लाल`, `नंदलाल`, `कान्हर`, `गुपाल`, `मनमोहन`, `जसमतसुत` `नवरसराजमहाराज`, `हरि`, `नंदसामल`, `बृजनाथ`, `बृजठाकुर`, `बृजनन्दन`, `नंदकिशोर`, `घनस्याम`, `स्याम`, `कान्ह`, `बनमाली`, `गुविंद` का उल्लेख हुआ है – ये सभी रीति-कालीन शृंगारी नायक के विभिन्न अभिधान हैं। इन अभिधानों के अनुरूप ही नायक की वेशभूषा भी उसी परम्परानुमोदित `क्लासिकल` साँचे में ढली हुई है। फिर भी इतना तो स्पष्ट ही हो जाता है कि उच्चवर्गीय व्यक्ति अंगुली में हीरे की अंगूठी, कानों में कुंडल तथा अंगों में सम्भवतः पीतपट तथा सिर पर पाग धारण करते थे।

जिस प्रकार के विवरण के आधार पर `विस्वबसकरन`-कालीन समाज का चित्र उत्कीर्ण किया है, उस प्रकार के उल्लेख अन्य प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं – इस हेतु उक्त विवरण की सत्यता में अविश्वास करना उचित नहीं है क्योंकि किसी जाति के जीवन आचार-विचार, इत्यादि में परिवर्तन की शृंखला ढूंढना आसान काम नहीं है। भारतवर्ष के संबंध में तो इस प्रकार का प्रयास प्रायः असफल ही सिद्ध होगा। वास्तविकता यह है कि जब किसी राष्ट्र के जीवन में कोई व्यापक एवं मौलिक सांस्कृतिक अथवा आर्थिक विप्लव घटित होता है, तभी उसके जीवन-क्रम अथवा मानसिकता में परिवर्तन होते हैं। भारतवर्ष में ऐसे विप्लवों के घटित होने का साक्ष्य इतिहास से प्राप्त नहीं है। इसी कारण जीवन या चिन्तन की सामान्य ~~प्रणा~~ प्रणालियों में भी यहाँ कोई उल्लेख्य परिवर्तन, अल्पकाल

१– विस्वबसकरन – पद सं० ११६   २– वही– पद सं० ३८४   ३– वही– पद सं० २०७
४– वही– पद सं० ४६०   ५– वही– पद सं० २०७   ६– वही– पद सं० ४२८
७– वही– पद सं० ४२७   ८– वही– पद सं० ३११   ९– वही– पद सं० ४२७
१०– वही– पद सं० ४२२

के सन्दर्भ को छोड़कर, प्राय: नहीं मिलेंगे।[1] अतएव, यदि उपर्युक्त विवरण अथवा उसके अधिकांश तथ्य एवं उपादान अन्य प्राचीन ग्रन्थों अथवा समकालीन ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं या हो सकते हैं तो इसमें शंका करना उचित नहीं और इस आधार पर विश्वप्रकाश में आकलित जीवन-चित्र हृदयेश की युग की व्यंजना कराता है, इसमें सन्देह के लिए अवकाश नहीं।

निष्कर्ष -

कवि हृदयेश के युगीन समाज-चित्रण में तत्कालीन विघटित अथवा विद्यमान सामाजिक मूल्यों की अभिव्यंजना है। युगीन नैतिक स्तर की गिरावट, परिव्याप्त भ्रष्टाचार, वर्णाश्रमधर्म का अधिकांशत: लोप, धर्म का ह्रास तथा विपर्यास, अन्ध-विश्वास कवि की लेखनी से उद्घाटित हुआ ही है, जपादि की दुर्विनियोगता, आडम्बरपरायणता, मिथ्याचार को भी अभिव्यक्ति मिली है। युगीन लोकचित्रण में कवि का कथ्य रहा है - नारियों का शिवपूजन, बालाओं का शील-संकोचचित्रण, महावरयोजना, हिंडोला आदि। शासनचित्रण के अन्तर्गत एक तरफ तो आश्रयदाताओं की प्रशंसा है तो अन्य ओर राजपुरुषों के भ्रष्टाचार की भर्त्सना। राज्य के पार्श्ववर्ती क्षेत्रों के शासक तथा उनकी गुणात्मकता से कवि संवेदनसम्पृक्त है। इसके साथ ही समकालीन आर्थिक असमानता, राजन्य वर्ग की अनैतिकता, वैभवविलासप्रियता, आमोद-प्रमोद, सजावट आदि की वर्णना के साथ साथ भारतीय सांस्कृतिक पर्व होलिकोत्सव की आह्लादकता कौशलतः अभिव्यंजना है।

सप्तम अध्याय

हृदयेश की अन्य कवियों से तुलना एवं प्रदेय

काव्यालंकारकार का सुदृढ़ अभिमत है कि ज्ञातव्य विषयों के सम्यक् ज्ञान के बिना काव्योद्भव होने वाला नहीं[1]। अन्य शब्दों में – भले ही प्रतिभा तथा अभ्यास का साहाय्य ग्रहण किया गया हो, व्युत्पत्ति के अभाव में काव्यरचना नहीं हो सकती। परवर्ती काव्यशास्त्रियों ने इसीलिए काव्य के समुल्लास में प्रतिभा, व्युत्पत्ति तथा अभ्यास का समुदित योग स्वीकार किया है[2]। पूर्वकालीन तथा समकालीन काव्यों का अवगाहन व्युत्पत्ति के अन्तर्गत परिगणित होता है। यह साहित्यिक व्युत्पन्नता एक तरफ तो कवि की अभिरुचि का निर्माण करता है तो दूसरी ओर सम-सामयिक प्रवृत्तियों के अनुसार काव्यरचना हेतु प्रवृत्त करती है। इस तत्व की अपरिहार्यता को स्वीकार – कवि तथा महाकवि–दोनों को ही करना पड़ता है। तुलसी के `नानापुराणनिगमा-सम्मत` में यह अपरिहार्यता प्रतिबिम्बित है तो अन्य सामान्य कवियों की कथा क्या।

कवि यद्यपि मनोयोगी होता है तथापि वह आग्रही नहीं बन सकता। वह भले ही दैव-प्रदत्त नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से मंडित हो, मधुकरसदृश यत्र-तत्र उपलब्ध मधुरूप भाव का संचयन कर अपने काव्यग्रन्थ को सहृदयसंवेद्य बनाता है। परन्तु किसी विशिष्ट भाव का यथावत् अनुकरण अथवा प्रस्तुतीकरण उसका विरलतम धर्म है। कहीं वह पूर्व-कविप्रयुक्त सूक्ष्म भाव को रूपों से पल्लवित करता है, कहीं भाव को परिमार्जित अथवा परिष्कृत कर स्वकाव्योपयोगी बनाता है। यह भ्रमरवृत्ति हेय नहीं प्रशस्य है; त्याज्य नहीं स्पृहणीय है, उपेक्षणीय नहीं वरणीय है। यही कारण है कि संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने भावापहरण की पुष्टि की है और इस प्रक्रिया को प्रयुक्त करने वाले कवियों को `सुकवि` की संज्ञा से समलंकृत किया है[3]। संसार के बड़े-बड़े कवियों ने भी अपने पूर्ववर्ती कवियों के भावों को निस्संकोच अपनाया है। कविकुलगुरु कालिदास ने संस्कृत में, महामति शेक्सपियर ने अंग्रेजी में तथा भक्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने हिन्दी भाषा में जिन अनोखे काव्यों की रचना की है, उसमें उन्होंने अपने पूर्ववर्ती

१–काव्यालंकार – रुद्रट – १।१२
२– काव्यप्रकाश – मम्मट– १।३ की वृत्ति
३–ध्वन्यालोक– आनन्दवर्धन –

कवियों के भाव अवश्य लिए हैं। अध्यात्म रामायण, हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव नाटक, वाल्मीकि रामायण, श्रीमद्भागवत तथा ऐसे ही अन्य और ग्रन्थों के साथ तुलसीदास की रामायण पढ़िए तो शंका होने लगती है कि इस सुकवि-शिरोमणि ने कुछ अपने दिमाग से भी लिखा है या नहीं।[1]

कवि हृदयेश के काव्य में देखे गये एतादृश साम्य के कारण उन्हें 'तुक्कड़' या 'चोर' कहना संगत न होगा क्योंकि काव्य नूतन चमत्कार के कारण ग्राह्य होता है भले ही उसमें पूर्ववर्ती कवियों का भाव या कथ्य प्रतिबिंबित हो रहा हो। प्रस्तुत कवि पर यदि एक ओर पूर्ववर्ती कवियों - केशव, रसखान, बिहारी, मतिराम, तोष आदि का प्रभाव दृष्टिगत होता है तो अन्य ओर रामभक्तकविकुलकमलदिवाकर तुलसी का आभार भी सुव्यक्त है। परवर्ती कवि ग्वाल पर उनका प्रभाव पड़ा है। ऐसे साम्य अथवा प्रभाव के प्रस्तुतीकरण के अनन्तर उपर्युक्त कवियों के विशिष्ट कथ्यों के सन्दर्भ में यत्र-तत्र तुलनात्मक अध्ययन इस अध्याय का विषय है।

केशव और हृदयेश

हिन्दी के प्रथम आचार्य केशव की 'रसिकप्रिया' के कुछ पदों की छाया हृदयेश की कविता में देखी जा सकती है। शब्दालंकार योजना के अन्तर्गत 'अच्छ' शब्द की आवृत्ति अवेक्षणीय है -

अन्तरिक्ष गच्छनीनि अच्छनी सुलच्छनीनि
अच्छी अच्छी अच्छनीनि अति रमनीय है।

—— रसिकप्रिया पद सं० ४।११

आछी भांति लच्छ कर दीन दुख गच्छ कर
तौ बिना अपच्छन कौ पच्छ कौन कर है।

——विश्वबसकरन - पद सं०४४६

दसगुण रच्छनै प्रतच्छ गुन लच्छ भच्छ
जान के बिलच्छ भयौ अवतार हर कौ।
देव दीन रच्छ कै त्रिलोक कौ अपच्छ जान
दसरथ दच्छ है उदोत कियौ घर कौ।

——विश्वबसकरन - पद सं०४७२

|2| मुख उसों बातें रहे जिय में पिय की भूख ।
धीराधीरा जानिए जैसी मीठा ऊख ।।

———रसिकप्रिया – पद सं0 3।64

दीपत ससी सी अंक भरत परी सी दोसी
सी-सी करै लागै कलाकंद बरफी सी है ।।

——विश्वकसकरन 1।460

नायिका के माधुर्य-वर्णन की वर्णना के स्थूल विकास में कलाकन्द के साथ यदि बरफी की योजना करके हृदयेश ने इसे परिणति दी तो कोई आश्चर्य की बात नहीं ।

|3| मेरोरै मनोरथ भागीरथ-रथ पाछै पाछै
डोलत गुपाल मेरो गंगा को सो पानी है ।

——— रसिकप्रिया 7।6

मानिनी अथवा केलि-कुपित नायिका को मनाने के लिए नायक द्वारा उसका अनुगमन मात्र हिन्दी के आचार्यों- कवियों को ही नहीं अपितु संस्कृत के कवियों को भी आह्लादकारी प्रतीत हुआ था । वेणीसंहारकार ने तो उक्त प्रसंग को मंगला-चरण के रूप मेंउपनिबद्ध करने में हर्षातिरेक का अनुभव हुआ होगा –

कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं
गच्छन्तीमनुगच्छतो ऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम् ।
तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्गते-
रक्षुण्णो ऽनुनयः प्रसन्नदयितादृष्टस्य पुष्णातु वः ।।

——— वेणीसंहार मंगला0 1

सुन्दरम् के कवि सूर भला एतादृशी योजना में क्यों पीछे रहते –

पीछे ललिता आगे स्यामा, आगे पिय पग फूल बिछावत जात

—— सूरसागर पद सं0 3234

राधिका पाय धरै जित ही तित ही पौ सामसौ फूल बिछावत ।

—— विश्वकसकरन पद सं0 206

केशव की अपेक्षा हृदयेश के कथन में न केवल स्वच्छता अपितु रमणीयता भी है । सूर की अपेक्षा हृदयेश के कथ्य में परिस्थिति का याथातथ्य चित्रण अधिक है जो 'जित-तित' से व्यंजित है ।

।४। खाँड कछू न पियै कछू केसौ हुवै न कछू गर केरों अरैरा ।

—रसिकप्रिया पद १।२७

नीर पियै नाहि छीर पियै नाहि पीर कही नाहि पीर बतावत ।।

—विस्ववसकरन पद १३५

केशव तथा हृदयेश के उपर्युक्त दोनों प्रसंग क्रमशः नायक तथा वियोगिनी बाला के विप्रयोगों के सन्दर्भ में है। कवि हृदयेश के कथ्य में भावुकता तथा सहृदयता अधिक है क्योंकि उनकी मुग्धा बाला का आहार तो सर्वथा छूट ही गया है केवल पेय पदार्थों को उदरस्थ कराने के ही प्रयास किए जा रहे हैं। परन्तु वियोग में कृश बाला ऐसी सामग्री को भी ग्रहण करने में समर्थ नहीं है। पुनः लज्जा के कारण वह अपनी सखियों से कुछ कह भी नहीं सकती।

।५। देखी है गुपाल एक गोपिका मैं देवता सी
सोने से सलोनी बास सोंधे से सुहाई है।
सोभा ही सुभाउ अवतार लियो बनस्याम
किधौं यह दानवीय कामिनी ह्वै आई है।
देखी केशव मानवी न दानवी न होइ ऐसी
मानवी न हाव भाव भारती पढ़ाई है।

————रसिकप्रिया पद सं०३।५२

भनत हृदेस नंदलाल हिति पालन कौं
राधिका पधारी प्यारी परत न जान है।
दीप कौं निसान है कि चंचला को बान है
कि हीरन की खान है कृसान है कि भान है।।

————विस्ववसकरन पद सं०२२६

केशव का चित्र समग्र तथा संश्लिष्टता से युक्त है। अपने खण्ड चित्र में हृदयेश ने केशव का प्रभाव तो अवश्य ग्रहण किया है पर उसे पूर्णता नहीं दे पाये। फिर भी उन्होंने थोड़े में बहुत कहने का जो प्रयास किया है वह दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता।

।६। चित्र देखे मित्र के मिले को सुख पाइहै।

———— रसिकप्रिया पद सं०४।९

मित्र मनमोहन कौ किधौं चित्रकार चित्र
देख देख चित्र भई चित्र के समान है।

———विस्ववसकरन पद सं० २१०

हृदयेश के चित्रण में मात्र चित्रकाव्ययोजना के प्रति ही आग्रह नहीं, अपितु नायिका के देहाध्यास-राहित्य का भी संकेत है जो कृष्ण-दर्शन के परिणामस्वरूप संभव हुआ है।

।७।   हँसत कहत बात फूल से भरत जात।

—— रसिकप्रिया पद सं० ३।४

सहज हँसन मन सुमन भरी दरै।

अमृत वचन मृदु फूल से भरत हैं।

——विरवक्सकरन – पद २१७, २४४

नायिका की मधुर बातों के लिए कवियों ने फूल का उपमान प्रयुक्त किया है। हँसते समय नायिका के `मुख से फूल झड़ना` भी रूढ़ प्रयोग है। केशव इसी कारण नायिका-मुख से फूल झड़वाते हैं। तुलसी भी इसे प्रयुक्त कर चुके हैं-

बाउ कृपा मूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला।

रामचरितमानस-बाल० २८०।४

कविमतिराम नायिका की हँसी के प्रसंग के साथ पुष्पविशेष का उल्लेख कर अपने कथ्य को विशिष्ट बनाते हैं -

हँसत बाल के बदन में यों छबि कछू अतूल।

फूली चंपक बेलि तें झरत चमेली फूल।।

——ललित ललाम दो० २०३

।८।   कहि केशव सेवहु रसिक जन नवरसमय ब्रजराज नित।

—— रसिकप्रिया १।२

नवरसराज महराज गुनसेज साज

लाज ब्रजराज लगे होतल कपट कै।

——विरवक्सकरन पद सं० ६२

दोनों कवियों के प्रसंगविधान भिन्न हैं। केशव ने रसिकों द्वारा नवरसमय कृष्ण की सेवा का कथन किया है तो हृदयेश की ऊढ़ा नायिका नवरसाधिराज की सेवा आलिंगन द्वारा सम्पादित करना चाहती है। `नवरसराज` विशेषण के ग्रहण में आदान की सम्भावना की जा सकती है।

बिहारी और हृदयेश

बिहारी शब्द और अर्थ की चारुता को पकड़ने तथा उसको अभिव्यक्त करने का जो कौशल बिहारी को प्राप्त है, वह अन्य कवियों में विरल है। `गागर में सागर` भर देने के भगीरथप्रयास का ही यह सुपरिणाम है कि अल्प रचना के होते हुए भी वे

महाकवि हैं। डा० नगेन्द्र के अनुसार वे कवियों के भी कवि हैं। .....उनके दोहे साहित्य-गोष्ठियों के शृंगार बन गये थे।[1] बिहारी तथा हृदयेश में दृष्टिकोण विषयक पर्याप्त पार्थक्य है। हृदयेश में यदि रागात्मकता की सघनता है तो बिहारी की दृष्टि भाव, अलंकार तथा उक्ति-वैचित्र्य की अभिव्यंजना की ओर है। फिर भी हृदयेश ने बिहारी के काव्य का पारायण किया था। बिहारी की छाया-प्रतिच्छाया उनके काव्य में देखी जा सकती है -

(१) मेरी भव-बाधा हरौ राधा-नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परै स्याम हरित दुति होइ।।
— बिहारी सतसई -१

डार गलबाँई रख देहि की परत छाईं
हरी हरी ह्वै दीप आपु के दरस तैं।
रूप मैं अगाधा प्रानपति हित साधा कर
मैंट मोर बाधा राधा नागर सरस तैं।
——विश्वप्रकाश पद सं० १२९

उपर्युक्त दोनों ही प्रसंग-विधान भिन्न है। प्रथम में यदि नमस्कारात्मक तथा वस्तु-निर्देशात्मक मंगलाचरण है तो अन्य में मानिनी राधा को दूती अथवा सखी द्वारा मनाने तथा कृष्णाभिमुख करने का चित्रण है। बिहारी के भाव को हृदयेश ने शृंगारिक सन्दर्भ में ग्रहण कर उसे आलम्बन तथा उद्दीपनात्मक पृष्ठभूमि भी दी है। बिहारी की स्वकीय बाधा का अन्तरण दूती की बाधा के रूप में हुआ है, जिससे उसकी सहृदयता व्यंजित होती है। `रूप मैं अगाधा` कथन से नार्योचित स्वाभाविक रूप-प्रशंसा तथा `प्रानपति हित साधा` से प्रियतम के प्रति उन्मुखीभवन का जो आग्रह है, उससे कृष्ण के प्रति राधा की अनुकूलता सम्भावित है।

(२) पत्रा ही तिथि पाइए वा घर के चहुं पास।
नितप्रति पून्यौ ही रहत आनन ओप उजास।।
—बिहारी-सतसई पद७३

चंद मदि उन्नौं मन बारक की सुनौं रहै
निसदिन पूनौं घर दूनौं दरसौ करै।
—— विश्वप्रकाश - पद सं० २०३

बिहारी के पद में यदि उक्ति-वैचित्र्य है तो हृदयेश के कथन में मुग्धा स्वाधीनपतिका के आन्तरिक एवं बाह्य सौन्दर्य का उपस्थापन है जिससे अपेक्षित रसानुभूति होती है।

१- देव और उनकी कविता - डा० नगेन्द्र - पृ०२८२

बिहारी की दृष्टि नायिका के मुख पर है तो हृदयेश सर्वांग-चित्रण के प्रति सचेष्ट है पर आलंकारिकता को विस्मृत कर नहीं।

।3। तजि तीरथ हरि राधिका तन दुति करि अनुरागु।
जिहिं ब्रज-केलि-निकुंज मग पग पग होतु प्रयागु।।
——बिहारी सतसई-201

राधे पायजेब उत नूपुर मधुर स्याम
उत बनमाल इत मोतिन की माल है।
नीलपट सोहै छटिकीली उत छब पीत पट
मंडित मुकुट इत बेंदा लाल भाल है।
भनत हृदेस भानजा के तीर विहरत
भुज ललकान गरें गलबत बाल है।
दोही प्रेम पग पग उमग उमग छबि
पग पग मग होत जगमग जाल है।।
——विश्ववसकरन पद सं० 479

बिहारी के छन्द में यदि अधिक व्यंजकता है तो हृदयेश के कथ्य में रति के आलंबनादि की गत्यात्मकता है। समग्र रूप में यदि देव रति रूप भाव को दृष्टि से ओझल कर दिया जाय तथा 'प्रयाग' पद को हटा दिया जाय तो हृदयेश का छन्द बिहारी के दोहे का विशद भाष्य-सा प्रतीत होता है।

।4। पर्यो जोर विपरीत रति रूपी सुरत-रनधीर।
करति कुलाहलु किंकिनी गह्यौ मौन मंजीर।।
——बिहारी सतसई-121

रति विपरीत रची सुन्दर अभीत प्रीत
आन पिया के पैर दिपत कनक तैं।
+ +
रूपकर किंकिन की सबद असेष होत
चुप कर बैठ रहे बिछुवा भनक तैं।
——विश्ववसकरन पद सं० 2। 461

।5। झमकि चढ़ति उतरति अटा नैंकु न थाकति देह।
भई रहति नट की बटा अटकी नागर नेह।।
——बिहारी सतसई 184

देखन की चित चाहि हृदेस लला छबि नैन छाय रई है।
आवत धावत जात अटान बटा नट की बर बाल भई है।।
——विश्ववसकरन पद सं०180

।६।　　　　पिय-बिछुरन कौ दुसह दुख हरखु जात प्यौसार।

—बिहारी की सतसई-पद्मसिंह शर्मा-
पृ० १२०

सखि मायके जात कौ है सुख री
　　　　पिय के बिछुरे कौ महा दुख री ।।

—विश्ववसकरन पद सं० ११७

।७।　　　　तपन तेज तपु तापि तपि अतुल तुलाई माँह।
　　　　सिसिर सीत क्यौं हुं न घटे बिनु लपटे तिय नाँह।

—बिहारी सतसई -३४३

छिपिट परे हैं जुग लिपट दुसालन मैं
　　　　लिपट विचित्र तहाँ माउन्त कहत ना।
प्रज्वलत ज्वाल तूल सरस दुकूलन
　　　　बिछाय मखतूल फूल बनत कहत ना।
भनत हृदेस बाल दीपक प्रकास दास
　　　　पास ते विलास तास पास कौ महत ना।
लागत प्रिया के हिय जागत मनोज सीत
　　　　भागत उरोज धाक लागत रहत ना ।।

—विश्ववसकरन पद सं० ५५७

बिहारी की परिगणना पद्धति का ग्रहण कर सम्भवतः हृदयेश ने उनके कथ्य को भाष्यकाराकारित किया है जिससे वह प्रभावी बन गया है।

।८।　　　　रहि न सकी सब जगत मैं सिसिर सीत के त्रास।
　　　　गरम भाजि गढ़ वै गई तिय कुच अचल मवास ।।

—बिहारी सतसई -३४४

डार गलबायें प्रिया अंक लपटायें पायें
　　　　सीत जात उभिरत उरोज उर लायें तैं ।।

—विश्ववसकरन - पद सं० ५५८

।९।　　　　वे न इहाँ नागर बढ़ी जिन आदर तो आब।
　　　　फूल्यौं अनफूल्यौ भयौ, गंवई गाम गुलाब ।।

—बिहारी सतसई - ४३८

या सबि ग्राम गमार की अब कौन कौ राग धमार सुनावै ।।

—विश्ववसकरन - पद सं० १४४

बिहारी ने यदि लक्ष्यसिद्धि में अन्योक्ति का आश्रय लिया है तो हृदयेश ने गणिका प्रोषितपतिका के विशिष्ट सन्दर्भ मे इसे घटित किया है। दोनों कथनों मे भावसाम्य है।

।१०।　　मैं यह तोही मैं लखी भगति अपूरब बाल ।
　　लहि प्रसाद माला जु भौ तनु कदम्ब की माल ।।
　　　　　　　　बिहारी सतसई-४७०

बाल प्रसून की माल हवै तन लाल कदंब की माल भयौ है ।
　　　　　　　　——— विश्वकरन- पद सं०५१

दोनों विषय भिन्न हैं । बिहारी की नायिका यदि परकीया लक्षिता है तो हृदयेश की प्रौढ़ा अधीरा । ` भौ तन कदंब की माल ` तथा ` कदंब की माल भयौ है ` के साम्य से हृदयेश पर बिहारी का सुस्पष्ट प्रभाव है ।

।११।　　टटकी धोई धोवती , चटकीली मुख-जोति ।
　　लसति रसोई कैंअगर जगर मगरदुति होति ।।
　　　　　　　　——बिहारी सतसई -४७७

अगर अगर दुति जगर मगर होत
　　डगर डगर थकि थाँधि रत आगरी ।
　　　　　　　　———विश्वकरन पद सं०२२४

।१२।　　अपने अंग के जानि के जोबन-नृपति प्रवीन ।
　　स्तन,मन,नयन नितंब कौ, बड़ौ इजाफा कीन ।।
　　　　　　　　—बिहारी सतसई-२

रैन भर हिय मैं हुलास की विकास होत
　　मंद मंद भास रैन हासहरसत है ।
सखिन के पास बैठ सुनत विलास रैन
　　उर मैं उरोजन उकास ससकत है ।
भनत हृदेस वेस गमन करी सौ रैन,
　　देख देख बाल लाल मन तरसत है ।
बढ़ुकि नितंब भये पीन दृग मीन रैन,
　　बचन प्रवीन कटि छीन दरसत है ।।
　　　　　　　　——— विश्वकरन पद सं०१६

बिहारी की मुग्धा नायिका के वर्णन में यदि उक्ति-वैचित्र्य है तो हृदयेश ने अभिधावृत्ति का आश्रयग्रहण कर उसके बाह्य तथा आन्तरिक पक्ष का स्वाभाविक उद्घाटन किया है ।

।१३।　　इहिं काँटे मो पाय गड़ि लीनी मरत जिवाइ ।
　　प्रीति जनावत भीति सौं मीत जु काढ्यौ आइ ।।
　　　　　　　　—— बिहारीसतसई- ६०५

भनत हृदेस सुन देवर परोस वास
आइ कर पास लगी धरम बिचार कै।
दया उर धारकर दरद निवार कर
फेर पग धार कर टेक निहारकै।।
———बिरवबारकरन पद सं०७५

परकीया नायिका के विशिष्ट सन्दर्भ में उक्त कथन प्रस्तुत किये गए हैं। हृदयेश की नायिका बिहारी की अपेक्षा अपनी क्रिया में अधिक चतुर, अभ्यस्त तथा पटु है। कथ्य की शालीनता परवर्ती उद्धरण में विशेष है।

।१४। जुवति जोन्ह मैं मिलि गई नैंक न होति लखाइ।
सौंधे कै डोरैं लगी अली चली संग जाइ।।
——बिहारी सतसई -९

गज मुक्तन के आभरन बसन सुभ्र सुखकंद।
छिपी जात अलि चाँन मैं समझ परत छलछंद।।
————बिरवबारकरन पद सं०२२५

दोनों उक्तियों में प्रांगैत्य है। बिहारी की चन्द्राभिसारिका नायिका की सखी उसकी सुगंधि के साहाय्य से उसका अनुसरण करती है तो नवीनता के आग्रही हृदयेश अभिसरण की प्रक्रिया में छद्मता की कल्पना करते है। जो ज्योत्स्ना की झलमलाहट में सम्भव हुई है।

।१५। चमचमात चंचल नयन बिच घूंघट पट झीन।
मानहु सुरसरिता विमल जल उछरत जुग मीन।।
———— बिहारी सतसई-

दृग पट झीन ओट दिपत नवीन मान
उछरत मीन गंगजल मैं प्रवीन ये।
——बिरवबारकरन -पद सं०१२०

आंखों को मीन से उपमित करने वाली उक्तियाँ प्राचीन है; किन्तु बिहारी ने अपनी कल्पना की शक्तिमत्ता पर उनकी चमचमाहट और चंचलता का जो चित्र प्रस्तुत किया है, निश्चय ही उसने हृदयेश को प्रभावित किया है। नाद-सौन्दर्य, चित्रात्मकता तथा प्रभाव की दृष्टि से हृदयेश का बिम्ब बिहारी से न्यून नहीं कहा जा सकता।

रसखान और हृदयेश

हृदयेश से पूर्ववर्ती कवियों मे राधा-कृष्ण-चरित्र के सरस गायकों में रसखान का अन्यतम स्थान है । ये नायक-नायिकाभेद काव्य से सम्बद्ध नहीं है अपितु इनके काव्य-विषय परमाराध्य कृष्ण है और इनका तीर्थ है कृष्ण-राधा-गोपिकाओं की हास-विलासमयी क्रीड़ा-बिन्दुओं से परिणमित आनन्दात्मक उत्स । रसखान के भावानुगमन तथा यत्र-तत्र शब्दावली का अनुकरण हृदयेश द्वारा किया गया प्रतीत होता है -

।१। आजु अचानक राधिका रूपनिधान सों भेंट भई बनमाहीं ।
देखत दीठि जुरी रसखानि मिले भरि अंक दिये गलबाहीं ।
प्रेम-पगी बतियाँ दुहुँआ की दुई को लगी अति ही चित चाही ।
मोहनी मंत्र बसीकरजन्त्र हहा पिय की तिय की नहिं-नाहीं ।।
रसखान और उनका काव्य पद सं०१०५

बीनत फूल सहेलिन मैं मन फूल भरी मृदु फूल सी ताकी ।
बैन बजावत आन कढ़े द्रग सैन चलावत मैन कला की ।
होत हृदेस परस्पर मोदित देहि दुहून की देत तयाकी ।
राधका की छबि छाकी गुविंद गुविंदहू की छबि राधका छाकी ।।
— विश्वविमोहन- पद सं०३४८

दोनों ही चित्रों की वस्तु है - वनस्थली में माधुर्यभावापन्न राधा-माधव की तादात्म्य-स्थिति । हृदयेश के चित्र में गोपियां अवश्य अधिक हैं । प्रथम चित्र में शारीरिक संयोग है तो अपर में आभ्यन्तरिक योग है पर तुष्टि अथवा तृप्ति का अभाव दोनों ही चित्रों मे नहीं है । रसखान की नायिका नायक की क्रियाओं का निषेध करती है पर हृदयेश की राधे हर्षोल्लासक स्वरभंग की स्थिति में पहुंच जाती है । निषेध यहां भी है पर विलंब से अभिव्यक्त होता है -

भनत हृदेस बेस लाल मत मोहि लीनी
मैन बिथा खोय लीनी तकि तकि अंक तै ।
ऐसी भांत कैंठ कढ़ी आनंद प्रवाह कढ़ी देर मैं नकार
कढ़ी बदन मयंक तै ।।
—— विश्वविमोहन - पद सं०

रसखान के निषेध का प्रभावहृदयेश के निम्न चित्र पर भी अवेक्षणीय है -
ज्यौं-ज्यौं भुज भर भेंट पिय तिय लपटत अंग ।
पुन पुन मुख नाहीं रटत रूचि रूचि करत प्रसंग ।।
——विश्वविमोहन- पद सं०

।२।	जाइ न कोऊ सखी जमुना जल रोकै खड़ो मग नंद को लाला ।

रसखान और उनका काव्य -पद-५७

पनघट पै छेहै कहाँ वैसी अब छेहै बाल

ग्वान नहैहै रंग मन्तर बखात है ।

—विरवक्सकरन पद सं०४१४

होली के हर्षोल्लास को अभिव्यक्ति देने वाले दोनों ही चित्रों में साम्य है । हृदयेश के कथ्य में गमन-निषेध की कारणता आपित है जबकि रसखान में उसका अभाव है ।

।३।	संस्कृतकाव्य-सरणि को अपनाते हुए कुछ रीति तथा आधुनिक कवियों ने नायक द्वारा नायिका के पैरों को स्पर्श करने का उल्लेख किया है । यद्यपि इस क्रिया में प्राय: नायक का शृंगारी भाव ही क्रियाशील रहा है पर अपवादस्वरूप लघुता ऐश्वर्य-भाव भी रसखान के काव्य में द्रष्टव्य है जिसका प्रभाव हृदयेश ने ग्रहण किया है -

देखो दुरो वह कुंज कुटीर में बैठो पलोटत राधिका पायन ।

रसखान और उनका काव्य-२५

पग लागै सुणदान जब गयौ भूल सब मान ।

विरवक्सकरन पद सं०२५८

।४।	ऐसे में आवत कान्ह सुने हुलसी सुतनी तरकी अंगिया की ।

रसखान और उनका काव्य-८७

आयौ पी विदेस तें रतेस की कलेस मेट

फरकत नैन दुरौं करकत मन में ।

छूट छूट जात जूट बारन के बंध सवि

फूट फूट जात वे वियोग भरे मन में ।

भनत हृदेस बाहुबंध बंध टूट जात टूट

जात लाज कूटरात रत रन में ।

कुच न समात कस कंचुकि दरक जात

हरष समात ना उमंग सवि तन में ।।

विरवक्सकरन - पद सं०२४७

नायक के आने पर रसखान की नायिका की केवल अंगिया की तनी ही तरकी है जबकि हृदयेश की नायिका की कंचुकी के दरक जाने का कारण यह है कि उसके वक्षोज हर्ष से प्रफुल्लित होकर विशेष पीनता को धारण कर चुके है । रसखान में सांकेतिकता है तो हृदयेश में जिज्ञासाही विशदता तथा क्रियात्मकता ।

।५।	अरी अनोखी बाम तू आई गौने नई ।

बाहर धरसि न पाय है छलिया तुव ताक में ।

रसखान और उनका काव्य-परिशिष्ट दो०१३

श्रवन सुने तैं और रूप लौं अधिक योर

तब तैं गुपाल किये उदार पर असवों ।

\+ +

ऐसौ दुष आन परौ छिन प्रमान परौ

मुसिकिल आन परो मौन तैं निकसवो ।।

विस्ववसकरन - पद सं० १२३

हृदयेश का कथन रसखान की विशद व्याख्या-सा प्रतीत होता है ।

मतिराम और हृदयेश

मतिराम नायक-नायिकाभेद के सर्वमान्य आचार्य-कवि हैं । इनका ग्रन्थ 'रसराज' इस विषय का सर्वप्रशंसित ग्रन्थ है । प्राय: समस्त परवर्ती आचार्यों ने इनके ही आदर्श को स्वीकार किया है । विस्तार-प्रेम के कारण कतिपय आचार्यों ने कुछ नवीन उद्भावनाएं भले ही कर डाली हों, तथापि उनमें से कोई भी मतिराम कृत नायक-नायिकाभेद के उच्च धरातल से ऊपर नहीं उठ सका । मतिराम की भाषा की स्वच्छता तथा माधुरी, भावग्रहण, छाया-स्वीकरण, रचना-पद्धति अनुकरण की दृष्टि से हृदयेश मतिराम के कृतित्व के उपजीवी रहे हैं —

।१।   अपने हाथ सों देत महावर आप ही बार संवारत नीके ।
आपुन ही पहिरावत आनि कै हार संवारि कै मौरसिरी के ।
हौं सखि लाजनि जात मरी मतिराम सुभाव कहा कहौं पी के ।
लोग मिलैं घर घैरु करैं अब ही ते ये चेरे भए दुलही के ।।

मतिराम ग्रन्थावली- पद सं०

देषौ प्रानपति मनमोहन मुनीस मन

सकुचत नाहि रंच कुच के नरन कौं ।

आपुनै करन साज हीरन के आभरन

रतन जटित हेम कंकन करन कौं ।

भनत हृदेस केस लावत फुलेल अंग

तोर कर धारैं जो रचैत केहरन कौं ।

बरन बरन पहिरावत दुकूल वर

रीभ रीभ जावक लगावत चरन कौं ।।

विस्ववसकरन - पद सं० २०७

प्रथम पद में यदि मुग्धा स्वाधीनपतिका के स्वरूप के प्रति नायक की चेष्टाओं, क्रियाओं का सुखद चित्रण है तो द्वितीय में प्रौढ़ा स्वाधीनपतिका का सर्वांग आकलन । दोनों ही उदाहरणों में नायिका के प्रति नायक की सामान्य तथा

मनोवैज्ञानिक प्रभावों की व्यंजना है। फिर भी मतिराम में प्रतिक्रिया की जो अभिव्यक्ति है, वह हृदयेश में अनुपलब्ध है। ऐसा लगता है कि हृदयेश की प्रौढ़ा स्वाधीनपतिका की लज्जा-वृत्ति निःशेष होकर संकोच के रूप में ही रह गई है।

।२। नैक मंद मधुर अमोल मुसक्यान लगे
नैक मंद गमन गयंदन की चाल भौ।
रंचक न ऊंचो लगो अंकन उरोजन के
अंकुरनि अंक दीठि नैक सौं बिसाल भौ।
मतिराम सुकवि रसीले कछु बैन भए
बदन सिंगारस बेलि- आलबाल भौ।
बाल तनु-जोबन-रसाल उलहत सब
सौतिन के साल भौ निहाल नंदलाल भौ।।

मतिराम ग्रन्थावली-पद सं०

रंच भर हिय मै हुलास कौ विकास होत
मंद मंद भास रंच हास हरसत है।
सखिन के पास बैठ सुनत विलास रंच
उर में उरोजन उकास सरसत है।
भनत हृदेस वेस गमन कला सौं रंच
देख देख लाल लाल मन तरसत है।
कछुकि नितंब भए पीन द्रग मीन रंच
बचन प्रवीन कटि छीन दरसत है।।

विरवबसकरन पद सं०१६

नायिका का मंद-मंद हास, उसकी चाल में गयंद की मत्तता, वक्रदृष्टिनिक्षेप, उसके उरोजों की ईषद् उत्तुंगता, नेत्र-युगल की विशालता, वाणी की मधुरता मतिराम में है तो इसके अतिरिक्त हृदयेश की नायिका नितम्बों की पीनता, द्रगों की मीन-धर्मिता, तथा कटिक्षीणता के स्पृहणीय योग से मंडित है।

।३। एकहि भौन दुरे इक संग ही अंग सो अंग छुवायो कन्हाई।
कंप छुट्यौ घन स्वेद बढ्यौ तनु रोम उठ्यौ अंखियां भरि आई।

मतिराम ग्रन्थावली - पद सं०

आज सीसफूल छूट कान्हर सम्हारे रंच
आंगुरी परस होत कहा भयौ छन मै।
भर भर नैन आये गदगद बैन आये
थर थर कंप उठौ स्वेद भयौ तन मैं।

विरवबसकरन- पद सं० 20

दोनों ही अंशों मे अज्ञात यौवना मुग्धा का चित्रण है । अज्ञातता के हेतु पृथक्-पृथक् है पर परिणाम दोनों के समान है । हृदयेश की अंतिम पंक्ति तो मतिराम का छाया-नुवाद ही प्रतीत होती है ।

।४। अनूढ़ा नायिका की कामना है कि उसे अभिलषित नायक का पावन-चिर-साहचर्य उपलब्ध हो; परन्तु यह सुयोग कैसे उपस्थित हो ? उसकी आस्थामयी दृष्टि हरवल्लभा की सकलशास्त्रवर्णित अभीप्सित वरदायिनी शक्तिमत्ता की ओर आकृष्ट होती है । मतिराम के प्रभाव के परिणमन मे हृदयेश द्वारा चित्रित तथोक्त नायिका की सम्मुग्ध अनुनय की सहजता तथा सरलता अवेक्षणीय है -

गोपसुता कहै गौरि गुसाइनि पायं परौं विनती सुनि लीजै ।
दीन दयानिधि दासी के ऊपर नैक सुचित्त दया रस भीजै ।
देहि जो व्याहि उछाह सो मोहनै मात पिताहू के सो मन कीजै ।
सुंदर सांवरो नंदकुमार जो उर जो वह सो वर दीजै ।।

मतिराम ग्रन्थावली पद सं०

ध्यावत रहत नित गावत गुनानुवाद
अरज करत सीस पग पर पर कै ।
षोडस प्रकार कर पूजन करत तुव
सुमन चढ़ावत हौं थार भर भर कै ।
चित्त चक्खूर हित पूरन हृदेस कवि
कीजे निकलंक मिटै संकर भर घरकैं ।
वर वर कीजे दया सरवर संभुरानी
हरि वर दीजे मोय हरवर कर कै ।

विरववसकरन- पद सं०४५

।५। जाके लिये गृह काज तज्यो न सिखी सखियान की सीख सिखाई ।
बैर कियों सिगरे ब्रजगाम सों जाके लिये कुलकानि गंमाई ।
ता हरि सो हित एकहि बार गंवारि मैं तोरत बार न लाई ।

मतिराम ग्रन्थावली- पद सं०

साज तज दीनौ ग्रेहि काज तज दीनौ सबै
लाज तज सखिन समाज तज दीनो है ।
हास भयौ ब्रज मैं बिलास भयौ कुंजन मैं
नास भयौ नीत कौ न ताप चित्त दीनो है ।
ऐसे सुखदायक हृदेस मनमोहन सौं
टार कै प्रीत गयौ उजर दीनो है ।

विरववसकरन - पद सं० १४४

दोनों उदाहरणों की तुलनासे सिद्ध है कि पश्चाताप की अवस्था का जो मार्मिक तथा प्रस्तुतीकरण हृदयेश ने किया है उससे उनकी विशेषता अभिव्यंजित है।

।६।　　लख्यौ न कंत सहेट मैं लख्यौ नखत कौ राय।
　　नवल बाल को कमल सों, गयो बदन कुंम्हिलाय।।
　　　　मतिराम ग्रन्थावली – पद सं०

　　लखिन परेहु पिय सेज पर लखत चंद दुति मंद।
　　नवर बाल मुख ह्यौं रही मनो संपुटित कंज।।
　　　　विस्ववसकरन – पद सं० १७०

दोनों ही कवियों के उदाहरणों मे भावस्तर पर साम्य है; परन्तु हृदयेश की उत्प्रेक्षा मतिराम की उपमा की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावोत्पादिका, बिम्बग्राह्य तथा प्रभावी बन पड़ी है। हृदयेश ने चन्द्रोदय पर कंज के संपुटित होने का जो गत्यात्मक अप्रस्तुत विधान किया है वह हताश नायिका के पराभूत तथा भग्नहृदय का सुष्ठु परिवाचक बन गया है।

।७।　　मोहि पठाई कुंज मैं सठ आयौ नहि आप।
　　आली और मित्त को मेटौ मिट्यौ मिलाप।।
　　　　मतिराम ग्रन्थावली– पद सं०

　　ब्रज ठाकुर नहिं कुंज मैं वृथा बुलाई रैन।
　　सदन बहुत हेती हते तहं करती बर चैन।।
　　　　विस्ववसकरन – पद सं० १७८

।८।　　बार बधू पिय पंथ लखि अंगरानी अंग मोरि।
　　　　मतिराम ग्रन्थावली–पद सं०

　　बार बधू पतिपंथ लखि बार-बार उकिलात।
　　　　विस्ववसकरन–पद सं० १८९

।९।　　चढ़ी अटारी बाम वह कियो प्रनाम निहोट।
　　तरनि किरनि ते दृगन की कर सरोज करि ओट।।
　　　　मतिराम ग्रन्थावली – पद सं०

　　होत प्रात आवत भूखत देखें नंद किशोर।
　　भान सामुहै बाम ने सिर नायौ कर जोर।।
　　　　विस्ववसकरन – पद सं० ८४

उपर्युक्त दोनों ही उदाहरण क्रियाविदग्धा नायिका के हैं। प्रथम नायिका पति को नीचे जाते हुए देखकर सूर्य को प्रणाम करने के बहाने नेत्रों की ओट करके पति की ओर देखती है ..... उधर प्रणाम का बहाना भी हो जाता है इधर अपने लखीते

नेत्रों के लिए सूर्य भगवान् से क्षमा भी माँगी जाती है। यह शृंगार में एक अद्भुत भक्ति और हास्यरस का प्रवेश है।[1] इसी के अनुगमन में हृदयेश का रमणीय तथा गत्यात्मक चित्र द्रष्टव्य है। नायक की ओर से प्रणाम किए जाने पर ही नायिका की उक्त क्रिया अभिव्यक्त हुई है। यहाँ दोनों ओर ही प्रणयजन्य शालीनता की विशेष अवस्थिति है। बिहारी ने भी उक्त प्रकार का एक चित्र उत्कीर्ण किया है,[2] पर उसमें न माधुर्य है, न वह भाव, न वह अवस्था ही और न वह अद्भुत रस, कोरा हास्य रसहै।

रवि बंदौं कर जोरि कै सुने स्याम के बैन।
भए हँसौंहैं सबन के अति अनखौंहै नैन।।

।१०।

स्वेद के बुंद लसैं तन मेंरति अन्तर ही लपटाय गुपालहिं।
मानो फली मुक्ता फल पुंजन हेमलता लपटानी तमालहिं।।
मतिराम ग्रन्थावली – पद सं०

भनत हृदेस होड परी देहि कुन्दन सौं
भरी श्रम बुंदन सौं हरषत लाल सौं।
मानौ मैन सर के निहारिबे कौं हेमतरु
हीरन के पत्र फरौ मौतिन के जाल सौं।।
विश्वप्रकाश– पद सं०३५१

स्वेद के उपर्युक्त दोनों अंशों में अद्भुत साम्य है। रतिश्रमालय वदनारविन्द पर प्रकट श्रमसीकरों द्वारा द्विगुणित शोभा पर दोनों कवि भिन्न-भिन्न उत्प्रेक्षा-विधान करते हैं। मतिराम की उत्प्रेक्षा है – रत्यनन्तर कृष्ण से लिपटी स्वेदबिन्दुसंयुक्त नायिका ऐसी प्रतीत होती है मानों तमाल वृक्ष से सोने की लता आश्लिष्ट हो तो हृदयेश की रतिश्रान्त तथा श्रमस्वेदसीकरसम्पृक्त नायक दर्शनलालसा द्वारावस्थित नायिका ऐसी प्रतीत होती है मानों कामदेव का दर्शनलाभ करने हेतु स्वर्णपादप में हीरे के पत्र तथा मोतियों के समूह उत्पन्न हो गये हों। प्रथमांश में यदि सहृदयता, उक्ति की स्पष्टता है तो द्वितीय में कल्पना की विशदता, अभिनवता तथा तज्जन्य चमत्कारिता देखी जा सकती है। इसी क्रम में आगे भी उरोजों पर श्रमस्वेदसीकर प्रवाह को लेकर मतिराम ने जो उत्प्रेक्षा की उसका भी भावानुवाद हृदयेश ने किया पर मौलिक

१–मर्यादा भाग ४ – संख्या १ पृ० ३ पं०शिवाधार पाण्डेय का लेख
२– मतिराम – पृ० १२४ पर उद्धृत –बिहारी का दोहा

उद्‌भावना के साथ --

कुच तें श्रम जलधार चलि मिलि रोमावलि संग ।
मनो मेरु की तरहटी भयो सितासित संग ।।
मतिराम ग्रन्थावली - पद सं०

तिय रत श्रम सौं स्वेदकन कुच जुग दिपत महेस ।
मनौ सुधाकर सुधाकर ढरत करत अभिषेस ।।
विश्ववसकरन- पद सं० ३५२

सूरदास की राधा जब प्रिय की चित्र-रचना करती हैं तब उसके वदन से प्रस्रवित स्वेद-कणों की धारा जिन उरोजों पर पड़ती है उन्हें शिव-पूजा करते हुए चित्रित किया गया है[१]। हो सकता है कि हृदयेश के मानस-पटल पर इस भाव की छाया भी पड़ गई हो ।

।११। ` जृम्भा ` नामक सात्विक के उदाहरण में जिस विषय-वस्तु का ग्रहण मतिराम ने किया है हृदयेश उसी के अनुगत हैं ।अंतिम पंक्ति में दोनों कवियों का अप्रस्तुत-विधान समान है -

कवि मतिराम आई आलस जँभाई मुख
ऐसी मनभावती की छबि सरसत है ।
अरुन उदोत मनौ सोभा के सरोवर में
सोभा मानि सोभा को सरोज बिलसत है ।।
मतिराम ग्रन्थावली- पद सं०

भनत हृदेस छबि सागर मयंक मुख
ताढ़िती हुलास भरी चढ़िए जम्हात है ।
मानों ग्रहपति की प्रकास होत जात प्रात
सात जलजात की विकास होत जात है ।।
विश्ववसकरन- पद सं० ३७२

।१२। जा छिन ते मतिराम कहै मुसकात कहूं निरख्यो नंदलालहिं ।
ता छिन ते छिन छिन छीन किया बढ़ बाढ़ी वियोग की बालहिं ।
पोछति है कर सों बिसते गहि बूझति स्याम सरीर गुपालहिं ।
भोरी भई है मयंकमुखी भुज भेटति है भरि अंक तमालहिं ।।
मतिराम ग्रन्थावली - पद सं०

मूंद रहै द्रग कुंजन देख कहूं मन आवत नाद करै है ।
हास करै छिन ही छिन में छिन ही छिन बैठ समाद करै है ।
छा रहै हिय मांभ हृदेस कहूं तप तात फिराद करै है ।
भेटत बाल तमालन सों कुबबालन सों बकवाद करै है ।।
विश्ववसकरन- पद सं० ४४८

१- सूरसागर- पद ३०२४ - ना०प्र०स० काशी

उन्माद के उक्त उदाहरण को व्यापक तथा बिम्बग्राही बनाने में हृदयेश मतिराम से प्रभावित होते हुए भी उनकी तरह अपेक्षित पृष्ठभूमि-निर्माण में समर्थ नहीं हो सके हैं, परिणामस्वरूप हृदयेश का बिंब क्रिया-वैविध्य से सम्पृक्त होते हुए भी अपेक्षित प्रभाव का उत्पादक नहीं बन सका है। उन्माद की अवस्था में गोपियों द्वारा तमाल वृक्ष को आलिंगित करने का भाव मतिराम का भी नहीं है। भागवत में गोपियाँ उन्माद के वशीभूत होकर तमाल को कृष्ण समझ कर उसे अपने स्तन अर्पित करती हैं तो रघुवंश में राम तमाल गुच्छों का- सीता के स्तनों के धोखे में - आलिंगन करते हैं।[१]

।१३। कुछ लक्ष्यों के लक्षणों में भी हृदयेश मतिराम के आभारी हैं —

।अ। कह्यौं न मानत कंत को पुन पीछे पछिताय।
कलहंतरिता नायका ताहि कहत कविराय।।

मतिराम ग्रन्थावली-पद सं०

बालम सों बालिम परत कह्यो न मानत वाम।
फिर पीछे पछितात है कलहंतरिता नाम।।

विश्ववसकरन- पद सं० १५७

।आ। हरष भयादिक ते प्रगट रोम उमंग जो अंग।
ताहि कहत रोमांच है कवि जन सुमति उतंग।।

मतिराम ग्रन्थावली - पद सं०

सीत भीत अरु हरष तें उठत रोम तन जाल।
रोम उमंग बुध वल भनत जिनकी बुद्धि विसाल।।

विश्ववसकरन- पद सं०३५३

।इ। क्रोध, हर्ष, भय आदि तें थरथराति जो देह।
ताहि कंप यौं कहत हैं कवि कोविद मति गेह।।

मतिराम ग्रन्थावली- पद सं०

अति आनंद अति क्रोध तें अति भय थहरत देहि।
कंपु बखानत सकल कवि परपूरन गुन गेहि।।

विश्ववसकरन- पद सं० ३५९

।ई। हरष दुःख भय आदि ते जल आवै अंखियान।
ताहि बखानत आंसु कहि ग्रंथन को मत जान।।

मतिराम ग्रन्थावली पद सं०

१- देव और उनकी कविता - डा० नगेन्द्र - पृ० २८७

हरष होत दुख होत अरु भय लागत तब होत ।
जल आवत भर भर दृगन अश्रु कहत कवि गोत ।।

विश्ववसकरन – पद सं०३६५

।उ। उलटे भूषन बसन कौ होत जु है पहिराव ।
तासौं विभ्रम हाव कहि बरनत सब कविराव ।।

मतिराम ग्रन्थावली – पद सं०

उलट पुलट भूषन बसन पहिरै ठौर कुठौर ।
विभ्रम तासौं कहत हैं रसिकन मैं सिरमौर ।।

विश्ववसकरन – पद सं०३८७

।ऊ। विरह विथा की विकलता जहाँ बढ़त सुहाय ।
ताहि कहत उद्वेग है जे प्रवीन कविराय ।।

मतिराम ग्रन्थावली–पद सं०

विरह विकल तलफत रहत निसदिन परत न चैन ।
ताय कहत उद्वेग है बुधवत रसवत बैन ।।

विश्ववसकरन – पद सं०४४१

उक्त प्रकार सिद्ध है कि हृदयेश ने मतिराम की भावयोग सुन्दरता, छन्द-विधान तथा विषय-क्रम के अनुगमन को स्वीकार किया है । तुलनात्मक दृष्टि से बिहारी की अपेक्षा वे मतिराम के अधिक निकट हैं ।

तोष और हृदयेश

कवि तोष कृत `सुधानिधि` नामक ग्रन्थ में नव-रसों, भावों, भावोदय, भावशान्ति, दोष, वृत्ति और नायिकाभेद के प्रमुख अंगों का प्रौढ़ विवेचन किया गया है ।[1] नायिकाभेद की पूर्ण प्रतिष्ठा करने के कारण ही उनका महत्व है ।[2] तोष की भाषा में ललित माधुर्य, लाक्षणिकता, ओज, वात्म तथा गतिमय शक्ति का प्राचुर्य है । ऐसे आवेगमय कवि की कविता का प्रभाव कवि हृदयेश पर निम्न प्रकार देखा जा सकता है —

।१। वस्तु तथा शब्दावली में साम्य-

।क। सुमन अनंत फूले विपिन लसंत यौन
और भव लंत भौर गुंजरै समंत है ।

१– हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास – डा० भगीरथ मिश्र – पृ०८९

२– कवि तोष और सुधानिधि – पृ० १०४

सुतरु पल्लवंत कूक कोकिला करत तबै
ध्यान मुनि संत जहं करति को अंत है।
सबै रसवंत और वियोगिनि को मंत जहं
रति ही को तंत तोष सुकवि भनंत है।
बेधे रति कंत पाइ तरुणी एकंत जब
जाइ कित कंत ऋतु भूपति अनन्त है।
कवि तोष और सुधानिधि-परिशिष्ट पद सं०३

द्रुमत लतान ललिताई छबि छाई अत
तैसी कलकान कोकलान दिन निस मैं।
भनत इदेस चंड बीर भीर भौर फिरें
गुंजत अधीर बीर कुंज पुंज तिसमैं।
सीतल समीर तीके तीर बिरहीन जी के
लागहिं पीके सीके कीके बैन रिस मैं।
पौंद पलकंत लौंद पुंज ललकंत अंत
देण दरसंत जौं बसंत दिस-दिस मैं।
विस्वबसकरन- पद सं०४ ५०५

पुनश्च-

कंत प्रदेस पगंत इकंत सणी तन अंत बसंत करावत।
विस्वबसकरन- पद सं० ४२४

।ख। जोन्ह ते लाली छपाकर भो छन मे छनदा अब चाहत चाली।
कूजि उठे चटकाली जहं दिसि फैलि गई नभ ऊपर लाली।
लाली मनोज किया उर में निपट निठुराई धरे बनमाली।
आली कहा कहिए कहि तोष कहं पिय प्रीति नई प्रतिपाली।।
कवि तोष और सुधानिधि-पद सं०१५३

कहा मत भनाली आली द्रुमनन मैं लाली हाली
ल ललकाली देण पाली बांध काली है।
भनत इदेस कित हीतल बहाली कत
पी तल बिहाली कर प्रगट गसाली है।
सांझ सेज हाली रची सुमनन जाली न्याली
धुन चटकाली बार आधी रात चाली है।
ऐसौं राग लाली बसि पाली नाय काली ब्याली
दीन भयौ डोलत प्रवीन बनमाली है।।
विस्वबसकरन - पद सं०१२८

पुनश्च- कौन बात तारी भई देर अति भारी परे
सौतन की बारी ना निहारी नभ लाली कौं।
हो कौं जितारी सो बिसारी बात सारी भई
देहि याद सारी भारी मूढ़ चटकाली कौं।

भनत द्रुदेस वेस गंध गमकारी लगै
करक्स भारी सो उमार अब हाली कौं ।
सारी रात झाली पाली रोम रोम साली वाली
ये री क्षत आली जा तलास बनमाली कौं ।।
विरवक्सकरन – पद सं० १८४

रसखान
कविवर बिहारी तथा ~~रत्नाकर~~ इसी प्रकार की शब्दावली व्यवहृत कर चुके है –

नभ लाली चाली निसा चटकाली धुनि कीन ।
रति पाली आली अनत आये बनमाली न ।।
बिहारी रत्नाकर पद सं० ११५

कहा कहौं आली खाली देत सब ठाली
हाय मेरे बनमाली कौन काली ते छुड़ावहीं ।।
रसखान और उनका काव्य – पद सं० २०

।२। भावसाम्य–

।क। नेत्राम्बु–प्रवाह से सर्वत्र जल व्याप्त हो जाने की वर्णना अनेक कवियों ने की है । कृष्णलीला गायक सूर इससे विनिर्मुक्त या असम्पृक्त नहीं रहे है ।[१] ऐसे स्थलों पर अतिशयोक्ति का साग्रह उपयोग किया गया है । तोष इसी सन्दर्भ में लिखते हैं –

गोपिन के अँसुवान को नीर पनारे बहे बहि कै भये नारे ।
नारेन हू सो भई नदियां नदिया नद ह्वै गए काटि कगारे ।
बेगि चलो तो चलो ब्रज को कवि तोष कहै ब्रजराज दुलारे ।
वे नद चाहत सिंधु भये अब नाही तो ह्वै है जलाहल भारे ।।
कवि तोष और सुधानिधि–परिशिष्ट १–पद ८

तोष की गोपियों की अश्रुधारा सिन्धु के रूप मे परिवर्तित होना चाहती है; पर हृदयेश की नायिका की विरहवेदनाजन्य व्याधि के परिणामस्वरूप निसृत अश्रुओं से अकाल प्रलयकाल की सम्भावना की गई है –

बाल नैन वारि जाल छूटत मुसलधार
मेरे जान होत है अकाल प्रलै काल है ।।
विरवक्सकरन – पद सं० ४५१

।ख। नायक नंदलाल के प्रेम–योग मे बावरी हुई गोपी के मानस को कभी–कभी ग्लानि परिव्याप्त कर लेती है और वह सोचती है कि उसने हितचिन्तकों की चेतावनी अथवा सीख को ठुकराकर कुल–यश को कलुषित कर दिया–

१– सूरसागर – सं० पं० कृष्णबिहारी मिश्र – पृ० ४५

हाय कहा कियौ पापिन मैं बिनसाइ दियौ केल के वस धीरहिं ।
मैं निज देखते हमोहली तोष तौ मैन क्यों मारतो पैन के तीरहिं ।
होइ हंसी अब कीजे कहा यह पाइहै कौन कलंक लकीरहिं ।
मायहूं भायहूं पायहूं लागि कही रहौं री जनि देहु अहीरहिं ।।

कवि तोष और सुधानिधि-पद सं०४८१

यह तो रहा श्याम सुन्दर के प्रति गोपी-राग का पर रूप । इसका पूर्वरूप गोपी के शब्दों में निम्नप्रकार हृदयेश द्वारा प्रस्तुत किया गया है जो `अभिलाषा` के रूप में है । यहां प्रेमावेश में उपर्युक्त समस्त सामाजिक विघ्नों की सम्भावना करके भी उन्हें दृष्टि से ओझल कर दिया गया है -

जान दीजै लाज कुल कान पै न कान दीजै
ठान दीजे मन की चुनौती सार नंद कौ ।
आठौ जाम नैनन में धर धर लीजे छबि पीजे सुधा कीजे अधिकि
अनंद कौ ।
भनत हृदेस तन मन मनभावन पै
कीजिये निछावर निहार मुखचंद कौ ।
ऐसौ जोग कीजे रोम-रोम भर लीजे जीजे
प्रान जान दीजे पै न दीजे नंदनंद कौ ।।

विश्वबखरन - पद सं० ४२९

।ग। `भार` नामकभाव से भावित नायिका मदन भावापन्न होकर जब वसुधा पर गिर जाना चाहती है उस समय नायक तत्परतापूर्वक उसे आलिंगित कर संपूर्ण भार से विरहित कर देता है । तोष की नायिका के इसी भाव तथा क्रिया के साम्य का दर्शन हृदयेश के पदांश में किया जा सकता है -

मैन सरबरी लरफरी गिरि परी पेषी
बीच हरि धरी भरी तृटि रस पायौ है ।

कवि तोष और सुधानिधि- पद सं०५१२

अगम जमुन जल धंस परी बहत न जान अनाय ।
सपट लपट तजि लपट हिय झपट गह्यौ ब्रजनाय ।।

विश्वबखरन - पद सं०७३

।घ। संयोग की स्थिति का सर्वाधिक आस्वाद तब प्राप्त होता है जब नायक-नायिका सर्वसामाजिकभय-विवर्जित होकर प्रकृति की रमणीय स्थली में साहचर्यसुखोपलब्धि करते हैं । राग के उद्दीपन की दृष्टि से यह `हिंडोरे` की योजना किस सीमा तक उपादेय है, यहां आकलनीय है —

दोउ मकुहा मनतूल झूला झूलि झूलि
देत सुखमूल कहि तोष भरि बरसात ।
छूटि छूटि अलक कपोलनि मैं छहराति
फहरात अंकल उरोजउ उघरि जात ।
रहो रहो नाहीं नाहीं अब न झुलाओ लाल
बबा की सौं मेरी यह जुगल जानु थहरात ।
ज्यौं ही ज्यौं मकत त्यौं त्यौं लकत लचीलो लंक
संकित मयंकमुखी अंक मैं लपटि जात ।।

कवि तोष और सुधानिधि-पद सं० ३७२

तट जमुना पै साज सरस हिंडोरै कोरै
झालरा बोर बादलान झला झलकत बत के ।
दिपत हृदेस मणतूल के वितान तान
बीच फूंद सुमन कदंब सरसत के ।
घटा घहरात छहरात बीच विज्जु छटा
झला बरसान कूक कोकला सरत के ।
मचकि झकोर झूम झूलत डरात प्यारी
झुकत झपाक गरें लाग कंपत के ।।
विस्ववसकरन- पद सं० ४३९

दोनों ही वर्णनों की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि तोष में सौन्दर्य वैशिष्ट्य संवाद का है जब कि हृदयेश ने अनन्यथं व्यंजना के द्वारा अपने कथन को प्रभावी बनाने का प्रयास किया है। सन्दर्भ-निर्वाह-कौशल भी प्रथम उदाहरण में है।

।च। कतिपय अन्य आलंकारिक तथा क्रिया साम्य द्रष्टव्य है—

नहि बोलति है नहिं डोलति है ..... ।
कवि तोष और सुधानिधि- पद सं०४३३
डोलत ना मुख बोलत ना ...... विस्ववसकरन- पद सं०४४३
काहू करौं त्यौं मिलौ सजनी रजनी बजनी पैजनि पै परी है ।
कवि तोष और सुधानिधि-पद सं०८३
बीत गई रजनी सजनी बजनी पग पायल लाल जरावत ।
विस्ववसकरन - पद सं० १८८

देव और हृदयेश

हृदयेश से पूर्ववर्ती कवियों में देव की महत्ता से हिन्दी-साहित्य-सुधीजन परिचित है। शृंगारी कवियों में इनका स्थान मतिराम से भी ऊंचा माना जाता है।

१- मतिराम - सं० स्व० कृष्णबिहारी मिश्र -

यद्यपि मौलिकता तथा रसानुभूति देव के व्यक्तित्व में अन्य रीतिकालीन कवियों की अपेक्षा अधिक थी तथापि हृदयेश ने उनकी ध्वनियों का अधिक स्पर्श नहीं किया है – यत्र-तत्र हृदयेश पर देव की उक्ति, भाव-सरणि, शब्दावली आदि का प्रभाव पड़ा है–

नेवर के बजत कलेवर कंपत देव
देवर जगै न लगै सोवत तनक ते ।
ननद नचौंही त्यौरी तोरत तिरौछी लखि
बीथी कैसो विघ्न जगावैगी भनक ते ।
देखिए कठिन साथ गहौ जुन हठि हाथ
कैसे कहौं जाहु नाथ आए हो जनक ते ।
बस ना हमारे रंग रसना बजत चौंकि
रसना दसन दाबे रसना भनक ते ।
देव और उनकी कविता –पृ० २८६

रत विपरीत रची सुन्दर अभीत प्रीत
बसन पिया के पैर दिपत जनक तैं ।
चुंमत अधर वर चुंबत करत जात
हीतल अमी करत सीकर तनक तैं ।
भनत हृदेस कवि प्रीतम खरी करत
जा करत आनंद बसीकर छनक तैं ।
रूपकर किंकिन की सबद अखेण्ड होत
चुप कर बैठ रहे बिछुआ भनक तैं ।
विश्वप्रकाश – पद सं० २।५६१

यद्यपि उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में सन्दर्भ भिन्न है तथापि शब्दावली तथा वस्तु-विधान की दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि देव से हृदयेश पूर्णत: नहीं तो अंशत: प्रभावित हुए है । मतिराम की भी एतादृश अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है –

सहज सुबास युत देह की दुगुनि दुति
दामिनि दमक दीप केसरि कनक ते ।
मतिराम सुकवि सुमुखि सुकुमारि अंग
सोहत सिंगार चारु जोबन जनक ते ।
सोहबे को सेज चली प्रानपति प्यारे पास
जगत जुन्हाई जोति हंसति तनक ते ।
बजन अटारी गुरु लोगनि की लाज प्यारी
रसना दसन दाबे रसना भनक ते ।।
मतिराम ग्रन्थावली – पद सं०

हो सकता है कविवर पद्माकर का विपरीत रति विषयक यह पदांश भाव स्वर

प्रीति बस दोऊ विपरीत मैं रमे हैं जहाँ
पाइ परि घुँघट सु मौन मुख लै रही ।
कहै पद्माकर त्यौं करत कुलाहल न
किंकिन ककार कामदुंदुभि सो दे रही ।।
पद्माकर – पद सं०

।2। ~~सौंवत नैन भिलालन के~~
सौंधत नैन भिलालन के जल बात सुमेटति बाल तमालहिं ।
देव और उनकी कविता – पृ० 287
मैटत बात तमालन सों कुंजालन सों बकवाद करै है ।
विश्वप्रकरन– पद सं०448

यद्यपि देव से पूर्व मतिराम भी एतादृश विधान करचुके हैं तथापि यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि दोनों ही कवियों की समान वस्तु-संघटना ने हृदयेश के हृदय में प्रेरणा उत्पन्न कर दी हो ।

।3। देवता कि दामिनि मसाल है कि जोतजाल
भगरोमचो है जगे सिगरे नगर के ।
देव और उनकी कविता– पृ०
दीप की निसान है कि चंद्रा की बान है
कि हीरन की खान है कृसान है कि भान है ।
विश्वप्रकरन– पद सं0226

दोनों ही सन्दर्भ क्रमश: कृष्णाभिसारिका तथा दिवाभिसारिका के हैं । अप्रस्तुत-विधान प्राय: दोनों में एक जैसा है अन्तर है मात्र अवयवों का । स्पष्टत: हृदयेश देव के आभारी है पर नवीन सन्दर्भ में कतिपय मौलिक अप्रस्तुत तथा विस्तीकृत कल्पना-योजना के कारण हृदयेश का कथ्य अधिक चमत्कारपूर्ण बन गया है ।

।4। भौहें उमेठि रही ठकुराइन ठाकुर के उर काम जगावति ।
देव और उनकी कविता–पृ0 227
पैठी मानमंदिर उमेठी भ्रुकुटीन कर ....।विश्वप्रकरन–पद सं0421

।5। साँझ ही स्याम को लेन गई
सु बसी बन में सब जामिनि जाय कै ।
सोरी क्यारि छिदे अधरा उरभ्रौ
उर भाबर भारमभाय कै ।
तेरो सी को करि है करतूति
हुती करिबे सु करी तै बनाय कै ।
भोर ही आई भट्ट इत मो
दुख दाइनि काज महादुख पाय कै ।
देउ0का0 236

अमित अबेर कीनी बीच काहू घेर लीनी
जान परी जेर कीनी फेर बतियामें है।
भनत ह्रदेस सुगपाल कौ निहाल कर
आई प्रातकाल गई सांझ रतिया में है।
आपु सुग पाय लीनी यक्ति उपाय कीनी
प्रबल अथाय दीनी दाह छतिया में है।
विश्वविसकरन- पद सं० ११३

दोनों ही उद्धरणों के समान प्रसंग है। नायिका की दूती का सायंकाल नायक के पास जाना, उससे रतिलाभ करना तथा रात्रि व्यतीत कर नायिका के पास लौटना वर्णित है। देव-सदृश स्वाभाविकता, सहृदयता तथा मार्मिकता हृदयेश नहीं ला पाये हैं फिर भी चमत्कार-सृष्टि में वे समर्थ रहे हैं। छतिया में दाह देने का कथन कितना सटीक तथा प्रभावी है।

।६। स्वप्न-दर्शन के प्रसंग में दोनों कवियों के ये पद तुलनीय हैं -

सापने मैं गई देखन हौं सुनि नाचत नंद जसोमति कौ नट।
वा मुसकाइ के भाव बताइ के मेरोइ खैंचि खरो पकरो पट।
तौ लगि गाइ रम्हाइ उठी कवि देव बधून मथ्यो दधि को घट।
चौंकि परी तब कान्ह कहूँ न कदम्ब न, कुंज न कालिंदी कौ तट।।
देव और उनकी कविता-पृ० ३०१-२

आज गई सपने सजनी जहं कुंज कदंब सुगंधन सानी।
कान्ह तहां मृदु बान मनोहर गावत तान उचार तरानी।
मोद ह्रदेस भयौ अत ही खुल नींद गई सुन दुध्य अलानी।
कान्ह नहीं मृदु बान नही वह तान नहीं सबि साज बिलानी।।
विश्वविसकरन - पद सं० ३०८

भिखारीदास और हृदयेश

हृदयेश ने स्वकीय काव्यरचना में भिखारी दास का भी ऋण स्वीकार किया है। दास की चमत्कारपूर्ण शब्द-समष्टि, वस्तु-योजना तथा काव्यसामग्री का प्रतिबिंब उनके काव्य में यत्र-तत्र देखा जा सकता है। यहां कतिपय प्रसंग उपस्थित हैं—

।१। वक्र तुंड कुंडलित सुंड नगवलित पांडु रद
अलि झुमंड मंडलित दानमंडित सुखिमद
बाहुदंड उद्दंड दुष्टभंडनि अमुंड कर
विघ्नखंड कर खंड तेज सत मारतंड बर।
भिखारीदास-प्रथम खंड र०सा०पद०३

शुंडादंड मंडित अखंडित वितुंड तुंड
एक रद धार हिये हार फनपति कौ ।
विस्वबसकरन- पद सं०४

।2। छोटो महा यह छोटो भयो अब छोटो न जानो जसोमति बारो ।
भिखारीदास-रस सारांश पद 240

वक्र चपोटा सदा गोरस कौ पोटा मोटा
गाँठी गाँठ खोटा छोटा ढोटा नंदराय कौ ।
विस्वबसकरन- पद सं०४७८

।3। दास लला नवला छबि देखि कै मो मति है उपमान तलासी ।
चंपक माल सी हेमलता सी कि होइ जवाहर की लवला सी ।
दीप सिखा सी मसाल प्रभा सी कहौं चपली सी कि चन्द्रकला सी ।
जोति सों चित्र की पूतरी काढ़ी कि ठाढ़ी मनोजहि की अबला सी ।।
भिखारीदास- ~~रसनाधिराज~~ शृं०नि० पद 61

चंप कलका सी पट ओट चंचला सी भासी
ताकत तरीछी ताकी मानों तीर गांसी है ।
वचन सुधा सों रस रूप के भक़ला सी छबि
लचकि ललत कट छिगुनी छलासी है ।
भनत कृदेस कवि हीतल हुलासी सदा
करत फिकर नर नागर तलासी है ।
अद्भुति रमा सी गुण दीप चन्द्रमा सी भासी
मोहनी कला सी .... ।।

विस्वबसकरन- पद सं०93

दोनों कवियों के यद्यपि प्रसंगविधान भिन्न है तथापि दास के अप्रस्तुत विधान के अनुकरण पर कृदेस का वर्णन-नैपुण्य दर्शनीय है। प्रथम चित्र में चमत्कार वर्णना-मात्र है तो द्वितीय में अनुभावों की गत्यात्मकता भी है। दास की `अबला` कृदेस की `प्रबला` बन गई है।

।4। हार गई तहं मेह मिल्यौ हरि कामरी ओढ़े हुत्यौं उत जैसो ।
आतुर आइ कै अंगछपाइ, बचाइ कै मोहिं गयो घर तैसो ।
दास न ऐसो लख्यौ कबहूँ मैं अचैमो भयो वहि औसर जैसो ।
स्वेद बढ्यौ त्यों लग्यो तन कांपन रोम उठ्यो यह कारन कैसो ।
भिखारीदास- शृंगार निर्णय-पद129

वात कुंज फूलन में दोनों संग भूलन मैं
गावत उमंग रंग छायौं मधुबन मैं ।
आय सीसफूल छूट कान्हर सम्हारी देव
बांसुरी परस होत कहा भयौ तन मैं ।

भनत हृदेस सखी जानिये न बात बात
कौन उतपात उठे रोम गन गन मैं।
भर भर नैन आए गदगद बैन आए
थर थर कंप उठी स्वेद भयौ तन मैं।।
विश्ववशकरन – पद सं० 20

दास की परकीया अज्ञात यौवना के उपर्युक्त उदाहरण के कुछ अंश को छोड़कर जो परकीयात्व के सन्दर्भ में था, हृदयेश ने उनकी अनुभाव योजना ग्रहण ही नहीं की अपितु उसका परिवर्द्धन भी किया है।

।5।
गुम्बज मनोज के महल के सोहाए स्वच्छ
गुच्छ कधि छाए गज कुम्भ गजगामिनी।
उलटे नगारे तने तंबू सैल भारे भठ
मंजुल सुधारे चक्रवाक गत जामिनी।
दास जुग संभु रूप श्रीफल अनूप मन
धावरे कहन धावरेन कित कामिनी।
कंदुक कलस बटे संपुट सरस मुकुलित
तामरस है उरोज तेरे भामिनी।।
भिखारी दास –2य खण्ड-काव्य-निर्णय-पद 89

संपुट सरोज ये मनोज के प्रसिद्ध किधौं
रूप धाम कुंदन कलस वर नीके है।
गुच्छ जुग तारा दीप दीपत अपारा किधौं
कोक की कला सौं भरे संपुटि धनी के हैं।
कैधो कामनी के दामिनी के धाम नीके किधौं
प्रीत जाम नीके कुच कुम्भ कामिनी के हैं।।
विश्ववशकरन – पद सं0 252

उरोज-वर्णन प्रसंग मे चित्रित उक्त दोनों उदाहरणों में कल्पना का जो वैभव हृदयेश मे है वह दास मे अनुपलब्ध है।

।6।
आली दौरि दरस सरस तेहि लै री इंदु-
बदनी अटा मैं नंदनंद भृकुटियल मैं।
देखादेखी होत ही सकुच छूटी दुहुंन की
दोउन दुई हायनि बिकाने एक पल मैं।
दुई हिय दास बरी अरा मैनसर गांसी
परी द्रिढ़ प्रेमफांसी दुहुंन के गल मैं।
राधे नैन परत गोविन्द तन पानिप मैं
पैरत गोविंद-नैन राधे रूप जल मैं।
भिखारीदास- श्रृंगारनिर्णय- पद 286

बीनत फूल सहेलिन में मन फूल भरी मृदु फूल सी ताकी ।
बैन बजावत आन कढ़े दृग सैन चलावत मैन कला की ।
होत हुदैस परस्पर मोदित देहि दुहून की देत तथा की ।
राधका की छबि छाके गुविंद गुविंद जू की छबि राधका छाकी ।।
विस्ववसकरन- पद सं० २४८

प्रथम उदाहरण प्रत्यक्ष दर्शन का है जब कि द्वितीय स्तम्भ संचारी का प्रतिपादक है पर दोनों में भावके स्वर पर ऐक्य स्पष्ट है ।

।७। देखती हौ इहि ढीठे अहीर के कैसे धौं भीतरी आवन पायो ।
`दास` अधीन ह्वै कीन्हो सलाम न दूरि ते दीन ह्वै हेत जनायो ।
बैठि गो मेरे प्रजंक ही उप्पर जाने के याके कहां मन भायो ।
गाइन की चरवाही बिहाइ कै बेपरवाही जनावन आयो ।।
भिखारीदास- शृं० नि० पद सं० २७१

डोलत हौ नित ही वन में गन मै गन मैं भगरो बगरावन ।
मागत दान गुमन भरे रस गान हुदैस सबै दरसावन ।
दूरहि की हित होत भली इत काम कहा तरसौ बिन आवन ।
मोहि लगौ वृषभानसुता तुम हौ नदगाउ की गाइ चरावन ।।
विस्ववसकरन- पद सं० ३९४

नायक की तथावर्णित हीनता तथा अनपेक्षित धृष्टता के क्रम में नायिका-कृत व्यंग्य अथवा निन्दा का वैशिष्ट्य दोनों ही सन्दर्भों में दर्शनीय है ।

।८। आनन प्रभा ते तन छाँह हू छपाए जाति
भौंरन की भीर संग लाए जाति सजनी ।
भिखारीदास- शृं० नि०- पद १६७

छाह कर धीर धीर आवे चली तीर तीर
पीछे परी मोर बीर भीर मधुपन की ।।
विस्ववसकरन- पद सं० २२२

।९। दास के प्रौढ़ा अधीरा के उदाहरण की प्रतिध्वनि पर हुदयेश की उक्ति तथा तदनन्तर उसका परिवर्द्धन प्रस्तुत है —

ग्वाल बाल संग जगे भए लाल दृग लाल ।
ऐगुन बूभि हनो सखी करि दृग लाल मृनाल ।।
भिखारीदास -रस सारांश-पद ४२

लाल लाल दृग लाल के लगत बाल दृग लाल ।

लाल लखि + लाल लली के दृग + लाल लाल
ऐसे लाल लागी लाल कुंज कुसुमाने ते ।
विस्ववसकरन- पद सं० ५०, २३६

।१०।　　नृत्यत कलापी भिल्ली पिक है अलापी
　　　　　　　　विरहीजन विलापी है मिलापी रसरास मैं।
　　　　　　　　　　भिखारीदास – २य खण्ड– ४। १७

　　　　हीतल मिलापी भेंट मकर मिलापी फिरैं
　　　　　　　　कोकला मिलापी जे मिलापी पंचसर के।
　　　　　　　　　　विस्ववसकरन– पद सं० ५३३

पद्माकर और हृदयेश

कविवर पद्माकर ने अपने परवर्ती रीतिकवियों को निश्चय ही प्रभावित किया है – हृदयेश[१] ऐसे प्रभाव से असम्पृक्त नहीं रह सके हैं। यद्यपि पद्माकर की स्वतंत्र भाषा तथा छन्द-शैली का अनुगमन करने में वे समर्थ नहीं हो सके तथापि उनके भाव, काव्य-सामग्री तथा उक्ति-ग्रहण करके हृदयेश ने पद्माकर के काव्य-संस्कारों को अपनाया है–

।१।　　गुलगुली गिलमें गलीचा है गुनीजन है
　　　　　　　　चाँदनी हैं चिकैं है चिरागन की माला हैं।
　　　　कहैं पदमाकर त्यों गजक गिजा हैं सजी
　　　　　　　　सेजें है सुराही हैं सुरा हैं और प्याला हैं।
　　　　सिसिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्हैं
　　　　　　　　जिनके अधीन एते उदित मसाला हैं।
　　　　तान तुकताला है विनोद के रसाला हैं
　　　　　　　　सुबाला हैं दुसाला है बिसाला चित्रसाला हैं।।
　　　　　　　　　　पद्माकर– जगद्विनोद– पद सं० २९१

　　　　मलत फुलेल न्हात तल तल भोल कर
　　　　　　　　नमत न रंच नीर लपत अन्हायै तैं।
　　　　मगद अनेक षटरस पय पान कर
　　　　　　　　मेवा बस अमल तमाल दल खायै तैं।
　　　　गुलगुले गहब गदेलन हृदेस तूल
　　　　　　　　गरम गलेफ ओढ़ दाब सिर पायै तै ब।
　　　　डार गलबाये प्रिया अंक लपटायें पायें
　　　　　　　　सीत जात उन्नित उरोज उर लायै तैं।।
　　　　　　　　　　विस्ववसकरन– पद सं० ५५८

१– पद्माकर – सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – भूमिका – पृ० ३७

दोनों छन्दों का कथ्य तथा अभिव्यक्ति एक समान है। दोनों ही में शीत-अपनयन के मसालों की परिगणना है पर हृदयेश ने इस ऋतु में रमणी की उपादेयता का जो गत्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया है उसकी अपनी विशेषता है। वस्तु-परिगणना में निस्सन्देह, पद्माकर आगे हैं।

।2। रोस करि पकरि परोस तें लियाई घरै
पी को प्रानप्यारी भुज लतनि भरै भरै।
कहै पद्माकर न ऐसो दोस कीज्यो फिरि
सखिन समीप यों सुनावति खरै खरै।
त्यों छल छपावै बात हंसि बगरावै तिय
गद गद कंठ दृग आंसुन झरै झरै।
ऐसी धनि धन्य धनी धन्य है सु जैसो जाहि
फूल की छरी सो खरी हनति हरै हरै।।

पद्माकर- जगद्विनोद- पद ६९

हेर अचानक घेर लियो परनार विहार रसाल भयौ है।
डार गरै भुज लाय धरै तिय के हिय में दुन्ण जाल भयौ है।
जावक रंग हृदेस प्रदीपत लाल सरासर भाल भयौ है।
बाल प्रसून की माल हनै सन लाल कदंब की माल भयौ है।।

विश्वकरन - पद सं०५१

प्रौढ़ा अधीरा के इन उदाहरणों में साम्य है। हृदयेश की उक्ति में नायक की घेराबन्दी कर पकड़ लेने का जो हास्योपकारक चमत्कार है उससे विषय की रमणीयता में पर्याप्त वृद्धि हो गई है। नायिका की एतादृश क्रिया के संकेत अमरुशतक में भी उपलब्ध होते हैं।

।3। मूंदे तहां एक अल बेली के अनोखे दृग
सु दृग मिचावने के ख्यालनि हिलै हिलै।
नैसुक नवाइ ग्रीवा धन्य धनि दूसरी को
औचका अचूक मुख चूमत खिलै खिलै।।

पद्माकर-जगद्विनोद- पद सं०७६

भाल हृदेस निज प्यारी के कपोल गोल
देख देख रीझ लाल चाहि चित झूमै है।
बाल कों छिपाकर छपाकर दिखाय इत
बदन छपाकर भपाक ताक चूमै है।।

विश्वकरन - पद सं०५७

ज्येष्ठा-कनिष्ठा के दोनों उदाहरणों में मूलतः साम्य है। चन्द्रदर्शन-व्याज से नायक द्वारा इच्छित नायिका का चुंबन करने की कल्पनावश्य अभिनव है।

यही छवि हृदयेश की विशेषता है। पद्माकर के उपादान परम्पराबद्ध हैं।

।४।

ए बलि या बलि के अधरान में आनि चढ़ी कछु माधुरई सी।
त्यों पद्माकर माधुरी त्यों कुच दोउन की चढ़ती उनई सी।
त्यों कुच त्यों ही नितंब चढ़े कछु त्योंही नितंब त्यों चातुरई सी।
जानी न ऐसी चढ़ाचढ़ में किहि धौं कटि बीच ही लूटि लई सी।।

-पद्माकर- जगद्विनोद- पद सं०22

रंच भर हिय में हुलास कौ विकास होत
मंद मंद भास रंच हास हरसत है।
सखिन के पास बैठ सुनत विलास रंच
उर में उरोजन उकास ससकत है।
भनत हृदेस वेस गमन करी सौं रंच
देख देख बाल लाल मन तरसत है।
कछुकि नितंब भए पीन दृग मीन रंच
बचन प्रवीन कटि छीन दरसत है।।

विश्वकसकरन- पद सं०१६

हृदयेश ने पद्माकर की उक्त परम्परा को ग्रहण करने के साथ-साथ अपने कथ्य में कुछ परिवर्द्धन भी किए हैं। हृदयेश की नायिका के अन्तः तथा बाह्य - दोनों ही सौन्दर्य मुखरित हो गए हैं। इसमें जो गत्यात्मकता का गुण आ गया है वह पद्माकर में नहीं है।

।५।

जाहिरै जगत सी जमुना जब बूड़ें बहै उमहै वह बैनी।
त्यौं पद्माकर हीर के हारन गंग तरंग को सुख दैनी।
पाइन के रंग सों रंगि जात सी भाँति ही भाँति सरस्वती सैनी।
पैरै जहाँई जहाँ ब्रजबाल तहाँ तहाँ ताल में होत त्रिबैनी।।

पद्माकर- जगद्विनोद- पद सं०१३

पाइ लसै ललकौं वहा त्रबली दरसात मनौं तिरबैनी।
कुंदन से कुच कुंभ भलाभलत आनन चंद लखौं मृगनैनी।
जोत जवाहर बाह हृदेस मनोहर मूरत है सुख दैनी।
अंगन रंग अनंग सरासर गंग सी माँग भुजंग सी बैनी।।

विश्वकसकरन- पद सं० ४०३

अन्त्यानुप्रास के साम्य को देखकर हृदयेश पर पद्माकर कीप्रतिध्वनि को स्वीकारा जा सकता है। द्वितीय कथन संघटनात्मकता के कारण प्रभावी है। त्रिबली के सादृश्य पर त्रिवेणी की सम्भावना उचित ही लगती है। इसके विपरीत पद्माकर की त्रिवेणी विच्छिन्न हो गई है जिसकी संगति पूर्वापर क्रम की अपेक्षा करती है। फिर भी

विषय की गत्यात्मकता तथा प्रवाहमयता में पद्माकर आगे हो गए हैं।

।6। घर न सुहात न सुहात बन बाहिरहूं
बाग न सुहात जे खुस्याल खुसबोही सों।
कहैं पद्माकर घनेरे धन धाम त्यौंही
चंद न सुहात चांदनी हूं जग जोही सों।
सांझ न सुहात न सुहात दिन मांझ कछु
व्यापी यह बात सो बखानत हौं तोही सों।
रात हूं सुहात न सुहात परभात आली
जब मन लागि जात काहू निरमोही सों।।
पद्माकर-जगद्विनोद-पद सं० 661

झर न सुहात मेघ तरु न सुहात छांह
घर न सुहात उठ आवत वगर मैं।
खान ना सुहात पान पान ना सुहात रंच
कान ना सुहात तान गावत नगर मैं।
भनत हृदेस बीर तीर सौं समीर लागै
भूल जात कांत भौन जगरमगर मैं।
सीधी देह मेरी रसराज लाज फंदन मैं
गयो मन भाव ब्रजराज की डगर मैं।।
विश्वकसकरन - पद सं० 137

पद्माकर के उद्वेग का भाव ग्रहण कर किस प्रकार हृदयेश ने मध्या प्रोषितपतिका का स्वरूप निर्मित किया है, द्रष्टव्य है।

।7। फूलन के खंभ पाट पटुली सुफूलन की
फूलन के फुंदरे फंदे हैं लाल डोरे मैं।
कहै पद्माकर बितान तने फूलन के
फूलन की झालरें त्यौं झिलती झकोरे मैं।
फूलि रही फूलन सुफूल फुलवारी तहां
फूल ही के फरस फबे हैं कुंज कोरे मे।
फूल भरी भूलभरी फूलभरी फूलन मै
फूल ऐसी झूलत सुफूलों के हिंडोरे मैं।
पद्माकर-जगद्विनोद-पद सं०

हार फूलहार फूल हाथन मैं धार फूल
फूल भरी डोलत मैं फूल भरी गात है।
सीसफूल फूलन के कानन मैं गांसफूल
देखा लोग होत सब भूल जात बात है।
विश्वकसकरन- पद सं० 228

दोनों भिन्न प्रसंग-विधान हैं पर पुष्प-अलंकरण में समानता है। हृदयेश यद्यपि पद्माकर से पीछे हैं तथापि उनका प्रभाव हृदयेश पर सुस्पष्ट ही है।

।८। रीतिकालीन श्रृंगारी कवियों ने प्रौढ़ा नायिका की विपरीत रति-वर्णना में पर्याप्त रुचि ली है। हृदयेश इसके अपवाद नहीं है। लगता है इस क्रम में भी उन्होंने पद्माकर का अनुगमन किया है —

> रीति रची विपरीत रची रति प्रीतम संग अनंग भरी में।
> त्यों पद्माकर टूटे हरा ते सरासर सेज परी सिगरी में।
> यों करि केलि विमोहित ह्वै रही आनंद की सुघरी उघरी में।
> नीबी न बार सम्हारिबे की सु भई सुधि नारि की बार घरी में।।
>
> पद्माकर- जगद्विनोद- पद सं०

> भनत हृदेस ह्यौं अभीत विपरीत रीत
> रत रन वीत घटी प्रीत ना तनक सी।
> केव मनभामनी करी है चार जाम नीकी
> कामिनी कौं भई सारी जामिनी छनक सी।।
>
> विश्वविमलकरन- पद सं० ३५

।९। पद्माकर की कतिपय विशिष्ट उक्तियों की छाया हृदयेश के कतिपय सन्दर्भों में देखी जा सकती है —

।क। तान लगि लटकी रही न सुधि घूंघट की
घर की औ न बाट की घाट की न घट की।

पद्माकर-जगद्विनोद-पद सं०५५८

हाट की न मानी पै रही न कीनी बाट की मैं
घर की न घाट की वृथा ही मान कीनों है।

विश्वविमलकरन — पद सं०१६४

।ख। प्रेमरस पागि जागि आए अनुरागि यातें
अब हम जानी कै हमारे भाग नीके है।

पद्माकर- जगद्विनोद- पद सं०

जाग लगे हिय और तिया घर प्रात लखे बड़ भाग हमारे।

विश्वविमलकरन- पद सं०१५१

।ग। कहाँ आए, तेरे धाम, कौन काम, घर जानि,
तहाँ जाओ, कहाँ, जहाँ मन धरि आए हो।

पद्माकर-जगद्विनोद-पद सं०६१

जाउ निसंक विहार करौ अब जाय परौ जहं रात बसे हौ।
.... अब काम कहा यह धाम धसे हौ।

विश्वविमलकरन- पद सं०४२

।घ। ए अलि इकौत कंत पाइन परे हैं आइ

हौं न तब हेरी या गुमान बमारे सों ।

पद्माकर- जगद्विनोद- पद सं०

मनमोहन पग पर परौ हमैं मनावन आज ।

भपट हिये पर ना लयौ अली बरै यह लाज ।।

विरववसकरन- पद सं०१६१

।ङ। किन्नरी नरी है कै छरी है छविदार परी

दूटि-सी परी है कै परी है परजंक पर ।।

पद्माकर-जगद्विनोद-पद सं०५४५

हेम कैसी छरी है जवाहर सौं जरी गरी

भलाभलत भरी है परी-सी टूट परी है ।

विरववसकरन- पद सं० १०९

।छ। मोहन मित्र के चित्र लखे भई चित्र ही सी तौ विचित्र कहा है ।

पद्माकर-जगद्विनोद-पद सं०३२९

चित्र मनमोहन के कियौ चित्रकार चित्र

देखि देखि चित्र भई चित्र के समान है ।

विरववसकरन- पद सं० ३१०

।ज। उभकि भरोखा ह्वै भमकि भुकि भाँकी बाल ...

पद्माकर-जगद्विनोद- पद सं०

उभकि भरोखा भुकि भाकत मयंकमुखी .. ...

विरववसकरन- पद सं०८

।भ। मोहन मीत सभी गो लखि तेरो सनमान ।

सु अब दगा दे तूँ चल्यो अरे मुदई मान ।।

पद्माकर- जगद्विनोद- पद सं०

मनमोहन मोहन जगत गयो छुब दुगमान ।

अरे मुदई मान तू करी नेह की हान ।।

विरववसकरन - पद सं० १६५

।१०। हृदयेश के कुछ लक्षण भी पद्माकर के लक्षणों से प्रभावित हैं--

।क। भलकत आवै तरुनई नई जासु अंग अंग ।
मुग्धा तासों कहत है जे प्रवीन रसरंग ।। पद्माकर- जगद० पद-
बढ़त ललित तन तरुनई मढ़त तड़ित सी जोत ।
सो मुग्धा तिय जानिये बदन भलाभलत होत ।। विरव० पद-१५

।ख। मान समै मध्या त्रिविध त्रिविध कहत प्रौढ़ाहि ।
धीरा और अधीर गनि धीराधीरा ताहि ।। पद्माकर-जगद०पद-
मान करन में त्रिविध पुन मध्या प्रौढ़ा बाम ।
धीरा और अधीर मन धीराधीरा नाम ।। विरव० पद- ३७

बेनी प्रवीन और हृदयेश

रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि बेनी प्रवीन मतिराम की परम्परा के कवि हैं।[१] मतिराम के आभार को स्वीकार करते हुए उन्होंने अपने काव्यग्रन्थ `नवरसतरंग` में सरस कविता की है। सरस काव्यरचना के साथ-साथ उनके लक्षण स्पष्ट, पूर्ण तथा उदाहरण अच्छे हैं। काव्य-सौन्दर्य-प्रकाशन की दृष्टि से उल्लेख्य इस कवि का ऋण भी हृदयेश ने स्वीकार किया है --

।१। मालिन ह्वै हरवा गुहि देत चुरी पहिरावैं बनै चुरहेरी।

हिन्दी रीति-साहित्य-डा० भगीरथ मिश्र-पृ०१८४

चुरहेरी बनकर नायिका को चूड़ियां पहनाने के भाव तथा काव्यसामग्री को ग्रहण कर कवि हृदयेश ने भी छन्द-साम्य द्वारा इसे समृद्ध किया है --

भेष धरौं चुरहेरिन कौ पग जावक अंजन नैन लगावत।
सोडस अंग सिंगार लसै कल कंचुकि गैंद धरे मनभावत।
बैठ तहां वृषभान लली मन मोद चुरीन कौ मोल करावत।
राधिका के तन कंप उठो कर कंपत लाल चुरी पहिरावत।।

विश्वविस्तरन - पद सं० ३७९

।२। नायिका के प्रति नायक का दास्य - कवियों का विशेष प्रिय रहा है। इसी परम्परा के अनुधावन में बेनी प्रवीन यदि कृष्ण को राधा की पौरी पर सेवक के रूप में खड़ा हुआ दिखलाते हैं तो हृदयेश का नायक कुछ कदम और आगे बढ़कर राधिका के पद-चिह्नों पर फूल बिछाते हुए चलता है। इस बिम्ब-योजना में हृदयेश अधिक कृतकार्य हुए हैं --

नंद किसोर सदा वृषभानु की पौरि पै ठाढ़े रहैं बनै चेरी।

हिन्दीसाहित्य का वृ० इतिहास- षष्ठभाग-पृ०१८४

राधिका पाय धरै जित ही तित ही करौ सामरौ फूल बिछावत।

विश्वविस्तरन- पद सं० ३७६

।३। बेलि के धोखे गह्यो इन मोहिं तमाल के धोखे इन्हैं लपटानी।

हिन्दी रीति-साहित्य- पृ० १८४

कैति बात तमालन सौं कुचालन सौं बकवाद करै है।

विश्वविस्तरन- पद सं० ४४८

१- देव और उनकी कविता- डा० नगेन्द्र- पृ० २९६

दोनों ही स्थलों पर परिस्थितियां भिन्न है – एक स्थल पर भ्रम का बहाना है तो अन्यत्र यथार्थ भ्रम है – तमाल से लपटने का साम्य द्रष्टव्य है ।

।४। लिखिलीन्हीं प्रेम की पहेलिन की पोथी पर
सिखि लीनी बतियां सहेलिन सो तन्त की ।
प्रीति गुड़ियान की भई छल छैलां रीति
सुनत सोहान लागी मदन महन्त की ।
अंगन अंग रंग रंग बसन प्रबीन बेनी
संग संग मानों रितु राजत बसन्त की ।
एक ही दिना में जलधर सी उमड़ि आई
यौवन की उमंग बधाई सुनि कन्त की ।।
हिन्दीरीति-साहित्य- डा० भगीरथ मिश्र-पृ० १८४

आय गयो सुखदान बिदेस अलेख भये दिनमान पिया के ।
देखत ही मुखचंद बढ़ी दुति आनंद नाहि समात हिया के ।
बेग करी सखियान सिंगार बिहार सिखाय दये रतिया के ।
घूंघट में मुसिक्याय भली विध नैन रहे सकुचाय तिया के ।।
विश्वबक्स करन- पद सं० २४३

प्रथम उद्धरण मे नायिका कंतागमन की बात ही सुनी है पर द्वितीय में कन्त परदेश से आ गया है। मूलभाव दोनों में ही समान है फिर भी प्रभाव एवं बिम्ब-विधान बेनी प्रवीन ही आगे हैं ।

।५। नायिका के रूप-लावण्य की चर्चित चर्चा से आकृष्ट मन वाला नायक नायिका-सौन्दर्य पराग के लुब्ध मधुकर की भांति उसके पार्श्ववर्ती प्रदेश में ही विहरण करने लगता है, उसे ऐसा लगता है उसे संसार की समस्त रूप-सम्पत्ति नायिका में ही केन्द्रीभूत हो गई हो और कभी-कभी तो धैर्य तथा कौटुम्बिक गरिमा का त्याग कर वह नायिका के द्वार पर ही आवास बना लेता है। इसी आशय के ये दोनों चित्र एक दूसरे के पूरक-से बन गये हैं । बेनी प्रवीन के नायक में लज्जा का आवरण है तो हृदयेश के प्रिय ने उसका सर्वथा त्याग कर आमरण अनशन-सा कर दिया है —

धाये बड़ी दुती पौरि लौं राधिका नंद किशोर तहां बरसाने ।
बेनी प्रबीन देखा-देखी ही में स्नेह समूह दोऊ सरसाने ।
भांकि भरोखे सकै न संकोचनि लोचन नीर हिये उर साने ।
मेरो न तेरो सुनै समुभै न वै फेरी सी देत फिरैं बरसाने ।।
हिन्दी-रीति-साहित्य- पृ० १८५

श्रवन सुनै तें तोर रूप की अधिक सोर तबतें गुपाल कियो द्वार पर बसवो ।
भनत हृदेस दुवै द्रगन वै भांर भांपि भांपत चकोर चाहे मुख को परसवो ।

नाचत मरोर बैनी मोर बरजोर कर हरष हिराइ गयी औठ की बिलसनी ।
ऐसी हुष आन परो ईघट प्रमान परो मुसिकि आन परो मौन ते निकसनी ।।
विस्ववकसकरन - पद सं० १२३

कुल मिलाकर हृदयेश पर बेनी प्रवीन का अल्प प्रभाव ही है । वस्तुत: किसी विशिष्ट ग्रन्थ का नहीं अपितु कवि सभी प्रमुख काव्य-ग्रन्थों का पारायण अपनी अभिरुचि का निर्माण करने के लिए, परायाण करता है - यह पृथक् बात है कि उसकी विचारधारा के अधिकांश कवियों की प्रतिध्वनियाँ उसके काव्य में सुनाई पड़ सकती हैं- फिर भी प्रधानता किसी विशिष्ट कवि की ही रहती है, ऐसी श्रेणी में बेनी प्रवीन नहीं आते ।

हृदयेश और पजनेश

कवि हृदयेश तथा पजनेश झाँसी के समकालीन कवि बताए गए हैं । इनमें परस्पर मैत्रीभाव था ।[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने ` हिन्दी साहित्य के इतिहास` में पजनेश को पन्ना निवासी बतायाहै, परन्तु झाँसी के निवासी इन्हें झाँसी का ही कवि मानते हैं ।[2] डा० वृन्दावनलाल वर्मा ने भी अपने ग्रन्थ ` झाँसी की रानी - लक्ष्मीबाई ` में पजनेश का उल्लेख किया है ।[3] इनकी कृतियाँ, शिवसिंह सेंगर के अनुसार ` नखशिख` तथा ` मधुर प्रिया ` उल्लिखित हैं पर ये उपलब्ध नहीं हैं । भारतजीवन प्रेस से ` पजनेस-प्रकाश` नामक संग्रह अवश्य प्रकाशित हुआ है । इनके छन्दों से स्पष्ट है कि इन्होंने रीति-परम्परा के अनुसार काव्यरचना की है । नखशिख वर्णन इनका प्रिय काव्यविषय रहा है ।[4] पजनेश तथा हृदयेश के काव्य में अद्भुत साम्य देखकर यह सम्भावना की जा सकती है कि ये दोनों कवि समकालीन तथा परस्पर मित्र थे परन्तु काव्यरचना में किसने किसका आभार स्वीकार किया - इस विषय में निश्चितरूपेण कुछ नहीं कहा जा सकता -

---

१- लक्ष्मीबाई रासो - सं० भगवादास माहौर - पृ० ११

२- वही-

३- झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई -डा० वृन्दावनलाल वर्मा पृ० ४२

४- हिन्दी साहित्य का इतिहास- सं० डा० नगेन्द्र - पृ० ३६८

।१।

गोकुल गलिन में अवाई आजु आली सुनि
सुन्दर गुलाबजल छिरकि सिरवौ करै ।
फरस दुरजत दरपेश ससबाने बीच
फालरि मुकतान की मुकेश फरिवौ करै ।
पजन पर्यंक जरपोश परफन पै
अधीसनी दे स्वेद बुंद ढरिवौ करै ।
जौनां रही सोवति गुपाल तोनों वाही रीति
पीतपट छोरनि सौ पौन करिवौ करै ।।

बेतवा-वाणी -अगस्त-अक्टूबर ७९-पृ०

आई बाल गौने बैठी लाज भरी कौने
बृजराज ललिचौने ताकिबे कौं तरसौं करै ।
अंग अंग सौने तैं सरस फलकत छबि
हास मृदु बोलन सुधा सौं बरसौं करै ।
कोक कैसे छौने कुच लसत इदेस लौने
ठदैक डग डोलत्तन दीठ परसौं करै ।।

विश्वबसकरन- पद सं० 203

बुन्देली के कारण सम्भव इस प्रकार का साम्य अन्यत्र नहीं उपलब्ध होता जो अन्त्यानुप्रास के रूप में सम्भव हुआ है ।

।2। उपर्युक्त प्रकार का ही एक अन्य साम्य प्रस्तुत है जिसमें यमकानुप्रास की रमणीय योजना है -

पछितात पूनौं आज अरविन्द ऊनौं देखि
सूनो बिन नाथ मुख दूनो-दूनो दीप्तिमान ।

बेतवा-वाणी-अगस्त-अक्टूबर ७९-पृ०
तुलनीय -पादटिप्पणी १

।3।

छोया छोय चाँदनी चंदोवा छिति चौकी चारू
चम्पक चमेली और नवेली बीच दीच हैं ।
बासे सब सर्व छुटीर खसखान्नि तें
कहैं पजनेस चन्दनादि लव लीच है ।
वाली छवि ललित लवोहै लोल लोचन में
बेलत गुलाब भिलमिलाते उरोज हैं ।
परयंक शीतल पै ग्रीष्म तपी तन पै
पिय हाय हीतल पै सीतल सरोज है ।।

बेतवा-वाणी-अगस्त-अक्टूबर-७९-पृ०

१- चन्द यदि ऊनौं मन वारज कौ सूनौ रहै ,
निसदिन पूनौ पर दूनौ दरसौं करै ।। विश्वबसकरन- पद सं० 203

प्राय: उपर्युक्त काव्यसामग्री हृदयेश के निम्न पद में ग्रहण की गई है —

चंदन महल कित महल हृदेस मोहे
रस बतियान सों प्रमोद सखियान में।
छूटि जात फारस फुहार फुही फैल-फैल
फैल भरै सीतल समीर छतियान में।
गोरे गात सोहैं गरे गजरा चमेलिन के
मोहैं वर सुघर सहेली सखियान में।
गोद लै उरोज कर परस गुलाब जल
छिरकत लाड़िली लली की अँखियान में।।
शिखनखसकरन – पद सं० ४२३

।४। चितवत जाकी ओर सब चकि चौंध चौंधे
भनि पजनेस भानु किरन भरी सी है।
छबि प्रतिबिंब छद्यौ छिति ह्वै छपाकर तें
छाजत छबीली राधे कनक छरी सी है।
कीनो उर कुरक गुलाब को प्रसून ग्रास
भुकि भुकि भूमि भूमि भांकत परी सी है।
आनन अमल अरविन्द तें अमल अति
अद्भुत अम्बुज आभा उफनि परी सी है।।
हिन्दी साहित्य का इतिहास- डा०नगेन्द्र-पृ०३५८

कामिनी के लिए प्रयुक्त उपमानों की एतादृशी परम्परा हृदयेश के काव्य में दृष्टिगत होती है। कवि के निम्न पदों में कथित साम्य अवेक्षणीय है —

अंग- अंग जटित जवाहर के आभरन
जगमग होत मन अद्भुति परी सी है।
प्रीत प्रतिपाल की उजास गजवत चाल,
बेंदा भाल लाल दीपै मैन मंजरी सी है।
भलत हृदेस सोहै मोतिन की माल गरे
बदन मयंक दुति भासत भरी सी है।
देखो ना बिहारी नंदलाल कुंज तिहि काल
बाल कुन्हिलानी जात सुमन छरी सी है।।
शिखनखसकरन – पद सं० २७३

।५। उरोज-वर्णन में भी दोनों कवि समान सामग्री तथा उपमानों का ग्रहण करते दृष्टिगत होते हैं। यद्यपि कवि दास ने भी एतादृश वर्णन किए तथापि इससे इन दोनों कवियों – पजनेश तथा हृदयेश- की सम्बद्धता प्रमाणित हो जाती है —

सम्पुट सरोज कैधौं सोभा के सरोवर में
लसत शृंगार के निसान अधिकारी के।
कवि पजनेस लोल किल किल कौरे की
वोर इक ठौर नार ग्रीव वरकारी के।
मंदिर मनोज के ललित कुच कुंभन के
कलित फलित कैधौं श्रीफल बिहारी के।
उरज उठौना चक्रवाकन के छौना कैधौं
मदन खिलौना ये सलौना प्रानप्यारी के।।
केशवा वाणी-अगस्त-अक्टू० ७९। पृ०९२

सम्पुट सरोज ये मनोज के प्रसिद्ध किधौं
रूप धाम कुंदन कलस वर नीके हैं।
गुर जुग चार दीप दीपत अपार देवक
की कला सों भरे सम्पुट धनी के हैं।
भनत हृदेस के सुमेर सिरवर सोहैं
मोहिनी के मन पकु जटित कनी के हैं।
कैधौं वामिनी के कैधौं भामिनी के नीके कैधौं,
प्रीति जामिनी के कुच कुम्भ कामिनी के हैं।।
शिखनखकरन- पद सं० २६२

बुन्देली-पुट, समान काव्यवस्तुग्रहण, समान अलंकार योजना, विषय-वस्तु ऐक्य आदि के आधार पर दोनों कवियों का परस्पर मैत्री-भाव सुव्यक्त होता है। वर्तमान में पजनेश का समस्त साहित्य उपलब्ध न होने के कारण विशद विवेचन इस सन्दर्भ में नहीं किया जा सका।

हृदयेश और कवि ग्वाल

हृदयेश से परवर्ती कवियों में ग्वाल का महत्व असंदिग्ध है। ये उक्ति-वैचित्र्य प्रधान कवि है। रसार्द्रता, तन्मयता तथा द्रवणशीलता में इन्हें केशव के समकक्ष तथा बिहारी से न्यून माना गया है।[1] इसके अतिरिक्त अनुप्रास एवं उत्प्रेक्षा के धनी ग्वाल[2] ने हृदयेश के काव्य का पारायण कर यत्र-तत्र उनकी प्रकीर्ण उक्तियों को ग्रहण किया है —

१- महाकवि ग्वाल का व्यक्तित्व और कृतित्व- डा० भगवान सहाय पचौरी-पृ० ३९२

२- वही-

।१। उझकि झरोखा झुकि झांकत मयंकमुखी
उछल-उछल छबि भूतल परत है ।
विश्ववसकरन- पद सं० ८

चंचला सी चपल सु पारद सी हलकत
जल बिन मीन जैसे उछल-उछल परै ।
महाकवि ग्वाल-व्यक्तित्व । कृतित्व-पृ० ३६३

दोनों चरणों में नायिका की चपलता औत्सुक्य तथा रमणीयता का समान वर्णन किया गया है । हृदयेश के छन्द-प्रवाह, उनकी अनुभाव योजना-विविधता, अनुप्रास तथा वीप्सा-निर्वाह में किस सीमा तक कवि ग्वाल प्रविष्ट हो सके हैं, इसका निर्णय करना कठिन नहीं ।

।२। रुपकर किंकिन की सबद असेष होत,
चुप कर बैठ रहे बिछुवा झनक तें ।
विश्ववसकरन- पद सं० २।६६१

किंकिनी कौ नीकौ बढ्यो नवल निनाद स्वाद
बिछिया कीनी बाद अपनी अवाज कौं ।।
रसिकानंद-ग्वाल ४।१२८

विपरीत रति के उपर्युक्त उद्धरणों में साम्य सुस्पष्ट है । इस प्रकार के वर्णन बिहारी भी कर चुके है । यहाँ ग्वाल हृदयेश से बाजी मार ले गये है । जो स्वारस्य ग्वाल की शब्द-योजना में अभिव्यक्त है वह हृदयेश में नहीं ।

।३। दौरे जित गैल-गैल फाग की मची है रेल,
जहाँ तहाँ फैल-फैल उड़त गुलाल है ।
विश्ववसकरन - पद सं० ४८६

गैल गैल ग्वालन की रेल सी मची है तहाँ,
रेल पेल ठेल सबै बेउन हंसे लगि के ।
षड्ऋतु वर्णन -ग्वाल - ८१ छंद

यद्यपि उक्त प्रकार की पदावली का प्रयोग रीतिकालीन ओजस्वी कवि भूषण भी कर चुके हैं तथापि हृदयेश की इन प्रतिध्वनियों को श्रवणागोचर कर कवि ग्वाल ने अपनी काव्यवस्तु समृद्ध की होगी - ऐसी सम्भावना की जा सकती है ।

।४। कुच-शम्भु की पूजा की कल्पना का सूत्रपात सम्भवत: मैथिल कोकिल विद्यापति द्वारा किया गया है[1]; इसी सरणि को अपनाकर दास ने जोयोगदान[2]

१- विद्यापति पदावली- सं० कुमुद विद्यालंकार- वय:संधि पद ५ व नखशिख पद १

२- तेरे उरोजन में सजनी गुन दास लखै सबै और ही और है । ग्वाल रत्नावलि-भूमिका संभु हैं पै उपजावै मनोज सुकृत हैं पै परत्रिय के चोर हैं भाग

छाप हृदयेश तथा तत्पश्चात् ग्वाल पर देखी जा सकती है —

तिय रत श्रम सौं स्वेद कन कुच जुग दिपत महेस ।
+ +
सफल करत हुव कुम्भ पर कर धर जुगल महेस ।

विश्ववसकरन– पद सं0 352 व 290

शुचि करि रुचि करि उच्च पद पाइबे कों
प्यारी कुच-सम्भु को मैं पूजन करत हों ।

रसरंग –ग्वाल – 71९

। 5।

गावत धमार धौर धुम धुधुकी की धुन,
अधर धरा तें धूर धुंधुर दिखात है ।

विश्ववसकरन– पद सं0 496

गावत धमार धूम धाम धाम धाय धाय
धीरना धरत मौज फौज के नगीच में ।

षड्-ऋतुवर्णन– ग्वाल– पद 71

यहाँ अनुप्रास योजना ही नहीं होती के हर्षोल्लास का समान वर्णन है । समान प्रसंग मे समान अलंकार के प्रयोग से ग्वार हृदयेश के आभारी प्रतीत होते हैं ।

। 6 । हृदयेश यदि नायिका के कपोलस्थ काले चिह्न के सन्दर्भ में विभिन्न अप्रस्तुत–विधान करते हैं तो कवि ग्वाल कृष्ण के नखशिख वर्णन के अन्तर्गत दसन-सौन्दर्य का उद्घाटन करते हैं । दोनों मे अद्भुत आलंकारिक साम्य द्रष्टव्य है—

कैधौं चंद सरद पै मंद ग्रह छंद कैधौं
कंज पर दिपत मलिन्द हितकारी है ।
भनत हृदेस के प्रभान ह्वै के कंद पर
नील मन जटित कलस छित चारी है ।
कैधौं कामधाम के कपोल पर टौना जान
पिय को दिठौना छवि देत हुव भारी है ।
रदछत सोहै कै असी है तिल सोहै
निखिसौहै सनसौ है कै ससौहै प्रानप्यारी के ।।

विश्ववसकरन – पद सं0 557

कैधौं पके दाड़िम के बीज परिपूरन है
परम पवित्र प्रभा पुंज चमकत हैं ।
कैधौं भूमि सुत के अनेक तारे तेजवारे के
बाँधि के कतारे झलाझल झमकत हैं ।

ग्वाल कवि कैधौं पंचबान जौहरी की ठौर
ललित ललाई लिए मणि चमकत हैं ।
कैधौं वृषभान की लड़ैती प्रान प्रीतम के
पान पीक पागे ये दसन दमकत हैं ।।
हिन्दी-रीति-साहित्य- डा० मिश्र-पृ० १४३

।७। शरद ऋतु की चंद्रिका की वर्णन-संतति अथवा अन्त्यानुप्रास में एकरूपता यह मानने को विवश कर देती है कि कवि ग्वाल हृदयेश के अनुगामी रहे हैं—

दरस छपाकर कौ परम प्रकास होत
सरस कुमुद गन सदर दरद की ।
भनत हृदेस दिस धवन गऊल तम
अवल करन मान सबल गरद की ।
अवत अमृत प्रत कदल कपूर पूर
समद सपूर कर समदु तमद की ।
जगद हरण दैन नयन चकोर कैन
रसिक रसाल रैन चाँदिनी सरद की ।। विश्वकश०पद४४३
हिन्दी रीति-साहित्य-पृ० १४३ गत

निम्न पद तुलनीय है —

मोरन के सोरन की नैको न मरोर रही
घोर हूं रही न घन घने या फरद की ।
अंबर अमल सर सरिता विमल भल
पंक को न अंक औ न उड़न गरद की ।
ग्वाल कवि चित्त मे चकोरन के चैन भये
पन्थिन की दूरि भई दूखन दरद की ।
जल पर थल पर महल अचल पर चांदी
सी चमकि रही चांदनी सरद की ।।

उक्त प्रकार कवि ग्वाल पर हृदयेश का आंशिक प्रभाव ही दृष्टिगत होता है । अलंकार-विधान, वस्तु-विधान तथा भाव-साम्य की दृष्टि से ग्वाल ने कवि हृदयेश का आभार स्वीकार किया है - अन्यत: ग्वाल का आदान विस्तीर्ण है वह मात्र हृदयेश के चमत्कारक्षम अथवा रमणीय भावों तक सीमित रहने वाला नहीं ।

गोस्वामी तुलसीदास और हृदयेश

कविकुलतिलक गोस्वामी तुलसीदास और हृदयेश नितान्त भिन्न कोटि के कवि हैं । इन दोनों कवियों में तुलना सम्भव नहीं है क्योंकि दोनों के कथ्य या

विषय भी भिन्न-भिन्न हैं। यही नहीं, वर्णन-शैली भी दोनों की भिन्न है, इसीलिए भासाम्य अथवा वैषम्य की वस्तु भी अत्यल्प है। फिर भी अधोलिखित उदाहरणों अथवा अंशों से यह प्रमाणित हो सकेगा कि कवि हृदयेश ने तुलसी के काव्य का पारायण किया था और तदनुसार उनका आभार स्वीकार कर काव्य-रचना की थी —

।१। काव्य-वस्तु तथा प्रसंग में साम्य —

।क। सपने होइ भिखारि नृप रंक नाकपति होय।
जागे हानि न लाभ कछु तिमि प्रपंच जिय जोय।।
रामचरितमानस – अयो० दो०९२

सोवत मैं भूपत भयौ जगत रंक ह्वै जात।
विश्वकसकरन- पद सं० ३०९

।ख। विरह अगिनि तनु तूल सरीरा। स्वास जरइ छन माहि सरीरा।।
नयन स्रवइ जल निज हित लागी। जरै न पाव देह विरहागी।
रामचरितमानस- सुन्दर० ३१।७-८

नैनन वारि भरी भलकै विरहानल सोणत भूमि न आवत।
विश्वकसकरन- पद सं०१३५

।ग। देखियत गगन प्रगट अंगारा। भूमि न आवत एकउ तारा।
पावकमय ससि स्रवत न आगी।......रामचरितमानस-सुन्दर १२।८-९

तारापति तपत तवा सौं तेज तोर कर
तारागन तरुन अंगार ज्वाल धाम के।
विश्वकसकरन – पद सं०१३९

।घ। मन पछितैहै अवसर बीते। विनयपत्रिका- पद सं०१९८
फेर पछितैहै ऐसौ अवसर न रैहै......। विश्व०पद सं०१३१

।ङ। खेलत बसंत राजाधिराज। देखत नभ कौतुक सुर समाज।
सोहैं सखा अनुज रघुनाथ साथ। भोलिन्ह अबीर पिचकारि हाथ।
+ +
उत जुवति जूथ जानकी संग। पहिरे पट भूषन सरस रंग।
गीतावली- उत्तर० पद सं०22

इत वृषभान की कुमार बनितान मद्ध
उत हिरदेस भीर ग्वालन गुपाल की।
खेलत अबीर बरभोरी हेम थार भर
कर पिचिकारी भर मानो मेघ पात की।
विश्वकसकरन- पद सं०४८६

।२। तुलसी के कतिपय अप्रस्तुत विधानों को भी कवि ने अपने काव्य में प्रयुक्त

किया है —

।क। मनु मलीन तनु सुन्दर कैसे। विषरस भरा कनक घटु जैसे।

रामचरितमानस-बाल० २७८।८

कंकन घट विष हिय कपट सो सठ कहत बनै न ।।

विश्ववसकरन- पद सं०२८८

।ख। बाज झपट जनु लवा लुकाने। रा०च०मा० बाल० २६८।३

बाज झपटान-सी। विश्ववसकरन- पद सं०४११

।ग। एकहिं बार आस सब पूजी। रा०च०मा० अयो० १६।१

मो मन की अभिलाष पुजावै। विश्ववसकरन- पद सं०१४१

।घ। सिय मुख ससि भए नैन चकोरा। रा०च०मा० बाल०२३०।३

तेरो मुख चंद वाे चकोर लगे बावरे। विश्ववसकरन-पद सं०२७१

।ङ। रन बाँकुरा बालिसुत बंका। रा०च०मा० लंका० १८।२

मन मत भूल ध्यान हनमत बंका को ।। विश्ववस० पद ४८४

।२। रामचरितमानस के सप्तम सोपान- उत्तरकाण्ड- में उपनिबद्ध कलियुग-वर्णन से भी प्रकृत कवि प्रभावित हुआ है। दोनों ही कवियों के वर्णनों में युगीन सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों के चित्रण पृथक्-पृथक् उभर कर आये हैं —

।१। झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना।

रा०च०मा० उत्तर० ३७।७

झूठे के मुख लाली देखी, साँचे के मुख काला।

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई-डा०वर्मा पृ०५०२

।२। मानहिं मात पिता नहि देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ।।

रा०च०मा० बाल० १८४।२

देवमंदिर दिया न बाती गोरन पै उजियाला।

साधुन को नहि कूछ कनन को सेवैं देव दिवाला ।।

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई-डा०वर्मा-पृ०५०२

।३। बरन धरम नहि आश्रम चारी। रा०च०मा०-उत्तर०९८।१

अधरम प्रगट भयो भूतल पै धंस गो धरम पताला।

झाँसी की रानी लक्ष्मी०-डा०वर्मा-पृ०५०२

।४। बादहिं सूद्र द्विजन्ह से हम तुम ते कछु घाटि। रा०च०मा०उत्तर०९९।६

जगत गुर विप्रन कौं निंदत बनिक पुत्र बर बाला।

झाँसी की रानी लक्ष्मी०-डा०वर्मा- पृ०५०२

।५। नृप पाप परायन धर्म नहीं। रा०च०मा० उत्तर० १०१ क ६

भूपत कृपा करत नीचन पै कर अनीत प्रतिपाला।

झाँसी की रानी-लक्ष्मीबाई-डा०वर्मा-पृ०५०२

।६। गुनदूषक ब्रात न कोपि गुनी । रा०च०मा०उत्तर० १०१।८
जबर जोर कलिकाल काल कौं गुन कौं कौ न वाला ।[1] हृदयेश

।७। सूद्र करहिं जप तप व्रत नाना । बैठि बरासन कहहिं पुराना ।
रामचरितमानस- उत्तर० १००।९
अधरम नाम जपत सीताफल डार गोमुखी माला ।[2] हृदयेश

।८। कासी पुरी अजुध्या मथुरा इनको जात कसाला ।
दोम-दोम कर जात मदारन दाब कांख में लाला ।।
पूजत प्रेत गुरैया बाबा धाई देव शिवाला ।[3] हृदयेश

तुलसी परिहरि हरि हरहिं पांवर पूजहिं भूत ।
दोहावली-६५
लही आँखि कब आँधरे बाँझ पूत कब ल्याइ ।
कब कोढ़ी काया लही जग बहराइच जाइ ।।
दोहावली-४९६

।९। गुनमंदिर सुंदर पतित्यागी । भजहिं नारि पर पुरुष अभागी ।
रामचरितमानस- उत्तर ९९का ४
निजपति मुक्ख सुक्ख कर जारत उपपति हित प्रतिपाला ।[4] हृदयेश

।१०। अबला कच भूषन भूरि छुधा । रा०च०मा० उत्तर १०२का १
बिछिया दृगन कोर भर काजर अंग आभरन जाला।[5] हृदयेश

ब- कवि हृदयेश का प्रदेय -

'विश्वकसरन' तथा 'रामजी का नखशिख' के प्रणेता हृदयेश दरबारी अथवा राज्याश्रित कवि थे। अपने सुदीर्घ जीवनकाल में कवि ने जीवन की जिस सुन्दरता, यथार्थता, कठिनता, परुषता आदि का अन्त:-बाह्य साक्षात्कार किया था उसे काव्य के सशक्त माध्यम से अपने आश्रयदाता अथवा जनसामान्य के समक्ष प्रस्तुत किया। परन्तु रीतिकाल की शृंगारिक स्रोतस्विनी में आकण्ठ निमज्जन करने वाले आश्रयदाताओं की रुचि के अनुसार कवि ने मात्र प्रेमरसमयीसुधा धारा ही प्रवाहित की, ऐसा नहीं कहा जा सकता। अपनी व्यावहारिक बुद्धि के कारण कवि का काव्य सुन्दर की बहुरंगी कल्पनासृष्टि तथा यथार्थवर्णना से झलमला उठा है। आत्म-तोष, जनपरितोष तथा आश्रयदाता की पुष्टि-तुष्टि- इन सबका समन्वय उनके काव्य में हुआ है। कवि के काव्य का अधिकांश 'सुन्दर' अथवा 'आनंद'

---

१ से ५ - झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई- डा० वृन्दावनलाल वर्मा - पृ०५०२३

का प्रतिनिधित्व करता है तो सूक्ष्मरूपेण समग्र 'सत्य' भी अनुद्घाटित नहीं रह गया है। सामन्तवादी संस्कृति में 'शव' के सन्दर्भ में कवि सम्भवतः सत्याभिव्यक्ति से अधिक और कुछ कर भी नहीं सकता था। इससत्याभिनिवेश में प्रच्छन्न शिवतत्त्व का संकेत भी कवि का प्रतीयमान व्यंग्य बना है। इस प्रकार कवि का काव्य सत्य, सौन्दर्य औरमंगल का, प्रेय और श्रेय का अनुपम समवाय है। कवि के काव्य में एक ओर गार्हस्थ्य सौन्दर्य की समग्रता तथा बहुविधता की अभिव्यंजना है तो दूसरी ओर इस जीवन में प्रारब्ध के कटु परिपाकस्वरूप मर्माहत और क्रन्दन करते हुए सरस्वती के उपासक की करुण गाथा है; एक ओर आश्रयदाताओं की दानवीरता का प्रत्यक्ष तथा परोक्ष लाभ प्राप्त करने वाले प्रयोजन का और विशिष्टरूपेण कवि का आह्लाद अभिव्यक्त हुआ है तो अन्य ओर मानव की अहित साधना में तत्पर असामाजिक तत्वों द्वारा कृत विडम्बनाओं से मनीषी का भग्न हृदय रोता हुआ चित्रित है। कवि के काव्य में इस प्रकार कहीं हास है, कहीं विलास का उल्लास; कहीं परिहास है तो कहीं सुदीर्घ उच्छ्वासों की अभिव्यक्ति और कहीं आह्लाद का मधुर लास्य; कहीं भक्ति है कहीं अनुरक्ति; कहीं जीवन है तो कहीं जीवन्त में व्याप्त करुण क्रन्दन; कहीं आशा का संचार है तो कहीं नैराश्य का अन्धकार; कहीं दीप्ति है तो कहीं प्रीति, कहीं कान्ति है तो कहीं औज्ज्वल्य; कहीं दैन्य है कहीं प्रणति; कहीं आत्मरस की तरलता है कहीं सुन्दर की आवेगमयता और तन्मयता; कहीं रसार्द्रता है तो कहीं भाषायी संगीतात्मकता और अलंकारों की चामत्कारिकमता;। इन सभी प्रदेयों को विशिष्टरूपेण विवृत किया जाता है —

कवि के प्रमुख काव्यग्रन्थ 'विश्ववसन्त' में विविध रंगोज्ज्वल तूलिका द्वारा नायक-नायिका-भेद विवेचन के अन्तर्गत प्रेम-वर्णन तथा नखशिखवर्णन किया गया है। यह प्रेम कवि की विविध नायिकाओं के अन्तर से अभिव्यक्त हुआ है। नारी के रमणीरूप के साधनों – लज्जा, शील, प्रेम, संकोच, श्रद्धा, दया, माया, ममता, माधुर्य, तृष्णा, असूया आदि का अभिव्यक्तीकरण उसके सुन्दर रूप की अभिव्यक्ति कराने में समर्थ है। नखशिखवर्णन के क्रम में नायक-नायिका की परस्पर पूर्वराग, मिलनोत्कण्ठा, प्रियदर्शन, अनुरक्ति, छेड़छाड़, मान, एकान्त मिलन, अभिसार तथा परिणय आदि सभी कुछ सुखात्मिका अनुभूति कराता है। विभिन्न नायिकाओं के क्रमिक वर्णन के अन्तर्गत ये विविधवर्णमय रूपचित्र हताश, भग्नहृदय, पराभूत, श्रान्त, क्लान्त मानव को जिस

जिस प्रेय पथ की ओर उन्मुख कराते है वह श्रेय का प्रथम सोपान तो है ही। कवि का यही अभिधेय उपादेय तथा प्रदेय बन गया है।

मानव-प्रकृति के उपर्युक्त रमणीय सौन्दर्यमय, मादक एवं सजीव चित्रों से पृथक् मानवेतर जड़ प्रकृति के संश्लिष्ट सौन्दर्य ने काव्य की पूर्णता में योगदान तो दिया ही है साथ ही संयोगी-वियोगी मानव प्रकृति को हलराया-दुलराया है; सजाया-संवारा है; रुलाया-हंसाया है। ऐसे प्रकृति-वर्णन-विधानों में बसन्त के साथ वर्षा-वर्णन के चित्र मानव की अवस्थानुसार - सुखात्मक तथा विषादात्मक- दोनों ही वेदनाओं से सम्बद्ध रहे हैं। कवि के हृदय का पूर्ण तादात्म्य प्रकृति-चित्रों के साथ देखने को मिलता है। मानव-प्रकृति की पुष्टि-तुष्टि में जड़ प्रकृति का किस सीमा तक योगदान है, यह कवि का स्पृहणीय विषय है। प्रकृति के आनन्दात्मक क्रोड़ में ही कवि के नायक-नायिका विहरण-रमण कर प्रेयपथ को प्रशस्त कर सके हैं। प्रकृति के अनेक रागात्मक रूपों में यहाँ निमित्त-भेद से शृंगार रस का ही प्रतिफलन हुआ है। इस प्रकार प्रकृति के प्रति आत्यन्तिक रागोन्मेष कवि का अतिरिक्त कथ्य है।

प्रकृति-पुरुष के उपर्युक्त द्वैत से परे भी कवि ने कुछ अन्तरतम द्वारा साक्षात्कृत किया है। उसे आभासित हुआ कैसे प्रकृति-पुरुष का द्वैत किसी केन्द्रीय शक्ति से नियमित तथा परिचालित होकर इस संसार मे क्रियाशील है। इस द्वैत की परतंत्रता किसी सर्वपर, सर्वस्वतंत्र, अविनश्वर, अमर्त्य, नित्य तत्व की प्रपत्ति की ओर बरबस उन्मुख-सा करती है। `श्रद्धामयो यं पुरुषः` की धारणा से निर्मित कवि का व्यक्ति ऐसे श्रेय मार्ग की ओर आकृष्ट होकर उसके प्रति आस्था का विज्ञापन करता है। कवि आदर्शवादी नहीं जो ज्ञान की ओर अग्रसर हो, जिज्ञासा भी उसका समग्र धर्म नहीं और सरस्वती का उपासक क्या अर्थ की अपेक्षा ? परन्तु आर्तता का परित्याग कवि वह कैसे करे--लोकयात्रा तो आर्ति-विरहित होने पर ही तो सफल होगी। उसकी भक्ति का यह स्वरूप युग की वेदना बनी है। `जिज्ञासा` और `ज्ञान` उत्कृष्ट सोपान हैं तो `अर्थ` निकृष्ट लक्ष्य है। आर्तभावना में अप्राप्त की प्राप्ति तथा प्राप्त का सम्यक् रक्षण कवि का काम्य तथा वरेण्य बना है। इस भावना की आस्थामयी अभिव्यक्ति में ही कवि ने परतत्व के अंश अथवा विवर्तभूत - राम, शिव, राधा-कृष्ण, दुर्गा, गणेश, हनुमान आदि की स्तुतियाँ प्रस्तुत की हैं। इन देवी-देवताओं में कवि की भेद-दृष्टि नहीं है, ऐक्य का प्रतिपादन है, समन्वय का पोषण है।

परन्तु श्रेय मार्ग के प्रशस्तीकरण के अनेक प्राथमिक-व्यावहारिक सोपान हैं- यह निरपेक्ष रूप से सिद्ध होने वाला नहीं । साधक को एतदर्थ समाज के नैतिक मूल्यों की क्रियाशीलता, राजनीतिक तथा प्रशासनिक व्यवस्था का मुखापेक्षी होना या बनना पड़ता है । कवि इसका अपवाद नहीं । उसकी अपनी परिस्थितियां ऐसी नहीं थीं कि वह विशिष्ट राज्य की कृपा पर निर्भर होकर भी राज्य अथवा समाजगत दूषणों को जनसामान्य के समक्ष प्रस्तुत करे; पर कविका निर्भय व्यक्तित्व अपनी इस वेदना को भी अभिव्यक्ति दे गया है । उन्नीसवी सदी के पांच दशकों में झांसी राज्य की सामाजिक विडंबनाओं, जटिलताओं, विरोधाभासों, अनीतिमत्ता, भ्रष्टाचार, रूढ़िवादिता, मति-विपर्यय, धर्माभास आदि की जो प्रस्तुति कविने की है, वह भी क्षुब्ध कवि का प्रयोजन अथवा प्रदेय रहा है । अन्य रीतिकवियों के द्वारा उनके आश्रयदाताओं के प्रति कृत मात्र प्रशस्ति का मार्ग न अपनाकर आश्रयदाताओं की प्रशस्ति ही नहीं की है अपितु उनके शासन में व्याप्त दोषों का संकेत करके गतानुगतिकता से सर्वथा पृथक् होने की मौन घोषणा की है । कवि ने राज्य-प्रशासन के भ्रष्टाचार रूपी गरल का पान किया पर तत्काल ही आक्रामक प्रतिक्रिया व्यक्त करने के पौरुष-प्रदर्शन में पीछे भी नहीं रहा है । कवि के चित्रण में जिन सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिस्थितियों का सटीक किन्तु सूक्ष्म उद्घाटन हुआ वह कवि का अन्य कथ्य है । कवि के इस अंकन में स्वर्गलोक में सतत् निनादित होने वाले संगीत की रुन-झुन नहीं है और न उर्वशी के कलित नूपुरों की मधुर झनकार ही है, कल्पवृक्ष के सन्दर्भ में कल्पित सद्यः कामसिद्धत्व की वर्णना भी यहां नहीं है ; यहां जीवन की कठोर आधारशिलाओं के परस्पर संघर्ष से स्फुरित स्फुलिंगों की वेधनशीलता की अनुभूति है जो कवि का मर्म तो नहीं वेध सकी पर तज्जन्य वेदना उत्पन्न करके ही निवृत्त हुई है । यही युगीन मधुर-कटु शोतन कवि का इतर प्रदेय है ।

जिस पर्यावरण में कलाकार जन्म ग्रहण करता है, सांस लेता है, जीवन के लिए अनिवार्य रक्त और मांस का संचय करता है - उसकी संस्कृति का परित्याग उसके लिए असम्भव-सा हो जाता है । इसी के सुखद परिणमन में लोकजीवन में व्याप्त मान्यताओं परम्पराओं को कवि ने वाणी दी है और आंचलिक जीवन में समादृत उत्सवों, पर्वों आदि की नयनाभिराम झांकी प्रस्तुत कर अपने आह्लाद को व्यक्त कर गया है । वर्षा-ऋतु ऋतु में हिंडोला तथा वसन्त में होलिकोत्सव इनमें उल्लेखनीय हैं । यहां भी कवि

ने जीवन के सुन्दर को ही अभिव्यक्ति दी है। इसमें जरा-मरण नहीं है अपितु विशुद्ध यौवन की अमरता है, लालित्य की अनवरतता और प्रेम की सरसता है। ऐसे कितों से यह प्रतीत होता है मानों सृष्टि में प्रकृति-हृदय का सौन्दर्य समवेत रूप में साकार हो उठा हो, राग-रंजित मानव प्रेमावेगमयी वाणी के माध्यम से गा उठा हो और मानवेतर प्रकृति उसकी अनुगामिनी बनकर जैसे इठलाती हुई नृत्य कर उठी हो।

भाषाशैलीगत वैविध्य का प्रस्तुतीकरण भी कवि का लक्ष्य रहा है। कवि-प्रयुक्त भाषा में कहीं अभिधा की तीक्ष्णता है तो कहीं लक्षणा की विदग्धता और समृद्धि और कहीं व्यंजना की वक्रता, चमत्कारिता तथा रमणीयता। सामान्यतः कवि की भाषा में सहजता, सरलता, सुबोधता के तत्त्व प्रचुरतया उपलब्ध होते हैं। यह कहीं वीरत्वगुणवशात् फड़कती तथा प्रहार करती हुई दृष्टिगत होती है तो कहीं शृंगार-रसमयी स्निग्ध कोमलकान्त पदावली का अनुप्रयोग अभिनव प्रभावाभिव्यक्ति के साथ संगीतात्मकता की सृष्टि कर सका है - आर्द्रता तथा मधुरता भी इसमें समाहित है। ब्रजभाषा के लचीलेपन के कारण संस्कृत के अनुवर्ती तत्सम शब्द तद्भव रूप धारण कर अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुए हैं। इन शब्दरूपों में उच्चारण का लोच तथा मार्दव के साथ समृद्धि का गुण समाविष्ट हो गया है। यत्र-तत्र बुन्देली के मिश्रण से यह अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध हुई है। अलंकृति और सज्जा कवि की भाषा की अन्य विशेषता है। पदबन्धों के कलात्मक गुम्फन के कारण काव्यप्रयुक्त पद छोटी-छोटी लड़ियों से बनाकर एक कोमल झंकार और कहीं ओजगुणाश्रित परुषता तथा कठोरता के कारण मर्मभेदी अट्टहास की अभिव्यक्ति करते दृष्टिगत होते हैं। यह गति, झंकार तथा सस्वरता वीप्सा तथा अनुप्रासकृत अलंकृति से सम्भूत हुई है। यमक से कवि प्रायः पद-बन्धों की सजावट और कसावट करने में समर्थ हुआ है। अर्थध्वनन कवि की काव्यभाषा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गुण है। मुहावरों और कहावतों के व्यावहारिक प्रयोग से काव्य का व्यापक ग्रहण सम्भव हुआ है। उक्ति-वैचित्र्य से भी भाषा ऐश्वर्यमयी बनी है। कवि-प्रयुक्त छन्दों से कहीं विलास, कहीं उल्लास और कहीं मनोजनोक्ति उच्छ्वासों की अभिव्यक्ति हुई है। काव्यत्व के लिए सर्वथा अपेक्षित उपमादि अलंकारों का सुष्ठु नियोजना कवि का आगामी ध्येय रहा है। काव्य के इन शोभाधायक धर्मों के सन्निवेश से कृति की शोभा द्विगुणित हुई है पर कवि का प्रयोजन मात्र अलंकार प्रदर्शन नहीं रहा है अपितु उसकी दृष्टि रस रूप मुख्यार्थ की सौन्दर्य अभिवृद्धि की ओर ही रही है। यदि मात्र चमत्कार-प्रदर्शन के

लिए काव्य-सृष्टि है भी तो नगण्य रूप में। विभिन्न राग-रागिनियों से समर्थित गीति-योजना उनका अंतिम प्रदेय है।

निष्कर्ष:-

पूर्वकृत विवेचन के आधार पर यह स्वतः सिद्ध है कि कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियों के भावों, कथ्यों, उक्तियों, शब्दावलियों का आभार स्वीकार किया है। कहीं भावसाम्य है तो कहीं भाव-विवर्द्धन भी है और कहीं भावों अथवा तथ्यों का उत्कृष्ट रूप में प्रस्तुतीकरण भी। भाव-प्रकाशन के क्षेत्र में वे अच्छे कवियों की श्रेणी में परिगणित किए जा सकते हैं। उनकी मौलिक कल्पनाएं ऐसे आदानों में अनेकशः देखी जा सकती हैं। आदान के रूप में ग्रहण भाव को पल्लवन के अनन्तर जो जिस रूप में कवि ने प्रस्तुत किया है वह मनोमुग्धकारी तथा स्पृहणीय बन गया है। अपनी एतादृशी गुणात्मकता के कारण वे सुकवि की श्रेणी में अधिष्ठित हो जाते हैं। उनका प्रदेय है- काव्य के माध्यम से सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की अभिव्यक्ति, प्रकृति का यथार्थ तथा मनोमुग्धकारी चित्रण, लोक-संस्कृति की अभिव्यंजना, यौवन तथा गार्हस्थ्य जीवन के रमणीय चित्रों की अवतारणा, प्रभावी भाषा-शैली तथा सहज निसृत अलंकृति और अन्ततः विभिन्न राग-रागिनियों से पुष्ट गीति-योजना।

विस्ववसकरन

: का :

मूल पाठ

विस्ववसकरन

श्री गणेशाय नमः ।। अथ विस्ववसकरन ग्रंथ लिष्यते ।।

दोहा

गवरनंद पद बंद कर करौं सकल सुष वृद्धि ।
विस्ववसकरन ग्रंथ यह कीजे जगत प्रसिद्धि ।।१ ।।
चतुर नरन कौं सुष करन लगत बरन रस पंथ ।
परत रसकरन सुनत सन विस्ववसकरन ग्रंथ ।।२ ।।
मंडन के करतान कौं नमस्कार कर जोर ।
षंडन के करतान कौं नमस्कार सिर ढोर ।।३ ।।

कवित्त

सुंडादंड मंडित अषंडित वितुंड तुंड
एक रद धार हियें हार फनपति कौं ।
चारौं भुज कर दीन दीन दुष दल मल छल मल षलन रषैया जनपति कौं ।
भनत छदेस सिद्धि दायक वलित नर
पावत ललत फल ध्याय धनपति कौं ।
दरस अमंद भाल चंद सुषकंद चंद
रहत न फंद पद बंद गनपति कौं ।।४ ।।
कोमल कमल पद जुगल अमल अत
नष प्रत मोद दीप दीपत षरी कौं है ।
भनत छदेस भुज दंडन अषंड तेज
षंड षंड करन अरिष्टन घरी कौं है ।
लपट फनेस छत्र सीस पर सोहै मोहै
मंडल ससी कौ भाल मंडित भरी कौ है ।
आनन करी कौ जनपालक वरी कौ हौ कौ
सुषद वरी कौ नीकौ नंद गवरी कौ है ।।५।।

दोहा

प्रगट होत शृंगार रस जह प्रिय प्रीतम दोय ।
भनत सकल कवि नायका नायक ग्रंथ विलोय ।।६ ।।

अथ नायका लछिन

दोहा

लषत कुसम सर बस परत द्रगन भरत छवि आन ।
गनत नायका रसिक जन पुन पुन करत बखान ।।७ ।।

उदाहरन । कवित्त ।

हाटक वरन मृदु करन चरन कंज
अंजन द्रगन मन रंजन करत है ।
सहज सुवास कर फैलत सुगंध अंग
मंद कर चंदन सुगंधन हरत है ।

दो-

भनत छदेस पिक बोलन मनोहरन

मंद मंद डोलतन आनद भरत है।

उभकि झरोखा भुकि भांकत मयंकमुखी

उछल उछल छवि भूतल परत है ।।८ ।।

दोहा

सहज सुवासन सौं लसत हसत बाल बृजवाल

जगर मगर मंदिर दिपत वगर वगर छवि जाल ।।९।।

अथ नायका भेद ।। दोहा ।।

त्रिविधि नायका भनत कवि सुकिया प्रथम अनूप।

फेर परकिया कहत हैं तीजी गनका रूप ।।१० ।।

सुकिया लछिन ।। दोहा ।।

लाज पगी ग्रह काज पग पति हित पगी हमेस।

देहि सीलता मै पगी यह सुकिया की देस ।।११ ।।

उदाहरन

लाज कौ जलधि सिरताज कुल नारिन मै

पद बृजराज के हिये मै धार राखो है।

घूंघट उघार सखिजन लौ न देखौ रंच

मृदुलित बचन पयूष सम चाखो है।

सीलता कौ समद गम्हीरता छदेस अत

सोभा के समूह अंग अंग अभिलाखो है।

गुरुजन याके गुन कहत तिया के ताके

ऐसे सुनै साके अंबिका के वेद भाखो है ।।१२ ।।

दोहा

देवन की सेवन करत निसिदिन भरी सुनीत।

मनभामन हिय प्रीत है सौत जान बिपिरीत ।।१३।।

सुकिया भेद ।दोहा ।।

सुकिया त्रिविधि प्रकार की मुग्धा प्रथम बखान।

पुन मध्या प्रौढा चतुर बरनत सुकवि सुजान ।।१४ ।।

मुग्धा लछन

बढत ललित तन तरुनाई मढत तडित सी जोत।

सो मुग्धा तिय जानिये बदन भलाभल होत ।।१५।।

उदाहरन

रंच भर हिय मै हुलास कौ विकास होत

मंद मंद भास रंच हास दरसत है।

सखिन के पास बैठ सुनत विलास रंच

उर मै उरोजन उजास सरसत है।

भनत छदेस वेस गमन करो सौं रंच

देख देख बाल लाल मन तरसत है।

कछुक निरंव भये पीन द्रग मीन रंच

बचन प्रवीन कटि षीन दरसत है ।।१६।।

तीन-

दोहा

तिय तन छवि अत अतन की दिन दिन बढत अलेष ।
वदन मलिन सौतन करत पिय मन हरष अलेष ।।१७।।

मुग्धा दुविधि ।।दो० ।।

एक भनत अग्यात है एक भनत कव ग्यात ।
प्रथक प्रथक वरनन करत सुण वरनन दरसात ।।१८।।

अग्यात लछिन

समझ परत नहि अतन तन छवि झलकत नित जात ।
कुच फलकत छलकत नयन भनष लक्ष अग्यात ।।१९।।

उदाहरन

काल कुंज झूलत मै दौनौ संग झूलत मै
गावत उमंग रंग छायौ मधुवन मै ।।
आज सीस फूल छूट कान्हर सम्हारौ रंच
आगुरी परस होत कहा भयौ छन मै ।
भनत छदेस सषी जानियें न जात बात
कौन उतपात उठे रोम रोम तन मै ।
भर भर नैन आए गदगद बैन आए थर
थर कंप उठौ स्वेद भयौ तन मै ।।20।।

दोहा

परत छांह नदलाल मग फरफरात द्रग खंग ।
धधधरात हिय विकल ह्यौ थरथरात सब अंग ।।२१।।

ग्यात जौवना लछिन । दोहा ।

झलक कुसम्मार अग सकल समुझत मन सुषपाय ।
हिय उछाह चित चाह हित ग्यात कहत कविताय ।।२२।।

उदाहरन

बाढी रूच मंजन मै मुष द्रग अंजन मै
कंच पुंज कंजन कौ भंजन करत जात ।
सुमन सुवीनन प्रवीनन सषीन लीन
दीन कर चंद की प्रदीपत हरत जात ।
भनत छदेस लै सिगार पै चढत जात
कोमल कहत बात सुधा सौ ढरत जात ।
पीछे पीछे तनक तरीछै ह्यौं तकत तिय
त्यौं त्यौं पिय पीछे पीछे आनद भरत जात ।।२३।।

दोहा

छिलकत चित सम्मुख छिबै नित दरपन मुष देष ।
कुच निरषत प्रफुलित वदन आनद भरत अलेष ।२४।

नौढा लछिन । दोहा ।

रत न चहत डरपत रहत नहि पति कौ पतयात ।
ताय कहत नौढा सुकवि रस वत्यिन विख्यात ।।२५।।

वार-

उदाहरन । सवैया ।

साज सिंगारन सेज परी सिगिरी सखियां दुलही पग दाबत ।
आय गयौ बृजराज इंदेस गही अंगुरी रस बात सुनावत ।
दाब लई हिय सौं मनभामन लाज भरी भय भाज न पावत ।
नैनन तैं बरसात करै नहि बात करै पिय हात न आवत ।।२६।।

दे०

तिय सोवत सपनौं भयौ झपट गह्यौ सुखदान ।
संकुच समिट गठरी भई जागत कहत न बान ।।२७।।

विश्रब्ध नवो० दे०

रत न प्रीत हिय भीत है पिय दरसन की प्रीत ।
ताय कहत विश्रब्ध हैं लछगुंथन की रीत ।।२८।।

।उदाहरन ।

दरसन लालसा बिसालता निहारी लखि
जान सखियान संग भीतर चली गई ।
भाज गई दूतिका निलाज मो अकाज कर
अंक भर लीनी अंग अंगन मली गई ।
भनत इंदेस हेरौं अब न भरोसौं तेरौं
वार वार टेरौं जानै कौंन मत ली गई ।
आज हौं न ऐहै कोट बल सौं तिहारे लाल
बात बात जालन के छल सौं छली गई ।।२९।।

दोहा

प्रीत कहत सुख मिलन कौं हिलमिल करौं गुपाल ।
हिय परसौं दरसौं हसौं हरसौं करौं न ताल ।।३०।।

मध्या लछिन । दोहा ।।

समर संकुच सम जम रहे तिय तन जुगल कलेस ।
ताइ कहत मध्या सरस कविजन भनत इंदेस ।।३१।।

उदाहरन

लाज रतराज के जिहाज जुग हौंदन मैं
जित जित दाबत तितै ही जुर जुर जात है ।
बात मनमोहन के जुर जुर जात द्रग
मंद मुसिक्यात मुख मुर मुर जात है ।
भनत इंदेस वेस उर उर जात प्रीत बढन विलास
सुनै डुर डुर जात है ।
उभकत झांखत पिया की छवि पेख पेख
गुरुजन देख देख दुर दुर जात है ।।३२।।

दोहा

जामत सुत मोहन जगत दिपत समर सम देहि ।
कहत लाज दाबत द्रगन उभकत कहत सनेहि ।।३३।।

पांच-

प्रौढा लछन । दोहा ।

वत रस रतरस छतुर अत पति पुत करत अनंद ।
सो प्रौढा वरनन करत बुधवत पढपढ छंद ।।३४ ।।

उदाहरन - ।कवित्त ।

आभरन जटित जवाहर प्रभाकरन
छंद सौ वदन देहि दीपन कनक सी ।
साज परजंक पर अंक भर प्रीतम के
सकल कलान काम भामिनी वनक सी ।
भनत छदेस छ्यौ अभीत विपरीत रीत
रतन वीत घटी प्रीत ना तनक सी ।
केल मनभामिनी करी है वार जाम नीकी
कामिनी कौं भई सारी जामिनी छनक सी ।।३५ ।।

दोहा

सुरत करत सकुक्त न कित रतन जित पति संग ।
लपट सपट आनद भरत झपट झपट लगि अंत ।।३६।।

मध्या प्रौढा भेद । दोहा ।

मान करत मै त्रिविध पुन मध्या प्रौढा वाम ।
धीरा और अधीर मन धीरा-धीरा नाम ।।३७।।

मध्या धीरा लछिन । दो० ।

विंग वचन पिय सौं कहत प्रगट करत नहि रोस ।
सो मध्या धीरा कहत हिय धीरज कौ कोस ।।३८ ।।

उदाहरन । कवित्त ।

जागे फागराग मै सभागे प्रेमपागे किधौं
क्रोध कर सबु मुना लागे हालवाल से ।
ताही तैं गुलाल से मसाल दीप जाल से हैं
कुसुम रसाल से बिसाल भानवाल से ।
भनत छदेस लागे प्रानहू तै प्यारे खूब
छवि चटकारे अनियारे भरे आल से ।
कहत वनै ना कहुं जनत रमैना नैना
देखौ लाल मैना भए नैना रंग लाल से ।।३९।।

दोहा

लाल लाल लोचन भये मेली मूठ गुलाल ।
ऐसी फाग न खेलवी कहे जढाई ग्वाल ।।४०।।

मध्या अधीरा लछिन । दो ।

वचनन भरी कठोरता रहीं बैठ मुख मोर ।
मध्या भनत अधीर तिय करी सतर दृग कोर ।४१।

उदाहरन । सवैया ।

राम कहा तुम सौंहु करौ सब गाम कहै इत माम नसेहौं ।
जाउ निसंग विहार करौ अब जाय परौ जह रात वसे हौ ।

नाम छदेस सुनौ मनमोहन वौ उत मोहन जाय फसे हौ ।
झाम कहा वदनाम भए अब काम कहा यह धाम धसे हौ ।।४२।।

दो०

दिपत भाल वैदा ललित द्रग पलकन पर पीक ।
समभ परस विपिरीत रत दो कर सकल अलीक ।।४३।।

मध्या धीराधीरा लछिन । दो ।

विंग वचन कहि रोस भर द्रगन सजल कर देष ।
मध्या धीराधीर तिय वरनत रसिकि विसेष ।।४४।।

उदाहरन । कवित ।

कीनी निसि गत वृजपपि रत अंत वृत
आनै अलसानै नींद लोचनन भर कैं ।
भनत छदेस मद मुद्रतर निद्र अली
देष लाल लेषात हरष धर धर कैं ।
वीनै कर रोनै कै वजात वाल वीनै छुत
छुवत अधीनै परजंक पर परकैं ।
उठी हरवर कै सरोस दिल भर कैं विलोक दिल
भर कैं सुद्रग भर भर कै ।।४५ ।।

दोहा

को कहि सकत गुपाल सौं प्रतपालक वृजवाल ।
वचन कहत द्रगजल वहत जनु जलधर छविजाल ।।४६।।

प्रौढा धीरा लछिन । दोहा ।

सुरत करत प्रफुलित न मन तिय हिय गुपत अप्रीत ।
प्रौढा धीरा नायका कहत सुकवि गुनरीत ।। ४७ ।।

उदाहरन । कवित ।

जैसे सीत भान की असीतल किरन जीत
तैसै प्रात सीत कर दीप हर जात है ।
भनत छदेस नीत रीत दरसात जात
जैसे ही दिषात रात आमली की पात है ।
तैसे ही तिहारे प्यारे द्रगजलजात लष
लष डर जात पल संपुटित गात है ।
नाह छलछंद जैसौ भासैं सवै संद मेरौ
वैद जैसौ वदन अमंद दिनरात है ।।४८।।

दोहा

लषत प्रात पिय पद परस जिम पतिवृत की रीत
अधिकि प्रीत पति जानसी जामै अधिकि अनीत ।।४९।।

प्रौढा अधीरा लछिन । दोहा ।

लाल लाल द्रग लाल के लषत वाल द्रग लाल
प्राढ अधीरा नायका ताय कहत कवि जाल ।।५० ।।

खात-

उदाहरन – सवैया-

हेर अचानक घेर लियौ परनार विहार खाल भयौ है।
डार गरै भुजलाय घरै तिय के हिय मै दुखजाल भयौ है।
जावक रंग कुदेस प्रदीपत लाल सरासर भाल भयौ है।
बाल प्रसून की माल हनै तन लाल कदंब की माल भयौ है।।४१।।

दोहा

जौ मनमोहन जगत पति हरत सकल तन पीर।
तापर परत सरोस वल ह्यौ कर अधिक अधीर।।४२।।

प्रौढा धीराधीर लछिन

अत उदास रत तै रहत द्रगन बतावत काम।
ताय कहत प्रौढा समझ धीरा धीरा बाम।।४३।।

उदाहरन ।कवित्त।

दीपक सी देहि दीप वगरत मंदिर मै
अंचला की ओट मान दमकत दामिनी।
हार वाल आन कौ हिये पै लाल धार कर
आय प्रात भौन मै वितास कर जामिनी।
भनत कुदेस कर गहत न प्रीत के
रोस भौ अखंडित प्रचंड परी भामिनी।
मान बैठी मानकिन देखत दमान बैठी
तान बैठी भ्रुकुटि कमान सम कामिनी।।४४।।

दोहा

आवत लखा आदर कियौ कहे अमृतवत बैन।
बाहु गहत नादर कियौं करखादर कर नैन। ४५।

ज्येष्ठा।कनिष्टा लछिन। दोहा।

जुग दुलहिन बरनन करत गुरु लघु दिपत अनंग।
पति जित चाहत गुरु कहत लघु जित लघु सतसंग।४६।।

उदाहरन

वृाच के अटान पै घटान पै लहर लेत
दोनौ प्रानप्यारी प्रानप्यारौ सासमै है।
अंगन अनंग रंग चूनरी कुसंबरंग
बालम की गोद मनमोद भर आमै है।
भनत कुदेस निज प्यारी के कपोल गोल
देख देख रीझ लाल चाहि जित भूमै है।
बाल कौं छिपाकर छपाकर दिखाय इत
वदन छपाकर कपाक लाक चूमै है।

दोहा

उत इक तिय कंचुकि कसत बतरस करत अलेख।
इत कुच परसत हरख अत छवि छकि छकि मुख देख।।४८।।

परकिया लच्छिन । दोहा ।

सुरत करत परपुरुष सौं दुरतरहत सणियान ।
पर तिय ताय वखानही वे कविजन गुनमान ।।५९।।

परकिया भेद ।।दोहा ।।

भनत सुकवि ऊढा प्रथम प्रथक अनूढा वाम ।
बुध वत ताय वखानही वे कवि जन गुनमान ।।६०।।

ऊढा लछिन । दोहा ।

निज पति तज भामरन कौ उपपिय करत विहार ।
प्रत प्रत गूंथन लख सुकवि ऊढा कहत विचार ।।६१।।

उदाहरन । कवित ।

कौ भात जोग परै लर घर लोग परै
मिटै ना वियोग परै दुख भौ चपट कैं ।
नीर भखे मैं ना उलास सखी आसपास
पीछे वैर वास सास आवत दपट कैं ।
मेरे मन आवत इदेस साज साज कर
लाज तज आव सखी कुंजन सपट कैं ।
नवरस राज महराज सुख सेज साज ताज बृजराज
लौं हीतल भपट कैं ।।६२।।

दोहा

सार पांस खेलत वधू मेलत वढत हुलास ।
नर दमार मेलत उमग नंद नदन के पास ।।६३।।

अनूढा लछिन । दो० ।

अनभामर तिय तरुन पन करत पुरुस सतसंग ।
वरबुध वत पंडित सकल कहत अनूढ अभंग ।।६४।।

उदाहरन । कवित ।

ध्यावत रहत नित गावत गुनानवाद
अरज करत सीस पग पर धर कैं ।
खोडस प्रकार कर पूजन करत सुव
सुमन चडावत हौ थार भर भर कै ।
सिव कपूर हित पूरन इदेस कवि
कीजे निसंक मिटै संक घर घर कैं ।
वर वर कीजे दया सखर संभुरानी ह
हरि वर दीजे मोय हरवर कर कै ।।६५ ।।

दोहा

सखी रुद्रजामल जपौ नवजामल घर जाय ।
मनभामन भामर परै तवि तामल पर धाय ।।६६।।

परकिया भेद ।।दोहा ।।

गुपिता वचनविदग्ध तिय क्रियाविदग्धा होय ।
बहुर लखिता कहत है कुलटा मुदिता सोय ।।६७।।

नौ-

और भेद रसग्रंथ मैं है अनुसयना तीन ।
बरनन करत छदेस कवि बुध बल वलित प्रवीन ।।६८।।

गुपता लच्छिन ।। दोहा ।।

उपिपति हित रत गुपत कर नष छत रद छत अंग ।
सुकवि कहत गुपता सरस अतुलित चतुर अभंग ।।६९ ।।

उदाहरन । कवित्त ।

चौंदह करत काम और ना सरस सखी
तू तौ फरफंद मंद उच्चरत बानी कौं ।
वीर ठदबमित्र पढ़ौ ईसुर चरित्र औ
नछित्र मैं विचित्र गत बल पहिचानी कौं ।
भनत छदेस दित जप पावत रहत तौ
हसावत रहत अत सुघर सिआनी कौं ।
गावत रहत कित थावत रहत कित
आवत रहत नित्य कहन कहानी कौं ।।७०।।

पुनर्यथा- । कवित्त ।

आयौ मायके तै बैठो मारग पके तै स्यायौ
वसन तके तै पायौ मोद मित कर कै ।
भनत छदेस बूझौ कुसल सबी की घर
बाहिर अलीं तै सुधिराणौं नित करकैं ।
एती बात कहत कितौकल लसत नागै
दूसरे के जान साव माव कित कर कैं ।
प्यारी सखी करत अदेसौ मिलबे कौ ताकौ
श्रवन सुनावत सदेसौ हित कर कैं ।।७१ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

बीनै बाग सुमन प्रदोस सिव पूजन कौं
ललिका गुलाब तरु कंटक न वर है ।
मृदुलित जानकैं निसंग झपटानी लप-
टानी छिद कंचुकि गरौट कुच पर है ।
भनत छदेस रवौ पांण कौ परेखा अब
जायगी परायैं घर हैयौं घर कर है ।
बैरत तुव गासी से लगत पोर भांसिह है
हांसी रैन निठुलासी जान पर है ।।७२ ।।

दोहा

अगम जमुन जल धस परी कहत न जान अनाय ।
लपट सपट कपट तबा हिय झपट गह्यौं वृजनाथ ।।७३ ।।

बचन विदग्धा लछिन । दोहा ।

बचन चतुर आतुर अतन करत सुरत पर पीय ।
ताइ कहत कवि लोग है बचन विदग्धा तीय ।।७४ ।।

दस–

उदाहरन । कवित्त ।

सघन गुलाब की लतान प्रफुलित जात
तीनौ एक सुमन निसंग महडार हैं।
पास ना सहेली ज्यूं व हद्द भर भेली पीर
मंदिर अकेली बैठी अधिकि पुकार हैं।
भनत छ्देस सुन देवर परौस वास
आइ कर पास लगौ धरम विचार हैं।
दया उर धारकर दरद निवार कर
फेर पग धार कर कंटक निकार हैं ।।७५ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

ससुरक मेरौ सास हार मै खोरौ कियौ
नाह सौत घेरौ भयौ आवत अवेरौ है।
ननद निगोड़ी नित्य होत ही सवेरौ करै
घर घर फेरौ समुभाउ बहुतेरौ है।
भनत छ्देस वृज ठाकुर सहाय तेरौ
वर तन ज्वाल सांभ नभ घन घेरौ है।
कृपा द्रग हेरौ जीव कंमत घनेरौ मेरौ दीपक
उजेरौ परौ मंदिर अंधेरौ है ।। ७६ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

किल चकि चौधै छड़ी चंचला घमंडै मंडै
लगत प्रचंडै मन कौन कौन डरगौ।
भनत छ्देस पीहि पीकत पपीहा तैसी
भनक भिलीन सब्द भ्रूल वगर गौ।
दीप लियौ पौन भौन हौन कौ न गौन
मो पुकार सुनै कौन तौन जौन दीप हरगौ।
जैसौ घोर तोर मोर कोरन करत गोर
तैसौ जोर जोर घन घोर सोर भरगौ ।।७७ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

आए घन घुमड प्रचंड वर भर लाए
चात्रकन चौंदद विचित्रिकि विचर है।
धरा पर धौर धौर धूम धुरवाचे करै
गन मुरवाचे बूक गरज अधर है।
भनत छ्देस रहौ पथिक निवार निस
आगै सलिला मै जलतामै घोरतर है।
नगर प्रदूर लखि जात लग जात वात
जौ लौं जात जात छ्यौ जात दिनकर है ।।७८ ।।

दोहा

करकदंब के बन सुमन मो पर वनत न ऊव।
तोर देउ नदनंदजू ह्यौं करवर अनकूल ।।७९।।

सुयंदूतका लच्छिन । दोहा ।

करत दूतपन सरम तजि नहि दूतनि सौं काम ।
कहत सकल पहिचान कै सुयंदूतका वाम ।।८० ।।

उदाहरन । कवित ।

धावन मची है धुरवान धूम सावन की
आवन घटान की अटान पै गली करी ।
दावन मची है दीप दीप रही दामिन की
घोर चहुँ ओर मची मोरन रली करी ।
पावन करी है मनभावन छ्देस कवि
पलकन भारौं पग पलंग कली करी ।
मामन गयौ है पति गामन गयौ है सबै-
आवन भयौ है आपु वामन भली करी ।।८१ ।।

पुनर्यथा । कवित ।

वारिये तिहारे पर तन मन धन प्रान
टारिये मनोज पीर दया उर धारिये ।
धारिये हिये पै रैन सैन करौ चैन करौ
रसवत वैन करौ मंदिर पधारिये ।
भनत छ्देस कुलआगर सुदेस लग
और कौन देस वेस हीतल विचारिये ।
मोतन निहारिये बिहारिये कृपानिधान
पलग बिछौ है श्रम गैल कौ निवारिये ।।८२ ।।

दोहा

अहे पथिक दिन छूवतन कहाँ जात मतमंद ।
यह मंदिर आसन करौ अगिनित करौं अनंद ।।८३ ।।

क्रिया विदग्धा लछिन । दोहा ।

नैन सैन हिय चैन कर करत काज दिन रैन ।
क्रिया विदग्धा कहत कवि रसिकन मैं सुखदैन ।।८४।।

उदाहरन । कवित ।

मंदिर खचित मन दिपत अखंड दीप
गुच्छ मुकुतावल की छवि सरसत है ।
बैठी वृषभान की लडैती वनितान मद्ध
आसपास अंग की सुगंध बरसत है ।
भनत छ्देस बृजनन्दन की वान सुन
दोहद की दंद लग लग हरसत है ।
चंदमुखी चाल अरविंद सौं सुविंद सुख
चंद मिस उभकि निसंग दरसत है ।।८५।।

दोहा

होत प्रात आवत भऊत देखे नंदकिसोर ।
भान सामने वाम नै सिर नायौ कर जोर ।।८६।।

लच्छिता लछिन । दोहा ।

गुणनिधान पिय जानकी रत नख छत छतियान ।

कहत लच्छिता ताहि सखि रखवत कर बतियान ।।८७ ।।

उदाहरन । कवित्त ।

पूछै कहा दोस तापै परत सरोस बल
मलिन परौ है जो प्रदीप मुख चंद कौ ।
मंडित कपोल भये खंडित दसन दाग
आनद घमंड ही उमंडित दुचंद कौ ।
भनत कुदेस का छिपावत छिपत प्रीत
ह्यौ रही प्रसिद्धि कहै बाक छलछंद कौ ।
मालती की माल कौ सुगंध परौ मंद तापै
फैल गो अमंद स्वेद गंध नंदनंद कौ ।।८८ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

परख लहे तै अंक लखत कहे तै कहा
बात के कहे तै मोसै भृकु भहरात है ।
अंग अंग देखौ चैमफूल कैसौ अंग भयौ
जौ न कहौ यातै तातै बातै बहरात है ।
भनत कुदेस रद भासत कपोलन पै
अधर अमोल पर छब लहरात है ।
मोहन कौ नाम सुनौ कंप कंप जात बाल
कंप कंप जात ज्यौं पताका फहरात है । ८९।

पुनर्यथा । कवित्त ।

सतरात जात इतरात नित रात जात
बिहरात जात बतरात गुबतन की ।
हित रात तासौं तेरी छित रात छव बल
दीसत प्रतछ छटा रत नुबतन की ह ।
भनत कुदेस नीकी दुरत न तीकी दसा
प्रफुलित फीकी सिथिलित सुख तन की ।
ल्याई नंदलाल सौं निहार कर हाल बाल
दिपत विसाल बाल माल मुकतन की ।९० ।

दोहा

सकुच सतर द्रग करत बत समय परत सौ भाग ।
बदन मलिन छवि ह्यौं रही रदन अधर पर दाग ।।९१।।

कुलटा लच्छिनं । दोहा ।

निसदिन रत चाहत फिरत नरवर तरुन अनेक ।
सो कुलटा बरनन करत बुधवत धर धर टेक ।।९२।।

उदाहरन । कवित्त ।

चंप कलिका सी पट ओट चंपला सी भासी
ताकन तरीखी ताकी मानौ तीर गांसी है ।
वचन सुधा सी रस रूप के भरना सी छवि
सचकि चलत कट छिनुनी छला सी है ।
भनत छदेस कवि शीतल हुलासी सदा
करत फिरत नर नागर तलासी है ।
अद्भुति रमा सी गुन दीप चंद्रमासी भासी
मोहनी कला सी सासी हांसी मैन फांसी है ।।१३।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

भामिनी सकल मनगामिनी मरालवत
कामनी की दीप दामिनी सी दरसात है ।
कुंदन नवीन मुक्तावल के आभरन
काबित बलान कोक मृदुलित गात है ।
भनत छदेस जाकी ओर सुग दैन ओर
मैन सैन मैन नैन ओर पर जात है ।
अमृत गरल मदि भरे सेत स्याम लाल
जियत मरत फेर भुग भुग जात है ।।१४।।

दोहा

दिपत सरस मृगवत नयन वदन मयंक प्रभात ।
नजर परत जित नरन पर कतल करत तित जात ।।१५।।

अनुसयना लच्छिन । दोहा ।

प्रथम भ्रष्ट अस्थान रत दुतिय छलत सगुरार ।
त्रितिय मित्र संकेत फिर दुग अनुसयना नार ।।१६।।

उदाहरन । कवित्त ।

कुंज कदंब दमार लगी सुनटार भरोखन आपु निहारी ।
भूल हुलास विलास मए सवि लेत उसास छिनौं छिन भारी ।
साज छदेस सबै सुग दान तबै मन तैं तन भौ दुग भारी ।
वेल करी सब रैन हियै लगि सोवत बालम रोवत प्यारी ।।१७।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

सीतल कदंबन की अंबन की छाह तहा
चंपन गुलाब की सुगंध हितकारी है ।
आसपास ललित लतान भ्रूम भ्रूम रहीं
घूम घूम भ्रम घूम छवि छटकारी है ।
भनत छदेस सुनौ अरज नरेस वेस
ऐसी भूक माली यारे बाग की विगारी है ।
राज की निवारी फुलवारी ठौर डारीसारी
भारी राह पारी छारद्वारी कौर डारी है ।।१८।।

दोहा

गरज गरज गाजैं परी गयौ कुंज सवि फूट ।
[illegible]

चौदह-

दुतिय उदाहरन । कवित्त ।

गरजत आवै धावै चारौं ओर दावै भावै
घर नभ मंडल कौं मंडित करत जात ।
छूट दीप तैसा बदंब की लतानन पै
देखत सजोगिन कौं आनद भरत जात ।
भनत ब्रदेस पिय आयगौ लिवावन कौं
सुनत न बाल बाल व्याकुल परत जात ।
जैसे जैसे जलध अखंड बरसत तैसौं
नैनन तै नीर मेघ झर सौं झरत जात ।।१००।।

दोहा

वृथा सोच सीतल करत द्रग भर भर कर वारि ।
सास सदन कित दाह के होत सकल विहुवारि ।।१०१।।

त्रितिय उदाहरन । कवित्त ।

वर मनमंदिर मै भासत विचित्र रुप
सरद नछित्रपति दीपत हरत है ।
आसपास आलिन मै करत विलास हास
आनन विकास रास तैव निदरत है ।
भनत ब्रदेस कान्ह वांसुरी सुनत बान
कानन तै आवे चली तानन भरत है ।
दीन मन हीन पीन द्रग मीन जलदीन
देहि भई छीन बाल धीन ना परत है ।।१०२।।

दोहा

मधुवन तै निकिसत लखत लगौ बाल वृजराज ।
दुख प्रगटौ निकिटौ हरख भयौ भूल सवि काज ।।१०३।।

मुदिता लछिन । दोहा ।

जो मन रुचि सो उचित लखि मुदित होय जो बाम ।
सो मुदिता है नायका बरनत कवि गुणधाम ।।१०४।।

उदाहरन । कवित्त ।

ल्यायौ पिय सार मै पथिकि गत दियौ हात
वांचौ सुर सकल अधिकि उतपात है ।
वैसक भयौ है बईं मैसक न रैन भर
दैसक हजारन कौ दौलत विलात है ।
भनत ब्रदेस सखि देखत बलत गत
सुनत निहात भौ विखाद तात मात है ।
ऊपर सबी तै दुख चौगुनौ दिखात वाल
सीतल उमग सुख सौगुनौ दिखात है ।।१०५।।

पन्द्रह—

पुनर्यथा । कवित्त ।

गमन विदेस दिन चारक विचार ठान
सजिन ललक नानिहारत ललक पै ।
भनत छ्देस मन धरक न रंच भर
ढरक न नैन पंखर की छलक पै ।
ध्यान पिय जान आन उदित सरूप बाल
मुदित रहत दिन रात हू ललक पै ।
उमगत स्वेद अंग अलक पलक पर
कंपन पलक पुलिकावत पलक पै ।।१०६।।

दोहा

निज पति जात बरात कौ दिवस आठ कौ काम ।
हरष बाल सुन धाम ते रगवारे घनस्याम ।। १०७ ।।

गनका लछिन । दोहा ।

धन धन धन हित हित करत जन जन जन चित लाय ।
भन कविजन गनका गनत उपजत छवि छित छाय ।।१०८ ।।

उदाहरन । कवित्त ।

वैठी बाल चाचै दरवाचै लै ससार वाचै
अंग अंग सोभित अनंग रंग भरी है ।
आनंद की खान करै लाजन की मान पान
नैन बान तान बान तान गुनभरी है ।
भनत छ्देस सारी सारी जरतार भरी
हरी कंचुकी पै तेरार मोतिन की लरी है ।
हेम वैसी धरा है जवाहर सौं जरी खरी
भलाभलत भरी है परी सी टूट परी है ।। १०९ ।।

दोहा

चितवत चित चित चित हरत नित नव करत सिगार ।
तन दरपन सम दुत करत कुच कच ललित सिवार ।। ११० ।।

अन्य सुरत दुखित लछिन । दोहा ।

मनभामन की रत प्रगट समझ और तन वाम ।
अंनसुरत दुखिता कहत होत क्रोध कौ धाम ।।१११।।

उदाहरन । कवित्त ।

जान कै प्रवीनी कीनी दूतिका नवीनी दीनी
तू तौ रंग भीनी सखी मति की उछीनी है ।
कंचुकि नवीनी दीनी सिथलित कीनी भीनी
बरन ललीनी हीनी बरन कमीनी है ।
लीनी लखि ललित कपोल भा मलीनी परी
सखा छ्देस रद छत छविदीनी है ।
सतवत कीनी वीनी पतिव्रत कीनी दीनी
दुति चित कीनी रीनी रस चित कीनी है ।।११२।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

गुन गन तेरे मैन न हेरे ना कहे रे काहू

भेजी लिख सार समाचार पतिया मै है ।

अमित अबेर कीनी बीच काहू घेर लीनी

जान परी घेर कीनी फेर बतिया मै है ।

भनत छदेस सुखपाल कौ निहार कर

आई प्रातकाल गई साँझ रतिया मैहै ।

आपु सुख पाय लीनौ यकित उपाय कीनौ

प्रबल अयाय दीनौ दाह छतिया मै है ।।११३ ।।

पुनर्यथा । सवैया ।

हिति सौ पठई मनभामन पै इत आमन की चित लाग लगी ।

रत मानी छदेस प्रमानी ठई पिय के हिय सौं निस जाग लगी ।

हम जानौ सबै सुख मानौ तु ही यम्र पीठि मलिंद पराग लगी ।

छतिया छत ना नख दाग लगीं घर ही की चिराक सौं आग लगीं ।।११४।।

दोहा

भलौ दूतपन तू करौ अधर लाल अनमोल ।

कुच कठोर नख छत लगे रद छत दिपत कपोल ।।११५।।

प्रेमगर्विता लछिन । दोहा ।

लखि सोभा तिय वदन पिय करत निछावर प्रान ।

प्रेम गर्व तिय हित उमग ताकौं भनत सुजान ।।११६ ।।

उदाहरन । सवैया ।

दिन चार की आए लिवावन बीर करै नित रार रहै भूख री ।

तव तै पति प्रान अधार छदेस न जाउ न जाउ कहै मुख री ।

कहू कौन कौ राख रहौ रुख री इत जात लौ कूप उतै पुकारी ।

सखि मायके जात कौ है सुख री पिय के बिछुरे कौ महादुख री ।११७।

पुनर्यथा । कवित्त ।

आवे रंग कुंज की गलीन बाल नंद लाल

मार दीप जात तै बिसाल दरसात है ।

नूपुर पगन कटि किंकिन मुक्तमाल

कुंडल मुकुट पीत पट फहरात है ।

भनत छदेस बेस राग दरसाय गाय मग वगराय

फूल बल बल जात है ।

जाल संग सात मै निहार मोहु जात मोर

देख देख गात बात बात पै सिहात है ।।११८।।

सत्रह-

पुनर्यथा । कवित्त ।

उझकि झरोखान ह्वै झांकत कला सी झझ-

रीन ह्यौ प्रभा कौ झला झलकत अत कौ ।

छिन दरीच बीच बीछन मरीछन सौं

छित छवि छौंध सौ प्रदीप रत पत कौ ।

भनत छदेस स्वच्छ गुच्छ मुकुतानगन

आभरन अंग जगमग रसमत कौ ।

सौगुनौ नछिन्नपति सहित नछिन्न देखा

चित्र कौ लिखौ सौ रहौ पुत्र जसमत कौ ।।११९।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

सखिन समाज माज राजत नवल बाल

सरस कलानिधि की कला सवरीन ये ।

अंग अंग उदित मुदित मार तीतै अत

उदधि प्रभा कौ उमगत छवि दीन ये ।

भनत छदेस आए मारग सहज स्याम

चकित थकित भए तकितकि लीन ये ।

द्रग पट झीन ओट दिपत नवीन मान

उछरत मीन गंगजल मै प्रवीन ये ।।१20 ।।

दोहा

मोही तन हेरत रहत वारै तन मन प्रान ।

कहत बात सोई करत करौ कौन विध मान ।।१२१ ।।

रूप गर्विता लछिन । दोहा ।

निज मुख लखि निसिपति निरख निधरक करत गहर ।

रूपगर्विता तिय सकल बरनत बिबुध जहर ।।१२२ ।।

उदाहरन । कवित्त ।

श्रवन सुनै तैं जोर रूप कौ अधिकि सोर

तब तैं गुपाल कियौ व्दार पर वसवौ ।

भनत छदेस द्वै द्रगन पै भौंर झापै

झांकत चकोर चाहै मुख कौ परसवौ ।

जोबत मरोर वैनी मोर बरजोर कर

हरख हिराइ गयौ ओठ कौ बिकसवौ ।

कैसौ दुख पान परौ घूंघट प्रमान परौ

मुसिक्यि आन परो भौन तैं निकसवौ ।।१२३।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

आली हौं गई ती काल कलित कलिंदी तीर
वाही कूल कान्ह धरैं लकुट छडे रहे ।
वांके द्रग विकट प्रवीन वीन राग तामैं
कटक नवीन नग मुकुट जडे रहे ।
सोभा सर दिपत छदेस रत पत अत
मोती कंठ नग तन सरत खडे रहे ।
जा तौं पग मंजुल मजेज मे मले मैं तौलौं
ताकन विचित्र प्रत चित्र से गाडे रहे ।।१२४ ।।

दोहा

उहां कौन छल सकत सखि कुंज भानजा तीर ।
मो तन सहज सुगंध पर परत भौंर की भीर ।। १२५ ।।

मानिनी लछिन । दोहा ।

पर तिय हिय लग पिय सुनत तिय जिय हिय दुखसान ।
मान ठान दुखवान कर लगत सतर भूवतान ।।१२६ ।।

उदाहरन । कवित्त ।

द्रग ललिताई पाई मीन चंचलाई कहा
वदन भलाई कहा चंद की निकाई है ।
वल सुखदाई तुव जगत वडाई गाई
अदभुति छदेस गुन भासत कन्हाई है ।
म्रदुल नवीन रुचि रुचि कै विछाई सेज
तैसी कुंज कुंजरित पत छवि छाई है ।
तू तौं गौनहाई आई जानै कहा मान माई
एती निठुराई कौन सौत नै सिखाई है ।।१२७ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

कहा मत भाली आली द्रगनन मैं लाली हाली
छल ललचाली देखा पाली बांध वाली है ।
भनत छदेस मिल सीतल वहाली वल
पी वल विहाली कर प्रगट गुमाली है ।
सांझ सेज हाली रची सुमनन जाली जाली
धुन धटचाली वाह आली रात काली है ।
कैसौं राग ताली जकि पाली नाथ चाली ख्याली
दीन भयौ डोलत प्रवीन वनमाली है ।।१२८।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

छल छल कुंजन मै मोद भौंर गुंजन मै
मालती प्रसून पुंज पुंजन दरस तै ।
वर परजंक पर अंक भर नंदलाल
रसिकि छदेस वात सीतल परस तै ।
डार गलवाई रच देहि की परत छाई
हरी हरी हू है दीप आपु के दरस ते ।

रूप में अगाधा प्रानपति हित साधा

कर भेंट मोर बाधा राधा नागर सरस तैं ।।१२९।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

अब आनद को खान लोक लोकन को सुखदान

सोभा को निधान देवतान गुनगान है ।

मुनजन ध्यान करैं पावैं मुक्तिदान सान

सातौ दीप ताकी दीप होत दीपमान है ।

भनत छ्देस नीकी झलक झलान कर

गावै मृदु बान तान सकल बलान है ।

राधे छोड मान करै कौन सौं गुमान

मान कान्ह तेजवान मान कोट भासमान है ।।१३०।

पुनर्यथा । कवित्त ।

लाल ललिहैहै कामताप तलपैहै तैहै

मान मै न लैहै कछु उठ उर धार लै ।

सरद समै है व्योम चंद दरसै है स्वच्छ

सुधा बरसैहै ष्रोल वदन निहार लै ।

भनत छ्देस सुख दैहै जस पैहै जत

धरम पलैहै पल भर कल पार लै ।

फेर पछतैहै ऐसो वखत न रैहै चैहै

सरता बहैहै वास करत पखार लै ।।१३१ ।।

दोहा

तनक वान सुन कान मै रहत मान कौ ठान ।

तो तैं और सुजान को करत कान गुनगान ।। १३२ ।।

अथ दसौ नायका बरनन ।। छंद सवैया ।।

प्रोषितपतिका और षंडिता कलहंतरता जानौ ।

विप्रलब्ध उत्का संग हेरत वासकसेज्या मानौ ।।

स्वाधिन पति अभिसार प्रवत्सत आगतपतिका ठानौ ।

दसौ नायका भेद अवस्ता तिन कौ करत वखानौ ।। १३३ ।।

प्रोषित पतिका लछिन । दोहा ।

पति विदेस तिय उमग तन रत पति करत कलेस ।

प्रोषित पतिका मुंध मति लषि लषि भनत छ्देस ।।१३४

मुग्धा प्रोषितपतिका । उदाहरन ।

जा दिन तैं ब्रजराज गयो तिय ता दिन तैं घर द्वार न भावत ।

बूझत बात छ्देस सषीगन थाकि रहीं पर भेद न पावत ।

नैनन वारि भरौ झलकै बिरहानल सोषत भूमि ब न आवत ।

नीर पियै नहि षीर पियै नहि पीर कही नहि पीर बतावत ।।१३५।।

दोहा

पिय वियोग तन दूबरी नवल बाल दरसाय ।

जबर सीत के परस ज्यौं जात कमल कुम्हिलाय ।।१३६।।

मध्या प्रोषितपतिका ।। उदाहरन । कवित्त ।

भ‌ार न सुहात मेघ तर न सुहात छांह
घर न सुहात उठ आवत वगर मै ।
खान ना सुहात खानपान ना सुहात रैन
कान ना सुहात तान गावत नगर है ।
भनत छ्रदेस वीर तीर सौ समीर लागै
भ्रम जात कांध भौन जगर मगर मै ।
बीधौ देह मेरो खराज लाज फंदन मै
गयौ मन भांज वृजराज की डगर मै ।। १३७ ।।

दोहा

सखि बोलत बोलत नहीं खोलत बनत न नैन ।
कहौ कौन विधि होयगो नंदनदन बिन चैन ।। १३८ ।।

प्रौढा प्रोषितपतिका । उदाहरन । कवित्त ।

सकल सराहै सुष्पसारग सरद सार
सूर से सरस सर सरसत सांम के ।
जौन जात जान कौं जरावत जुलम जोर
जुर सौ जगत जामै जहर तमाम के ।
भनत छ्रदेस वल व्याकुल विरह वर वेदन वदन वधी
वरवर काम के ।
तारापति तपत ब तवा सौ तेज तोर कर
तारागन तरुन अगारा ज्वालधाम के ।। १३९ ।।

दोहा

लखत सरद रितु चांदिनी भवत छिपत धम गेह ।
तुकत तवा सौ प्रान सखि धुकत अवा सौ देह ।। १४० ।।

परकिया प्रोषितपतिका । उदाहरन । कवित्त ।

सूनी परी कुंवै वे मलिंद फिरै गुंवै गुंवै
होत भौ अनंद यहां डार गलवांयी तैं ।
देख देख फूलन की फूलन अतूल वर
हीतल मैं होत सूल द्रग दरसायी तैं ।
भनत छ्रदेस नंदलाल के वियोग भयै
तनक न चैन नैन मैन के तपायी तै ।
पूछै पति बात कहौ कौन है हवाल बाल
ताप चढी बालम वसंत रितु आयी तैं ।। १४१ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

नीकौ वनौ डौल घर आवै करै चौल सवी
बासन मै कौलदार रंचक न दोस है ।
हंसत वदन सोभा मदन सदन जैसौ
नंद कौ नदन तैसौ दरसन होस है ।

भनत छ्देस मम दम पै प्रांन धंन

धंन तुव जीवन कौं रहत असोस है।

कौन देस कौन ठौर आई सुधि नाहि क्व

आवत परोसिन तिहारौ पति सोस है।।१४२।।

दोहा

जिन देखत सुख होत भौ तहाँ दुष्य के ढेर।

जिन कुंजन अलि गुंजरत तहाँ गुंजरत सेर।।१४३।।

गमका प्रोषितपतिका। उदाहरन।सवैया।

छायरहे मथुरा मनमोहन तो अस हात सदेस पठावै।

ल्यावत भौंत बराव बरे नग मोमन की अभिलाष पुजावै।

गावत आपु छ्देस मनोहर वीन वजावत कुंज बुलावै।

या सवि ग्राम गमार कौं अब कौन कौं फाग धमार सुनावै।।१४४।।

दोहा

परपूरन मन की सबै करत हते अभिलाष।

तिन मनमोहन हौं विना भए काज सवि षाष।।१४५।।

षंडिता लछिन। दोहा।

पिय तन मै तिय और सौं रत के चिंन दिषात।

करत षेद त्रिय षंडिता दुरगुन कहत प्रभात।।१४६।।

मुग्धा षंडिता। उदाहरन। कवित्त।

अलसात लोचन लजात झप झप जात

चलत भुवत पद सिथिलित गात है।

लटपट पैंच लट मंडित कपोलन पै

कुंडल कलित कांन लटक प्रभात है।

भनत छ्देस मनरंजन अधर छवि

अंजन सहित हित भंजन बतात हैं।

आए प्रातकाल लीक जावक की लाल भाल

देष बाल लाल भए द्रग जलजात है।।१४७।।

दोहा

भूल पीत पट नील पट ओढे लषौं गुविंद।

भए बाल के लाल द्रग मनौ लाल अरविंद।।१४८

मध्या षंडिता। उदाहरन। कवित्त।

अंजन अधर मनरंजन कपोल पीक

कंजन से नैन भरौ आलस अलोच है।

जावक भुजान भाल लाल गरै मुक्तमाल

षोइ दीनी गुंजमाल रंचक न सोच है।

भनत छ्देस दुख मोचन दिपत छवि

भुवत मतंगवत अदभुत रोच है।

फरकत ओठ बात कहत न बात बनै

होतल मै कोप भरौ मुख मै सकोच है।।१४९।।

दोहा

सापराध लखि रोस भर बोलत बनत न बाम।
प्रातकाल निज धाम कौं करत कामिनी काम ।।१५०।।

प्रौढ़ा खंडिता। उदाहरन। सवैया।

सुंदर रूप बनौ मनमोहन भूमत आवत ज्यौं मतवारे।
देख छदेस सबै जग मोहत जात नहीं सिर पेंच सम्हारे।
छाकि रहे छवि के मदि सौं उहि ताकि रहे धर ध्यान विचारे।
जाग लगे हिय और तिया अरु प्रात लखे बड भाग हमारे ।।१५१।।

दोहा

अत आदर नादर करी ल्यौं पाउडे डार।
मान करौं मन मैं तिया धरे सिंगार उतार ।।१५२।।

परकिया खंडिता। उदाहरन। कवित्त।

आछी करी सांमरे न पाछे की निवाही प्रीत
छोड़ दीनी नीत साधी रीत दुरजन की।
पूरौ भयौ काज ना अकाज परपूर भयौ
सखिन समाज छूटी लाज पुरजन की।
भनत छदेस सांची वेदन पुरान बांची
पति न पराए होत बांन सुरजन की।
मैं कहा ठानी है बिकानी सौं दिखानी जानी
पानी गौ न मानी बानी सीख गुरुजन की ।।१५३।

दोहा

घर घर करत विहार तुम सब तन रहत निहार।
पर घर कीनी प्रीत हम तज हरबर परिवार ।।१५४।।

गनका खंडिता। सवैया।

छूट परीं अलकैं बिथुरीं बर अंगन अंग सुगंध मढे हौ।
नींद छदेस भरी अखियान सुजान बडी तिहि रूप गडे हौ।
प्रीत करी धनवार बडे लखि जाउ घरै बिन काज खडे हौ।
जानत सी तुम लाज बडे निरलाज बड़े छलबाज बड़े हौ ।।१५५।।

दोहा

हीरन की मुंदरी कहां दैन कही निरलाज।
बसन कहौ हमरे कहां कियौ और घर काज ।।१५६।।

कलहंतरता लछिन। दोहा।

बालम सौं जालिम परत कहौ न मानत बाम।
फिर पीछैं पछितात है कलहंतरता नाम ।। १५७ ।।

मुग्धा कलहंतरता। उदाहरन। कवित्त।

हार बर हीरन के सुंदर न एक तामै
तान बैठी भौंह मान बैठी बात मान कौं।
मौहन मनावै दरसावै राग तान गावै
पग सिर नावै भावै कहत न बान कौं।

भनत छदेस लाल रूस गयौ कुंजन मै

रैंचक न हेरी भरै अधिकि गुमान कौं ।

रात सरसान लागी हीतल डरान लागी

मन पछितानलागी भान लागी पान कौं ।।१५८।।

दोहा

गोरी थोरे दिवस कौ वृथा करत ललकान ।

हार मान पिय उठ गयौ अब लागी पछतान ।।१५९ ।।

मध्या कलहंतरता । उदाहरन । कवित्त

रैंचक निकिस विन समत सकित नित

मित हू के कित अनवनत न मन तैं ।

भनत छदेस हित करत जरत पद

परत डरत अल लरत नरन तैं ।

जात पति सुनत सुबात पछितात गात

छिन मै विलात जात मदन कदन तैं ।

हलक हलक बोल हलत हलक वत

झलक झलक जल झरत द्रगन तैं ।।१६० ।।

दोहा

मनमोहन पग पर परी हमै मनावन काज ।

झपट हिये पर ना लयौ अली वरै यह लाज ।।१६१ ।।

प्रौढा कलहंतरता । उदाहरन । सवैया ।

मोर रही मुख भोर विना झकझोर सकी द्रग कोर चढे से ।

भौत करी विनिती मनती नहि मान मिटावन मंर पढे से ।

जैन वढौ तन मैन छदेस न चैन परै लख व्दार खडे से ।

मान करौ पति सौं अल सौ अब जात वृथा वल प्रान कढे से ।।१६२ ।।

दोहा

हार मान मोहन गयौ तब तू कही न वात ।

हरी हरी कह करत अब परी परी पछितात ।।१६३ ।।

परकिया कलहंतरता । उदाहरन । कवित्त ।

साज तज दीनौ प्रेहि काज तज दीनौ सवै

लाज तज सखिन समाज तज दीनौ है ।

हास भयौ वृज मै विलास भयौ कुंजन मै

नास भयौ नीत कौ न तापै कित दीनौ है ।

ऐसे सुखदायक छदेस मानमोहन सौं

टेर वैठी प्रीत गयौ उठ कर रीनौ है ।

हाट कौ न मानी पै रही न कौनौ वाट की मैं

घर कौ न घाट कौ वृथा ही मान कीनौ है ।।१६४।।

दोहा

मनमोहन मोहन जगत गयौ कुंज दुषमान ।
अरे मुढई मान तू करी नेह की हान ।।१६५ ।।

गनका कलहंतरता । सवैया ।

देष मलीन परी कुनरी विन बोलत जाय रसाय लई है ।
आपुन साज सिंगार छदेस लषौ छवि छाय कलाय लई है ।
लाछन देत न मान करी पिय पाय परी घर राय लई है ।
भूल गई अपुनी रचना निज दांतन दाव चवाय लई है ।।१६६।।

दोहा

अवलाषा पूरन करी दे लाछन कौ साज ।
सा पिया सौं निसि रिस करी गयौ विगर सवि काज ।।१६७।।

विप्रलब्धा लछिन । दोहा ।

पिय न मिलन रत भवन तिया हनत कुसमसर बान ।
विप्रलब्ध तन विकल अत जिय हिय तल दुष मान ।।१६८ ।।

मुग्धा विप्रलब्धा । उदाहरन । कवित्त ।

संग सषियान के उमंग चली कुंजन कौं
तहां परजंक रचौ आनद के ष्याल कौं ।
सूनौ केल मंदिर दिषानी सेज सुंदर सी
सुंदर हियें मै भयौ षेद वर बाल कौं ।
भनत छदेस भौंहु अैंठी कर वैठी सेज
छोर धरे आभूषन वेदा भाल लाल कौं ।
मानौ चंद मंद परी राहु फरफंद जैसैं
मंद परौ वदन गुविंद विन बाल कौं ।।१६९ ।।

दोहा

लषि न परहु पिय सेज पर लषत चंद दुति मंद ।
नवल बाल मुष ह्यौ रही मनौ संपुटित कंज ।।१७०।।

मध्या विप्रलब्धा । उदाहरन । कवित्त ।

वार वार वारि वहै मंज द्रग कंजन तै
मार मार कीनी दया देहि की गनत ना ।
स्वास भर हीतल मै ताप सी तपत जात
धुवा सी धमत दसा बनत भनत ना ।
भनत छदेस वाग वाग सौं दिषान लागी
आग सौ सिंगार लागौ राग कौं जनत ना ।
सूनी सेज देष साल सहत वनत वाल
पिय न मिले कौ दुष कहत बनत ना ।।१७१ ।।

दोहा

पिय न मिलन संकेत मै तपत विरह भरपूर ।
परत स्वास जो सामुने गिरत बाग तै दूर ।।१७२ ।।

पच्चीस-

प्रौढा विप्रलब्धा । उदाहरन । कवित्त ।

अंग अंग जटित जवाहर के आभरन
जगमग होत मग अद्‌भुति परी सी है ।
प्रीत प्रतपाल की उताल गजवत चाल
वैदा भाल लाल दीपै मैन मंजरी सी है ।
भनत इदेस सोहै मौतिन की माल गरें
वदन मयंक दुति भासत भरी सी है ।
दोखी ना बिसाल नंदलाल कुंज तिहि काल
वाल कुम्हिलानी जाल सुमन छरी सी है ।।१७३।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

सरस सुगंधन सिगार अंग अंग साज
चंप कलिका तै वर दीप दरसा रही ।
जाल संग्नि कुंजन इदेस मालिती सी फूल
पाइँ फेर फेर भौर भीर वरसा रही ।
मृग द्रग हेर परजंक पैन वृजचंद
बिसर बिलास द्रग वारि वरसा रही ।
मदन जगत ज्वाल जाल सरसाई अत
दीन ह्वाै दिखाई पियराई तन छा रही ।।१७४।।

दोहा

पिय न मिलन रत भवन तिय हनत कुसम सर वान ।
तलफत तलफत दुवरी भई परत न तन पहिचान ।।१७५।।

परकिया विप्रलब्धा । सवैया ।

साज सिगार हुलास भरी डिगरी छल सौ अलि पुंज भरे मैं ।
सेज परी सुथरी बिथुरी अव का संग होत विहार खरे मैं ।
भूषन अंग अगार भए बर जागत मैन इदेस भरे मैं ।
लाज तजी गृह काज तजौ वृजराज मिलौ नहि कुंज भरे मैं । १७६ ।।

गनका विप्रलब्धा । उदाहरन । कवित्त।

कर कर सकल मनोरथ मनोज भरी
काम सुंदरी की नीकी नीकी दीप जीती है ।
तहाँ नदनंद की न भैट भई कुंजन मै
होत भई व्याकुल लखौ तै सेज रीती है ।
भनत इदेस चांद भान के प्रमान भयौ
मान तान भूल गई सोस मै परीती है ।
आई होत सांम की रहीन वीनौ काम की मै
धन की न धाम की तमाम रैन वीती है ।।१७७।।

दोहा

वृज ठाकुर नहि कुंज मै वृथा वुलाई रैन ।
सदन वहुत हेली हवे सह करती वर सैन ।। १७८।।

छब्बीस-

उक्ता लछिन । दोहा ।

सज सिगार बृजी पलग करत वाल मन चिंत ।
मनभावन आवै ब्बै उक्ता ताहि भनंत ।। १७९ ।।

मुग्धा उक्ता । सवैया ।

सांझहि तैं उकिलात वधू कब आवत मोहन प्रीत नई है ।
सेज परी उठ बैठत लेटत हेरत हेरत नींद गई है ।
देखन की चित चाहि इदेस लला छवि नैनन छाय रई है ।
आवत धावत जात अटान वटा नट की वरवाल भई है ।।१८०।।

दोहा

नवल वाल हिय लाज सौं बूझत बनत न वात ।
लगी लगन नदनंद सौं फरफरात सवि गात ।।१८१।।

मध्या उक्ता । उदाहरन । कवित ।

संपुटित जलज लहैती जलजात जब
कुमुद विलास मुकिलित दरसात है ।
मृग द्रग सकल निहोरत रहत सिर
ठोरत रहत करिद वोल कोकिल नसात है ।
हृदयेस नदनंद हेरत तिहारौ मग
जगमग दिपत विसाल वाल गात है ।
त्रिषित चकोर छवि छकत रहत अत
चपत नषतपति लषत लजात है ।।१८२।।

दोहा

सकुच रहत वोलत नहीं वुव मग हेरत वाल ।
भयौ प्रभाकर छकत है गयौ निसाकर लाल ।१८३।

प्रौढा उक्त । उदाहरन । कवित ।

कौन वास तारी भई देर अत भारी परे
सौतन की वारी ना निहारी नभ लाली कौ ।
हो कै खिलारी सो विसारी वात सारी भई
देहि याद सारी मारी मुख वटकाली कौं ।
भनत इदेस वेत गैध जासकारी लगै क
करंक भारी सो उजार अब हाली कौं ।
सारी रात झाली चाली रोम रोम साली चाली
ये री छल आली जा तलास वनमाली कौं ।१८४।।

दोहा

गयौ छपाकर छिपि सवै गई पहर निस तीन ।
नदनंदन आयौ नहीं भयौ कौन सैं लीन ।। १८५ ।।

सताईस-

परकिया उक्ता । उदाहरन । कवित्त।

भिल्लिन की भनक भनान ललान कर
काम की ललान केकलान कूक हर तैं ।

जित लखि जात दरसात बरसात घटा
पर सरसात छटा बंकला अधर तैं ।

भनत इदेस रहे कित निस बीत मीत
करत अनीत जातलास हरवर तैं ।

पौन भांकि भोर तरु तोर जल फोर कर
घेर घनघोर मचौ सोर जलधर तैं । ।१८६।।

दोहा

छल बल कर आई यहाँ निजपति गयौ बजार ।
मनमोहन आप नहीं लखि सखि बचन विचार।। १८७।।

गनका उक्ता । सवैया ।

हेरत हेरत हार गये द्रग पेरत मैन तरंग बरावत ।
जान परी बद कौल भयौ बहु और हितू घर बौल करावत ।
मोतिन के गजरान इदेस बसे पटवान दुकान बरावत ।
बीत गई रजनी सजनी बजनी पग पायल लाल जरावत।।१८८।।

दोहा

वारवधू पति पंथ लखि बार बार उकिलात ।
कवि ल्यावत बंकना ललित हीरन जटित प्रभात ।।१८९।

वासकसेज्या लछन । दोहा ।

सुमन सरस परजंक सज रमन मिलन चित चाय ।
अंग अंग नग जगमग दिपत बसन बसर लपटाय ।।१९०।।

मुग्धा वासकसेज्या । उदा० ।सवैया ।

साज कै सेज सिंगार सबै रत तैं अत रूप प्रवाल धरौ है ।
कौन कहै वह बाल बिसाल लसै घर मे वर लाल धरौ है ।
वेग चलौ सुगपाल इदेस मिलौ तुमकौं सुगभाल धरौ है ।
स्यौ परजंक रसाल मसाल मनौ छवि कौ यह जाल धरौ है ।।१९१।।

दोहा

रतन जटित परजंक पर सुमनन सेज बिछाय ।
नवल बाल बृजी ललित सखि सखियन सुगपाय ।।१९२।।

मध्या वासकसेज्या । उदा०। कवित्त ।

गज मुकतान गन गजरा भरे हैं गरे
बीच बीच हीरन की दीप दमकत है ।

कंकन कलित मनकिंकिन ललित छवि
श्रवन तरौना सीसफूल भमकत है ।

भनत इदेस बाल लाज भरे लोचन
बैठी सेज साज अंग काम तमकत है।
लागी लाल वोट लखौ घूंघट मै लोट पोट
अंकला की ओट चंकला सी चमकत है ।।१९३।।

दोहा

अमित सरस भूषन सजे मृदुलित सेज बिछाय।
अलख दिपत परजंक पर मृगलोचन छवि छाय ।। १९४।।

प्रौढा वासक सेज्या । उदा०। कवित्त ।

राजै वृषभानजा समाजै काम छवि लाजै
छाजै बृजराजै साज साजै अवलान की ।
भनत इदेस मनमंदिर महक सेज
अंगन तडफ छटा रद चंकलान की ।
वेदी भास जटित जवाहर जगत जोत
उमग उमग फैल झलकि झलान की ।
मानौ मारतंड बैठो मंडिति अखंड छंद
दीप छंद मंडल मै षोडस कलान की ।।१९५।।

पुनर्यथा । वेष्ठक कवित्त ।
जासे।जानै कहूंब दरसानै तर
जानै मोद मलय सुगंध कर सानै है ।
सेज पुन सुमन गुलाब आबदार साज
सरस समीर सीर वर सरसानै हैं ।
सुकवि इदेस गिरधारी जू तिहारे काज
बैठी वह दिपत विहार ठानठानै हैं ।
सखि ललिता नै वृषभान की सुता नै तानै
ललित लतानै मै वितानै तान तानै हैं । १९६ ।।

दोहा

सुमन सरस भूषन पहिर झकाझक सेज सम्हार ।
मनमोहन मन मिलन कौ बैठी दिपत अपार ।। १९७ ।।

परकिया वासक सेज्या । उदा० ।कवित्त ।

छिपत प्रभाकर के छिपि कैं सिंगार साज
सींची सेज सकल सुगंधन सौं पाट दै ।
बार बार झांकत झरोखन कौं टार टार
डार डार नैन लाल आवन की वाट दै ।
भनत इदेस बाल लेटत उमंग भरी
सोय गए लोग पौर आवत सपाट दै ।
सुंदर कपाट दैन डाट दीनी सांकर की
आंगुरी हुंयै तै खुल आवत झपाट दै ।।१९८ ।।

उनतीस-

दोहा

सज सिंगार जल को गई नवल बाल मुसक्याय ।
बैठ रही बन कुंज मै सुमनन सेज बिछाय ।। १९९।।

गनका वासक सेज्या । सवैया ।

लाल हजार बनी गुलजार हिये पर हार बड़ी परवीनै ।
तास प्रकास झलाझल रास दिपै मुग छंद छरी कर लीनै ।
सेज छदेस बड़ी छवि देत बिहारत बाल मनोरथ कीनै ।
आवत आज गुपाल मनोहर ल्यावत साज सिंगार नवीनै ।।२००।।

दोहा

अमल कमल सज सेज पर लखि मगि आवत मीत ।
अमल कमल बत बदन छवि अमल कमल पर प्रीत ।।२०१ ।।

स्वाधीन पतिका लछिन । दोहा ।

बचन मधुर छवि बदन लखि पति नित रहत अधीन ।
सो पतिका स्वाधीन कहि हिति नित बढ़त नवीन ।।२०२।।

मुग्धा स्वाधीन पतिका । उदाहरन । कवित्त ।

आई बाल गौनै बैठी लाज भरी कौनै
बृजराज ललिचौनै ताकिबे कौं तरसौ करै ।
अंग अंग सौनै तै सरस झलकत छवि
हास मृदु बोलन सुधा सौ बरसौ करै ।
कोऊ कैसे धौनै कुल रसत छदेस लौनै
उदैक डग डोलत न दीठ परसौ करै ।
छंद मदि ऊनौ गन बारज कौं सूनौ रहै
निसिदिन पूनौ घर दूनौ दरसौ करै ।२०३ ।।

दोहा

लखि लखि छवि देखौ भटू भयौ लटू बृजराज ।
पग भावक जावक भरत तनक न आवत लाज ।।२०४ ।।

मध्या स्वाधीन पतिका । उ० । सवैया ।

ता छिन तैं पग झावत भावत राग तराग रिझाय रयौ है ।
आपुन हाथन माग सम्हार भरै सिधुरा छवि छाय गयौ है ।
लाज न आवत ताइ छदेस सखी लखि मो मन लाज छयौ है ।
सोवत मैं रस की बत की रत की ससकी बस लाल भयौ है ।२०५ ।

दोहा

सज सिंगार आपुन करन ह्यौ छवि छकि छबूर ।
तनक लाल सकुलत नहीं हा सकुलत भरपूर ।।२०६ ।।

प्रौढा स्वाधीन पतिका । उदा० ।कवित्त ।

देखौ प्रानपति मनमोहन गुनीस मन
सगुकत नाहि रंच बृज के नरन कौं ।
आपुनै करन साज हीरन के आभरन
रतन जटित हेम कंकन करन कौं ।

तीस-

भनत छ्देस वेस लावत फुलेल अंग

तोर कर धारै चोर केल केहरन कौं ।

वरन वरन पहिरावत दुकूल वर

रीझ रीझ जावक लगावत चरन कौं ।।२०७।।

दोहा

सुधा समद छवि तन लिया अदभुत बहुत सुवास ।

पैरत पिय द्रग अहर निसि भर भर हियै हुलास ।।२०८।।

परकिया स्वाधीन पतिका । उदा०। कवित।

उझकि झरोखन ह्यौं झांकत छटा सी झक-

रीन ह्यौं प्रभा कौ झलाझलकत अंत कौं ।

चिकन दरीच बीच बीचन मरीचन सौं

चित चकि चौंध सौं प्रदीप रतपत कौं ।

भनत छ्देस स्वच्छ गुच्छ मुक्तानगन

आभरन अंग जगमग रसमत कौं ।

सौगुनी नछिन्नपति सहित नछिन्न देख

चित्र कौ लिखौ सौ रहो पुत्र जसुमत कौं ।।२०९।।

दोहा

सदा तिहारी घाट है वृज कौ लोग कुघाट ।

और घाट मिल जायबौ छोड़ देउ यह वाट ।।२१०।।

गनका स्वाधीनपतिका । सवैया ।

छम रहौं तन की सजनी धर लेत हियैं भर देत गरौ है ।

आपुन हाथन नीर पिवावत पान खवावत वान खरौ है ।

मोमन की अभिलाष छ्देस करै परपूर नहीं बिसरौ है ।

या पति सौं हित कौन तजै तिहि के चित सौं घरव्दार भरौ है ।२११।।

दोहा

रीझ रीझ मन आपुनै ल्यावत बसन नवीन ।

बरन बरन रंग निज करन पहिरावत परबीन ।।२१२।।

अभिसारका लछिन । दोहा ।।

रत हित पति पर जब छलत कै निज सदन बुलाय ।

गनत भनत अभिसार कवि उपजनत छवि चित सरसाय।।२१३।।

मुग्धाभिसारका । उदा० । कवित।

नवल वधू लै चली रात भलीभांति अली

जहां प्रान प्यारौ वली कुंज रतवारे कौं ।

प्रीत कौं दिखावत बढावत प्रमोद मन

कोक सौ पढावत लढाय अत वारे कौं ।

भनत छ्देस गैरौ छवि की छटान पौरी

चाल पर वारियत हंस मत वारे कौं ।

मानौ बकत लियैं जात आंकुस कौं दियैं जात

लियैं जात स्वारथी मतंग मतवारे कौं । २१४।।

दोहा

जात बाल बन कुंज कौं सखि सखियन के हेत ।
दरसन रूप नदनंद की परसन उमग न हेत ।।२१५ ।।

मध्याभिसारिका । उदा० । कवित्त ।

चंद सौ वदन अरविंद से वरन कर
द्रगन समेट लीनी खंजन की रीत कौं ।
चंपक सौ रंग अंग उरज उतंग तंग
सखिन के संग जात प्रीतम की प्रीत कौं ।
भनत ब्रदेस महताव सौ प्रकास रास
फैल गयौ कुंज गैल गैल तम जीत कौं ।
काम की चपेट पग धरत अगीत बाल
लाज करै दाव पग परत पछीत कौं । २१६।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

कंचन वरन दीप दीपक हरन तन
तरल किरनवत मंदिर भरौ परै ।
दसन लसन वत रसन प्रमोद भरी
सहज हसन मन सुमन झरौ परै ।
भनत ब्रदेस जुग नयन लयन बंक
नयन पयन बिन मन विथिरौ परै ।
लसत उमंग अति अंगन अनंग मगि
ईंगुर सौ रंग पग संग बिथरौ परै ।।२१७ ।।

दोहा

भरी लाज मदि बाल वर चली जात पति हेत ।
उमग धरत पग फिर फिरत पल पल फिरकी लेत ।। २१८।

प्रौढाभिसारिका । उ० । कवित्त ।

राधिका सुजान सुखदान जात पास कान्ह
अंग की सुगंध और गंध नासमान के ।
मंद मंद हास मुख चंद की प्रकास रास
अंधकार नास ज्यौं प्रकासैं भासमान के ।
आनद ब्रदेस कवि झलकत भुवन कुंज
नैन कंज मंजु कंज पुंज बासमान के ।
बैंदा मुक्त जाल भाल छूट छूट परैं लटैं
टूट टूट परै मान तारे आसमान के ।।२१९।

पुनर्यथा । कवित्त ।

जगमग जोत कौ निसान दरसान सान
कैधौं पंचबान कै विमान भान जरौ सौ ।
हीरन के जाल की झलाझल विसाल किधौं
चिंतामन माल कौ प्रकास परपूरौ सौ ।

कवित्त-

भनत छ्देस राम जस की समुद्र मान

उपट बह्यौ हैरत रूप बल न्यूरौ सौ ।

सहस कलानिध कौ मेघ भूमिकौ। किधौं ।सौं

उमिंहत आवत प्रभान की अधूरौ सौ ।।220।।

दोहा

अंग अंग सकल सिंगार कर करी दीप रत मंद ।

सरद चंद तैं दुगुन दुति जात सेज वृजचंद ।।221।।

परकियाभिसारिका । उदा० । कवित्त ।

ललित लवंगन की वलित सपुंज कुंज

पवन सुगंधिति कदंब गनवन की ।

भनत छ्देस भौ अनंद नदनंद संग

सारम अधेरी तैसी वारि नभ घन की ।

सटपट माची भजी भटपट चंद लखि

भाग न बची है आज लाज गुरुजन की ।

छाह कर धीर धीर आवै चली तीर तीर

पीछें परी मोर वीर भीर मधुपन की ।।222।।

दोहा

सिय गुरुजन छिपि कर चली हिलन मिलन वृजराज ।

परपूरन सवि काज कर महा चतुर सिरताज ।।223 ।।

चन्द्राभिसारिका । उदा०। कवित्त ।

सारी सेत बादला की हीरन किनारी भारी

कुंज कौं सिधारी प्रानप्यारी पति नागरी ।

वगर वगर दुति जगर मगर होत डगर डगर तकि धौंधि रत आगरी ।

माग भरी मौतिन सुहाग परपूर भरी

लागि भरी होतल छ्देस हित पाग री ।

सरद सुधाकर की भाकर मलीन सवि

मुख चंद ताकर दिसाकर उजागरी ।।224।।

दोहा

गज मुक्तन के आभरन वसन सुभ्र मुख चंद ।

मिली जात अति चौन मैं समभ परत छल छंद ।।225।।

दीवाभिसारिका । उदा० । कवित्त ।

भलावोर भारी जरतार भरी सारी धारी

केसर कौ रंग अंग कुंदन समान है ।

छूट छूट परत मरीच नग जूट ताकी

भलकि बगार सी न परत प्रमान है ।

भनत छ्देस नंदलाल हित पालन कौं

राधका पधारी प्यारी परत न जात है ।

दीप कौ निसान है कि बेला की बान है

कि हीरन की खान है कृसान है कि भान है ।226।

तैंतीस-

दोहा

ग्रीषम दोपहर हरि मिलन चली जात ब्रजबाल।
अंग आभरन जगमगत मनौं भान की जाल ।। २२७।।

गनकाभिसारिका । उदा० । कवित्त ।

बार फूल हार फूल हाथन मैं धार फूल
फूल भरी हीतल मैं फूल भरी गात है।
सास फूल फूलन के कानन मैं गांस फूल
देख लोग होत सूल भूल जात बात है।
भनत छदेस जिति हेरत मयंकमुखी
रात मिट जात दीस परत प्रभात है।
रूप रास नागरि सहेली आसपास लियैं
प्रानपति पास कौं हुलास भरी जात है ।।२२८।।

दोहा

सज सिगार सखि साज लै गई दो घरी रात।
हरी मिलन आनद भरी चली परी सी जात ।।२२९।।

प्रवत्सत प्रेयसी लछिन । दोहा ।

गमन करत पति भवन तब तिय तन तपत अनंग।
भनत प्रवत्सत दुखित अत द्रग जल वहत उमंग ।।२३०।।

मुग्धा प्रवत्सत प्रेयसी । उदा० ।कवित्त ।

भवन सुनत बाल चलत गुपाल काल
हीतल बिसाल ज्यौं विहाल सरसार है।
उठत बरस्मर प्रज्वाल तन जाल जाग
ललित सिगार हार लगत अगार है।
भनत छदेस या बसंत मैं प्रदेस बस
दिगन प्रदीप दिन दुगुन विहार है।
तिम तिम तलत तमाल दल पुस्पमाल
जिम जिम झरै द्रग वारजन बार है ।।२३१।।

दोहा

मुग्धा पीरी सीरी परी चलन सुनत ब्रजवाल।
प्रथम विरह लहि दो सकत नवल बाल वर लाज ।।२३२।।

मध्या प्रवत्सत प्रेयसी । उदा०। सवैया।

जाव सुनै तुम कौं मनमोहन बाल निहार रही अवनी तर।
आपु चले इहि प्रान तजे फिर हास विलास करौं वहु कौं तर।
लाल छदेस न मानत जौं पुन भीतर नैक लखौं चलती तर।
जोर मनोज भरै असुवा अब आवत लाज समेटत भीतर ।।२३३।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

जैसे महा सीत मै प्रवास कहा नीत मै

विचारौ प्रीत रीत मै तिहारे गुनसाल हैं ।

कस कस बावरी लहैली के हिये मैं सखी

कस कस हारती हसी के वेलवाल हैं ।

भनत इंदेस नवि लालित लता सौं लगौ

लाण समुभाय भई सकल विहाल हैं ।

कोम दीप गंजन तैं नीर द्रग खंजन तैं

मानौ भरैं कंजत तैं मोतिन के जाल हैं ।।२३४।।

दोहा

चलत सुनत द्रग जल वहत सकुचत सकुचत माम ।

लघु सरवर हरवर भरत सुणात लगत न घाम ।।२३५।।

प्रौढ़ा प्रवत्स्यत प्रे० । उदा० । कवित्त ।

परत न रैन कल पलक न लागै पल

विरह प्रदीप जाल ज्वालन सौं साने से ।

भनत इंदेस मुख सरद मयंक भयौ

जरद हरद वसरंग लपटाने से ।

हासत तैं उमग उमग जल भलकत लोचन तैं

चलत जलध वखाने से ।

लाल लखि चलत अली के द्रग लाल लाल

जैसे लाल लागै लाल कंज कुसमाने से ।।२३६ ।।

दोहा

मो तन आय अकाज कर कहां जात बृजराज ।

प्रफुलित वन गुंजत भ्रमर प्रगट भयौ रितराज ।।२३७ ।।

परकिया प्रवत्स्यत प्रे० ।सवैया ।

रात सुनौ हरि कौ चलवौ उठ प्रात भई तन ताप बडी है ।

लाजन सौं घर जाय सकै न सुहाय कछू नहि प्रीत गड़ी है ।

यौं छल कीन प्रवीन इंदेस छली उहि मारग वीच अडी है ।

भीजत वाग विहार करे लिहि छीजत वात पसीत भाडी है ।।२३८।।

दोहा

चलत सुनत परदेस पिय उठी काम तन जाग ।

कासौं छिपि कर खेलवी लगै फाग मै आग ।।२३९ ।।

गनका प्रवत्स्यत प्रे० । सवैया ।

आखिन तैं जल धार बहै यह भांत अली मनमोहन मोहै ।

दूर करी पलका पर पौंछन आय तैं लाल प्यौ पर सोहै ।

धूर कपूर इंदेस भयौ तन या विधि मैन विथा सवि जोहै ।

त्याउंगे आप जराउ जरे नग बीकत लो फिर पैरत को है ।।२४०।।

दोहा

आपु जात परदेस कौं कीनी बात सुदेस ।
आय जाय मुजरा करौ बैठे मिटत कलेस ।। २४१ ।

आगतपतिका लछिन । दोहा ।

आयौ दिवस बिताइ बहु दुख मोचन पिय जान ।
तज सोचन लोचन हरख आगतपतिका बाम ।।२४२।।

मुग्धा आगतपतिका । सवैया ।

आय गयौ सुखदान छुदेस अलेख भए दिन मान पिया के ।
देखत ही मुखचंद च्छौ दुति आनंद नाहि समात हिया के ।
वेग करौ सखियान सिंगार बिहार सिखाय दए रतिया के ।
घूंघट मै मुसिक्याय भली विध नैन रहें सखु च्याय लिया के ।।२४३।।

दोहा

आवत लख नदनंद कौं मुदित बाल सुखदान ।
मनौ कमल विकसित ललित उदित होत जब भान ।।२४४।।

मध्या आगतपतिका । उदा० । कवित्त ।

भलकत स्वेद कन फरकत बाम भुज
आगम सुनै तैं बलबीर बीर नंद के ।
सकुच सकुच बल करत सिंगार अंग
अतर लगावत सुगंधित उमंग के ।
भनत छुदेस वेस मंद मंद हास करै
मंद भयौ चंद देखौ बाल मुख चंद के ।
रोम रोम मैन भरौ हीतल मै चैन भरौ
नैन भरौ अंजन चितोवैं नदनंद के ।।२४५ ।।

दोहा

आयौ पिय परदेस तैं लख सखुकत मुख चंद ।
मन ललकत तन मिलन कौं द्रगवत भालक अनंद ।।२४६।।

प्रौढा आगतपतिका ।उदा०। कवित्त।

आयौ पी विदेस तै रतेस कौं कलेस मैट
फरकत नैन सुरौं करकत कान मै ।
छूट छूट जात छूट बारन के बंध सवि
फूट फूट जात ते वियोग भरे मन मै ।
भनत छुदेस बाजुबंध बंध टूट जात टूट
जात लाज छूटरात रत रन हैं ।
कुच न समात कल कंचुकि दरक जात
हरख समात ना उमंग सवि तन मै ।।२४७ ।।

दोहा

मनभावन आवन सुनत मिटी विरह की सेल ।
लहलहाय सबि तन उठी ज्यौं जलधर जलवेल ।।२४८।।

परकिया आगत पतिका ।उदा०। कवित ।

आयौ येक बरस वितीत कर मीत गीत
गावत अभीत प्रीत रीत लहरी फिरै ।
सरकत सीस पट थरकत नैन जुग फरक फरक
भुज बगर करी फिरै ।
झलक इदेस अंग अमित अनंग रंग
पुलकत स्वेद मन उमग धरी फिरै ।
दरस परौसिन कौ अरस परस होत
हरष परौसिन तैं सरस भरी फिरै ।। २४९ ।।

दोहा

जा मनमोहन सौं लगी गुपत प्रीत जुग बीत ।
आयौं सुन धाई लखन तजि वि कुल की रीत ।।२५० ।।

गनका आगत पतिका । सवैया ।

लखि जाय परी तिय कौं जित ही तित आवत लाल उछाह भरे ।
हित भैंट करी पिय सौं मिल कैं तन के मन के सबि सोच टरे ।
सुण मान इदेस करी बतियां झगरे बगरे तब सेज परे ।
जितनै परदेस पराउ परे तितनै नग देउ जराउ जरे ।।२५१ ।।

दोहा

सुण पायौ लायौ हियैं ज्यौं पायौ तिय राज ।
पिय आयौ लायौ कहा मो मन भायौ साज ।। २५२ ।।

उतमा लछिन । दोहा ।

हितन करत जित तित रहत पति हित रहत सकाम ।
अत हित कर निति नित नयौ कहत उतमा वाम ।।२५३ ।।

उदाहरन

ठरक ठरक पति सेवत अनेक तिय
परण परणा बात आनद भरत है ।
ललक ललक पग भावत रहत नित
निहत बढत प्रेम उछत परत है ।
भनत इदेस कवि कुसल सदैव भान
अमृत बात मृदु फूल से झरत है ।
गार ती करत नाह रारती करत नाह
नारती करत नाह रुस्तत कृोध आरती करत है ।।२५४।।

दोहा

प्रगट करत अपराध पिय तिय जिय टरत न प्रीत ।
करत कौद नहि वेद लखि सुन बुध बल सुण रीत।।२५५।।

मद्धमा लछिन ।। दोहा ।।

करै प्रानपति प्रीत जब करै वाम जब प्रीत ।
तौन मद्धमा नायका कहत सुकवि सबि रीत ।।२५६।।

उदाहरन। सवैया।

रात बसे बहु प्रान पिया तिय मान बढ़ौ लखि कै घर आवत ।
भौंह कमान समान चढ़ीं अखिय उमिडी घन सी झर लावत ।
हास विनोद करौ पिय नै मुसक्याय ब्रदेस तकी मुख पावत ।
कान्ह करौ गुनगान भलीविधि मान गयौ छुटि तान सुनावत ।।२५७।।

दोहा

पग लागौ मुखदान जब गयौ भूल सब मान ।
मृगनैनी पिय हिय हरन लगी खवावन पान ।।२५८ ।।

अधमा लछिन । दोहा ।

निति प्रत पति हित कौं करै करै अहित नित वाम ।
ताकौं अधमा कहत कवि करैं मान तज वाम ।। २५९।।

उदाहरन । सवैया ।

रूस रही अपराध विना कुच कौं यह वान परी चित चाई ।
हास विलास करौ अत ही पर नैक तजै नहि नैन रुखाई ।
कौन करै उपचार ब्रदेस भयौ हियं पाहन पखान लखाई ।
थाकि रहौ पिय ताकि कहा कर तो हिय मै बहु लाज न आई ।।२६०।।

दोहा

रार मान बैठी वृथा हार मान गौ पीय ।
लरत करत मन आपुनी बडी पापिनी तीय ।।२६१।।

कुच बर्नन । कवित्त ।

संपुट सरोज ये मनोज के प्रसिद्धि किधौं
रूप धाम कुंदन कलस वर नीके हैं ।
गुरू जुग तारा दीप दीपन अपारा किधौं
होक की कला सौं भरे संपुटि धनी के हैं ।
भनत ब्रदेस कै सुमेर के सिखर सिर
मोहनी के मंत्र पढ जटित मनी के हैं ।
कैदो वामनी के दामिनी के धामनीके किधौं
प्रीत धाम नीके कुच कुंभ कामिनी के हैं ।।२६२ ।।

पुनर्यथा । कवित्त।

कंचन की खान कै हिये पै प्रभान थान किधौं
दिव्य दखान हैं जनैया हित पथ के ।
भनत ब्रदेस वेस भलक भलान देस
सकल बखान सौं पुजैया मनरथ के ।
वाल भाग वान तेरे कुच की बखान करौं
भूल जात देवौं ग्यान ध्यान समरथ के ।
सौंसै बलखान हैं सिंगार खवान है पै
पिय मुखदान हैं निसान मनमथ के ।।२६३ ।।

नेत्र वर्नन । कवित्त ।

कंज सिर टोरैं छुवै कानन लौं छोरैं

मुसक्यान मै मरोरैं अलसातीं मदमातीं है ।

खंजन सौं रोरैं मीन गरब कौं फोरैं

विरहीन कौं लथोरैं अनुराग दरसातीं है ।

कैस वर थोरैं लै इन्देस कहु ओरैं भोरैं

भांप भकुट भकुना मै भपाक दुर जातीं है ।

असीं घड़ीं जोरैं लेतीं प्रानन कौं थोरैं

वांके द्रगन कीं कोरैं जोरैं काट कर जाती है ।२६४।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

सुमन छरी सी न्यारी इंद्र की परी सी रद

जलज लरी सी भरी मदन हिलोर हैं ।

भनत इन्देस दीसी डोलन करी सी हांसी

अमृत भरी सी तापै वारैं त्रन तोर हैं ।

लखे सफरी सी वैसी होत है घरी सी जीसी

मार तिरछी सी बरछी सी चित चोर हैं ।

छाती छिदीं तौके फाैकैं सोवत मैं चौंकै तौंकै ।

नैनन की नौंकैं कढ़ जाती छेमर फोर हैं ।२६५।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

पंच सर सुघर विरंच रुचि रच साचे

काम के सदन वंक ताक अनियारे है ।

भनत इन्देस चितरंजन करन मंजु

मंजु खंजरीटन कौं गंज गंजवारे हैं ।

जरद करन वारे दरद करन वारे

दरद हरन वारे वर कजरारे हैं ।

सांन पै निकारे यारो वैसी मार डारे भारे

नैन कजरारे कोर वारे मतवारे हैं । २६६ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

लखत सु चैन न पै न चैन दिन रैन सैन

नैन ते टरैं न ये वदैं नहीं रसैंनी के ।

कहत बनै न छोट लाज मै मुकै न अंस

कौन को लखैन वर चैन वोरे सैनी के ।

भनत इन्देस मीन दीन हर सैन कंज

दल दरसैन न गत खंजनन सैनी के

सकुच करैं न हरखै न कर सैन जैन

दैन सरसै न धर नैन मृगनैनी के ।। २६७ ।।

मानिनी । कवित्त ।

कुंदन सरस अंग दरस हरस मन
तहुति मयंक मुख अद्भुति प्रभा की है ।
वृषभान नंदिनी अनंदिनी कौ रूप जाल
जलपाल नंदलाल ताक ताक थाकौ है ।
द्रग मतवारे मन मोहु के न वारे भारे
बकन छदेस बुंद झरत सुधा की है ।
ठोडी तिल राजत गुलाव के प्रसून मानौ
परौ छवि सिंधु मैं मलिंद मदि छाकौ है ।।२६८।।

नवोडा । कवित्त ।

पार परजंक पै निसंग भर अंक बंध
दंपत जुगल प्रीत अछुकि तिया हैं है ।
भनत छदेस लेहु लचक लपट लोल
पौंछत कपोल रद छत फरिखया के हैं ।
दिपत छवीली छाती छुवत छरकि विछिव छिन
दाव झटपट मुलकट अंगिया के हैं ।
रसिकि प्रवीन कर मसक उरोज नव
ससकि प्रिया की करै असक पिया कैं है ।।२६९।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

सरद निसा मैं परपूरन मयंक दुति
अद्भुति धवल गत सकल दिसान की ।
किंकिन की झनक झमाक पाय जेव त्यौ
डिमाक दार फिर नट नोर साजवान की ।
भनत छदेस कोकिलान के प्रमान वान
गान सान उपज अनंद धुन तान की ।
मंडित रहस गत नगत विचित्र जोरी
नंद सुत चंद औ किसोरी वृषभान की ।।२७०।।

सीतला के दाग वर्नन । कवित्त ।

गोरे मुख दिपत लहैती कैं अमोल मान
मैटन मनोज मंत्र पढ पढ नाके है ।
विधि रचना सी रची अमित विसाल मन
मोहनी के जाल किधौं अभर प्रभा के है ।
भनत छदेस किधौं वर छवि हौद कै
प्रमोद बुंद दरसत अद्भुति तराके है ।
काम की लता के घर झलक झला के किमि
काम अलता के किधौं दाग सीतला के हैं ।।२७१।।

इति नायका ।।

चालीस-

अथ नायक लछिन । दोहा ।

खवर बुधवर छवि प्रबल गुनवर मृदुलित बान ।
गान तान कविता निपुन सो नायक परमान ।।२७२ ।।

उदाहरन । कवित्त ।

बंक चितवैया कुंज पुंज कौ जवैया है
अवैया सांभ परत गवैया रसमत कौ ।
सरद निसा मै रस रास कौ रचैया
गोपिकान कौ नचैया और नथैया जलमत कौ ।
भनत ब्रदेस प्रात रामत अवैया मैया
भनक परै तै रहै कौन सतमत कौ ।
बैन कौ बजैया जैन सैन कौ करैया
मन मोहि लै गौ दैया वो कन्हैया जसमत कौ ।।२७३।।

दोहा

गुणन सागर नदनंद है रस सागर नदनंद ।
गुनसागर नदनंद है छवि सागर नदनंद ।।२७४ ।।

त्रिविध भेद । दोहा ।

निजपति भन उपपति भनत वैसक भनपति तीन ।
व्याहयौ भनत प्रमान पति उपिपति वैसक हीन ।।२७५ ।।

निजपति उदाहरन । सवैया ।

कुंजन कुंजन गुंजत भौर सपुंजन पुंजन कोकिल गावत ।
भूल रहीं लतका तहरै गुण मारुत मंद सुगंध उडावत ।
देख बहार बसंत ब्रदेस अनंदित डोलत लाल रिभावत ।
राधका पाय धरै जित हौ तित ही तहौ सांमरौ फूल बिछावत ।।२७६।।

दोहा

चंद वदन तन मदन छवि कर पग तल जलजात ।
पल पल पै मोहन मुदित लख लख बल बल जात ।।२७७ ।।

नायक भेद । दोहा ।

भनत मूल अनकूल बल दछिन धृष्ट बखान ।
अरु सठ नायक चार ये लछिन ग्रंथ प्रमान ।।२७८ ।।

अनकूल लछिन । दोहा ।

निज पतिनी रत चित बसत उपपतिनी नहि लेस ।
नायक वर अनकूल यह लायक भनत ब्रदेस ।। २७९ ।।

उदाहरन । कवित्त ।

अंचरा की ओट देहि बेकरा जमंक लैंहैं
सोवत निसंग अंक भर भर रावरैं ।
हौं करत बाढत विनोद जी निसां करत
सांकरत जी मै रंच ना करत बावरैं ।

एकतालीस-

और मृगलोचनीन आवत छदेस मन
तेरौ मुखचंद वौ चकोर लगौ आवरै ।

बचन सुधा सौं रोम रोम जांत भींज भींज
रीझ रीझ मोहि प्रान करत निछावरै ।।२८० ।।

दोहा

नजर न भरत नहि और तिय हिय न परत सुख चैन ।
जियत रहत लखि राधिके पियत अमृत मृदु बैन ।।२८१।।

दछिन नायक लछिन । दोहा ।

वृजपति व्रजवनतान सम करत कपट तज प्रीत ।
दछिन भनत छदेस कवि लग ग्रंथन की रीत ।।२८२।।

उदाहरन । कवित्त ।

कीनी मिजवानी महुवानी सुखदानी कान्ह
आनी वृजबाल जाल भोजन के चाहनै ।

माग भर बंदना सौं चंदन लपेट अंग
अतर सुगंधिन अमंद चित चाहनै ।

भनत छदेस राग सागर कौ राग राग
मोहि मोहि लीनी मन बदमन छाह नै ।

सीतल करी है सबै सीतल गुलाब जल
हरि छवि हीतल तै निकिसत नाहिनै ।।२८३ ।।

दोहा

आनद कर घर कौं चलीं हरबर कर वृजबाल ।
भुंौ दुंव मग तै धकौ जसमत सुत नदलाल ।।२८४।।

धृष्ट लछिन । दोहा ।

निलज रहत नहि डर करत करै रहत चित चाय ।
गार सुनत तिय मुख बकत धृष्ट भनत कविताय ।।२८५।।

उदाहरन । सवैया ।

बालम की मत बालम चोर करै तिय चोर न चित धरै है ।
रात करै बहु प्रात धरै घर लाज डरै नहि मार टरै है ।
जोवन के मद मोद छदेस करै मन मै सुहि आन अरै है ।।२८६ ।।

दोहा

कर कर लोचन लाल तिय हरबर कर भपटात ।
परं पर पग कर कर विनय भर भर भुज लपटात ।।२८७ ।।

सठ लछिन । दोहा ।

मधुर बचन कर हिय हरत तिय हिय करत सुचैन ।
अंतन घट विष हिय कपट सो सठ कहत बनै न ।।२८८।।

उदाहरन । कवित्त ।

दिपत कपोल चातरप तै अमोल गोल
द्रग द्रग देख देख हियौ हरसत जात ।

रुप मेनका सी है हुलासी मैनका सी भासी
प्रभा के भला सी चंचला सी दरसत जात ।।

ब्यालीस-

भनत ब्रुदेस कहा भयौ आइ भोर घोर
परत कठोर इतै तन तरसत जात ।
कोप भरौ बान खसगान मान मेरे जान
बदन सुधाकर तै सुधा बरसत जात ।।२८९।।

दोहा

बिन दुरगुन द्रुम जल भरत नित प्रत करत कलेस ।
सपत करत तुव कुचन पर कर धर जुगल महेस ।।२९०।।

उपपति लछिन । दोहा ।

पर तिय कौ पिय अधर रस सो उपपति पिय जान ।
गनका हित चित बसत नित बैसक ताय बखान ।।२९१।।

उदाहरन । कबित ।

साज साज सकल सिगार सुघमार वाल
वाज पाइबेव पायलाजन परत है ।
बदन निसाकर निसाकर कठोर कुच
अधर सरस बैन सुमन झरत है ।
भनत ब्रुदेस रस हेरौ भयौ बेरौ मन
फेरौ फेरौ गेरौ छविसिंधु मै तरत है ।
मेरौ हियौ तो कटाछ बिकट निकट डट
झटपट घटकट कतल करत है ।। २९२।।

दोहा

बल न परत तरसत रहत डरत रहत कलकान ।
झमक कढत तिय हदार पर सकल कलन की खान ।।२९३।।

उदाहरन । कबित ।

मालती के हार परे करमजरान भरे
बार बार फूल भरे मारै नैन बाज लौ ।
बादला की ओढनी सौजगमग होत जात
मुख मस्ताव वैसौ चंद सिरताज लौ ।
तन मन धन प्रान पान जानमाल कहा
दीजिए ब्रुदेस रीझ लाखन की राज लौ ।
दसकत या जुदा कहे ते कुच मसकत
ससकत वात हियें कसकत आज लौं । २९४।।

दोहा

मन प्रफुलित कर धन तकत मो मन पटकत आन ।
मुख दीपन दरसत सरस सुधा भान परमान ।। २९५ ।।

और भेद । दोहा ।

मानी वचन चातुरी क्रिया चतुर गुनमान ।
प्रोषित नायक ना भनत ज्यौ प्रोषित तिय जात ।।२९६।।

तैतालीस–

मानी नायक उदाहरन । कवित्त ।

बोल बोल पंडित प्रवीन गुन मंत्रन मैं
राबरे मिलाप कौं करावे जप जाप कौं ।
मान कर बैठे कहा बान परी सुखदान
कौन निरवार है अनंगत मिलाप कौं ।
भनत ब्रदेस वेस बान सुनै वेकी टेकी
छूट जैहै सैकी मेघ कर है तराप कौं ।
वेग क्यौं धाप हरौ बाल के हिये कौ ताप
मान करैं आप के मनावे लाल आप कौं ।।२९७।।

दोहा

अब न जक्यौ नीसै तक्यौ तिय छबि छक्यौ निहार ।
छत पर कौं जीतल करौ तलघर करौ विहार ।।२९८।।

वक्न चतुर लछिन । दोहा ।

कामातुर चातुर वक्न कहि नायक चित लाय ।
बक्न चतुर जासौं कहत ताकी बुद्ध अथाय ।।२९९ ।।

उदाहरन । सवैया ।

ग्वाल चली जमुना तट कौं हलायुध नै जब बान रही है ।
कान्ह कही हम बान अचानक तान भरी रसखान पही है ।
बैठ ब्रदेस सुनौ सुखदायक भान नहीं यह जौन कही है ।
हौन दै प्रात दिखात नहीं कछु जात कहाँ अब रात बडी है ।।३००।।

दोहा

दोड़ वाइ यह सघन बन तुम कौं नहीं दिखात ।
कहाँ जात हौ रात कै यहाँ घात पर घात ।।३०१।।

क्रिया चतुर लछिन । दोहा ।

ललित चतुर रस कलित अत छल बल करत कलेस ।
क्रिया चतुर नायक सकल गुनगन भनत ब्रदेस ।। ३०२।।

सवैया

मोर के पच्छ किरीट विसाल मनोहर मूरत आन कढौ है ।
नैन रसाल गरै बनमाल भरौ छबि जालन ग्वाल छढौ है ।
नंद कौलाल सपंडित मंडित मोहन मंत्र ब्रदेस पढौ है ।
छ्वै छिगुनी छिन मैं छतिया बतियाँ कहि कै छलवाच वढौ है ।।३०३।।

दोहा

न्हात बाल छल नीर मैं भजी मीन तपटाय ।
तई सपट नदनंद नै भापट हियैं लपटाय ।। ३०४ ।।

दोहा

श्रवन दरस सपनै दरस चित्र दरस परतच्छ ।
हरन हरन बरनत सुकवि कर कर भूषन लच्छ ।। ३०५ ।।

श्रवन छ दरस उदाहरन । कवित्त ।

भास कर मंडल सौं मुकुट अखंडल सौं
आसपास दीपत कौं भरौसरवर सौं ।
पीत पट राजै ताजै चंचला चमंक संक
अंग अंग सोभित तमाल तरवर सौं ।
मुण महताव कहा चंद कंज आव कहां
वांसुरी इंदेस बजै रोम रोम हरसौं ।
वान के सुनत वृषभान की कुमार थकि
मानौ भयौ नैन कान नैन भर दरसौं । ३०६ ।।

दोहा

सखि वरनौं करनन परौ छवि सागर नदनंद ।
मेरे मन दरसन भयौ त्यौ परसत आनंद ।। ३०७ ।।

स्वप्न दरसन । उदा० ।सवैया ।

आज गई सपनै सजनी जह कुंज कदंव सुगंधन सानौ ।
कान्ह जहां मृदुवान मनोहर गावत तान उचारत रानौ ।
मोह इंदेस भयौ अत हो खुल नींद गई सुन दुष्य अलानौ ।
कान्ह नहीं मृदुवान नहीं वह तान नहीं सवि साज विलानौ ।।३०८ ।।

दोहा

सपनै कौ सुख री सखी कहत रंक की वात ।
सोवत मै भूपत भयौ जगत रंक ह्वौ जात ।। ३०९ ।।

चित्र दरसन । उदा० । कवित्त ।

पल न चलत कल पलक झुलत नाहि
भरत न सांस मुख करत न वान है ।
भरै छवि सागर उजागर पिया कौ रूप
नागर नवीन भई थकित प्रमान है ।
वैठी रंग मंदिर मै सुंदर इंदेस कवि
परसत अंग ताय परत न भान है ।
मित्र मामोहन कौ कियौ चित्रकार चित्र
देख देख चित्र भई चित्र के समान है । ३१० ।।

दोहा

लख लख लिय जक जक रहत छवि छवि भन्य जात ।
भरत चित्र द्रग लाल कौ थर थर थर कप जात ।।३११।।

प्रतक्ष दरसन ।। सवैया ।।

कुंजन पुंजन गुंजत भौंर मिले मनभावन रूप रसाला ।
लाल भली वनमाल लसै इत बाल लसै वर मौत्तिन माला ।
अंगन जोत जवाहर जागत होत इंदेस झलाझल जाला ।
थाकि रही वृषभान लली छवि थाकि रहौं उत नंद कौ लाला।।३१२।।

पैंतालीस–

दोहा

रीझ रीझ रिझिवार ह्वै कहत बनत नहि बैन ।
तन पुलकावल थर थरत भर भर आवत नैन ।। ३१३।।

उद्दीपन भेद । दोहा ।

रित बसंत सुभ गंध अरु चंदन चंद अमंद ।
प्रफुलित कुंजन कोकला भौर गुंज रस छंद ।। ३१४ ।।
पावस बोल पपीहरा केकी बरसत मेह ।
ताल कंज दूती बचन पिय तिय कहत सनेह ।।३१५ ।।
मंजन अंजन द्रगन मै पहिरत सकल सिंगार ।
पीत न ती तन होत है उद्दीपन बिहुवार ।।३१६।।

उदाहरन । कवित्त ।

चैत के सुधाकर की चांदिनी प्रकासी भासी
फैलगी दिसान बिरहीन मन साली है ।
सुमन समाज साज साज भूति राजत है
काज बृजराज रितराज रुचि राखी है ।
मंद मंद बात जात सीतल सुगंध सात
होत कामदीपन छ्देस ग्रंथ साखी है ।
चौर चौर कोकिलामवाकै कुंज ठौर ठौर
भौरन पै भौर भौर भौर दौर माखी है ।।३१७ ।।

दोहा

लखत कुंज गुंजत भ्रमर मनसिज तन भिल जात ।
जल थल पर पिय तिय सकल छल बल कर भिल जात ।।३१८ ।।

सखी बर्नन । दोहा ।

पिय तिय जिय की बात जिहि कहत दुरावत नाहि ।
ताय कहत साँची सखी राखत है हिय माहि ।। ३१९ ।।
मंडन सिच्छा कहत है उपालंब पर हास ।
सज मृदु बाक उराहनौ करै तरक सुख रास ।।३२० ।।

मंडन। सवैया ।

जावक पायल पाइन मै मनमोहन के मन कौं हर लीनो ।
हार भलाभल हीरन के मुक्तावल कंठ भरौ छवि दीनौ ।
कोर छ्देस जरी सौं भरी चटकीलौ लसै मुख पै पट भीनौ ।
राधका के तन मंडन सौं सबि सौतन को मुख खंडन कीनौ ।।३२१ ।।

दोहा

मनरंजन अंजन दियौ भंजन खंजन मीन ।
जावक दै थकि थकि रहत ऐसी सखी प्रवीन ।।३२२ ।।

सिच्छा । उदाहरन । सवैया ।

हीतल भेद समेट सुजान बिहारल बान रसीकर लीजौ ।
आँकल छोरत कंचुकि तोरत तोरत लाज नसी कर लीजौ ।
लाज छ्देस खुसी कर भीत उठै सुख सौत मसी कर लीजौ ।
पीक रुची कर धार हसी कर सीकर लाल बसी कर लीजौ ।।३२३ ।।

दोहा

मनमोहन कौ दिल बसत तू भर दिल भर अंक ।
सकुच मैट हरषत बदन झमक जाउ परजंक ।। ३२४ ।।

उपालंभ । कवित ।

आधे फूल बीनै दया जीव की न बीनै बहु
कान्ह से प्रवीनै कौन भांत सौं निहारौ है ।
तीर पर मुकुट निकुंज बन माल परी
बांसुरी कदंब पीत पट का बिसारौ है ।
भनत इंदेस अंन मैन की किया कौं मैट
लाय कै हिये सौं कीजे वर हटकारौ है ।
ऐसी परी चोट राधे घूंघट की ओट
लाल मार नैन लोट लोट पोट कर डारौ है ।। ३२५ ।।

दोहा

कहा बान तो कौं परी कुटिल नैन कर हेर ।
फिरत कुंज व्याकुल भयौ राधे राधे टेर ।। ३२६ ।।

परहास । उदाहरन । कवित ।

सुदिन दुराग मन दिपत सिंगार अंग
लग न परत छवि जगर मगर मै ।
भनत इंदेस भई भेंटों ते सहेली सखि
डगर डगर पैठी बसत नगर है ।
पाय पायजेब पहिरावत असीस दीनी
झनकि इंदेस पिय रस की रगर मै ।
बाल मुसिक्याय मुख दाब कर नील पट
गल गल हांस उठीं बनिता बगर मैं । ३२७ ।।

दोहा

मुख परखन दरपन दियौ सखिमुखवत बतराय ।
फिर निरखत आसन दई हस हरखत सतराय ।। ३२८ ।।

दूती लछिन । दोहा ।

करत दुति पन अंत सुघर राखत पिय तिय मान ।
इकि उत्तम मद्धम दुतिय अधमा त्रितिय बखान ।। ३२९।।

उत्तम दूती लछिन । दोहा ।

मनमोहन दौनौ तरफ अमृत बचन दरसाय ।
उत्तम दूती भनत कवि छलबल देत मिलाय ।। ३३० ।।

उदाहरन । कवित ।

लाग महताब सौं प्रकास आसपास रास
मौतिन के गुच्छन सौं बेदा भरौ भाल है ।
मानौ मैन बाल सी प्रभा के भरे ताल सी है
बैठी परजंक पै मसाल सी रसाल है ।

भनत ब्रदेस रोम रोम मै मिलाय लीजे
वाहिर न कीजे जाय महा सुणपाल है।
देणौ उठ वाल मै लिवाई हाल वाल वाल
लाल कैसी माल तैं विसाल छविजाल है।। ३३१।।

पुनर्यथा। कवित।

ल्याई वाल फदरी सी हीरन की मुंदरी सी
देणौ लाल देणके कौ देव ललकत है।
वोवला निहोरत मतंग सिर टेरत है
वार त्रिन तोरत तमाम ललकत है।
लालन की माल सी ब्रदेस दिव्य कैठी भौन
देण देण सुणकंद पारावार छलकत है।
तड़ित तड़फतो है चंद्रका भडप सी है
कंदरप सुंदरी सी प्रभा भलकत है।। ३३२।

पुनर्यथा। कवित।

अति कल देणौ जन्म सफल अलेणौ लेणौ
गुंजरत कुंजन अलेणौ अल जाला है।
लच्छ ललनान छाह राजत ब्रदेस अच्छ
मोर पच्छ सीस गरै स्वच्छ वनमाला है।
रीझ है रसिकि रिझिवार तू प्रवीन प्यारी
जाकी रीत मीन प्यारौ प्रीत प्रतपाला है।
रागन रसाला राग माला मोहु वाला वाला
अधिकि विसाला वाल लाला नंदलाला है। ३३३।

दोहा

जब तैं तुव मधुवन लणौ मधुर बजावत वैन।
उठ कल अब नदनंद तू तुम बिन परत न चैन।। ३३४।।

मद्धिम दूती। दोहा।

हित अनहित बत्तनन भनत तन मन यही सुभाइ।
मद्धिम दूती कहत है बुधवत अत चित लाइ।। ३३५।।

उदाहरन। कवित।

डगमग होत मनमंदिर मै डोल तन
लचकत लंक जात स्वासन भरत है।
सीत रित धाम के लगत कुम्हिलात अंग
बदन मलिन होत दीपत हरत है।
भनत ब्रदेस जब आवत निकट लाल
बात है विकट कैसी भांत वितरत है।
तृन कौं डरत म्रदु फूल कौं डरत बाल
मणमल छोड कहूं पग न धरत है।।३३६।।

दोहा

धरत न पग तल भूमि पर तुम चाहत रतरात ।
वस आवत मो वस नहीं रस चातन सतरात ।। ३३७

अधम दूती लछिन । दोहा ।

वकन कहत नीरस सकल भौंहैं सौंहैं तान ।
अधम दूतिका कहत हैं वे दुरगुन पहिचान ।। ३३८ ।।

उदाहरन । कवित ।

लजनी बडी है पायजेव वजनी है बडी
रजनी बडी है वाल फूल कैसी छरी है ।
जाग है जहान दीप फैल है दिसान मान
लोगन के कान सुधा भान किधौं परी है ।
भनत छदेस दिव्यनारिन सौं खेल मेल
नाहि रुखी चैन हियै स्याउ स्याउ भरी है ।
झटपट होत कैसे चटपट हू है बडी
अटपट वात तुम्हैं खटपट परी है ।।३३९।।

दोहा

लाज सरम जानत नहीं रसिया भये नवीन ।
तनक धीर धारत नहीं चाहत तिया प्रवीन ।।३४० ।।

अथ अनभाव लछन ।।दोहा ।।

पिय तिय तिय पिय कौं लखतकित रत अनभव होय ।
सो वरनत बुधवत सकल सवि रस ग्रंथ विलोय ।।३४१ ।।
नैन सैन रसबैन पुन हीतल कहत अनंद ।
प्रगट होत लख भाव वर कविजन वरनत छंद ।। ३४२ ।।

उदाहरन । कवित ।

खेल फाग सुंदर सखेल सुण मेल रंग
रंग भरी दिपत अनंग अंगजाल है ।
मटकत भौंहु पट झटकत अंग भर
चपल करत नैन खंजन की चाल है ।
भनत छदेस मन राचौ रस खेल मैं
देत बकसीस ना उदार भरौ भाल है ।
वगरत वार वार डगरत नैक नाहि
पगरत लाल ज्यौं ज्यौं झगरत वाल है ।।३४३ ।।

दोहा

चपल लगन कर लखि रही पट भीतर कर गात ।
फेर सकुच कर हट रही मंद मंद मुसक्यात ।।३४४ ।।

अथ सात्विक भाव। दोहा ।

प्रथम थंभ है स्वेद पुन रोम फेर सुरभंग ।
कंपु वैवरन वदन कौ आंसू प्रलय प्रसंग ।।३४५ ।।

होत सकल अनभाव तैं सात्त्विक भाव विचार ।
इनकौ निरनय लिषत हैं ग्रंथन मै बिहुवार ।। ३४६।।

थंब लछिन । दोहा।

सकुच सुष्य भय दुष्य तैं अचल अंग पर जात ।
थंब कहत कवि मुदित मन जह तहं प्रगट दिषात ।।३४७ ।।

उदाहरन । सवैया ।

बीनत फूल सहेलिन मै मन फूल भरी मृदु फूल सी ताकी ।
बैन बजावत आन कडे द्रग सैन चलावत मैन कला की ।
होत छ्देस परस्पर मोदित देहि दुहून की देष तथा की ।
राधका की छवि छाकौ गुविंद गुविंद जू की छवि राधका छाकी ।।३४८।।

दोहा

झपट गही नदलाल भुज रोकत करन बनै न ।
मूरत मन मानपधान की रही अचल विध मैन ।।३४९।।

स्वेद लछिन । दोहा ।

कोप हरष डर श्रम भयै अग अग नीर उमंग ।
कहत स्वेद तासौं सकल बुध बत अकल अभंग ।।३५०।।

उदाहरन । कवित ।

केल कर अंदर मै ठाढी ब्दारा मंदिर मै
    ऐसी ना पुरंदर के मंदिर बिसाल सौं ।
हीरन के हार वार पार ना बणंड छवि
    फैल फैल दीप परै अधिकि उझाल सौं ।
भनत छ्देस होड परी देहि कुंदन सौं
    भरी श्रम कुंदन सौं हरषत लाल सौं ।
मानौ मैनसर के निहारत की हेमतरु
    हीरन के पत्र फरी मौतिन के जाल सौं ।।३५१ ।

दोहा

तिय रत श्रम सौं स्वेद कन कुच जुग दिपत महेस ।
मनौ सुधा कर सुधा कर करत करत अभिसेस ।।३५२ ।।

अथ रोमांच ।दोहा ।

सीत भीत अरु हरष तैं उठत रोम तन जाल ।
रोम उमग बुधवत भनत जिन की वुद्धि बिसाल ।।३५३ ।।

उदाहरन ।सवैया ।

न्हात जहां वृषभान लली नदनंद तहां वर वैस गिरी कौ ।
बैन बजौ जुग बैन बली स्यि कैन भयौ सुन राग सिरी कौ ।
देष छ्देस बढौ मन आनद औकन सोभित रंग बिरी कौ ।
जात कदंब कौ लाल भयौ इत बाल भयौ तन भौरसिरी कौ ।।३५४ ।।

पचास–

दोहा

चमकि अचानक चंचला गरजौ जलध उमंग ।

रोम उठे भय झपट लिय पिय लगि लपटत अंग ।।३५५ ।।

सुरभंग लछिन । दोहा ।।

हरष अधिक अत भीत जह कोप अधिकि मद होय ।

तहां होत सुरभंग है बरनत कवि सकि कोय ।।३५६ ।।

उदाहरन । कवित्त ।

लालसा भरी है नंदलाल सुषपाल घात

जान परी बाल धुंघ पायल झमंक तैं ।

लीनी संग भैंट भुज भैंट कै समैट कर

पर परजंक पैन छोडी जात अंक तैं ।

भनत इन्द्रेस वेस लाल मत मोहि लीनी

मैन किया गोय लीनी ताकि ताकि बंक तैं ।

जैसी भांत कंठ अडौं आनद प्रवाहु बडौ

देर मै नकार कडौं वदन मयंक तैं । ३५७ ।।

दोहा

झपट बांह लालन गही उठी हरष तन फूल ।

क हां कर नाकर दूर रहु गए बकन सब भूल ।।३५८ ।।

कंपु लछिन। दोहा।

अति आनद अति क्रोध तैं अति भय पहरत देहि ।

कंपु बषानत सकल कवि परप्रनगुन गेहि ।। ३५९ ।।

उदाहरन । ... सवैया ।

फैल रही सुषमा बहु ओरन मंद निसाकर सिंधु सुता का ।

भाल इन्द्रेस लसैं मुक्तागनतावल सेवत ज्यौं पति राका ।

लाल गही भुज कंपु छुटौं थहरात प्रदीपत कल्प लताका ।

काम के धाम जराउ जरी छवि जाल भरी फहरत पताका ।।३६० ।।

दोहा

थर थर कंपत बाल तन परत लाल की छांह ।

जनु चंचल कंचन लता लहरत बात अथांह ।। ३६१ ।।

वैवर्न लछिन । दोहा ।।

बढत मोहु अत क्रोध तैं अरु भय शीतल होय ।

बुध बल पंडित कवि सकल कहत वैवरन सोय ।। ३६२ ।।

उदाहरन । कवित्त ।

पुन पुन केल करी रत रचि सेज अलीं

बांध सेज बंधन बिछायौ परजंक है ।

आभरन अंगन अनंग अंग अंग भरी

रस वतियात तकै खवत बंक है ।

इकृयावन-

भनत छ्देस नंदलाल कौं लषत वाल

वदन विलाय गयौ भरत न अंक है ।

राहु कौं भपेटौ वैठौ अधिकि ससेटौ पैठौ हरद लपेटौ

लेटौ सरद मयंक है । ३६३ ।

दोहा

नवल वाल परजंक पै प्रफुलित वदन सरोज ।

लषत वाल मुषचंद कौं परौ मलिन सब ओज ।। ३६४।।

आसू। दोहा ।

हरष होत दुष होत अरु भय लागत तव होत ।

जल आवत भर भर द्रगन अंसु कहत कवि गोत ।। ३६५ ।।

उदाहरन । सवैया ।

हाथ लियैं अरविंद गुविंद छ्देस मनोहर मोहन भूरत ।

के समुभौ परपीर भट्ट मन देषन कौं दिन रात विसूरत ।

प्रेम घटा उमिडी घुमिडी वरसै जल नैनन तैं परपूरत ।।

लाज नसी वृज होय हसी इत नैन वसी मनमोहन मूरत ।। ३६६ ।।

दोहा

पिय वियोग तिय द्रगन तैं परत नीर भर लाय ।

जनु भ षगन मुक्तान मुष उगिलत ललित अथाय ।। ३६७।।

प्रलय लछिन । दोहा ।

तन मन धन जन ना लषत थकि यकि छवि छकि जाय ।

प्रलय कहत शृंगार मै कवि बुध वत समुभाय ।। ३६८ ।।

उदाहरन । कवित ।

प्रात जात वन कौं वजावत मधुर वैन

मूरत निहारी प्यारी कान्ह सुषदान की ।

तव तैं भुलानी ज्ञान पान गुरु कान वान

भान सनमान तान थान वछरान की ।

भनत छ्देस वत पलक लगत नाहि

हलत न रंच सुधि परत न प्रान की ।

परसत अंग वर दरस परत नाह

दरसत वाल मान प्रथमा पषान की ।। ३६९।।

दोहा

वर बाधा राधा भई आधा द्रग हरि हेर ।

जल गेरत हेरत नहीं टेरत कैयक वेर ।। ३७० ।।

अथ प्रंभा लछिन । दोहा ।

अति आलस तिय उमगि तन पिय सग जगि जम्हुहात ।

जैभा तासौं कहत है कवि जन रसिकि वतात ।। ३७१ ।।

उदाहरन । कवित ।

रात पति सात जागि रस अलसात नैन

प्रगट दिषात जात सिथिलित गात है ।

लटकत लटपट भीतर कपोलन पै
विथुरत मोल बर अधर प्रभात है।
भनत छदेस छवि सागर मयंक मुखा लाडिली
हुलास भरी जदिप जम्हात है।
मानौं ग्रहपति कौ प्रकास होत जात प्रात
सात जलजात कौ विकास होत जात है।। ३७२ ।।

दोहा

अति आलस द्रग पल झपत झुकि झुकि परत निहात।
भरी मदन तिय रदन दुति दीरत जब जम्हुहात।। ३७३ ।।

अथ संजोग वियोग श्रंगार लछिन। दोहा।

पिय तिय रत बरनन करत सो संजोग सिगार।
पति बिन बरनत रसिकि जन सो वियोग श्रंगार।। ३७४ ।।

उदाहरन। कवित्त।

प्रिया पति रत विहरत लहरत अत
बतरस करत समर सरसात है।
होत्न कलान जुग भुज ललकान कर
उमगि उमगि भर लपटत जात है।
भनत छदेस कल नूपुर मधुर धुन
पायल झमाकि इकि सात दरसात है।
हरसत जात गात परसत जात रूप
दरसत जात रस बरसत जात है।। ३७५ ।।

दोहा

करत सुरत विहरत जुगल उमिगतहरषा असेषा।
ससकि ससकि लागत हियै जब रत रन वलित विसेषा।। ३७६ ।।

अथ हाव लछिन। छंद पद्धरी।

लीली विलास अरु विछित भास। विभ्रम किलकिंचित कर प्रकास।
मोटायत बरनत कुट्टमित। यह विधिबब्बा नियतु दसहु हाव।
विब्बोक ललित अरु विहित चित। तिन सुन मनमोहन वर प्रभाव।
। ३७७।

लीला हाव लछिन। दोहा।

पिय पहिरै तिय के बसन तिय धारै पिय पाग।
तासौं लीला हाव कहि बरनत रस वह भाग।। ३७८ ।

उदाहरन। सवैया।

भेषा धरी पुरहेरिन कौ पग जावक अंजन नैन लगावत।
षोडस अंग सिगार लसै वर कंचुकि गैद धरे मनभावत।
बैठ जहाँ वृषाभानलली मन मोद पुरीन कौ मोल करावत।
राधकाके तन कंचु उठौ अर कंपत लाल चुरी पहिरावत।। ३७९ ।।

दोहा

दोवदार राधा बनी दई सैन की झाम।
राणी हियैं लगाय कैं पर गलई घनस्वाम।। ३८० ।।

तिरफन-

विलास हाव लछिन । दोहा ।

तिय पिय मन हुलिसित करत हसत वहुत आनंद ।
तासौं कहत विलास कवि रच रच गूंथन छंद ।। ३८१ ।।

उदाहरन । सवैया ।

खेल वरै जल मै धस कैं उछारत है जल हात दुहीं सौं ।
किंकिन की झनकार उठै झभिकै जब ही झष छुवत ही सौं ।
वार छदेस लसैं लपटे विथुरे सुथरे कुच कुंभन ही सौं ।
ज्पोल वरै भुज मेल गरैं सखि भावत लाव लगावत हीं सौं । ३८२ ।।

दोहा

असमत सुत लखि द्रगन सौं चपल करत तिय नौल ।
सखिजन सौं भाखत हसत हरखत कर कर चौल ।। ३८३ ।।

विछित हाव लछिन । दोहा ।

पहिरत रंच सिंगार ही फौलत छवि के जाल ।
विछित हाव तासौं कहत कवि जन बुद्ध विसाल ।। ३८४ ।।

उदाहरन । सवैया ।

भाल दियै विदुली गम दीपत और सिंगार भरौस कियौ है ।
सैंदुर की सुरकी दुरकी तुरकी छवि मोहित भौत कियौ है ।
रीझ छदेस सही मनमोहन मंदिर आन अरौस कियौ है ।
अंजन भान अयौत दियौ सव सौतन कौ मुख मौत कियौ है ।। ३८५ ।।

दोहा

लसत भाल वैंदा दियैं भरौ न्यारौ छवि धाम ।
भार होत सव देहि मै और सिंगार निकाम ।। ३८६ ।।

विभ्रम हाव लछिन ।। दोहा ।।

उलट पलट भूषन वसन पहिरैं ठौर कुठौर ।
विभ्रम तासौं कहत है रसिकन मै सिरमौर ।। ३८७ ।।

उदाहरन । कवित ।

वाजूवंध पाय पायजेव वेव दौनौं कर
कंकन भुजान पैरै सरस विसाल है ।
कर अंगुरीन मैंहँन्मुद पैरे अनवट नूपुरन
पग अगुरीन पैरीं मुदरी रसाल है ।
भनत छदेस आछी भांति लाल रीझ की है
अंजन अमोल फौलै छवि प्रत जाल है ।
मौतिन की माल कौ उरौना कियौ कान पर
वैंदा लसै कंठ मैं तरौना वाल भाल है ।। ३८८ ।।

दोहा

सीसफूल नयुनी करी नय उरमाई माग ।
आछी भांत रिझाय हौं वडे लाल के भाग ।। ३८९ ।।

यौवन-

किलकिंचित हाव लछिन । दोहा।

हरष गरब श्रम रोस अरु अभिलाषा अरु भीत ।
प्रगट होत इकि साथ ही किलकिंचित की रीत ।। ३९० ।।

उदाहरन । कवित्त ।

जूथ जासमाने साने अतर विताने ताने
सोवत पलग बाल कलप लतासी है ।
परपन जौन कैसौं भरपकन बांध फैलौ
दरपन देहि ताकी दिपत प्रभा सी है ।
भनत छदेस जल केसर कपूर गंध
गार अंगराग लायौ मोहन विलासी है ।
क्रोध भयौ स्वेद भयौ हरष अलेष भयौ
कंपु भयौ लाल गरैं जल जाल हांसी है ।। ३९१ ।।

दोहा

पिय परसत हरसत हियौं ससत बढावत भौंह ।
मन ललिचत मुख ना करत निसां करत कर सौंह ।। ३९२ ।।

मोटायत हाव लछिन । दोहा ।

भनत बचन निंदित निपट भुकत प्रीत नहि लेस ।
मोटायत यह हाव कौं बरनत सुकब छदेस ।। ३९३ ।।

उदाहरन । सवैया ।

डोलत हौ नित ही बन मै जान मै जान मै भगरौ बगरावन ।
मागत दान गुमान भरे रसखान छदेस सबै दरसावन ।
दूरहि कौ हित होत भयौ इत काम कहा तरसौ ढिग आवन ।
मोहि लगौ वृषभान सुता तुम हौ नदगाउ की गाइ चरावन।। ३९४ ।।

दोहा

नर नारी बैठे बडे भयौ सकल बृज घेर ।
रस बातन बैठी रहरि परी अकैलौ घेर ।। ३९५ ।।

दोहा

चित चाहत पिय मिलन कौं रसना भनत नकार ।
कहत प्रीत नदनंद की रहत कुट्टमित सार ।। ३९६ ।।

उदाहरन । कवित्त ।

सत्तर करत द्रग अतर लगाव तन
चुंमत अधर ओट कर कर लीनौ है ।
कुच चिपि कंचुकि दुरावत कसत बंध
मुख अरविंद पर पट कर लीनौ है ।
भनत छदेस छल छंदन नवल त्रिय
रसिकि गुविंद अंक रस कर लीनौ है ।
मद कर अंगन मै रस कर रोम रोम
हस कर बास लाल बस कर लीनौ है ।। ३९७ ।।

पचपन–

दोहा

ज्यौं ज्यौं मुख भर भैंट पिय त्यौं तिय लपटत अंग ।

पुन पुन मुख नाही रखत रुचि रुचि करत प्रसंग ।।३९८ ।।

विब्बोक हाव लच्छिन । दोहा ।

भर गुमान सुखदान तिय पियकौं करैं मान ।

सो विब्बोक बखानही जे कवि जन गुनमान ।।३९९ ।।

उदाहरन । कवित्त ।

गुंज हार गानौं गोप वालन मैं भानौं ठानौं
आठौं जाम गानौं तान वानौं यही ठानौं है।

रोप बन थानौं नीच ऊंच पहिचानौं नाहि
ग्यान कौं न जानौं एक रस पहिचानौं है।

भनत छ्देस लेस लाज कौ बिलानौ मानौं
ठौर ना ठिकानौं पै वृथा ही भौंह तानौं है।

भीत कौं न जानौं वैर प्रीत कौं न जानौं ध्यानौं
नीत कौं न जानौं कुल रीत कौं न जानौं है । ४००।।

दोहा

झटकत पट तोरत हरा बनै फिरत अवनीस ।

सोहत मूरत साँवरी धरैं कामरी सीस ।। ४०१ ।।

ललित हाव लच्छिन । दोहा ।

दिपत आभरन अंग सकल सुबरन तदवत जोत ।

बरनत छवि झलकत बदन ललित हाव तह होत ।।४०२ ।।

उदाहरन । सवैया ।

पाइ लौं लतकें लहा अवली दरसात मनौ तिरवैनी ।

कुंदन से कुच कुंभ झलाझल आनन चंद लगौ मृगनैनी ।

जोत जवाहर बाह छ्देस मनोहर मूरत है सुख दैनी ।

अंगन रंग अनंग सरासर गंग सी मांग भुजंग सी वैनी ।।४०३ ।।

दोहा

अमृत भान परमान मुख भरौ भाल मुसुक्यान ।

छवि निधान बाढत भुजान तुम हित कान्ह सुजान ।।४०४ ।।

विहित हाव लच्छिन । दोहा ।

जा तिय की पिय पै नहीं परपूरन कर प्रीत ।

विहित हाव तासौं कहत लखि गुंपन की रीत ।।४०५ ।।

उदाहरन । सवैया ।

सुंदर सेज परी मनमंदिर दीपन जाल प्रकास करौ है ।

देखत ध्यान लगौ सखिकौं जब आय गयौ घनस्याम धरौ है ।

बात गई मुख मेल छ्देस लगी छतियां अनबोल गरौ है ।

हौंसल मैं बृजराज भरौ अखियां जुग लाज समाज भरौ है ।।४०६ ।।

छप्पन-

दोहा

भली भांत विहरी हसी गसी कसी सब रात ।
सकुच रहत कछु कहत नहि मनमोहन सौं बात ।। ४०७ ।।

वियोग शृंगार लछिन । दोहा।

मनभामन के मिलन विन विकल रहत जह वाल ।
भनत वियोग सिंगार यह वर बुध कल रसजाल ।। ४०८ ।।

तस्य भेद । दोहा ।

इकि पूरव अनुराग कहि दूजौ मान वखान ।
तीजौ कहत प्रवास वर वरनत सुकवि सुजान ।। ४०९ ।।

पूर्वानुराग लछिन । दोहा ।

लखत सुनत मन मै हरख वढत मिलन की चाह ।
दरस परस विन विकल जिय कहत कविन है नाह ।।४१० ।।

उदाहरन । कवित ।

गोपन की भीर मै वजायौ वैन धीर कर
चीर कर भीर नीर केसर कौ डारगौ ।
चंदन उसीर मै सरासर अवीर भरौ
सुंदर सरीर स्याम मैन पीर पारगौ ।
भनत छदेस विन पीर कौन पीर जानै
फेर ना निहारौ कालकूट विष गारगौ ।
भासकर जाके तीर भास कर ताके वीर
गांस कर नैन तीर हांस कर मार गौ ।।४११ ।।

दोहा

जसमत सुत वृखभानजा भई द्रगन मै वात ।
परे विकल वनकुंज मै विन मिलाप अकुलात । ४१२ ।

मान वर्नन । दोहा ।

त्रिविधि मान वरनत सुकवि गुरु मद्धिम लघु जान ।
उदाहरन मै भरत मन वांछत सुनत वखान ।। ४१३ ।।

गुरुमान लछिन । दोहा ।

पर तिय तौ पिय कौं लखत भासत हसत विनोद ।
प्रगटत जह गुरु मान है छुटत वलित प्रमोद ।। ४१४ ।।

उदाहरन । कवित ।

भास करौ सहज सहास करौ लोगन सौं
वास करौ अनत कहां भौ छिन अंग मै ।
ऐसी परी वान तो लगी है कौन कान वान
कान पतरी है तब कान भरी अंग मै ।
भनत छदेस नंदलाल छवि वाल भरी
कहा भयौ वोलौ बात मद के उमंग मै ।
रोस मेट सोस मेट मान मान ले समेट
दोस मेट लाल पाल पोस रसरंग मै ।।४१५ ।।

दोहा

वृष नारिन सौं प्रीत अत बहुनायक नदनंद ।

वृथा करत गुरुमान है छोड सकल आनंद ।। ४१६ ।।

मद्धिम मान लछिन । दोहा ।

सुनत अचानक आन तिय भनत नाम घनस्याम ।

उपजत मद्धिम मान तह बरनत कवि गुनधाम ।।४१७।

उदाहरन । सवैया ।

कुंद कदंब तिया मन भामन काम कलान उचारत बानी ।

जोर घमंक घनी चपला घन घोर धमंक झरमंडल पानी ।

नाम छ्देस कही प्रिय और भयौ मन और रही मुरझानी ।

नैन निहारत बान भए इत भौंह समान कमान सौं तानी ।।४१८ ।।

दोहा

सनक भनक मुरली सुनत टेरत तिया परोस ।

भ्रुकुलित मन धन कठिन ज्यौं भ्रग द्रग करे सरोस ।।४१९ ।।

लघु मान लछिन । दोहा ।

पर धन के ढिग लखत पति करै मान सुगदान ।

सो लघु मान बखानही छूट जात छिनमान ।। ४20 ।।

उदाहरन । कवित ।

सहज सुभाव ठाडे देख वृजबाल पास

दाब रही प्यारी कर आंगुरी रदन सौं ।

पैठी मान मंदिर उमैठी भ्रुटीन कर

मान कर वैठी अैठी नंद के नंदन सौं ।

भनत छ्देस बिपिरीत लखि चित लाल

ध्यान सौं लगाय दियौ सामुने सदन सौं ।

आसन के लखत आसन भुलाय गई

हांस हांसलागै मनभामन वदन सौं ।। ४२१ ।।

दोहा

न कछु बात मै कर रही वडी मान की कूट ।

नवल करत सखि फाग की सकल मान गौ छूटा क ४२२ ।।

प्रवास लछिन । दोहा ।

विरह बिकल तन मन सकल जिहि पति बसत प्रदेस ।

बरनत सकल प्रवास यह बुध कल सुकवि छ्देस ।। ४२३ ।।

उदाहरन । सवैया ।

गुंजत पुंज मलिंदन के पिक कुंजन मै बिरहा सरसावत ।

भ्रमि रहीं चित घूमि रही लतिकां कुसमाकर जाल भरावत ।

आवत गंध बहावत बात छ्देस सुहात सयोगिन भावत ।

कंत प्रदेस परौ इकौस लखी तन अंत बसंत करावत ।। ४२४ ।।

दोहा

लखि बसंत विरहा बढ़त लगत पौन जब अंग ।
कैत चांद मै धंन धन जे सोवत पति संग ।। ४२५ ।।

अथ नव दसा वर्नन । दोहा ।

अभिलाषा चिंता कहत सुमरन कहत बखान ।
गुन बरनन उद्वेग कहि पुन प्रलाप उर आन ।।४२६ ।।
फेर कहत उनमाद है ब्याध भनत गुनमान ।
फिर जड़ता पढ़ता कहत तेरह लाख ग्यान।।४२७ ।।

अभिलाषा लछिन । दोहा ।

पिय तिय हिय मै बसत है अत मिलाप की चाह ।
ताय कहत अभिलाष हैं जे कवि रसिकि अथाह ।।४२८ ।।

उदाहरन । कवित ।

जान दीजे लाज कुल कान पै न कान दीजे
ठान दीजे मन की कुनौती सास नंद कौं ।
आठौ जाम नैंनन मै धर धर लीजे छवि
पीजे सुधा बैन कीजे अधिकि अनंद कौं ।
भनत ब्रदेस तन मन मनभामन पै
कीजिये निछावर निहार मुख चंद कौं ।
ऐसौ जोग कीजे रोम रोम भर लीजे जीजे
प्रान जान दीजे पै न दीजे नदनंद कौं ।।४२९ ।।

दोहा

मेरौ मन तन तैं गयौ मनमोहन के पास ।
बदन लखन दीपन दखन कियौ सखन मै वास ।। ४३० ।।

चिंता लछिन । दोहा ।

सखि दरसन हूं हैं हमै मन तरसत तन ताप ।
करत चिंत मन अहर निसि चिंता कहत अताप ।।४३१ ।।

उदाहरन सवैया

कुंजन मै द्रुम ताय रही कुलछाय रही लतिछाय कुलीतर ।
भीत उपाइ करौ सजनी पर दाउ न लागत एक उहीतर ।
चोर लियौ मनचोर ब्रदेस कई कर है हिय ताय कलीतर ।
मोहन चित्र लखौ चित है चितहै मित है दित मो दित भीतर ।४३२ ।

दोहा

हे विधि अस दिन कब करत हरत विरह की जाल ।
कपट छोड़ हिय सौं लगै भपट बिहारी लाल ।। ४३३।।

सुमिरन लछिन । दोहा ।

खेल करत सुख मेल कै लसत लसत हिय ताय ।
तौन बात सुमिरन करत सो सुमिरन लखि ताय ।।४३४।।

उनसठ–

उदाहरन। कवित्त।

पीत पट राजै दीप मुकुट अगांड साजै
निंद जोत भान जो जहान मिसिरत है।
कोट चंद मंद फलेली मुणा की प्रकास रास
आधी भांत भरी गरी दिन निसरत है।
लोचन छदेस दुग मोचन करन वार
जानै नंदलाल वाल कौन दिस रत है।
आवत भुणात बन माह तै करत गान
काम तै अर्यांह छवि नाह बिसरत है।।४३५।।

दोहा

वदन मदन तदवत ललत निश्चित रखवत वैन।
सुरत सुरत विसिरत न छित लगि विन परत न चैन।।४३६।।

गुन बरनन लछिन। दोहा।

पिय छवि तिय बरनत रहत भरी विरह तन जात।
गुन बरनन कवि जन भनत रस रस कवित विसात।।४३७।।

उदाहरन। सवैया।

घूंघर वार लटै लटकैं लटकैं कल कुंडल दीप गरी है।
नैनन चाइ लकै तिरछी सुस्थिथाय मनोहर बान परी है।
तान भरै गुनगान छदेस सुजान लसै करफूल छरी है।
नाचत नंदकिसोर मरोर करोर तरां छवि जोर भरी है।।४३८।।

पुनर्यथा। सवैया।

सिर पैच छदेस छुटीं अलकैं मुणा दीपत दीप मनी की लगै।
हित हास बिलास करै जबहीं मृदु बोल अमोल अमी की लगै।
कह जात बजार मरीक सणी छिय कंटक मान अनी की लगै।
घर वार सबै सुणा फीकी लगै पिय आंगिन जोट न नीकी लगै।।४३९।

दोहा

मनमोहन मोहन द्रगन ललित वान गुनगान।
सुधा भान तैं मुणा सरस मुकुट भान परमान।। ४४०।।

उद्वेग लछिन। दोहा।

विरह विकल तलफत रहत निसदिन परत न चैन।
ताय कहत उद्वेग है सुधकल रखवत वैन।। ४४१।।

उदाहरन। कवित्त।

तलफत मार कीनो भीत ज्यसार कीनी
नवल वधू तैं गहै वैठत किनारे से।
लेट लेट जात स्वास पेट मै लपेट जात
जास छूट जात मूंद जात नैन तारे से।

साठ-

वार वार भनत इदेस नदनंदन कौं

भ्रम भ्रम जात भूमि आवत तमारे से ।

जलज बिछौनन मै आग सी परत जात

बरफ बिछौनन तै बहत पनारे से ।। ४४२ ।।

दोहा

बिरह जगत नदनंद बिन सगी जरै यह नेहि ।

तपत तवा सौं चंद यह दगत अवा सौ देहि ।। ४४३ ।।

प्रलाप लछिन । दोहा ।

भरी चाह पिय मिलन की कहत अनमिलत बैन ।

तासौं कहत प्रलाप है परत न छिन भर चैन ।। ४४४ ।।

उदाहरन । कविक्कन सवैया ।

कुंजन सौं बतरात निहार कहौ किज है वह नार तिहारी ।

चंद लगौ कहि भान प्रकासित घाम लगौ कहि जौन निहारी ।

लाल इदेस लगी कहै वृषभान सुता तुव प्रान पियारी ।

पूछत ताल तमालन सौं सुनापात कहां वृजराज विहारी ।।४४५ ।।

दोहा

साँझ होत कहि प्रात भौ प्रात होत कहि साम ।

गोपन सौं गोपी कहै कहि घन सौं घनस्याम ।। ४४६ ।।

उन्मान लछिन । दोहा ।

वृथा बचन सब कहत है मयौ आचरन भूव ।

दसा सदा उनमाद की बरनत गुन जनमूत ।। ४४७ ।।

उदाहरन । सवैया ।

मूद रहै द्रग कुंजन देख कहूं मन आवत नाद करै है ।

हास करै छिन ही छिन मै छिन हौं छिन बैठ समाद करै है ।

छम रहै स्यि माझ इदेस कहूं तरुताल फिराद करै है ।

भेंटत बाल तमालन सौं वृजबालन सौं बकबाद करै है ।। ४४८ ।।

दोहा

स्यधन करत हस हस उठत भ्रुनाल बकत सतरात ।

हरि छवि छकि बौरी भई तरवर तकि बतरात ।।४४९ ।।

व्याध लछिन । दोहा ।

बिरह बिकल तन कौ न सुधि बढत कुसमसर अंग ।

कहत व्याध तासौं सकल कुधबत अमित अभंग ।। ४५० ।।

उदाहरन । कवित्त ।

बेग चल देखौ फेर मान है परेखौ लेखौ

हाल बाल भयौ जात जगत कौ कात है ।

बाम काम ताप सौं दिगात परभात होत

सात है समद सूखा सूखत पतात है ।

भनत छदेस कौन जात वा अवास पास

स्वासन सौं जात उड़ परत उछाल है ।

वाल नैन वारि जाल छूटत मुसलधार

मेरे जान होत है अकाल प्रलै काल है ।।४४१ ।।

दोहा

महाँ कृसित कीनी विरह सुनियै नंद कुमार ।

लखन परत परजंक पै गयौ काल भख मार ।।४४२ ।।

जड़िता लछिन । दोहा ।

तन मन की सुध भूल सब हलत चलत नहि अंग ।

सो जड़िता वरनन करत कवि जन रसिकि उमंग ।।४४३ ।।

उदाहरन । सवैया ।

लाल तुम्है लख वाल विहाल गडी वन कुंजन प्रीत पगी है ।

फैल रहे छवि जाल छदेस विसाल जवाहर जोत जगी है ।

हेत करौ चित चेत करौ वह अंग अनंग सुरंग रगी है ।

डोलत ना मुख वोलत ना पल खोलत ना मन मूठ लगी है ।।४४४ ।।

दोहा

लखि लखि छवि वृजराज की भए अचल सब अंग ।

नहि वोलत डोलत नहीं नख सिख भरी अनंग ।।४४५ ।।

इत नव दसा नायका नायक भेद समाप्त ।

अथ ।। श्री जगदंवा के कवित्त ।।

सुन विसिरावै का दुरावै दया संभुरानी

आपु कौ प्रताप कोट कल्पतरु वर है ।

देव काज गाज गाज दानव पछार मारे

मेरा लाज काज साज कौन सौं समर है ।

भनत छदेस मातु भोल कौन काम याम

भक्त प्रतपालवे कौ यही अवसर है ।

आधी भाँत लच्छ कर दीन दुच्छा गच्छ कर

तो विना अपच्छिन की पच्छ कौन कर है ।।४४६ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

कौन कौन वात की पुकार करौं सिविसति

आपत अनेक रीत मैट हरवर दै ।

फेर कवि की है छमा औसर विताैं जात

सरन गहे की लाज पाल कर वर दै ।

भनत छदेस हेरौ पच्छ कौं धरम तेरौं

फंद निरवेरौं मेरौ सीस कर धर दै ।

दास दलगीर अब काहे तू धरत धीर

मातु हर पीर तकसीर माफ कर दै ।।४४७ ।।

पुनर्यथा । कवित ।

तेरियै विभूत है अकृत लोक लोकन मै
धरन अकास लौ प्रकास तेरौ दाषियै ।

जीवत इन्द्रेस तेरी सक्ति कर जक्त सबै
बुधवत भनत अनेक श्रुति साष है ।

आपुनिकौ आपु ही सम्हारवौ सलाय देवि
और को सम्हार है विचार भांत लाष है ।

उर मत कंदरा मै दुरमत दूर कर
सुर मत मातु दीन दुरमत राष है ।। ४५८ ।।

पुनर्यथा । कवित ।

मेरौ का नसै है विरिदावत की बात चैहै
कोऊ वैसै वैहै सक्ति माता जक्त तेरी है ।

आपु की कहावत वहावत किंधै है अब
जक्त कहा तू महा वार मुष फेरी है ।

भनत इन्द्रेस हे अपच्छिन की पच्छ देवी
जौ पै नहीं लैहै मेरी षवर सवेरी है ।

भजियत नाम तुही सजियत रोग निंद
लजियत लोकरीत फजियत तेरी है ।। ४५९ ।।

पुनर्यथा । कवित ।

आपु कौ कहायवौ है नित गुन गायवौ है
जौ लग जिवायवौ है सरम निवायवौ ।

तेरौ मातु ध्यायवौ है वेदन मै न्यायवौ है
नीके फल पायवौ है दुष तैं बचायवौ ।

भनत इन्द्रेस सिवा सरन गहायवौ है
फेर का वहायवौ है नाहक दहायवौ ।

दया उर लायवौ पुकार सुनै धायवौ है
तुम कौं नचायवौ है सुधि विसरायवौ ।।४६० ।।

पुनर्यथा । कवित ।

तेरे धाम धायौ गुन गायौ सिर नायौ ध्यायौ
त्रास ना मिटायौ कहा जानौ क्यौं परायौ तौ ।

महा दुष पायौ तोकौं दरद न आयौ हियैं
वेदरद नाम तूनै कहा पद पायौ तौ ।

भनत इन्द्रेस तू तौ जगत की मातु देवी
कहा जान पै तैं तूनै गोतै षुवायौ तौ ।

ठौर सौ छुड़ायौ का बनायौ मनै आयौ कहा
कैसौ बिसरायौ फेर काहे लाज आयौ तौ ।४६१।

तरत्रठ–

पुनर्यथा । कवित ।

सातौ दीप तू ही दीप दीपन मै दीप तू ही
राण दीन नूर कर पालन जहर है ।

तू ही करतार है दया कौ पारावार तु ही
लोकन के भार के उतारबे कौ सूर है ।

भनत इदेस मेरै औंर ना उपाय माय
ध्याय तेरे पाय सुणदायक प्रपूर है ।

मेरै वैदराज तुही देहि ताज राण तुही
तू ही औंसधीन मै सजीवीं कौ मूर है ।।४६२।।

पुनर्यथा । कवित ।

वानी वृह्मरानी विष्नुरानी संभुरानी तुही
वेदन वणानी तू भवानी विंध्यवासिनी ।

पाप भंजनी है भक्त रंजिनी इदेस सदा
विश्व पर पूरित चराचर मै भासिनी ।

तप मै प्रसिद्धि तु ही वृद्धि नव निद्धि तुही
तू ही वरदायक तु आनद हुलासिनी ।

रोगन विनासनी है दुष्टन कौं सासनी है
जगत प्रकासनी है दुरगति नासिनी ।।४६३ ।।

श्री महादेव जी ।। कवित ।।

हर वर जाकौ होत वर वर जाकौ भक्त
अखर जाकौ बात जखर जाकौ है ।

भनत इदेस दित सखर जाकौ सुर
तरुवर जाकौ ध्यान धर धर ताकौ है ।

पाल परजा कौ दया धर दर जाकौ है
त्रिलोक घर जाकौ कालकूट कर ग्राकौ है ।

तप थिर जाकौ प्रभु ध्यान थिर जाकौ देव
वर गिरिजा कौ हर वर गिरजा कौ है ।।४६४।।

पुनर्यथा । कवित ।

भंग रंग लोचन सुरंग अहि अंग अंग
प्रेत गन संग गंग सीस धर तीकौ है ।

मुंड बात माल गरै दिपत विसाल भस्म
भूक्षन खाल विधु भाल पर नीकौ है ।

भनत इदेस देव सरस न दूजौ राम
कर धर पूजौ तीनौ लोक पर टीकौ है ।

यही है विधाता यही ग्याता पिता माता यही
भक्त वर भ्राता दाता नायक सी कौ है ।। ४६५ ।।

चौसठ–

पुनर्यथा । कवित्त ।

ध्यावत रहत देव गावत रहत गुन
पावत छदेस सिद्धि सकल बहार की ।
नाम परपूरो वर देत है जहरो पियै
रहत धतूरो माल मधुर अहार की ।
बांधे जटा जूरो अंग लाये चिता धूरो ओडे
रहत सदैव जुवा ध्यानिक नहार की ।
मंदिर धुरंधर इकंदर रहत ताके
अंदर मगन सिव कंदर पहार की ।। ४६६ ।।

श्री रामचंद्र जी के कवित्त

नौबद बजावै वाजै घोर घन लाजै भाजै
राज गल गाजै छाजै अवध अनंद है ।
जीत छलवाजै वाजै कर कै पराजै राजै
भूतल सदा जै गाजै भासत अमंद है ।
भनत छदेस कवि रघु सिरताजैकाजै
फनपति लाजै गुन भनत न छंद है ।
देव कर साजै वाजै तखत समाजै साजै
मैन छवि लाजै राजै दसरथ नंद है ।।४६७ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

भुजवल वढँ छँडै निंदन विदुडैँ खुंडै
सर धन मंडै छंडै काल पर बाज है ।
क्रीट वर धारै हारै रवि कर वारै डारै
पापिन उधारै तारै भवसर काज है ।
भनत छदेस वर मुकुतन माला जाला
दिपत दुसाला आला जन सिरताज है ।
काम छवि जोहै खोहै जगत बिलोहै कोहै
गज पर सोहै मोहै रघुपति राज है ।।४६८ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

कैधौं काल दंड कै पठान की घमंड कैधौं
उमंड कर धाप धुरा धरां नीलवार कै ।
धारै सहखंड जाकि डारै कल्पतरु कौं
निहारैं कि खेरत किधौं है बान मार कै ।
भनत छदेस नीलवारख सनात कै
त्रिलोक रक्षा पास छविरूपक कुमार के ।
अमित अखंडित विहुंड झुंड छेड गात
चंड भुजदंड मंड कौसिल कुमार के ।। ४६९ ।।

पैंसठ-

पुनर्यथा । कवित ।

दसरथनंद जब सहज सवार होत
धावत गयंद धुन करत सडाक दै ।
सातह समद घर घर घरक्त जात
धरा धरक्त गिर गिरत भडाक दै ।
भनत इन्देस मंड कंड मारतंड गंड
धुंधुरत धूर परधुरित भडाक दै ।
फनपति फेर फन फरक फरक उठै
कमठ की पीठ टूट फूटत फडाक दै ।।४७० ।।

पुनर्यथा । कवित ।

तु ही आद तु ही अंत तुही ग्यान तुही संत
तु ही दीप दीपन मै भलाभल तुही है ।
तु ही आसमान तुही चंद भासमान मान
तु ही जीवद ान तुही चिरीवाज तुही है ।
भनत इन्देस राधा कृष्न राम विष्नु तुही
तु ही भोलानाथ तुही सक्ति जल तुही है ।
तु ही गुरु चेला तुही मखाद बेला सदा
तु ही भीत मेला और अकेला एक तुही है ।।४७१।।

पुनर्यथा । कवित ।

दसमुख रच्छनै प्रतच्छ मुन तच्छ भच्छ
जानकै बितच्छ भयौ अवतार हर कौ ।
देव दीन तच्छ कै त्रिलोक कौ अपच्छ जान
दसरथ दच्छ कै उदोत कियौ घर कौ ।
भनत इन्देस दुग्ग गच्छ कियाृ भक्तन कौ
मच्छ कच्छ आप रच्छ पाल भव सर कौ ।
देवन सौ लच्छ अच्छ तुरत तुतच्छ गच्छ
होत है सपच्छ तापै पच्छ रघुवर कौ ।। ४७२ ।।

पुनर्यथा । कवित ।

द्रोपति पै लच्छ कियौ अच्छ कर पच्छ कियौ
दूसासन तुच्छ भौ अपच्छ कियौ वर कौ ।
प्रह्लाद रच्छ रच्छ तात कियौ गच्छ गच्छ
है प्रतच्छ कीनौ वध गजराज अर कौ ।
भनत इन्देस स्वच्छ कीनौ लाड भुक्त कौ
ध्रुव कौ समच्छ पद दीनौ है अमर कौ ।
देवन सौ लच्छ अच्छ तुरत तुतच्छ गच्छ
होत है सपच्छ तापै पच्छ रघुवर कौ ।।४७३ ।।

छाछठ–

पुनर्यथा । कवित्त ।

भक्त वदाहैं जलपाल परदाहैं भाहैं
धरम धुजा है सुणदाहैं हर पीर की ।
सेस से सराहैं कल अमित अखंडता है
सुजस अथाहै दुष्ण दाहैं गत भीर कीं ।
भनत कृदेस चित चाहैं ध्यान देवता है
दास सिर छाहैं महा सीतल गम्भीर कीं ।
वीरता कला हैं उपमा है ते वृथा है चाहैं
धंन धंन बाहैं बलवीर रघुवीर कीं ।।४७४ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

आय गजगांस तानों मुष मैं तरन दीनौ
तापै भीत कीनौ घोर नीर वीच हर गौ ।
हद्द भर हारी तब घोर सौं पुकारौ नाम
त्राह त्राह राम सब्द प्रभु के नगर गौ ।
भनत कृदेस भक्त पालक सुनत टेर
तनक न कीनी देर धावत डगर गौ ।
चक्र कौ अगर तेज जगर मगर तासौं
मगर की देह छार छार ह्यौंबगर गौ ।।४७५ ।।

श्री कृष्नचंद जी के कवित्त

भासन सुधा की ताकी हासन प्रमोद ताकी
रदन छटा की नास–का की छवि जाल की ।
मुष सुषमा की झांकी झलकि झला की ठाडी
ललित लता की छांह अद्भुति तमाल की ।
भनत कृदेस जाकी भुव ललका की बीन
गहन प्रवीनता की वहन रसाल की ।
दृगन कला की बांकी बरनत भा की याकी
मैन मद छाकी ताकी मूरत गुपाल की ।।४७६ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

साहै क्रीट कुंडल कपोल अनमोल गोल
झांष्प द्रग लोल बोल सुधा सर डार गौ ।
बांकी बाकी बांसुरी कृदेस दिव्य झांकी बांकी
लटकि लटकि पग धरन पै धारगौ ।
फेर कौं निहारखौ कहां लौं देहि मारखौ है
मारखौ भलौ तौ वौं सखी की राह पार गौ ।
देखत की छौना कैसौ भूवल लगौ ना भौना
नंद कौ डुटौना लौना टौना पढ डार गौ ।।४७७ ।।

अड़सठ—

पुनर्यथा । कवित ।

निकिस न पैये ना निवैये तहाँ पैये भद्
मारग अमोटा नैन वोटा करै वाय कौ ।
हस कर हेर मंत्र वस कर गेर फेर गस
कर लेत नहीं अलक सुभाय कौ ।
भनत इंदेस भफांगें ललन की ओटा मारै
मोहु मुक गोटा है लबोटा प्रानवाय कौ ।
वक्न लपोटा सदा गोरस कौ पोटा मोटा
गाँठौं गाँठ खोटा छोटा ढोटा नंदराय कौ ।।४७८ ।।

पुनर्यथा । कवित ।

राधे पायजेब उत नूपुर मधुर स्याम
उत वनमाल इत मौतिन की माल है ।
नील पट सोहै चटकीलो उत पीत पट
मंडित मुकुट इत वैंदा लाल भाल है ।
भनत इंदेस भानजा के तीर विहरत
भुज ललकान गरै गलबत वाल है ।
दोही प्रेमपग पग उमग उमग छवि
पग पग मग होत जगमग जात है ।४७९ ।

पुनर्यथा। कवित ।

सरवर दीपन की दीप बहु ओरी बोरी
सुन बलिहारी मुरली की घोर मोर की ।
विधि गाँठ जोरा बार बार कर प्रन तोरी
लागी प्रीत डोरी द्रग भाँगन मरोर की ।
भनत इंदेस गल बाँह परी गोरी भोरी
मुदित ललान बान सुन सुन मोर की ।
मैन छवि थोरी थोरी मोहि मति मोरी मोरी
धेन चित चोरी चोरी जुगल किशोर की ।।४८० ।।

पुनर्यथा । कवित ।

सेस मुग्ध याके गुन भनत अगंडता के
प्रभुता पताके कविता के मुग्ध सत हौ ।
देवगन ताके जन ताके वृज वनिता के
लोक लोक ताके राधका के प्रानपत हौ ।
भनत इंदेस फंद काटन पिता के मा के
कृपा कर ताके गनका के पारगत हो ।
ध्यान धर ताके याके बरन प्रमोदता के
नाथ द्वारका के द्वार वाके पवत हौ ।।४८१ ।।

श्री हनुमान जी के कवित्त

भक्त उर धारवे कौं राम कौं उवारवे कौं

सीता सोध पारवे कौं अद्भुति गम्भीर है।

लंक गड जारवे कौं अक्ष उखारवे कौं

जातधान मारवे कौं महां रनधीर है।

भनत ब्रदेस अन्ध्र कुंवर पधारवे कौं

रामानुज प्रान कौं रखैया सुधा धीर है।

दास जन तारवे कौं भुक्त सुधारवे कौं

विपत विदारवे कौं हनमत वीर है।।४८२।।

पुनर्यथा। कवित्त।

आयुध धरन कर उन्नित लगूंट छूट

सोभित सिंदूर भरपूर छवि जाल है।

साल है अभक्तन कौं पाल जनमुक्तन कौं

नखर कराल जातधानन कौं काल है।

भनत ब्रदेस भुजदंड हैं प्रचंड मंड

लंक पै तमंक तम संका लंकपाल है।

रामभक्तरंजन है सत्रु सिरगंजन है

दास दुखभंजन प्रभंजन कौ लाल है।।४८३।।

पुनर्यथा। कवित्त।

पवनकिसोर जोर सोरन कसीलौ वर

जगत जसीलो है प्रतापिक अतंका कौं।

भनत ब्रदेस राम वाम कौं सुकाम कर

काट कैं कलेस लेस राखौ नहीं संका कौं।

फांद कर समद दसानन की आन मैट

सान मैट सकल उढायौ धूआं लंका कौं।

भन मत आन कौं न गन मत विपिताहि। या

मन मत भूल ध्यान हनमत बंका कौं।।४८४।।

अथ फाग वर्नन। कवित्त।

चंदन अतर गंध अगर कपूर धूर

मलत वदन नंदनद न रसाल सौं।

हेम के हजारन गुलाव जल वरसत

केसर गरक रंग छिरक विसाल सौं।

दरस ब्रदेस होरी खेलत सरस अंग

पकर किसोरी हरखात बाल जाल सौं।

अरुन दिसान भू कुसंवता समान भास-

मान आसमान भरौ गरद गुलाल सौं।। ४८५।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

आछी रूच ललित विचित्र वृज फाग साज

रंग कर सुसिभित केसर विसाल की ।

इत वृषभान की कुमार बनितान साज

उत हिरदेस भीर ग्वालन गुपाल की ।

खेलत अबीर बरझोरी हेम थार भर

कर पिचकारी झर मानौ मेघमाल की ।

धालतक मूठ लाल परत प्रकास भाल

लागी लाल जर्द गाल गरद गुलाल की ।। ४८६ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

खेलैं फाग बाल नंदलाल गुणपाल संग

अंग रंग उमग अनंग छवि जाल की ।

ललित इदेस रंग अमित सुगंध जुत लकि

पिचकारि कत कुच पर लाल की ।

कुर कुर जात है निसंण दुरि दुरि जात

उर उर जात नौक नैनन विसाल की ।।

झुकि झुकि झाणि झाणि झझकि झझकि झपि

उझकि उझकि मूठ मेलत गुलाल की ।।४८७ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

मुर मुर जातीं लाल फौकत गुलाल मूठ

छल बल जातीं लपटातीं कुर अंग सौं ।

थोरी थोरी बैसन लहत भुग हेरी हेरा

कीरत किसोरी संग गावत उमंग सौं ।

छिरकि इदेस जू गुलाब वर नीर बीर

उडत अबीर भरौ अत रत रंग सौं ।

नैनन सौं नैन जोर जोर त्रन तोर तोर

कीनै तरबोर श्री किसोर रग रंग सौं ।।४८८ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

वृज वनता की कुंज कुंज भुज ताकी छाकी

अद्भुत लता की ताकी दीपत विसाल है ।

दीसै जित गैल गैल फाग मची है छैल

जहां तहां फैल फैल उडत गुलाल है ।

भागी जब हेली कान्ह रंग भरमेली कुच

हद्द भर भोली चौं अकेली भयौ हाल है ।।

माची कीच रासी मैं इदेस उतपाती धाती

आय परौ छाती पर वृजपति लाल है ।।४८९ ।।

उत्तर-

पुनर्यथा । कवित ।

जात जह गोरी भोरे नंद की किशोरी होरी
रस अस सरस उमंग गुन पोही सी ।
कुंदनाद अतर गुलाल भर थार कर
कंचन कलस रंग मनमथ गोही सी ।
भनत प्रदेस धार मौतिन के हार नग
जटित मनोन मन प्रफुलित मोही सी ।
आंज द्रग बांन गंजरीट दरसान मान
धर गारसान धार दिपत सिरोही सी।।४९० ।।

पुनर्यथा । कवित ।

मुदित कलित लोल द्रग ललितौंहैं सोहैं
अधर स्यांहैं भौंहैं मदि छलकारी है ।
जटित कुसंभी सिर पाग मनजालन सौं
माल जलजात की प्रदीप अधिकारी है ।
भनत प्रदेस संग ग्वाल ले गुलाल भरें
पौल पौल गैलन धमार लैत पारी है ।
फिरत बिहारी धरें कर पिचिकारी दरें
होरी होरी कहैं धरी मुग पर गारी है ।।४९१।।

पुनर्यथा । कवित ।

औवा वारा चंदन ले परत फुहार भरें
अमित गुलाल भेर कर फारफंद कौं ।
मलत कपोलन अबीर भर झोरी कर
लेरी कर पकर प्रदेस सुगचंद कौं ।
कुसम सुरंग रंग कूनर अनंग अंग
अंगन मै सरस प्रदीपत अमंद कौं ।
हरष उमंग सौं जुरी हैं बाल सौं
सुकेसर के रंग सौं भरे हैं नदनंद कौं ।।४९२ ।।

पुनर्यथा । कवित ।

मृदु मंजकुल के वितान ललकानन मै
अतर प्रतर कर वर सरसत हैं ।
नव नव वृंद वाल खेलत प्रदेस होरी
नवल किसोरी वृजचंद दरसत हैं ।
मलय फुहार सखार चकार कर
फौलत अबीर अंग अंग परसत हैं ।
उडत गुलाल लाल अधर प्रछवि धार
मानौं रंग धार धारा धर बरसत है ।।४९३ ।।

इकहत्तर-

पुनर्यया । कवित्त ।

पनघट जैहै वहाँ वैसैं वव जैहै वात
वसन नसैहै रंग भरवखात है ।
फैल फाग खेलत गुपाल ग्वाल वाल संग
दूर दूर ताई ववकार दरसात है ।
भनत छदेस वृजधाम धम जात मुख
मलत गुलाल अत वकत कुवात है ।
गावत धमार धौर धूम धुधुकी की धुन
अधरा धरा तै धूर धुंधुर दिखात है ।।४९४ ।।

पुनर्यया । कवित्त ।

गोरी वाल जाल मैं विसात वडी होरी काज
एकन तैं एक दीप दीप अगरी सी है ।
भनत छदेस धायौ नंद के लला कौ गोल
पाछै ताकि औंध भा मरी तै डगरी सीं है ।
दाव दीनी दरस गुलाल पिचिकार भर
आभ दीनी अद्‌भुति प्रमोद पगरी सीं हैं ।
रंग बुंद सरस प्रभा से मुख चंद पर
इंद वधू चंद पर बुंद वगरी सीं हैं ।। ४९५ ।।

पुनर्यया । कवित्त ।

फाग मदमाती लगी लाग नदनंदन सौं
वचन विलास मुख भरत सुधा सौ है ।
केसर कौ रंग संग अतर सुगंधन सौं
परसत अंग पर दरसत खासौ है ।
भाँपौ टार घूंघट छदेस मुख लूट मूठ
छूटत विसाल लाल सरस हुलासौ है ।
गरद गुलाल भाल परत न भासौ सासौ
जलधर लाल तै प्रकासौ चंद्रमा सौ है ।।४९६ ।।

पुनर्यया । कवित्त ।

गैल गैल छैल फिरैं पारैं फैल फैल छैल
दौर दौर पौर फाग वकत कुचाल पै ।
वाम धाम धाम तैं तमाम सरनाम जुर
कर पिचिकार भर केसर विसाल पै ।
सकल उमंड वृज मंडित छदेस वेस
गावत रझावत नचावत खुसाल पै ।
ग्वाल वाल माल पै अवीर गाल भाल पै
सुरंग जाल वाल पै गुलाल नंदलाल पै ।।४९७ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

द्वार वृषभान के सुजान कान्ह खेलैं फाग
रागैं गोपग्वाल जत गावैं सुरताल मैं ।
मेलैं झूठ भेलै रंग सखिन पठेलें ठेलैं
पैठ पैठ मेलैं भरे आनद उछाल मैं ।
भनत ब्रजेस भर कुंकुमा सुभाल मारैं
ताकि पिचिकार मारैं जोवन विसाल मैं ।
एकैं मलैं गाल एकैं देत करताल खड़ीं
आसपास बाल लाल मंडित गुलाल मैं ।।४९८ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

माची फाग ब्रज मै छुवाची ग्वाल बाल राची
सांचीं फिरैं ताचीं परैं बाज झपटान सीं ।
ताके बीच नंदलाल फेंट मै गुलाल भरै
लाल लाल कीनी सबै बंकला छटान सीं ।
छड छड मंदिर ब्रजेस मैन मंत्र पढि छड छड
धावै आवै नट के वटान सीं ।
बाल जाल मंडित उमंडित अटान पर
लाल रंग छंडित घमंडित घटान सीं ।। ४९९ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

रतन जटित पिचिकारिन फुहारिन मैं
कुसिम्भित रंग गंध कलित बखान कौं ।
केसर के कुंभ भर केसर उलीचैं बाल
मलत अबीर मुख लाल सुखदान कौं ।
फैकी नंदलाल नै गुलालीब्रजेस केस
परौ कुच कुंभ पर दिपत भलान कौं ।
मानौ कलधौत गिर मंडित अखंड पर
फैलगौ अकास तैं प्रकास बाल भान कौं ।।५०० ।।

पुनर्यथा । कवित्त।

कुंजन वगीचै सीचै केसर उलीचै कीचैं
चंदन सुगंधन के परत फुहारे हैं ।
राजत ब्रजेस फाग मचत मनमोहन पै
भरत गुलाल जनु जलधर भारे हैं ।
चमक धमक धमैलिन की माल पै गुलाल धूर
भासत रसाल छवि जाल बटकारे हैं ।
मान पंचवान के सिंगारे रुपकारे भारे
तारे आसमान के गुलाबी रंग धारे हैं ।। ५०१ ।।

तिल्लर-

पुनर्यथा । कवित्त ।

बजत मृदंग डप भांभ भनकारन सौं
गावैं फाग धावत बजावैं गोप ताल हैं ।
मलत अबीर धूर राधका गुविंद मुख
राधे मुख मलत गुविंद मुखपाल हैं ।
भनत छ्देस रंग परत सुरंग अंग
द्रगन कटाछन सौं करत निहाल हैं ।
सोभित गुलाल भरी अदुभुति छटा सी ज्यासी
उमिडत आवत घटा सीं बाल जाल हैं ।। ५०२ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

साज बृजबाल बृषभानजा उताल बाल
फौंकत उछाल पिचकारिन के जाल सौं ।
लाल सौं नचावत मचावत धमार धूम
गाल गुलचावत लगावैं करताल सौं ।
भनत छ्देस उलावत अबीर धूर
धूर कर पूर लावै परपूर भाल सौं ।
नेहि सौं रचावत बचावत गुलाल मूठ
द्रगन नचावत लचावत गुपाल सौं ।। ५०३ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

दीपन विचित्र रास मंडल अखंड छवि
लाल लाल ह्यौ रही तमालन की माल है ।
द्रग प्रत कोर लाल अधरन मोर लाल
चोर चोर लाल कुंब अधिकि बिसाल है ।
भनत छ्देस लाल रंग सौं दुकूल लाल
आभरन लाल लाल लाल बाल चाल है ।
मंडित गुलाल सौं वितान लाल लाल भयौ
ग्वाल बाल लाल औगुपाल लाल लाल है ।। ५०४ ।।

बसंत बर्नन । कवित्त ।

द्रुमन लतान ललिताई छवि छाई अत
तैसी कलकान कोकलान दिन निस मैं ।
भनत छ्देस कडे बीर भीर भीर फिरैं
गुंजत अधीर वीर कुंब पुंब तिसमै ।
सीतल समीर ती के तीर बिरहीन जी के
लाग हि पी के सी के कीके बैन रिस मै ।
पौद पलकंत लौद पुंब बलबंत अंत
देख दरसंत जौं बसंत दिसदिस मैं ।। ५०५ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

भनत छ्देस रित एस कौ प्रवेस भयौ

सरस लतानन पै दिपत अमंद सौं ।

धार वर धनुष सुधार कर धायौ सर

कोकलान बैन सुधा भरत दुवंद सौं ।

डर विरहीन भये मदन अधीन पर –

बीर कामिनीन कौं फिरत फरफंद सौं ।

पवन झकोर झौंर फूल भराभरी परी

भौंर तरा भरी धरा भरी मकरंद सौं ।। ४०६ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

सुमन समूहन समाज लखे जात जितै

गुंजत मलिंद पुंज पुंज दिनरात जे ।

कंदरप कलित दिगंतन दरस अत

झरै मकरंद कुंज वृंदन दिगात जे ।

भनत छ्देस वेस वेस केसरित जैस देस

देसन प्रदीपत सुगंध सरसात जे ।

कोकिल बरात सो तमालन के पात पात

बोलैं अधरात जात करैं उतपात जे ।। ४०७ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

मलय लपेटी पौन जौन वहु ओर सोर

कोकिल कलोर सर प्रयक लगत से ।

मुकिलित ललित निकुंजन मलिंद पुंज

गुंजरत ललन करत मिल गत से ।

भनत छ्देस साज राज रितराज गाज

बिन नंदनंद तन ज्वालन जगत से ।

वन सरसार भरे सुमन विसाल जाल

किंसुकन दिपत अगार सिलगत से ।। ४०८ ।।

पुनर्यथा। कवित्त ।

मलय समीर सीर मधुप छ्देस भीर

लागे फांधे फैल मकरंद सरसन से ।

कोकलान वर मानसर पै पसरकर

छननक सर पंच सर दूत गन से ।

रंचक न रैहै डर के है यौं गुमान वाल

प्रगन बसंत दिग दिव्य दरसन से ।

मुदित लतान पुंज कुंजन सुमन दीप

डोल डोल डारन मैं वृंद उडगन से ।। ४०९ ।।

पद्माकर-

पुनर्यथा । कवित्त ।

मलयजसमीरन्सों
सकल तमालन कौं नव दल माल जाल
पौदन विसाल कल मुकिलित अतएत ।
मारुत सुहात मंद मकरंद फैल वृंद
अमित सुगंध के प्रबंध मधुकर हेत ।
भनत इंदेस कोकिलान मन फूलैं गोल
मदमस्त वृंद वृक मूंदैं ना हरण लेत ।
कामिनी अलीसैं मोद पति की खुसी सैं दोसैं
आयौ सखी सैं रितराज वक्सीसैं देत ।। ४१० ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

मधुकुल मारुत कमल मत चौगिरद
कोकिला अलापत कलापी उतपात से ।
भनत इंदेस महाराज रितराज आयौ
बागन तमाल जाल दिपत वरात से ।
मैन सर अपसर तमाम दिग सर कर
सर मन वेधत वियोगिन के घात से ।
प्रफुलित भौंरन पै भौर दौर मौरन पै
गुंज ठौर ठौरन लगायें प्रान घात से ।। ४११ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

वहन सुगंध लागे भरन मकरंद लागे
कोकिला अमंद लागे बोलैं बाग बन मैं ।
दिन सरसान लागे आलस दिखान लागे
भान लागे उक्ति प्रतापिक दिसन मै ।
भनत इंदेस रितराज दरसान लागे
बालकुच बान लागे लागैं पिय तन मै ।
मृदुलित मौर लागे प्रफुलित भौंर लागे
गुंजन भौंर लागे पुंज लतवन मै ।। ४१२ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

मोद वन बागन अनार कचनार जाल
सरस रसाल डारैं सुमन समाज कौं ।
फूले वेल वल्लका गुलाब आवदार फूले
फूलीं वनितान फूलीं छुवैं वृजराज कौं ।
भनत इंदेस मान दीजे प्रानदान कान्ह
तुम सुनदान प्रानपति सिरताज कौं ।
भौंरन की औंधै कोकिलानन मन मौंधैं करैं
फैलीं देन फौंधैं रितराज रसराज कौं ।। ४१३ ।।

छिप्तर-

पुनर्यथा । कवित्त ।

गुंजरत भौर अंब पुंज कुंज कुंजन मै

कीर पढ़ै मंत्र मैन पीर उपराज कौं ।

फूल कचनार उनहार गन तारन के

मकरंद सनौ पौना क्यौं हिय काज कौं ।

लपट छदेस रही लतका रसाल जाल

आपु ही मिलाप कीजे लाल ब्रिजराज कौं ।

केकला अवाज क्ला केक की जिहाज आज

फैल गौ समाज साज राज रितराज कौं ।। ४१४ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

सिंधु सललानन मै प्रफुल तमालन मै

भृंग रस पायलन मै कलित पगंत की ।

पुंज नव बालन मै मद मुद्र पालन मै

वस्त्रन बिसालन मै गंध सरसंत की ।

भनत छदेस मृदु बेलन चमेलिन मै

काम कृत केलन मै खेलन अनंत की ।

गेहि उदार महैलन मै छैल बाग सैलन मै

दीपै कुंज गैलन मै फैलन बसंत की ।। ४१५ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

दीपत उदित बास जाल अत ही बिसाल

गजवत लाल रतवत झलकैं अमंद ।

कुंज कुंज गुंजत मलिंद पुंज पुंज वहै

तौन वा सुगंध पौन औन परगत मंद ।

भनत छदेस राग बरसत रंग संग

रंग है छबीली अंग थिरकत छलछंद ।

सरस लतान दरसत प्रफुले अनंत

खेलत बसंत आज वृंदावन नदनंद ।। ४१६ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

पुर वृजबाला एक एकन तै आला दीपै

मोद बैसी माला सो सिंगार सब साज कौं ।

बाजत मृदंग धुन तार झनकार गावै

ताल कर सकल अलापै रितराज कौं ।

भनत छदेस हेम थारन गुलाल जाल

अतर बिसाल भरैं अगर समाज कौं ।

मोरे भौंर ललित प्रसून झलकत जाल

लैकर बधावन बसंत वृजराज कौं ।। ४१७ ।।

सत्तर-

ग्रीष्म वर्नन-- पुनर्यथा । कवित ।

चोल चोल प्रथक भजाने भुसवोहिन के

नीचें परजंक के गुलाव जल सीचें हैं ।

ललित लडैती गल बांह नाह कर डोल

मंद मंद बीजन प्रमोद पल मीचें हैं ।

वर तरुनाने मै विचित्रकि इदेस पान-

दान भुसवाने धरे सरस नगीचें हैं ।

अतर उलीचें भसणानिन कीं सोहै

मार तंड कीमरीचें धरा करत दरीचें हैं । ५१८ ।।

पुनर्यथा । कवित ।

प्रफुलित मालिती के मुकिलित पुंज कुंज

गुंजरत भौर भीर अभित प्रमोद वर ।

परजंक राजत लडैती बृजराज जौ

मंद गत मारुत प्रसीतल अतर तर ।

भनत इदेस वेस पट चटकीली रंग

चंदल प्रसून हार ललित जुही के कर ।

चंदन सुगंध गार अगर गुलाव वारि

भरत फुहार बुंद परत दुहून पर ।। ५१८अ।

पुनर्यथा । कवित ।

सुमन जुही के नीके रुचि परजंक चित्र

दीपन विचित्र झलाझलकत हीर के ।

धूव भसणानिन की लपट अमंद वहै

छिरकि हजारनि गुलाव वर नीर के ।

भनत इदेस एकैं बीजन करत सखी

पान दान देत एकै अतर गम्हीर के ।

पीतल प्रिया के लगैं हीतल प्रमोद तैसे

सीतल करैं वे भकोरा सीतल समीर के । ५२० ।

पुनर्यथा । कवित ।

बंगलन छिरकि गुलाव अतरन कर

खुस्न चित्र रत रन हरफन तैं ।

परजंक तर वर सजल जलव कर

सहरत सीतल फुहार बरफन तैं ।

भनत इदेस प्रिया प्रीतम विहार तहैं

वहै मतवारौ पौन चारौं तरफन तैं ।

मोद भरी आवत मधुर मन मोहि मोहि

मंद मंद माधिवी महक भरफन ब तैं ।। ५२१।

पुनर्यथा । कवित ।

प्रमुदित माधवी लतान के प्रसून वृंद

कुंचरत गुंजरत मधुप मलिंदिनी ।

खासे खसखान खस फरस खुसी के खूब

मंद गत वात जात वहत अनंदिनी ।

भनत छ्रदेस घन चंदन फुहार परै

वर कंज मंज कर कंज जगवंदिनी ।

गिहिर सुगंध कौ गुलाव जल लहरत

विहरत नंदलाल वृषभान नंदिनी ।। ४२१ ।।

पुनर्यथा । कवित ।

तर वर अतर गुलाव कौ अतर भर

मखमल सेज पै बिछायौ वारिजात है ।

अंदर फरस पर संदल फुहार धार

नाह गलवांह वार छाह पारजात है ।

भनत छ्रदेस सुखदायक ललत कत

आतप तखत मख मद ढार जात है ।

खस के लपाटे डाटे सीत के सपाटे तापै

लपट दपाटे दै झपाटे मार जात है ।। ४२२ ।।

पुनर्यथा । कवित ।

चंदन वहत्त चित्र महल छ्रदेस मोहे

रस वतियान सौं प्रमोद सखियान मै ।

खूब खस फरस फुहार फुही फैल फैल

फैल भरै सीतल समीर छतियान मै ।

गोरे गात सोहै गरै गजरा चमेलिन के

गोहे वर सुघर सहेली लखियान मै ।

गोद लै उरोज कर मरलगुलाव जल छिरकत लाडिलौ

लली की अखियान मै ।।४२४।।

पुनर्यथा । कवित ।

भरफ फुहार चारौ तरफ गुलाब सींच

वरफ समान पौन लालित वहैंती के ।

सज पलका पै तापै सुमन जुही के तापै

राजत प्रभा पै वेल कित पै पहैंती के ।

भनत छ्रदेस खासे खूब खसखान खस

दान तैं झकोर स्वच्छ गंधित वहैंती के ।

सुचि कर चंदनाद उचित कपूर गार

रुचि कर प्यारौ सुख मलत लहैंती के ।।४२५।।

उनासी-

पुनर्यथा । कवित्त ।

कान्ह कल कलित कलिंदी वेल कुंजन मैं
कुसुम कुलीन मुकिलित अवली कौ है ।
चंदन की चहल चहूंधा चित चाह चैन
चौग्रद विचित्र चित्र चटकि भली कौ है ।
भनत छंदेस गुन गहब गुलाब जल
गौ हिमजरान गुन गुंजत अली कौ है ।
सरस सुगंध सार सरासर सरसत
सिसिर समान सुष मंदिर लली कौ है ।।४२५।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

ग्रीषम असेष पेष पीषम सुदेस यह
रवि तन तैन अैन निस पहरात है ।
अलष किसान धुंध धूर वरसत मग
पवन अषंडित प्रचंड फहरात है ।
भनत छंदेस जल कल ते विकल तल
वार वार वारि उफनत थहरात है ।
भूमतल तपत दहक वहकत अत
मारतंड मंडल तैं भांग भहरात है ।। ४२६।

पुनर्यथा । छप्पय ।

रुष रुष रव परजंक जलज दल मृदुलित सीतल ।
तरषानिन षसषान सजल अतरन कर चीतल ।
अष्टगंध कर्पूर धूर लावत सब अंगन ।
विहरत हरष छंदेस प्रिया प्रीतम मिल संगन ।।
जब गमन करत अम भवन तब पवन अवन तप तप वहत ।
वर संदल पट चंदन दपट लदप लपट भपटत रहत ।। ४२७।।

पुनर्यथा। छप्पय ।

ललित कलित लतान पुंज कुंजन गुंजत अल ।
सरस गंध षस फरस फरफ सींचत गुलाब जल ।
छुटत अमित फुहार जलध वरषत लघु तदवत ।
पवन हरत गत मंद होत आनंद सकल अत ।
कवि भन छंदेस मन उदित कर मैट मान पग धर उमग ।
अत पीतल कर हीतल सुलग उहां छांह सीतल सुभग ।। ४२८ ।।

अथ वरषा वर्नन । कवित्त ।

गुंजरत प्रचक कलिंद कल कुंजन मैं
कुंजत ललित लतानन पै लरषैं ।
प्रत प्रत तडफन छंदेस तडिता की अत
तैसे विरहीन मन तलफत दरषैं ।

असी-

भाँक कर भपत भकोरत मरुत घन
वरसत बुंद भला धर धर तरबै ।
अधर अमंद अंदाधुंध जलधर वर
मदन प्रमत धाय धरा पर गरबै ।। ४२०।।

पुनर्यथा । कवित ।

छिन बहु ओर घन घोर सोर जोर कर
मोर मुग तोर गोर करत भरी रहै ।
हरित वदंबन लतान ललिताई पर
कलतडिता की दीप प्रथक भरी रहै ।
भनत इदेस वृजमोहन प्रदेस सजि
वलित कलेस जाल जिमस फरी रहै ।
अधर धरा तै फिरै बादर बरातै धुर
वारध धरा तै छारीं धरकं धरी रहै ।। ४२१ ।।

पुनर्यथा । कवित ।

उठत विचित्र घन सघन तरापन सौं
दिगन प्रसोर कम्र प्रत छहती सीं हैं ।
ललित बुटी सी फिरै वलित बुटी सी नचैं
कैकाँ नटीं सीं लपटीं सीं लड़तीं सीं हैं ।
किन नदनंद बुंद परत तरेखें वेखें
छात्रकि प्रदेस रेखें सर वढतीं सीं हैं ।
धरत न धीरै वे मयूरन कीं भीरै
इंद्रजाल कर जंत्र मैन मंत्र पढतीं सीं हैं । ४२२ ।

तोर तर वन प्रजोर कर कर वर
घोर प्रत घोर घन धर दिगधर के ।
भनत इदेस तमलान के भलाये छता
भलाभलत भार भार भिल्लीगन तरके ।
मोर कर सोर छाइ चात्रकन घोर देत
छन्न के तोरन मुनीस मन फरके ।
हीरत मिलापी मैट मकर मिलापी फिरै
कोकला मिलापी वे मिलापी पंकसर के ।। ४२३ ।।

बोलत मयूर जोर कोकला प्रमोद जत
दिल झुलान लागी वोक की वलान पै ।
हरी हरी कुंज जत भिल्ली करै गुंज तापै
घूमैं घन पुंज भूम भूमि दरसान पै ।
अंदाधुंध धारा धर धौर धौर वारी दिस
सहसन धारा हिरदेस वखान पै ।
वनिता अटान ठाडी लगत घटान तापै
विज्जुल छटान दीप लहर लतान पै ।। ४२४ ।।

इक्यासी-

पुनर्यथा । कवित्त ।

घन मतवारे फिरैं घन मतवारे भरे
मनमथ भारे प्यारे दिपत जलान सौं ।
लह लहे लपट कदंब लतकान चाल
केकी सेकी बोल बाद कर कोकलान सौं ।
भनत इंदेस होत अध रगराज खाज
तैसियै प्रमोद नवै चंचला चलान सौं ।
मन विरहीन हरै भूतल प्रतल करैं
मघन के मेघ परै सघन कलान सौं ।। ४३५ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

बोरैं देत धरन भकोरैं पौन छोरैं कुल
कूलत कलित लसैं मोरैं चहुं ओरैं ये ।
तोरैं तरु कुंवर किशोरैं बाघ गुंजरत
घहरात धावैं धुरा अटन के धोरैं ये ।
भनत इंदेस सुण पावस प्रबल तोरैं
जोरैं जोरैं दादुल भिलीन गन शोरैं ये ।
तरन कौं चोरैं जलधरन सौं छोरैं मान
धरन सौं रोरैं जलधरन की घोरैं ये ।। ४३६ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

उमड घुमड घन भूमि पर भूम भूम
हरत नगारिन धुकार कर दरसैं ।
तैसौं छिति चंचला चमंक चक चौंध चौंध
चौंक अलीं दंपत पिया के तन परसैं ।
कोकलान कलित कदंबन इंदेस कुक
गिरि गिर सिखिर मयूर सुधा सरसैं ।
सहसन धार परैं भला सर सार भार
जलधर धार वारि वार वार वरसैं ।। ४३७ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

घेर घेर सकल दिसान फिरैं गेर गेर
गरज गरज पुंज छोडत जलान के ।
भनत इंदेस ही हिलोरैं प्रीत धारैं काम
मान गांठ छोरैं छिन चोरैं अबलान के ।
जुगुथ जुगुनून के ललान फैल फैल रहे ह
हरे हरे भौरन पै दिपत भलान के ।
मेघ मदि भरे मानौं लरे अर परे जारे
नभ डर परे भरे परे चपलान के ।। ४३८ ।।

ब्यासी-

घेर घन सघन मदंध मतवारौ परैं

धुरवा धुकारन सौं धराधमकत है ।

गरज गरज वर लरजत भूमि घूम

झूमत झुकत मंद बुंद झमकत है ।

भनत छदेस लखौ लाडिली अटापै चढ

अंग अंग नग जगमग दमकत है ।

नील पट उमड घटा सी लहरत काम

तडफ छटा सी चंचला सी चमकत है ।।५३८ ।।

हिंडोरा कवित ।

तट जमुना ने साज सरस हिंडोरैं जोरैं

झाला चोर बादलान झलाझल जत के ।

दिपत छदेस मखतूल के वितान तान

बीच फूंद सुमन कदंब सरसत के ।

घटा घहरात छहरात बीच विज्जु छटा

झला बरसान के हक कोकिला सरत के ।

मचकि झकोर झूम झूलत डरात प्यारी

झुकत झपाक गरैं लाग वृजपति के ।।५४० ।।

पुनर्यथा । कवित ।

फूल फूल ऊल ऊल झूलत हिंडोरैं भृंग

भृंग मन मोद भरौ रच रच जात है ।

बरज बरज है वा बारन बरज वर

लरज लरज डार मच मच जात है ।

बरस बरस मेघ सरस छदेस वर

चपला परस भूमि नच नच जात है ।।५४१ ।।

चमकन्त चमकन्त मचक मचक देख अचकत लाल लंकु

लचक लचक बाल बच बच जात है ।।

पुनर्यथा । कवित ।

कदम लतानन मै झूलत किशोरी राधे

मचक लगैं तैं स्याम गात लपटाती है ।

भनत छदेस बांसुरी की धुन सात गातीं

कोकला सी कूकन मलार दरसाती है ।

चमकत अमित प्रकित चकि चौंधें लेत

छूट चपला कीं छटा छित छहराती है ।

उमड जटा पै घटा झपक झपक जातीं मातीं

बरसत जातीं घनी घोर घहरातीं है ।।५४२ ।।

तिरासी-

पुनर्यथा । कवित्त ।

भनत ब्रदेस घन कलित दिसान दाव

सघन धुन्धार प्रत भूतल प्रथम धुंद ।

सोभित हिंडोरैं साज कंचन की डोरैं

जोर मोर करैं सोरैं भांकि भोरैं मणानुल फंद ।

सुमन कदंव पुंज पूजन मधुप गुंज

मोद भरी कुंजन प्रदीपत कलान कुंद ।

लाडी लाल गावत मलार दरसावत

सुमंद मंद आवत भकोरन फुहार बुंद ।। ४४३ ।।

पुनर्यथा। कवित्त ।

कुंदन कलित कल फुंदन जवाहर के

रतन विचित्र डाडीं भूला कुंज कूलै है ।

थोरैं थोरैं कुंदनघमंड घनघोरैं करैं

मोरैं चारैं कूकत उमंग मनफूलै है ।

डार भुज मुदित ब्रदेस लपटात अंग

गावत भुलावत किसोर दिन दूलै है ।

जैसी घूम घूम भूमि तंकला तमासे करैं

तैसी भूम भूम लाडी भोका खात भूलै है ।। ४४४ ।।

पुनर्यथा कवित्त ।

पूरव भकोरैं पौन लता भभकोरैं जोरैं

जोरौं प्रीत प्रीतम सौं रैवक पसीजु री ।

भनत ब्रदेस सुणा दैनपिक बैन ऊैन

रसभर रैन कर कैन तज भीजुरी ।

फूलत कदंव तर भूलत हिंडोरैं लाल

उठ चल वाल आज सामन की तीजु री ।

तमक त मोर वन धमकत जोर घन

भमकत नीर सीर चमकत वीजु री ।। ४४५ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

मोदित मतंग मतवारे दस दिस मस्त

घूमत सघन घन भूमि पर परसत ।

कलित घटान मद्ध विज्जुल छटान छूट

अद्भुति लतान पै मयूर कूक दरसत ।

भनत ब्रदेस ज्यौं ज्यौं धारा धर तरपत

विरह वधून के तलफ तन तरसत ।

भूम भूम भौलन भलान भोलों भोल जल

भूरों भूर भोणन भपाक भप वरसत ।। ४४६ ।।

चौरासी–

पुनर्यथा । कवित्त ।

दामिन दमक दीप दीपत दिसान दून
दादुल दडक दल दल दल धावैं है ।
कूल कुंज कोकला करत कल कोलाहल
विलकत केकी कुल काम सरसावैं हैं ।
भनत छ्देस हला करत भला पै भला
मन हरसावैं सुधा बुंद वरसावैं हैं ।
भुमड भुमड धरा लगत सुमड कर
उमड घुमड घन गरजत आवैं हैं ।। ४४७।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

सघन घुमंड घन घोर कर सोर जोर
धरकत दिग्गज सुधरा पर सोहैं जे ।
दिपत असाड वाड धर ताड ठोक आयौ
वकत अमोल बोल कोल लाल सौं हैं जे ।
भनत छ्देस धन तै वे रत्तियान लगि
पति छतियान बतियान कहि सौं हैं जे ।
मान धर सौंहैं देखण अब बरसौंहैं छब
वरस वरस गए फोरवर सौंहैं जे ।। ४४८।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

लवग लतान पुंज लालित लहर देत
भानक भिलीन भिले कुंब कुंब मंडे हैं ।
गिरिन मयूर येन की वसे पुकारत
धुकार धुखान मानिनी के मान छंडे हैं ।
भनत छ्देस भूम भूम भूमि द्रुम द्रुम
वाडैं तंकता कौं नवै अधिकि प्रचंडै है ।
मूद मारतंड चंड मंडल उमंड घन
सुंडा दंड धारन अखंड जल छंडैं है । ४४९ ।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

पवन भकोरैं मची धन घन घोरैं मोरैं
लसत करोरैं कूक अद्भुत कला की है ।
रोरैं विरहीन सौं पपीहा गन जोरैं उठैं
मदन मरोरैं हाय रित वरखा की है ।
भनत छ्देस धरा जल तर बोरैं लेत
सविता हिलोरैं घोर परन भला की है ।
चौग्रद विचित्र दीप ललित लता की तैसी
छलक खिला की भल भल चपला की है ।।४५०।।

पचासी-

विपरीत वर्नन । कवित्त ।

पौढे परजंक पर दंपति रसिकि रस
रस मै प्रवीन जुग मैन तन जागै है ।
झिल्लिन झनक तैसी किंकिन ठनक
विपरीत की वनक बतरस मान पागै है ।
झमक झलान छीछदेस वर कुंदन सौ
मोर मन चात्रक मलार राग रागै है ।
चंचला चपट घन तड़फ दपट तैसी
झकझक झपट बाल लाल हिय लागै है ।।४४१।।

मधुबन आज लखि जुगल किसोर छवि
रत रत नायक निछावरन कीजे हैं ।
जैसी घटा घोरन सौ वर वत पोरन सौ
केकी कूक तोरन पपीहा पुंज भीजै हैं ।
भनत छदेस चंचला की चकि चौंधन मै
झलाझल झांपी कृपां उपमान दीजै है ।
दौनौ रूप रीझै अंग उमग पसीजै
ठाडे बतरस करत कदंब तर भीजै हैं ।। ४४२।।

बार बार पीहि पीहि पीवत पपीहा मन
छूट छूट चूट फूट फूट कमला परै ।
पौना सनसनात झंझनात झिल्ली झांझ कर
चारौ ओर सोर मोर जबर हलाप रै ।
भनत छदेस मनमोहन विनाही कुंज
केतिक कदंब मन देखत लता परै ।
बरन बरन घन तरन किरन दाव
तरन तरन वर धरन झला परै ।। ४४३।।

सरद वर्नन । कवित्त ।

चांची जटि फटिकि अटान पै प्रभा लै वर
जीत कर दीप कर सीतकर नीचैं हैं ।
भनत छदेस चंदमनन के हार धार
स्वच्छ गजमुक्त गुच्छ गोहे बीच बीचै है ।
लाडले किसोर जू की गोद मै प्रमोद भरी
छूट छवि जाल मग परत उलीचैं हैं ।
फैल फैलेर गगन के छोर लौ नगीचैं कछ
राधे मुखचंद की मरीचैं सुधा सीचै हैं ।।४४४।।

पुनर्यथा । कवित्त ।

दरस छपाकर कौ परस प्रकास होत
सरस कुमुदगन सदर दरद की ।
भनत छदेस दिस धवन धवल तम
अवल करन मान सवल गरद की ।

छियासी–

श्रवत अमृत प्रत वदत सपूर पूर

समद सपूर कर समदु तमद की ।

उमद हरण दैन वणन चकोर दैन

रसिकि रसाल रैन चाँदिनी सरद की ।। ४४५ ।।

पुनर्यथा । कवित ।

अमट अटा पै सुभ्र चाँदिनी विचित्र तान

रात परजंक तत्तन छद्दर सरस सोद ।

सुक्कवतजलज प्रभाकर दुकूल अंग

हीर पत्र जटि दीप रसन कौ विरोद ।

भनत छ्देस वत काम की कलान कर

द्रग सकुचान मै लडैती व्रज नदनंद गोद ।

धवल निसा है चंद सुधा वरसा मै

वर विहरत सामै भरे सरद निसा मै मोद ।। ४४६ ।।

सिसिर वर्नन। कवित।

चिपिट परे हैं जुग लिपट दुसालन मै

लिपट विचित्र तहाँ मारुत वहत ना ।

प्रज्वलत ज्वाल तूल सरस दुकूलन

विछाय मणतूल फूल बनत कहत ना ।

भनत छ्देस वाल दीपक प्रकास दास

पास ते विलास तास छ्व गास कौ महत ना ।

लागत प्रिया के हिय जागत मनोज सीत

भागत उरोज धाक लागत रहत ना ।। ४४७ ।।

पुनर्यथा । कवित ।

मलत फुलेल खूब तन तन भोत कर

अमत न रंच नीर तपत अन्हायै तैं ।

मगद अनेक भाट रस पय पान कर

मेवा अत अमल तमाल दल खायै तैं ।

गुलगुले गब्ब गदेलन छ्देस तूल

गरभ गलेफा ओढ दाब सिर पायै तैं ।

डार गलवायै प्रिया अंक लपटायैं पायै

सीत जात उष्मित उरोज उर लायै तैं ।। ४४८ ।।

पुनर्यथा । कवित ।

कैधौं चंद सरद पै मंच ग्रह छंद कैधौं

कंज पर दिपत मलिंद छिवकारी हैं ।

भनत छ्देस कै प्रभानई के कंद पर

नीलम नग जटित कसत छवि वारी हैं ।

सतासी-

कैधौं काम धाम से कपोल पर टौना जान

पिय कौ दिठौना छवि देत दुति भारी कें ।

रद छत सौहै के कसौ है तिल सौहै निकि-

सौहै सन सौहै के मसौ है प्रानप्यारी कें ।। ५५८ ।।

इति श्री पं श्री इंदेस कविकृत विस्वकमकरन ग्रंथ संपूर्न समाप्त: । दसखत पं श्री कवि इंदेस के अस्वन सुदि ५ गुरौ संवद १९०४

दोहा

विस्वकमकरन ग्रंथ कौं जो बांचै चित लाय ।

कहै नायका भेद कौं अद्‌भुति कवित बनाय । श्री श्री ।५६०।

अन्य स्फुट तथा खंडित छंद जो उक्त ग्रंथ की समाप्ति के अनन्तर लिखे गए अथवा जो ग्रन्थान्तर्गत पृष्ठों के पार्श्वभागों में उपलब्ध हुए हैं —

कवित्त

काम सुंदरी सी मुक्त मात फुंदरी सी

छवि छारी तरफी सी हांसी सुधा वरसी सी है ।

हीरन की कांत सी वतीसी दरसी सी मीसी

नैनन छमीसी पैठ हीतल कसी सी है ।

भनत इंदेस रची सुंदर छरी सी वाल

मुक्त भरी सी विभि अमित असीसी है ।

दीपत ससी सी अंक भरत परी सी दीसी

सीसी करैं लागै कलाकंद वरफी सी है ।।१ ।। ५६१ ।।

रत विपरीत रची सुंदर अभीत प्रीत

कसन पिया के पैर दिपत वनक तैं ।

चुंमत अधरवर चुंवत करत जात

हीतल अमी करत सीकर तनक तैं ।

भनत इंदेस कवि प्रीतम रसी करत

जी करत आनद कसीकर छनक तैं ।

चुप कर किंकिन कौ सवद असेष होत

चुप कर वैठ रहे विछुवा भनक तैं ।।२ ।। ५६२ ।।

दोहा

गई कुंज साहस सरस तहां नहीं नदनंद ।

तन पीरी सीरी परी मौ मलिन मुख चंद ।। ३।५६३ ।।

अठासी–

कवित्त

पर तिय देहि कौ सुगंधि आप देहि भरौ

बहक बहक पौन भौन मै भरौ परत ।

सकुच करत कहा लाज कौं डरत कहा

घूमत धरत पग भूम बिथिरौ परत ।

भनत इन्देस छबि छाक मै छके से चके

आवत छके से मन मोद उघरौ परत ।

रावरे के वैनन तै रैन जगे नैनन तै

उमग उमग नेहि मेह सौं झरौ परत ।।४।५६४।।

कवित्त । खंडित ।

....

....

.... वागन तै दौर दौर

बौर बौर भौर ठौर ठौरन भिरत है ।

पगन धरत मग मगजगमग होत

हरख इन्देस मन मोहन भिरत है ।

देखौ मुख मोर मोर मोर नैन जोर जोर

भोर तै कोर कोर कोरन फिरत है ।।५।५६५।।

नित कलकान कुल कान कौं न भान देह

निस प्रत प्रान हिया अपत पिया सौं है ।

मानत न वान वान वान कै कहा लौं कहौं

छोड ज्ञान पान पान प्रीत लौ लिया सौं है ।

भनत इन्देस रत चिंतित दिखात गात

पति न तिहारौ घरै लखन भिया सौं है ।

हसन अनोखी मन वेस नव सोकन

दसन कपोलन पै वसन पिया सौं है ।। ६।५६६।।

कलत प्रदेस पति वाल कौ कलेस भयौ

झिरि ना झिरत नैन कंज सिरमौर है ।

सास समुझावत सखीन वहरावै मन

औरन कौं देख कछु और तके और है ।

भनत इन्देस वल हिलकी रुकत नाहि वारहै

है हार वैठी एक ठौर है ।

जैसे गज दंतना कौं जानत जहान पेर

खावत . ... ७।५६७।।

दोहा

घर वर ना हरवर करौ हरि नरवर कित लाय ।

सरवर पर तरवर तरैं तरवर कर हिय लाय ।। ८।५६८ ।।

नवासी-

....

....

.... पतास फोर आन करौ

छली छल करौ कै अकासहू तै करौ है।

भनत इदेस भली भांत मोह लाओ जाय

सकल विचारौं यह जीवत कै मरौ है।

भूत है कि प्रेत है कि दानव कै देवता है

जानियै न जात जौ कहां तें आन परौ है ।।९।४६९।।

दूसरे महल मै अखंड तप कीवौ करै

पीवौ करै दूध लीवौ राम नाम मीतौ है।

मानस कौ भूत कई दरस करत नाहि

रहत इकंत रंच मानत न भीतौ है।

भनत इदेस सदा जीवौ करै मेरे भाग

मैं हू अब भजन करत धाम रीतौ है।

ऐक जुग बीतौ मोकौं होत है न पीतौ

.... ।१०।४६७०।।

प रि शि ष्ट

कवि हृदयेश के वे पद जो ` बेतवा-वाणी ` वर्ष 2 अंक 2
में प्रकाशित हुए —

जीवो लख बरस गुपालनन्द नाना साव
            रावरे कौ सुजस मुलक भर गावै सो ।
भनत हृदेस देव पुत्र देय चिरजीव
            आनन्द उमंग ग्रेह मंगलन धावै सो ।
सेवा करी थोरी भौत आप सब जानकर
            ऐसी कृपा कीजे उदार और के न धावै सो ।
मैं तो तुमै जाँचों बार आदमी की लाग फेर
            आपके अधीन कर दीजे मो आवै सो ।। १ ।।

परमानन्द दिनकरा अनुजा कानीगोह ।
पुन्यारत्य सिरकार को लामै वे बदि बोह ।।
लामै वे बदि बोह दूर सायर वे कीजे ।
नाक काट कर कान तुरत मदहो धर धीजे ।
गंगाधर सिवराजनन्द काटो दुख फंदा ।
पापिन कौ सिरमौर बोतरा परमानन्दा ।। २।।

ईंगुर की उमंग न कुसुमित रंग की न
            ऊनी सुख ललित मधुक फूल दल की ।
भनत हृदेस जलजात अरुणाई कहाँ
            जावक की जगत लुनाई सब हल की ।
विद्रुम की झलक न लेखत बनै वारे
            उपमा अनेक जतन फुलन पलपल की ।
कोट बाल भानु की बहाली रंग लाली झाली
            अमित छिपाली लाली राम पग तल की ।। ३ ।।

दीजे वर सियराम जी जग तारन तुव नाम ।
अधम उधारन दुख हरन विबुध भनत सुख धाम ।।
विबुधि भनत सुख धाम आप मरजाद बनाई ।
बामन की नहि देहि दंड विरदावलि गाई ।
जनहृदेस प्रभु चरन सरन किनतीकुल लीजे ।
दूर कीजिए कुष्टि देहि निर्मल कर दीजे ।।४।।
राखौ मम जन आपको जो लग या तन वास ।
धर्म कर्म आरोग्यता निधि चरनन की आस ।।

निज चरनन की आस वास कीजे हिय आकर।
महाराज श्री राम सिंह कर देउ कृपा कर।
दीन दयाल हृदेस दास जाँचत यह भाखौ।
फूल सूल सब मेटि दृस्टि को मूल न राखौ ।।५।।

आपन बड़ाई छिति छाई चार बेद गाई
सींच फिर लाई वह तेरी फुलवाई है।
आपकी कहाई कहौं कौन देस वहि गाई
सरम निबाई होत छ्रम निवाई है।
सरन हृदेस वाहे सुधिबिसराई ऐसी
आपको न वाई सिवा तेरी ई दुहाई है।
पातिक बुराई करी दारुन पवाई माई
खबर हमारी कर जबर दवाई है ।।६।।
आदर को न देखौ मानपान को गुमान रखौ
सवसर नीच ताके सोच में पराका है।
मूल अभागिन सो दीन होय बात सुनी
सोचत न नीच ऊँच मतलब छाका है।
भनत हृदेय यार सियानों की सलाह यही
कीजै उपाय जासे पर न जाव फाँका है ।।७।।
वो मंत्र यही ताका सो बुद्धिमान वाका वह
वक्त परे बाँका तो गधा से कहै काका है।

बड़े बड़े अपराध गरद कर वैसो कलयुग काला।
बिभचारिन बिभ्चर है उर में वर कुन्दन की माला।
भन हृदेस पंडित गुन मंडित ते धारे मृग छाला।
गान तान वारे धनवारे घोड़े फिरै दुसाला ।८।
महावीर बीरन के बेटा बैठे गहै बिताला।
रसिया भड़ुआ राँड़ मिलावे बाँधे फिरै सिपाला।
कीम साव के पैरन वारे भोगैं अन्न कसाला।
मोड़िन की खिदिमत कर तिनके परे कान में बाला ।९।
पतिव्रता तरफत को तरसै बिभचारिन घर ताला।
झूठे के मुख लाली देखी साँचे के मुख काला।
सत्य बचन परमान छान को परे दुस्ट के जाला।
चुगलखोर धन चोर मसखरा परे सेज सुख साला। १०।
देव मंदिरन दिया न बाती गौरन पै उजयाला।
भूमि देव विप्रन को देखो कौड़ी देत कसाला।
रंडिन को भोजन की सिन्नी ऊपर पान मसाला।
साधुन को नहिं पूछ बकन को सेवे देव दिवाला ।।११।।

चतुर नरन को बदसूरत की सूरन के घर जाता ।
मूरख बैठे मौंच उड़ावै परवीनन पग घाता ।
भूपत कृपा केरत नीचन पै कर अनीत प्रतिपाला ।
जबर घोर कलिकाल काले कौं गुन को कछ न चाला ।। १२ ।।
मुसलमान सीताफल सुमरै हिन्दू सुख हवाला ।
मुसलमान मौसी कर टेरै हिन्दू टेरै साला ।
साँची कहै सुनै को बिनती भयौ नीच बलवाला ।
अधरम प्रगट भयौ भूतल पै धंसा गौ धरम पताला ।। १२ ।।
जगत गुरू विप्रन कौ निन्दित बनिक पुत्र परवाला ।
मुख मुण्डन की दच्छा लै लै फेरैं तुलसी माला ।। १३ ।।
मालपुवा हलुवा भोजन दै गुपत सिखावत ताला ।
अधरम नाम जपत सीताफल डार गोमुखी माला ।
दीसै भक्त बड़े ठाकुर के तिलक सरसरे भाला ।
जाँचत देव विप्र साधुन को होत क्रोध को जाला ।। १४ ।।

आठौं जाम अखंड ध्यान रहै रस नैन और काम
हीयत मै भक्त राम नाम ही सौं राची है ।
मंत्र के प्रभाव की अखंड छबि छलका
झलकत भाल कैसो भुवन मै साँची है ।
भगत हृदेय नरदेव राव नारायन
धन्य वह ख्यात प्रसन्न विधि राची है ।
सोभा नरनाह की बखान वेद वाँची तैसो
धीर सुमै साँची दान कीरत मे साचा है । १५ ।
जाकी वेद नारद बखानत सुरेस सेस
सकल छनीस जन किसमत करी है ।
बीच बीच हरी जरी कोर जरतार भरी
मुद्रित करी लाल मखमल मरी है ।
जटित नगीन जूट अद्भुत हृदेस दीप
उमंग उमंग मग जगमग भरी है ।
नृपति नाराइन जू आच्छी भक्त करी ऐसी
राम पग तरी सुभ घरी सीस धरी है ।। १६ ।।
केसर अतर तर भर पिचकारिन मे
छुभित तार भिरैं कंचन कलस मे ।
भगत हृदेस तहां अभित हथारन तै
छूटत फुहार दृग सींचत सलिल मे ।
महाराज राव रघुनाथ श्री सिवा के नंद
नंद कुल चंदवत अद्भुत दरस मे ।
रंग भरे बसन गुलाल अंग अंग भरे
विहरत रंग भरे मोद मजलस मे ।। १७ ।।

जैसे राम राजा भए आनंद त्रिलोक भयो
देवतान छोड़े झरा सीस पै सुमन के।
तैसे ही प्रजान के मनोरथ प्रसिद्ध भये
आप राज पाय भए दीपक भवन के।
भनत हृदेस राव गंगाधर महाराज
दाता सिवराज सुत पालक सवन के।
जैसे दान दैके प्रान राखे गजबन गन के
तैसे दान दै के प्रान राखो उदय मन के।। १८।।

देस सुख पावे नाना साहिब दुनी के लोग
वदर पसार दे असीस सिर नावै है।
जीवौ करे आनंद हृदेस जस लीवो करे
जीवो करे भाग सबही के मन भावे है।
दानी है प्रमानी है मनुष्य पहिचान ज्ञानी
सुधाकर बानी धर्म नीति दरसावै है।
वाघे सिवराव के भुपाल ने निवाई तातै
आपकी सवाई भलाई प्रजा भावे है।। १९।।

कर कर लीने पै प्रवीन राम काज कीन्हे
नृपत महेन्द्र पर उचित जहान की।
देखत की वाली है अखंडित प्रताप वाली
पाली प्रजा भली भांत सान गुनजाल की।
भनत हृदेस राज लाल की विहाब भई
लड़ई भुपाल सिरताज सुभ चाल की।
राखी राजधानी बुध वलित प्रमानी जानी
जगत बखानी स्यानी रानी धर्मपाल की।। 20।।

जदिप भूमि तल पै उदित रहत भान अरु चंद।
तुम तब लगि आनंद सहित जीवौ राव अनन्द।। २१।।

जस करबे कौं सही जस मजबूत राज
जस करबे कौं मोहिनी सो मंत्र छायो है।
भनत हृदेस भोलानाथ सौ दयाल भोला
नाथ जू को गुन गन पुन पुन गायो है।
दरस पुनीत कवि दुजन को मीत लाल
करत पुनीत सब ही के मन भायो है।
जाँत में सील भयौ वाहन मैं नाम जैसो
डाँकन ने प्रबल प्रतापी पूत पायो है।। २२।।

दीपत बरात बना राजै गजराज पर
जर सिरमौर नग छबि छलकारे हैं।
बाजत मृदंग और उपंग सहनाई संग
हरख उमंग अंग अंग सकल निहारे हैं।

भनत हृदेस कर्मसंगि सुत ल्यायौ जब
भाव आव ताव महताव भाव वारे है।
छूटे छूटवान छूटी छुलके दिसान मान
टूटे आसमान ते क्वारे बांध तारे हैं। २३।

आठौं जाम ही में धरै ध्यान ब्रह्मज्ञान तत
तप के निधान गुनवान नाम राज है।
गुरु ब्रह्म गुरु विष्णु गुरु रुद्र गुरु शक्ति
गुरु के प्रताप कर होत सब काज है।
सेवत हृदेस ऐसे गुरु पद राम राज
भव सिंधु तारन खैया राज लाज है।
भूतल पै प्रगट प्रसिद्ध नवनाथ भए
वाही रूपधर भंगनाथ महाराज है।। २४।।

कुन्दन कलित कर पन्नन जटित पाटी
सोहै मुक्तमाल जाल देखत हरस है।
भान की मरीच परै झलक झलान होत
भान होत मान प्रभा पुंज को दरस है।
भनत हृदेस देवराज कौ विमान किधौं
गुरु साधु सिंह जू के तरन परस है।
देव को चरित्र मन मोहन कौ छत्र किधौं
अद्भुत विचित्र दिव्य पाँवरा सरस है।। २५।।

सिय जन्म
राग बलंगड़ा

सुनैना गोद सिरानी प्रगटी सिय महरानी।
जगमगात पलना दुति अद्भुत मोतिन झालर तानी।
कंचन थार रतनन भर भर करत निछावर रानी।
जन हृदेस जय जनकनंदिनी गावत सब जग जानी।।

राग कल्याण
बजत मधुरता जनिक के द्वार गावै सप्तसुर तार
नाचत नार रंग बरसावत मंगर कर उपचार।
छुम छुम छमछम ठमक ठमक कर झमक झमक पग धार।
थिरक थिरक फिरकत फिरकी है जन हृदेस सुकमार।।

धनाश्री
आज आली सीता जू जनम लियो।
मिथिला पुर जनिक के उर में आनंद छाये।
बजत बधाये द्वार मन भाये फल पाये
गृह गृह साँतिये धराये गाये।
नक्कारखानी बाज बजत मृदंग ताल
झनन झनन सुर उपजाये।
जन हृदेस बंदी जन पट फहराये
चरन कमल सिया सिर नाये।। २८।।

।।विस्वव[illegible]करन।।

१९७

रदछनसोहैकेवसोहैतिलसोहैनि
विसोहैसनसोहैकेमसोहैप्रानप्या
रीकें।।५५६।।इतिश्री पंश्री हृदेसक
विकृतविस्ववसकरनग्रंथसंपूर्नस
माप्त।।दसकतपंश्रीकविहृदेसके
ग्रस्वनसुदि ५ गुरौ संवद १९०४
दोहा।।विस्ववसकरनग्रंथकौंजो
बांचैचितलाय।।कैहैनायकाभे
दकौंअद्भुतिकवितबनाय।।श्रीश्री

विस्ववसकरन का अन्तिम पृष्ठ

अंग्रेजी के ग्रन्थ

१- इंडियन पेन्टिंग — पर्सी ब्राउन
२- इंग्लिश वर्क वाल्यूम चार
३- इन्फ्लुएन्स आफ इस्लाम आन इंडिया — तारा चन्द
४- डिक्लिनेशन आफ इंडिया एण्ड फ्रेगमेन्ट आफ इंडियन हिस्ट्री — डा० लेड्स
५- दि सोशियो-एकोनामिक हिस्ट्री आफ झांसी डिस्ट्रिक्ट — डा० एस०पी० पाठक
६- झांसी गजेटियर -१९६५
७- स्टडीज इन नायक-नायिकाभेद — डा० राकेश गुप्त

संस्कृत के ग्रन्थ

१- अनंग रंग — कल्याण मल्ल
२- अमर कोश
३- उत्तर रामचरितम् — भवभूति
४- काव्यालंकार — रुद्रट
५- काव्यालंकार-सूत्र — वामन
६- कामसूत्र — वात्स्यायन
७- काव्यप्रकाश — मम्मट
८- कुट्टनी मतम् — दामोदर गुप्त
९- उज्ज्वलनीलमणि — रूप गोस्वामी
१०-चन्द्रालोक — जयदेव
११-तैत्तिरीयोपनिषद्
१२-दशरूपक — धनंजय
१३-ध्वन्यालोक — आनंदवर्द्धन
१४-नाट्यशास्त्र — भरतमुनि
१५-नैषधीयचरित — श्रीहर्ष
१६-प्रतापरुद्रयशोभूषण — विश्वनाथ
१७-भर्तृहरि नीतिशतकम् — भर्तृहरि
१८-भागवद्गीता — वेदव्यास
१९-शृंगारप्रकाश — भोज
20-सरस्वती कण्ठाभरण — भोज
२१-साहित्य दर्पण — विश्वनाथ
२२-सांख्य कारिका — ईश्वरकृष्ण
२३-वेणी संहार — भट्ट नारायण

हिन्दी के ग्रन्थ

१- आधुनिक हिन्दी काव्यों का शिल्प-विधान — डा० श्याम नन्दन किशोर
२- आधुनिक प्रतिनिधि कवि — डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना

...और विकास — रामचरण ह्यारण `मित्र`
४–कवि सेवक और सुधानिधि — नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
५–कविप्रिया — केशवदास
६–कविकुल कल्पतरु — चिन्तामणि
७–कविता में प्रकृति-चित्रण — डा० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल
८–जय ओरछा — श्रवण कुमार त्रिपाठी
९–जायसी ग्रन्थावली — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१०–झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई — डा०वृन्दावनलाल वर्मा
११–त्रिवेणी — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१२–देव और बिहारी — पं० कृष्णबिहारी मिश्र
१३–देव और उनकी कविता — डा० नगेन्द्र
१४–ग्वाल रत्नावली — कवि ग्वाल
१५–गीतावली — तुलसीदास
१६–प्रकृति और काव्य — डा० रघुवंश
१७–ब्रजभाषा साहित्य का नायिकाभेद — प्रभुदयाल मीतल
१८–ब्रज का इतिहास — वही–
१९–बिहारी भाष्य — डा० देशराजसिंह भाटी
२०–बिहारी रत्नाकर — जगन्नाथदास रत्नाकर
२१–बिहारी की सतसई — पद्मसिंह शर्मा
२२–बिहारी और उनका साहित्य — डा०हरवंशलाल शर्मा व अन्य
२३–बिहारी का काव्य-साहित्य — डा० रमाशंकर तिवारी
२४–बुन्देल-वैभव — आचार्य गौरी शंकर द्विवेदी
२५–बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य — रामचरण ह्यारण `मित्र`
२६–बुन्देलखण्ड का इतिहास — गोरेलाल तिवारी
२७–भिखारीदास प्रथम व द्वितीय खण्ड — पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
२८–भारतीय दर्शनशास्त्र का इतिहास — डा० नरेन्द्र देव शास्त्री
२९–भारत का इतिहास — आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव
३०–भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास — बी०एन०लूनिया
३१–भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास — ताराचन्द
३२–मतिराम-ग्रन्थावली — पं० कृष्ण बिहारी मिश्र
३३–मध्ययुग का संक्षिप्त इतिहास — ईश्वरी प्रसाद
३४–मध्यकालीन भारतीय संस्कृति — आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव
३५–महारानी लक्ष्मीबाई — दत्तात्रय बलवन्त पारसनीस
३६–मतिराम कवि और आचार्य — डा० महेन्द्र कुमार
३७–पद्माकर — आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
३८–रसरंग — कवि ग्वाल
३९–रसिकानंद — कवि ग्वाल
४०–रस-सिद्धान्त — डा० आनंद प्रकाश दीक्षित

४१-रस-विलास	देव
४२-रसराज श्रृंगार	डा० रामचन्द्र वर्मा
४३-रसखान और उनका काव्य	साहित्य सम्मेलन प्रयाग
४४-रस पीयूष-निधि	सोमनाथ
४५-रस सारांश	भिखारीदास
४६-राम चंद्रिका	केशवदास
४७-रसिकप्रिया	वही-
४८-ललित ललाम	मतिराम
४९-रीतिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	डा० शिवलाल जोशी
५०-रीतिकालीन श्रृंगार भावना के स्रोत	डा० सुधीन्द्र कुमार
५१-रामचरितमानस	गीताप्रेस गोरखपुर
५२-रीतिकाव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	डा० वैंकट रमण राव
५३-रीतिकालीन हि०साहित्य की ऐति०व्याख्या	डा० महेन्द्र प्रताप सिंह
५४-रीतिकाव्य पर संस्कृत काव्य का प्रभाव	डा० दयानन्द शर्मा
५५-रसमीमांसा	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
५६- मुगल बादशाहों की हिन्दी	आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय
५७-भोजराज खण्डकाव्य की भूमिका	डा०रमाशंकर शुक्ल ` रसाल `
५८-महाकवि ग्वाल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डा० भगवान सहाय पचौरी
५९-मानस-पीयूष	महात्मा अंजनीनंदनशरण
६०-लक्ष्मीबाई रासो	डा० भगवानदास माहौर
६१-श्रृंगार-निर्णय	भिखारीदास
६२-श्रृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन	डा० राजेश्वर चतुर्वेदी
६३- षड्-ऋतु वर्णन	कवि ग्वाल
६४-सूर का श्रृंगार वर्णना	डा० रमाशंकर तिवारी
६५-सूर सागर	नागरी प्रचारिणी सभा,बनारस
६६-संस्कृति के चार अध्याय	रामधारी सिंह दिनकर
६७संगीत राग कल्पद्रुम प्रथम भाग	कृष्णानन्द व्यास
६८-साहित्यिक निबन्ध	राजनाथ शर्मा
६९-साहित्यिक निबन्ध	डा० गणपतिचन्द्र गुप्त
७०-साहित्यालोचन	श्यामसुन्दर दास
७१-सिद्धान्त और अध्ययन	बाबू गुलाब राय
७२-सूर सौरभ	डा० मुंशीराम शर्मा ` सोम `
७३-विद्यापति पदावली	सं० कुमुद विद्यालंकार व अन्य
७५-व्यंग्यार्थ कौमुदी	प्रतापसाहि
७६-हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण	डा० किरणकुमारी गुप्त
७७-हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास	डा० भगीरथ मिश्र
७८-हिन्दी रीति-साहित्य	वही-
७९-हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास षष्ठ भाग	डा० नगेन्द्र
८०-हिन्दी साहित्य का इतिहास	वही- एवं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
८१- चिन्तामणि	,,

८२- हर्ष चरितम् संस्कृत सं०जगन्नाथ पाठक

८३-हिन्दी रीतिकवियों की प्रेम-व्यंजना हिन्दी डा० बच्चनसिंह

८४-हिन्दी साहित्य का अतीत आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

८५-वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन डा० कृष्णा अवस्थी

८६-हिन्दी रीतिपरम्परा के प्रमुख आचार्य डा० सत्यदेव चौधरी

पत्र-पत्रिकाएं

१-बेतवा-वाणी - बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय प्रकाशन

२-धर्मयुग

३-राष्ट्रवाणी

४-मर्यादा